भूमिका

भारतवर्ष के धार्मिक साहित्य मे पुराणो का एक विशिष्ट स्थान है। यो तो हिन्दू धर्म मे वेदो की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और अध्यात्म की दृष्टि से उपनिषदो को समस्त ससार मे अद्वितीय माना गया है, पर लोक-प्रियता की दृष्टि से पुराणो का दर्जा बढा-चढा है। जिस प्रकार ऊँचे दर्जे का साहित्य थोडे विद्वानो द्वारा समादृत होता है, पर सामान्य कोटि की मनोरजक, तथा रुचिकर पुस्तको का प्रचार अगणित जनता मे होता है, उसी प्रकार वेद और उपनिषदो के गूढ तत्वो का विवेचन जहाँ गिने चुने विद्वानो तथा अध्ययनशील व्यक्तियो के काम की चीज होती है, वहाँ पुराणो की कथाओ को गाँवो के अपढ लोग भी सुनते और समझते रहते है। यद्यपि कुछ कारणो से पठित समुदाय मे इनके सम्बन्ध मे कई प्रकार की भ्रान्तियाँ फैली हुई है और अनेक आधुनिकता का दावा करने वाले सज्जन इनको सर्वथा कल्पित भी कह देते है, पर इसका कारण यही है कि उन्होने कभी पुराणो के अध्ययन का प्रयत्न नही किया। पुराणो का उद्देश्य प्राचीन युगो की घटनाओ और परम्परागत ऐतिहासिक कथाओ को सरल तथा मनोरजक शैली मे वर्णन करना है। इनमे से कुछ वास्तविक, कुछ अर्द्ध-वास्तविक और कुछ धर्म, पुराय व सच्चरित्रता की प्रेरणा देने के लिये कल्पित भी होती है। पुराणो ने प्रत्येक विषय को धर्म, सदाचार, नीति का पुट देकर लोक-शिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा की गई है। इसके लिये पुराण-लेखको को घटनाओ के वर्णन मे सशोधन, परिवर्तन तथा कल्पना का आश्रय अवश्य लेना पडा है, पर उनका मूल आधार प्राय ठीक ही है और यदि हम उनके रूपक, अलकार, अतिशयोक्ति, अर्थवाद का विश्लेषण करके अन्तराल मे झाँके तो अनेक बहुमूल्य और कल्याणकारी मणि-मुक्ताओ की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरी बात यह भी है कि सब पुराण एक श्रेणी के और समान महत्त्व तथा दृष्टिकोण रखने वाले भी नहीं है। उनमें से कुछ का उद्देश्य पाठकों को अध्यात्मयोग, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा देना है। कुछ किसी विशेष देवता [redacted]देवनाथ के महत्त्व का प्रतिपादन करके अपने अनुयायियों की श्रद्धा को दृढ़ करने के उद्देश्य से रचे गये है। कई पुराणों में सीधी-सादी धार्मिक कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा लोगों को उपासना, पूजा, भक्ति, व्रत, जप, तप, सदाचार आदि की शिक्षायें दी गई है, जिससे सामान्य मनुष्य अपने जीवन को अधिक शुद्ध, पवित्र बनाकर समाज के लिये हितकारी सिद्ध हो सके। फिर पुराणों का प्रचार और प्रभाव देखकर कुछ थोड़ी विद्या बुद्धि के लोगों ने छोटी-छोटी धार्मिक पुस्तक लिख कर उनके नाम में भी 'पुराण' शब्द सम्मिलित कर दिया है। ऐसी स्थिति में जो लोग केवल दोष-दर्शन अथवा विरोध की दृष्टि से ही पुराणों पर विचार करने लगते है उनको अपनी रुचि के अनुकूल विपरीत आलोचना, आक्षेप, दोषारोपण का मसाला भी उनमें मिल सकता है, पर हमारी सम्मति में उसकी न तो कोई उपयोगिता है, न प्रशंसा है और न उससे उनकी विद्या और बुद्धि की उत्कृष्टता का ही कोई प्रमाण मिलता है।

यदि पुराणों का गम्भीरता तथा सहानुभूति पूर्वक अध्ययन किया जाय तो मालूम होता है कि उनका मुख्य उद्देश्य वेद, उपनिषद्, दर्शन, स्मृतियाँ आदि शास्त्र-ग्रंथों में वर्णित धर्म, अध्यात्म, सृष्टिरचना, मानव-सभ्यता के विकास सम्बन्धी गूढ़ तथ्यों का इस प्रकार विस्तार और व्याख्या सहित दर्शन करना था जिससे साधारण श्रेणी के जन साधारण उनको समझ कर लाभ उठा सकें। उनका दूसरा उद्देश्य उन्हें कथा के उपयोगी रूप में बनाना भी था जिससे अनपढ़ लोगों, स्त्रियों और बालकों के सामने उनको बाँच कर उपदेश दे सकना सम्भव हो। इसी लिये पुराणों को प्रायः आख्यान, उपाख्यान, दृष्टान्त, रूपक, कहानी आदि ऐसी सुगम और सरल शैली में लिखा गया है जिससे सब प्रकार के व्यक्ति उनको प्रेम से सुन सकें और उनसे अपनी बुद्धि तथा स्थिति के अनुकूल लाभ उठा सकें।

पौराणिक साहित्य का एक लक्षण सर्ग (सृष्टि रचना) और प्रतिसर्ग

(सृष्टि का लय तथा विलीनता) के विषय में विचार करना है। यद्यपि यह एक बहुत जटिल तथा विवादग्रस्त विषय है, जिसके सम्बन्ध में संसार के बड़े से बड़े विद्वान् और वैज्ञानिक तरह-तरह के मतभेद प्रकट करते रहते हैं, पर पुराणों ने इसे देवासुर संग्राम के रूप में ऐसा मनोरंजक बना दिया है कि पाठक कहानी के द्वारा ही सृष्टि-विज्ञान के मोटे तथ्यों को जान लेता है। इसी तरह प्राचीन [redacted] वंशों का वर्णन भी पुराणकारों ने परोपकार, उदारता, त्याग, तपस्या के उदाहरण दिखाने के ढंग से ही किया है। यह आवश्यक नहीं कि राजवंशों की ऐसी नामावलियों में प्रत्येक राजा के नाम आ ही जायें, पर उनमें से ऐसे राजाओं को छाँट कर उनका विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिनके चरित्र और कार्यों से हम किसी प्रकार की सत्शिक्षा प्राप्त करके अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं।

इस दृष्टि से यदि हम कहें कि पुराण-ग्रंथ भारत की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, इतिहास के भंडार हैं तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। एक विद्वान् के कथनानुसार "पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है, इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय-जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनमें अच्छे प्रकार प्रतिपादित हैं। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं मानव मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना या योजना नहीं, मनुष्य जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से समझने में बहुत कठिनाई होती है, वे बड़े रोचक ढंग से, सरल भाषा में, आख्यान आदि के रूप में इनमें वर्णित हुए हैं।" एक अन्य लेखक ने कहा है कि "भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति, सदाचार एवं सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषय पुराणों में आये हैं। वस्तुतः पुराणों की वर्णन-समृद्धि से स्तब्ध हो जाना पड़ता है। किन्तु इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण अंश वेदों की अध्यात्म ब्रह्मविद्या या सृष्टि विद्या है, जिसे पुराणों ने खुलकर स्वीकार किया है। 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्' यह सूत्र ही मानों पुराण की रचना बीज बन गया था। इस दृष्टि से वेद-विद्या का ही लोक सुलभ अवान्तर रूप पुराण-विद्या है।"

मार्कण्डेयपुराण की विशेषता:—

महापुराणों के पाँच मुख्य लक्षण बताये गये हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित। यद्यपि ये लक्षण थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी प्रसिद्ध पुराणों में पाये जाते हैं, तो भी जिन पुराणों का उद्देश्य किसी विशेष देवता या सम्प्रदाय की पुष्टि करना है उनका विशेष ध्यान उसी तरफ लग जाता है और इन मूल विषयों के वर्णन को भी उसी रङ्ग ने रङ्ग दिया जाता है। पर 'मार्कण्डेय पुराण' इस बात से अधिकांश में बचा हुआ है और उसमें मुख्य रूप से धर्म, नीति, सदाचार के प्रतिपादन को ही अपना लक्ष्य बनाया है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु शिव में से किसी देवता को बढ़ाने के लिये दूसरे की हीनता नहीं दिखलाई गई है। इसी प्रकार अग्नि, सरस्वती, सूर्य आदि का भी समान-भाव से स्तवन किया गया है। इस निष्पक्षता की भावना के फलस्वरूप इस पुराण में विभिन्न विषयों का यथार्थ रूप में वर्णन करने की तरफ ध्यान दिया गया है, जिससे उसकी उपयोगिता बढ़ गई है। इस दृष्टि से यह पुराण हिन्दू-धर्म की समन्वयवादी विचारधारा की एक बहुत उत्तम कृति है जिसने पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों के भेदभाव को मिटाने का प्रयत्न करते हुए सब देवों की एकता पर जोर दिया है। इसका विचार क्षेत्र इतना उदार है कि केवल हिन्दू सम्प्रदायों को ही नहीं वरन् बौद्ध और जैन जैसे सर्वथा भिन्न समझे जाने वाले मतों के प्रति भी पृथक्त्व की भावना नहीं रखी है। भगवान् भास्कर की स्तुति करते हुए कहा है—

विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
कैवल्य ज्ञानमाविर्भू प्राकाम्य सविदेव च॥
बोधश्चाक्षयतिश्चैव, स्मृतिर्विज्ञानमेव च।
इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वत॥

अर्थात् 'वैदिकों की पराविद्या, ब्रह्मवादियों की शाश्वत ज्योति, जैनों का कैवल्य, बौद्धों की बोधावगति, सांख्यों का ज्ञान, योगियों का प्राकाम्य, वेदान्तियों

का संविद्, धर्मशास्त्रियों की स्मृति, योगाचार का विज्ञान—ये सब रूप एक ही महाज्योतिष्मान् सूर्य के विभिन्न दर्शन है।'

इसकी दूसरी विशेषता 'कर्म' को प्रधानता देना है। अन्य अनेक लेखकों ने जहाँ यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का साधन माना है अथवा गृह त्याग करके तपस्वी या सन्यासी बन जाने को आत्म-कल्याण का मार्ग बतलाया है, वहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' मे देवत्व, इन्द्रत्व और ब्रह्मत्व तक को कर्मों का परिणाम बतलाया है। यहाँ कर्म का तात्पर्य पूजा, पाठ, जप—तप से नहीं वरन् परोपकार और दुःखी प्राणियों के कष्ट निवारण से ग्रहण किया गया है। ऐसे कर्म की प्रशंसा करते हुए पुराणकार कहते हैं—

"मनुष्य का जो कर्म करुणा से प्रेरित होता है और जिसमे किसी प्रकार के कपट का भाव नहीं होता, उससे मनुष्य को किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है।"

बौद्ध और जैन धर्म के प्रभाव से देश मे जब भिक्षु, मुनि, श्रमण आदि की संख्या बहुत अधिक बढ गई थी और गृहस्थ-धर्म का उत्तरदायित्व पूरा किये बिना ही 'निर्वाण' और 'मोक्ष' के नाम पर कार्यक्षम व्यक्ति निकम्मा जीवन व्यतीत करने लगे थे तब मार्कंडेय ने गृहस्थ—आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की और स्पष्ट शब्दों मे कहा कि 'जो गृहस्थ धर्म का पालन करके पूर्वजो तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता वह गृह त्याग करके भी किसी प्रकार की मुक्ति किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, इस पर जब विपक्षी यह आक्षेप करते थे कि वेद और उपनिषदों मे कर्म—मार्ग को अविद्या कहा है, तो फिर उसका अनुसरण क्यों करना चाहिये, तो मार्कंडेय का उत्तर था कि 'वेदों का यह कथन असत्य नहीं है कि 'कर्म अविद्या है पर साथ ही यह भी कह दिया है कि विद्या तक पहुँचने का मार्ग अविद्या ही है। कर्तव्य-कर्म का पालन न करके जो 'संयम' का ढोंग करता है वह उत्थान के बजाय अधोगति के गढ़े मे गिरता है।' इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट समर्थन 'ईशोपनिषद्' मे किया गया है जिसमे विद्या और अविद्या का समन्वय करते हुए कहा है—

विद्या चाविद्या च यस्तद वेदोभय ७ सह ।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

अर्थात् 'मनुष्य के लिये विद्या रूप ज्ञान तत्व और अविद्या रूप कर्म तत्व दोनो का जानना ही आवश्यक है। वह कर्मो के अनुष्ठान से मृत्यु को पारकर ज्ञान के अनुष्ठान से अमृतत्व का उपभोग करता है।' सांसारिक जीवन मे सफलता प्राप्त करने के लिये कर्मो मे कुशल होने की आवश्यकता है और पारलौकिक जीवन मे सर्वश्रेष्ठ स्थिति तक पहुचने के लिये ज्ञान का होना अनिवार्य है। साथ ही यह भी निश्चित है कि कर्म की कुशलता प्राप्त किये बिना ज्ञान और मोक्ष का दावा करना एक प्रकार की मूढता है। गीता मे भी 'योग कर्मसु कौशलम्' कहकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। शुकदेव और दत्तात्रेय जैसे पूर्व जन्म के सिद्ध योगियो का उदाहरण तो अपवाद स्वरूप है, सामान्य मनुष्यो के लिये जीवन को सार्थक बनाने का कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नही है।

गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ मार्कण्डेय ने नारी के महत्व को भी बतलाया है और सामाजिक जीवन मे उसे उचित स्थान दिये जाने का समर्थन किया है। यद्यपि बौद्ध-युग मे स्त्रियो को भी भिक्षुणी बनने का विधान था, पर गृहस्थी के रूप मे उनके दर्जे को बहुत घटा दिया था। उनके कथनानुसार नारी मोक्ष प्राप्ति मे एक बडी बाधा है इसलिये उसका त्याग और उपेक्षा ही मोक्षाभिलाषी के लिये आवश्यक है। स्वय बुद्ध भी अपनी स्त्री यशोधरा को आकस्मिक रूप से छोडकर चले आये थे इससे इस भावना को और भी अधिक बल मिला था। 'मार्कण्डेय पुराण' की इस धारणा को सर्वथा अग्राह्य बतलाकर स्त्रियो के ऐसे उपाख्यान उपस्थित किये जिनमे उनको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की पूर्ण रूप से सहायिका माना गया। मदालसा उपाख्यान (१६-६६, ७५) मे कहा गया है—

"पति को भार्या की सदा रक्षा और पालना करनी चाहिये। भार्या भर्ता की सहायिका होने पर सम्यक् प्रकार धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का

निमित्त होती है। भार्या और भर्ता दोनों ही जब परस्पर में अनुकूल होते हैं तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धर्मादि त्रिवर्ग से समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्य्या के बिना कभी धर्म अर्थ का लाभ करने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार भार्य्या भी स्वामी के बिना धर्म-साधन में समर्थ नहीं होती। ये धर्म, अर्थ आदि दोनों के ही सम्यक् प्रकार से आश्रित रहते हैं। उदाहरण के लिये देवता, पितृ, भृत्य और अतिथियों का सत्कार न होने से धर्माचरण की पूर्ति नहीं होती। यदि पुरुष पर्याप्त धन कमा कर ले आवे पर घर में भार्य्या न हो अथवा वह कुभार्य्या हो तो वह सब धन बिना कुछ लाभ पहुँचाये क्षय को ही प्राप्त होता है। इसलिये पुरुष और स्त्री जब समान रूप से धर्म का पालन करते हैं तभी वे धर्म लाभ करने में समर्थ होते हैं।"

मार्कण्डेय पुराण के पाँच विभाग:-

यद्यपि यह पुराण मार्कण्डेय ऋषि के नाम से प्रसिद्ध है, पर इसमें वर्णित कथा प्रसङ्गों के आधार पर ही यह प्रकट होता है कि यह कई वक्ताओं के मुख से निकल कर पूर्ण हुआ है। हम निम्न रीति से इसे ५ भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) अध्याय १ से ९ तक जैमिनि ने मार्कण्डेय से महाभारत सम्बन्धी शङ्काओं के चार प्रश्न पूछे हैं। पर मार्कण्डेय ने समयाभाव से उनका उत्तर स्वयं न देकर जैमिनि को विन्ध्याचल पर्वत में रहने वाले धर्म-पक्षियों के पास भेज दिया, जिन्होंने उनकी शङ्काओं का पूर्ण रूप से समाधान किया।

(२) अध्याय १० से ४४ तक प्राणियों के जन्म, मरण, विकास आदि-भेद, तिरोभाव आदि के विषय में प्रश्न किया गया। इसका उत्तर वैसे धर्म-पक्षियों ने दिया, पर इनका वास्तविक वक्ता जड़ सुमति है, जिसने किसी समय अपने पिता को यही कथा सुनाई थी।

(३) अध्याय ४५ से ८० तक मार्कण्डेय ने अपने शिष्य क्रोष्टुकि के प्रति इस पुराण के मूल विषय का वर्णन किया है।

(४) अध्याय ८१ से ९२ तक देवी की कथा है, जिसे मेधा ऋषि ने कहा है। यह कथा देवी भागवत से मिलती हुई है तथा अन्य पुराणों में भी यह विस्तार के साथ पाई जाती है।

(५) अध्याय ९३ से अंतिम अध्याय तक कुछ विशेष राजाओं का वर्णन किया गया है।

इस पुराण में वर्णित आख्यानों की विविधता और कई वक्ताओं के मुख से इसका कथन देखते हुए स्वभावतः यह अनुमान होता है कि मूल पुराण में कुछ उपयोगी अंश बाद में संग्रह करके सम्मिलित किये गये हैं। तो भी देशी और विदेशी विद्वान् आलोचकों की सम्मति के अनुसार यह अबसे सोलह-सत्रह सौ वर्ष पूर्व वर्तमान रूप में आ चुका था।

'मार्कण्डेय पुराण' के मुख्य विषय—

इस पुराण का आरम्भ जैमिनि और मार्कण्डेय के सम्वाद के रूप में होता है। जैमिनि व्यासजी के शिष्य थे और उनकी जगत् प्रसिद्ध रचना महाभारत के बहुत बड़े प्रशंसक थे, तो भी स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण उन्हें उसकी कुछ घटनाओं में सन्देह हुआ और मार्कण्डेय जी से उन्होंने उनका समाधान करने की प्रार्थना की। उनके चार प्रश्न इस प्रकार थे—(१) जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार करने वाले वासुदेव निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्व (कृष्णावतार) को प्राप्त हुए? (२) अकेली द्रौपदी किस प्रकार पाँचों पाण्डवों की महिषी हुई? (३) महाबलशाली बलरामजी ने किस प्रकार तीर्थ-यात्रा करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया? (४) महातेजस्वी पाण्डवों द्वारा द्रौपदी में उत्पन्न पाँचों पुत्र किस कारण अविवाहित अवस्था में ही मारे गये? इन प्रश्नों पर विचार किया जाय तो प्रथम प्रश्न ही महत्व का है, जिसका निर्णय करने का प्रयत्न अति प्राचीनकाल से आज तक होता आया है। जबकि परमात्मा पूर्णतया अज्ञेय और निराकार है तो वह किस प्रकार सगुण बनकर संसार की रचना की व्यवस्था ही नहीं करता वरन् मनुष्य के रूप में अवतार लेकर दुष्टों से इनकी रक्षा भी करता है, यह प्रश्न सदैव दार्शनिकों तथा विचार-

तीन लोगों के मध्य विवाद का विषय बना करता है। अन्य धर्म वालों ने भी अपने बुद्ध, तीर्थङ्कर, ईश्वर-पुत्र आदि को विशेष आत्मा के रूप में बतलाया है, पर पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार साक्षात् परब्रह्म का इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होना एक ऐसी घटना है जिसका समाधान सहज में नहीं किया जा सकता? इसलिये जैमिनि ने उस युग के श्रेष्ठ ज्ञानी समझे जाने वाले मार्कण्डेय के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही रखा कि वे 'निर्गुण या सगुण की समस्या का ठीक ढङ्ग से निर्णय करें।'

अगले अध्याय में उन चार धर्म-पक्षियों की कथा का वर्णन किया गया है जिनके मुख से मार्कण्डेय पुराण कहलवाया गया है। यद्यपि यह कथा मुख्यतः अभिमान से हानि और अतिथि सत्कार की पराकाष्ठा दिखाने के उद्देश्य से लिखी गई है पर उसमें स्थान-स्थान पर महत्त्वपूर्ण शिक्षाओं को सन्निवेशित किया गया है। जैसे जीवन की अस्थिरता का वर्णन करके मनुष्य को प्रत्येक अवसर निर्भय रहकर कठिनाइयों का सामना करने के सम्बन्ध में कहा गया है—

"युद्ध से भागने वालों तथा युद्ध में लड़ने वालों का जीवन उतना ही होता है जितना विधाता द्वारा स्थिर किया रहता है। किसी का भी जीवन उसकी इच्छा के अनुसार नहीं होता। कोई अपने घर में रहने पर भी मरता है, कोई भाग कर भी मरता है, कोई खाते-पीते ही मर जाता है। कोई स्वस्थ शरीर से विलास करता हुआ शस्त्रादि से बचकर भी काल के करालगाल में जा पड़ता है, कोई तपस्या में निरत और कोई योगाभ्यास करते यमालय गया है, किन्तु अमर कोई नहीं हुआ। इसलिये कायरता पूर्वक युद्ध से विमुख होना मनुष्य के लिये सर्वथा अशोभनीय है।

धर्म-पक्षियों का उपाख्यान—

तीसरे अध्याय में एक सत्य निष्ठ मुकृष नामक मुनि का उपाख्यान है। इनकी परीक्षा लेने के लिये इन्द्र एक बुलबुले गिद्ध का रूप धारण करके आया और उनसे अपने आहार के लिये मनुष्य का मांस माँगा। मुकृष ने पहले अपने चारों पुत्रों को बुला कर गिद्ध का आहार बनने के लिये कहा पर वे भयवश

इसके लिये तैयार न हो सके। तब पिता ने उनको पक्षी की योनि में उत्पन्न होने का शाप दिया और स्वयं सिद्ध का आहार बनने के लिये देह त्याग करने लगा। इस पर इन्द्र ने प्रकट होकर उनकी बड़ी प्रशंसा की और इच्छानुसार वरदान दिया। इस प्रसंग में चारों पुत्रों ने मानव-शरीर की वास्तविकता का भी वर्णन किया है वह बड़ा भावपूर्ण और साथ ही भावित्वमय है। उन्होंने कहा—

"यह मानव-देह एक नगर के समान है जो प्रज्ञा रूपी चहार दीवारी से घिरा हुआ है। हड्डियां इसके खम्भे हैं, इसकी दीवारें चमड़े से बनी हैं और रक्त, मांस, चर्बी आदि से लिपी है। नसों का जाल इसे चारों ओर से घेरे हुए है। इस पुरी के बहुत बड़े नौ दरवाजे हैं जिसके भीतर चैतन्य रूपी पुरुष राज्य करता है। मन और बुद्धि राजा के दो मन्त्री हैं, पर आपस में विरोध रहने के कारण वे एक दूसरे का प्रतिरोध करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजा के चार शत्रु हैं वह सदा राजा के नाश की चेष्टा करते रहते हैं।"

वह राजा जिस समय नौ द्वारों को रोक कर भीतर अवस्थान करता है तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह निर्भय होकर रहता है। उस समय शत्रुओं का उस पर कुछ भी वश नहीं चलता। पर जब वह सब द्वारों को खोलकर रहता है तब 'अनुराग' नामक शत्रु नेत्रादि से आक्रमण करता है। यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है। उसी समय लोभ, मोह और क्रोध रूपी तीनों शत्रु उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। वह राग रूपी शत्रु इन्द्रिय रूपी दरवाजों द्वारा पुरी में घुस कर मन और बुद्धि के साथ संयुक्त होने की अभिलाषा करता है। यह दुर्द्धर्ष राग समस्त इन्द्रियों और मन को वशीभूत करके प्रज्ञा रूपी परकोटा को भंग करता है। बुद्धि भी मनको राग के वशीभूत देखकर तत्काल नष्ट हो जाती है। तब अमात्यहीन तथा प्रजा द्वारा त्यागा हुआ राजा अकेला रह जाता है और शत्रुगण उसको छिद्रों (निर्बल स्थानों) को जानकर उसे नष्ट कर डालते हैं। काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी चारों शत्रु स्मृति-शक्ति का नाश कर देते हैं। राग से क्रोध होता है, क्रोध से लोभ

उत्पन्न होता है, लोभ से मोह की उत्पत्ति और उससे स्मृति का नाश होता है। स्मृति नाश से बुद्धि नाश और बुद्धि का नाश होने से सर्वनाश होता है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा अवतार—

जैमिनि ने प्रथम प्रश्न के उत्तर में कि निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप क्यों और कैसे धारण करते हैं पक्षियों ने एक 'चतुर्व्यूहात्मक' सिद्धान्त का वर्णन किया। उन्होंने कहा कि "तत्वदर्शी मुनियों के मतानुसार 'नार' जल को कहते हैं। वह 'नार' ही एकमात्र जिसका 'अयन' अर्थात् घर था उसको 'नारायण' कहा जाता है। वही अनन्त लीला निधान भगवान् विभु नारायण सगुण और निर्गुणात्मक द्विविध रूप से चार मूर्तियों में अवस्थित है। उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणी से अतीत है, पंडित लोग जिसको शुक्ल वर्ण कहते हैं, जो नित्य रूपिणी मूर्ति तीनों गुणों को अतिक्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधान स्वरूप पहिली मूर्ति का नाम 'वासुदेव' मूर्ति है। इसमें ममता का लेशमात्र भी नहीं है। उसका रूप, वर्ण, नाम जो कुछ कहा जाता है वह सब कल्पनामय है, क्योंकि योगी भी उसका वास्तविक अनुभव नहीं कर सकते, वह मूर्ति सब काल विराजमान परम पवित्र तथा सदा एक रूप है।

दूसरी मूर्ति 'शेष' या 'संकर्षण' के नाम से पाताल में निवास करती है और इस पृथ्वी को मस्तक पर धारण किये हुए है। इस मूर्ति ने तामसी होने से तिर्यग्योनि अवलम्बन की है। तीसरी मूर्ति जिसके कारण सम्पूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजा पालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं, उस सत्वगुण मयी मूर्ति का नाम 'प्रद्युम्न' मूर्ति है। चौथी मूर्ति पन्नग शैया पर जल में शयन करके वास करती है, वह रजोगुण युक्त है। उसके द्वारा ही सदा सृष्टि कार्य सम्पन्न होता है, इस मूर्ति का नाम 'अनिरुद्ध' मूर्ति है। भगवान् की प्रजापालन कारिणी जो तीसरी प्रद्युम्न मूर्ति है, उसी के द्वारा पृथ्वी में सदा धर्म-संस्थान होता है। धर्म का विनाश करने वाले उद्धत असुरगण उसी के द्वारा मरते हैं और उनके द्वारा ही धर्म रक्षापरायण प्राणी रक्षित होते हैं।

मार्कण्डेय पुराण के मतानुसार इस सृष्टिकर्ता परमेश्वर में निर्गुण और

ा, अमूर्त और मूर्त, पर और अपर इन दोनों का समन्वय पाया जाता है। अमूर्त और 'पर' है उसी को 'अरूप' कहा गया है, एवं जो 'मूर्त' और र है वही उस परम आत्मा-नारायण विष्णु का विश्व स्वरूप है। जो लोग ते हैं कि भगवान् केवल क्षीरसागर में शयन कर रहे हैं अथवा वैकुण्ठ में ाजमान हैं, या गोलोक में लीला कर रहे हैं, वे अभी सत्य से दूर हैं। वान् तो एक सर्वव्यापी तत्व है और इस विश्व में जहाँ जो कुछ दृष्टि गोचर ा है वह उन्हीं का रूप है। इस तथ्य को 'विष्णु पुराण' में भी अत्यन्त स्पष्ट ों में वर्णन किया है—

न तद्योग पूजा शक्य नृप चिन्तयितु यत ।
तत स्थूल हरेरूप चिन्तयेद्विश्व गोचरम् ॥५५

हिरण्य गर्भो भगवान् वासवोऽथ प्रजापतिः ।
मरुतो वसवो रुद्रा भास्करोस्तारका ग्रहाः ॥५६

गन्धर्वयक्षा दैत्याद्या सकला देवयोनय ।
मनुष्या पशव शैला समुद्रा सरित द्रुमा ॥५७

भूत भूतान्य शेषाणि भूतानां ये च हेतव ।
प्रधानादि विशेषान्त चेतना चेतनान्तकम् ॥५८

एक पाद द्विपादच बहुपादमपादकम् ।
मूर्तमेतत् हरेरूप भावनात्रितयात्मकम् ॥५९

एते सर्वमिद विश्व जगदेतच्चराचरम् ।
परब्रह्म स्वरूपस्य विष्णो शक्तिसमन्वितम् ॥५०

(६—७)

अर्थात् "जो जो विश्व में सर्वत्र दिखलाई पड़ने वाले पदार्थ हैं वही विष्णु स्थूल रूप है। हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा, भगवान् वासुदेव, प्रजापति, मरुद्गण, ; रुद्र, आदित्य, नक्षत्र, ग्रह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य आदि देव-योनियाँ, मनुष्य, ; पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष सम्पूर्ण भूत और उन भूतों के जितने कारण

प्रधान (मूल प्रकृति) से लेकर पंच तन्मात्राओं तक हैं और जिसमें चेतन-अचेतन दोनों सम्मिलित हैं, एक पाद, द्विपाद, बहुपाद पर बिना पंखों वाले (सरीसृपादि) जितने प्राणी हैं वे सब विष्णु के मूर्त रूप हैं। इसे ही 'इदं सर्वंम्, या चराचर जगत् कहते हैं। इसकी रचना तीन प्रकार की भावनाओं से हुई है—ब्रह्मभावना, कर्मभावना और आध्यात्मिक भावना। इन्हें क्रमशः सत्त्व, रज और तम भी समझा जा सकता है। परब्रह्म रूप विष्णु जब अपनी शक्ति से संयुक्त होता है तब इन्हीं तीन भावों में अपने को प्रकट करता है।"

भगवान् के निर्गुण और सगुण रूप का विवेचन करते हुए 'ब्रह्म पुराण' में कहा गया है कि 'तत्वदर्शी मुनियों ने जल को 'नार' कहा है। वह नार पूर्व काल में भगवान् का 'अयन' (गृह) हुआ, इस लिये वे 'नारायण' कहलाये, वे भगवान् नारायण सब को व्याप्त करके स्थित हैं। वे ही निर्गुण सगुण भी कहे जाते हैं। वे दूर भी हैं और समीप भी हैं। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा नहीं है, जिन अजन्मा प्रभु ने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर रखा है जो आविर्भाव तिरोभाव, दृष्ट, अदृष्ट से विलक्षण हैं, सृष्टि और संहार भी जिनका रूप बतलाया जाता है, उन आदि देव परब्रह्म परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं। जो एक होते हुए भी अनेक रूपों में प्रकट होते हैं, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अव्यक्त जिनके स्वरूप हैं, जो जगत् की सृष्टि, पालन और संहार के मूल कारण हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है।"

मार्कण्डेय, विष्णु, ब्रह्म आदि सभी पुराण इस विषय में एकमत हैं कि जो निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनादि और अरूप कहा जाता है वही सगुण और साकार होकर इस चराचर विश्व को प्रकट करता है। उसको सब से पृथक् किसी अगम्य स्थान में विराजमान मानना निरर्थक है वरन् वह विश्व के प्रत्येक छोटे से छोटे और बड़े से बड़े पदार्थ में व्याप्त है और जिसे इस सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त हो गई है वह प्रत्येक स्थान और प्रत्येक पदार्थ में उसके दर्शन कर सकता है। इसी रहस्य को 'रामायण' में शिवजी ने अत्यन्त संक्षेप में कह दिया है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना॥

द्रौपदी के पाँच पति और पंचेन्द्र उपाख्यान—

जैमिनि के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियों ने कहा कि द्रौपदी कोई सामान्य नारी न थी वरन् वह अग्नि से प्रकट हुई साक्षात् शची थी जो द्रुपद की कन्या के रूप में अवतीर्ण हुई थी। इसी प्रकार पाँचों पाण्डव भी पाँच रूपों में इन्द्र के ही अवतार थे। इन्द्र को समझौते के विरुद्ध त्रिशिरा तथा वृत्रों के वध तथा अहिल्या का सतीत्व भंग करने के अपराध में अपनी समस्त शक्तियों धर्म, तेज, बल, और रूप से वंचित हो जाना पड़ा था। वे ही शक्तियाँ धर्मराज, वायु, स्वयं इन्द्र और अश्विनीकुमारों के द्वारा कुन्ती तथा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार द्रौपदी वास्तव में पाँच रूपों को प्राप्त एक मात्र इन्द्र की ही पत्नी थी।

महाभारत में भी पाँचों पाण्डवों को पाँच इन्द्रों का अवतार बतलाया है और कहा है कि "किसी समय वैवस्वत यम ने नैमिषारण्य में होने वाले एक दीर्घकाल व्यापी यज्ञ में दीक्षा ली और उस समय प्रजाओं को मारने का काम बन्द कर दिया। इससे मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ गई और इनसे देवताओं को डर पैदा हो गया। तब इन्द्र और अन्य देवता ब्रह्माजी के पास पहुंचे और उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। ब्रह्माजी ने उनको वास्तविक कारण बतला कर नैमिषारण्य जाने को कहा। वहाँ पहुँचने पर उन्होंने गंगाजी में एक स्त्री को रोते देखा जिसके आँसू जल में गिरकर सोने के फूल बनते जाते हैं। इन्द्र ने उससे रोने का कारण पूछा। वह उनको हिमालय पर ले गई जहाँ एक तरुण तथा तरुणी बैठे हुए पासा खेल रहे थे। इन्द्र ने उनको न पहिचान कर कहा— 'मैं इन्द्र हूं सब भुवन मेरे वश में है।' इस पर शिवजी ने क्रुद्ध होकर उसे एक अंधेरी गुफा में भेज दिया जहाँ वैसे ही चार इन्द्र पहले से बन्द थे। जब उन सबने अपने छुटकारे की प्रार्थना की तो भगवान् शिव ने कहा कि तुम्हारा छुटकारा तभी होगा जब तुम पृथ्वी पर मनुष्य-जन्म लेकर पराक्रम के कार्य करके

दिखलायेंगे। उस स्त्री से भी शिवजी ने इनके साथ पृथ्वी पर जन्म लेकर इनकी पत्नी बनने को कहा।"

एक और उपाख्यान भी महाभारत के आदि पर्व में इस सम्बन्ध में पाया जाता है, जिसमें कहा है कि एक ऋषि कन्या ने पति की प्राप्ति के लिए शिवजी की आराधना करके कठिन तप किया था और जब वे वरदान देने को उपस्थित हुए तो उसने 'पति देहि' शब्द पाँच बार कहा। शिवजी ने कहा कि तुमने पाँच बार पति के लिये कहा है इससे तुम्हारे पाँच पति होंगे।

वास्तविक बात यह है कि बहु-पतित्व की प्रथा जो पंजाब के पहाड़ी प्रदेश कुल्लू में अभी तक चली आती है, भारत के शेष भाग में अनैतिक मानी जाती है। इसलिये महाभारत में द्रौपदी के पाँच पतियों का उल्लेख करने के पश्चात् उसे धर्म तथा नीतियुक्त सिद्ध करने के लिये आख्यानों के रूप में उसका कारण समझाना पड़ा। आध्यात्मिक दृष्टि वाले विद्वानों ने इसका स्पष्टीकरण वैदिक साहित्य में वर्णित 'पंचेन्द्र' कल्पना के आधार पर किया है। उनका कथन है कि मानव शरीर में स्थित पाँचों इन्द्रियों का संचालन पाँच प्राणों द्वारा होता है। प्रत्येक 'प्राण' को इन्द्र कहा जाता है और उसी के कारण 'इन्द्रिय' नाम पड़ गया है। इन पाँचों के पीछे एक मध्य-प्राण है जो इन पाँचों को प्रदीप्त रखता है। इनको महेन्द्र कहा गया है। इस प्रकार एक मुख्य प्राण शक्ति पाँच इन्द्रियों के साथ सहयोग करती है। पुराणों में वैदिक तत्वों को उपाख्यानों के रूप में ढाल कर समझाने की शैली अपनाई गई है उसी का परिणाम यह पाँच इन्द्रों द्वारा पाण्डवों की उत्पत्ति का कथानक है।

द्रौपदी के पाँच पतियों के इस उपाख्यान से एक नैतिक शिक्षा यह भी प्राप्त होती है कि सदाचार का त्याग करने से इन्द्र जैसा शक्तिमान् देवराज भी उसके कुपरिणाम से नहीं बच सकता। परस्त्री गमन और वचन-भंग के दोष से इन्द्र का पतन हो गया और उसको नरलोक में आकर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ा।

चन्द्र का अमर उपाख्यान—

जैमिनि के नौवें प्रश्न के उत्तर में कि बलराम को ब्रह्महत्या कैसे लगी कैसे प्रकार उन्होंने तीर्थ यात्रा करके उससे उससे छुटकारा पाया, पक्षियों ने छोटा-सा उपाख्यान बलराम जी के स्वभाव के सम्बन्ध में कहा है उसमें वैशेषता नहीं है। पर चौथे प्रश्न "द्रौपदी के पाँचों पुत्र अविवाहित अवस्था अनाथ की तरह क्यों मार डाले गये ?" का उत्तर देते हुए पक्षियों ने हरिश्चन्द्र का जो उपाख्यान सुनाया है वह भारतीय धार्मिक-साहित्य की अमर कृति है। इसमें दिखलाया है कि मनुष्य सत्य-व्रत का पालन करते हाँ तक दृढ़ता रख सकता है और फिर उसी के आधार पर कैसे उच्च से स्थिति प्राप्त कर सकता है।

राजा हरिश्चन्द्र की इस उपाख्यान में जैसी घोर दुर्दशा दिखलाई है विश्वामित्र को जैसे तृशल रूप में चित्रित किया है उनसे इसमें कुछ अतिरिक्तता आ गई है और इसकी वास्तविकता में सन्देह होने लगता है, लेखक ने इसमें करुण भाव का इतना अधिक समावेश कर दिया है कि उससे श्रोता की आत्मा विह्वल हो जाती है और उन्हें विचार करने की सुधि नहीं कि इसमें कहाँ तक वास्तविकता है और कितना अंश कहानी का है। लाखों करोड़ों व्यक्ति 'सत्य हरिश्चन्द्र' के दृष्टान्त से सत्य की महिमा को गा कर चुके हैं। वर्तमान युग के महामानव म० गाँधी ने भी अपनी 'आत्म कथा' में कहा है कि सबसे पहले हरिश्चन्द्र का नाटक देखने से ही उनकी हृदय-भूमि में सत्य-प्रेम का पौधा बोया गया था जो समय और परिस्थितियों से वृद्धि प्राप्त होता हुआ अन्त में समस्त भारतीय समाज को अपनी प्राण-दायक छाया देने में समर्थ हुआ।

ऋौं का स्वरूप और विवरण—

दसवें से पन्द्रहवें अध्याय तक भार्गव के पुत्र सुमति के मुख से पुनर्जन्म

स्वभाव और सब प्रकार की सुख-सामग्री की तरफ से उदासीन रहने वाला था। जब उसका उपनयन होने का अवसर आया और पिता ने उसे चारों आश्रमों के कर्तव्यों का उपदेश दिया तो उसने हँस कर कहा कि "हे पिता! आपने इस समय मुझे जो उपदेश दिया है मैंने अनेक बार उसको सुना तथा उसका अभ्यास किया है। अनेक शास्त्रों तथा बहुत प्रकार के शिल्पों का भी मैंने अभ्यास किया है। मैंने अनेक बार दुःख पाया, अनेक बार सुख प्राप्त किया, अनेक बार उच्च दशा का और फिर हीन अवस्था का अनुभव किया। मुझे इन सब बातों का ज्ञान है तो अब वेदाभ्यास का क्या प्रयोजन है? मेरा अनेक बार शत्रु, मित्र और सम्बन्धियों से मिलाप और वियोग हुआ है, अनेक माता तथा अनेक पिता देखे हैं, हजारों सुख-दुःख सहन किये हैं। मल-मूत्र से भरे स्त्री के जठर में अनेक बार वास किया है, सहस्र-सहस्र रोगों की दारुण यन्त्रणा भोगी है। मैंने कितनी बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र पशु, कीट, मृग और पक्षी की योनि में जन्म ग्रहण किया है। जिस प्रकार इस समय आपके घर में उत्पन्न हुआ हूं ऐसे अनेक बार राज सेवकों और अनेकों बार योद्धाओं के घर में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं अनेक बार मनुष्यों का भृत्य और दास बना हूँ और अनेक बार स्वामी तथा प्रधान भी हो चुका हूँ। मैंने अनेक मनुष्यों को मारा है और अनेक बार अन्य मनुष्यों द्वारा मारा गया हूँ। मैंने अनेक बार दान किया है और अनेक कर औरों से ग्रहण भी किया है। हे तात! इस प्रकार संकटमय संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते हुए मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि वेदों के कर्मकाण्डों के मार्ग से मैं इस दुःखदायी संसार-चक्र से छुटकारा नहीं पा सकता। जब मैं मोक्ष प्राप्ति के वास्तविक मार्ग को जान चुका हूं तब मुझे वेदाभ्यास की क्या आवश्यकता है?"

इस प्रकार सुमति ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े स्पष्ट रूप से वर्णन किया है और साथ ही सकाम कर्मकाण्ड के मार्ग की अपेक्षा निष्काम भाव से कर्तव्य पालन की श्रेष्ठता भी बतलाई है। साथ ही उस युग में बौद्ध भिक्षुओं तथा हिन्दू-संन्यासियों में संसार के सब बन्धनों को त्याग कर आत्म साक्षात्कार और ब्रह्म प्राप्ति का जो आदर्श पाया जाता है उसका भी प्रतिपादन किया है।

पर यह पुराणकार का निजी अभिमत अथवा अंतिम निर्णय नहीं है। आगे चल कर उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किये बिना कर्म त्याग और संन्यास की भर्त्सना भी की है और कहा है कि जो व्यक्ति "आश्रमों के राज-मार्ग को त्याग छलाँग मार कर मुक्ति-पद पर पहुंच जाना चाहता है उसे प्रायः नीचे ही गिरना पड़ता है।"

नरकों का वर्णन प्रायः सभी पुराणों में एक-सा पाया जाता है। विभिन्न प्रकार के पापों के फल से मरणोपरान्त भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं, पापियों को दण्ड प्रहार करते हुए कुश, काँटे, गड्ढे, पथरीली भूमि पर खींचकर ले जाया जाता है और बारहवें दिन भयंकर आकृति वाले यमराज के सम्मुख खड़ा किया जाता है। वहाँ "मिथ्याचारी, मिथ्या साक्षी देने वाले, मनुष्यों और अन्य प्राणिदों की हत्या करने वाले, भूमि, सम्पत्ति तथा स्त्री का हरण करने वाले, अगम्या स्त्रियों से दुराचार करने वाले लोगों को रौरव नरक में डाला जाता है। वह रौरव नरक दो हजार योजन विस्तृत है और उसमें जाँघ की बराबर गहरा गढ़ा है। उस गढ़े में लाल अंगारे भरे रहते हैं जिन पर होकर पापी मनुष्य को चलना पड़ता है। उसके पैर पग-पग पर अग्नि से फटते और नष्ट होते हैं जिससे वह दिन रात में एक बार पैर रखने और उठाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार चरण रखते हुए सहस्र योजन पार कर लेने पर वहाँ से छुटकारा पाता है और पाप शुद्धि के लिये उसी के समान दूसरे नर्क में जाता है और इसी प्रकार सब नरकों को पार करना पड़ता है।"

नरकों का यह वर्णन बड़ा विस्तृत है और विभिन्न पुराणों में इस प्रकार के बीभत्स विवरण के अध्याय के अध्याय भरे पड़े हैं। तामस नरक में कड़ाके की सर्दी पड़ती और सदैव घोर अन्धेरा छाया रहता है। वहाँ सर्दी से कष्ट पाकर पापी मनुष्य इधर से उधर दौड़ते रहते हैं और ठण्ड को मिटाने के लिये परस्पर लिपटते हैं। ठण्ड की अधिकता से दाँत ऐसे कड़कड़ाते हैं कि वे टूट कर गिर जाते हैं। भूख प्यास भी वहाँ बहुत लगती है पर उसकी निवृत्ति का कोई साधन नहीं होता। ओलों के साथ बहने वाली भयङ्कर हवा शरीर की हड्डियों को तोड़ देती है और मज्जा तथा रक्त बाहर गिरता है। वे भूखे

प्राणी उसी को खाकर भूख को मिटाते है। इस प्रकार अनेक वर्षों तक वे अन्धकार मे पडे कष्ट भोगा करते है।

तीसरे 'निकृन्तन' नामक नरक मे बहुत से चक्र लगातार घूमते रहते है। यमदूत पापी जीवो को उनके ऊपर चढा कर तेजी से घुमाते है और काल-सूत्र नामक यन्त्र से उनके प्रत्येक अङ्ग को बार-बार काटते रहते है। पर इससे उन पापियो का प्राण नही निकलता वरन् शरीर के सैकडो टुकडे होने पर भी वे फिर जुड जाते है और उनको पुनः काटे जाने की महाकष्ट कारक प्रक्रिया सहन करनी पडती है। चौथे 'अप्रतिष्ठ' नरक मे भी वैसे ही कुम्हारो के से चक्र और घटी-यन्त्र होते है। पापियो को उन चक्रो पर चढा कर निरन्तर घुमाया जाता है और कभी विश्राम नही लेने दिया जाता जिससे उनको अपार कष्ट होता है। इसी प्रकार अन्य पापियो को रहट के समान एक घटीयन्त्र मे बाँधकर नीचे ऊपर घुमाया जाता है, जिससे उनके मुख से रक्त, लार गिरती है, आँखो से अश्रु बरसते है और वे असह्य कष्ट का अनुभव करते रहते है।

पाँचवा 'असिपत्रवन' अत्यन्त भयङ्कर है। जब उसमे पापी मनुष्य गर्मी से व्याकुल होकर हरे-भरे पेडो की छाया मे भागते है तो उनके ऊपर पेडो के पत्ते जो तलवारो की तरह होते है गिर जाते है और उनके अगो को छिन्न-भिन्न कर डालते है। उसी समय कुत्ते रूपी यमदूत वहाँ आकर उनके टुकडे-टुकडे कर डालते है। छठवाँ 'तप्त कुम्भ' नरक है जिसमे पापियो को खौलते हुए तेल और लोहे के चूर्ण से भरे घडो मे डालकर घोर कष्ट पहुँचाया जाता है।

इसमे सन्देह नही कि नरको का यह वर्णन हृदय को कँपाने वाला है और उसे सुनकर एक बार घोर पापी व्यक्ति भी सहम जाता है। यह कह सकना तो कठिन है कि इस विश्व के किसी कोने मे वास्तव मे कोई ऐसा स्थान है या नही जहाँ उपर्युक्त प्रकार के अनुभव होते हो, पर यदि हम इस समस्या पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करते है तो मालूम पडता है कि क्रोध, लोभ, अहङ्कार, मोह, कामवासना और मद जो मनुष्य का पतन करने वाले षड्रिपु कहे गये है, वे ही नर्क रूप है और जो व्यक्ति उनके वशीभूत हो जाता है वह उप-

मुक्त नरकों की सी पीड़ा इसी दुनियां में भोगता रहता है। क्रोध की अग्नि "रौरव" नरक से कम नहीं होती और कितने ही व्यक्ति उसके पंजे में पड़कर सारा जीवन घोर अशान्ति और मानसिक जलन में ही व्यतीत कर देते हैं। इसी प्रकार जिस व्यक्ति के पीछे लोभ का भूत लग जाता है वह सदा प्रत्येक पदार्थ का अभाव ही अनुभव करता है। उसकी तृष्णा की कभी पूर्ति नहीं होती और इससे उसके उत्साह और आशाओं पर तुषारपात हो जाता है और वह 'तम' नरक के कष्टों को इस पृथ्वी पर ही सहन करता रहता है। 'निष्क्रन्दन' नर्क का वर्णन किसी अहङ्कार ग्रस्त प्राणी के वर्णन से ही मिलता-जुलता है। अहङ्कारी व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को तुच्छ समझ कर बड़े गरूर के साथ अपने बड़प्पन की तरह-तरह की कल्पनायें खड़ी करता रहता है, पर वे सब वास्तविकता के धरातल पर टुकड़े-टुकड़े हो जाती हैं। इससे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह असह्य पीड़ा अनुभव करता है।

'अप्रतिष्ठ' नरक मोह का परिणाम होता है। सांसारिक पदार्थों के मोह में फँसकर वह एक बार अपने को धन्य और सफल समझने लगता है, पर फिर जब उनका वियोग हो जाता है तो खेद से भरकर आँसू बहाता रहता है। जल भरने के रहट की तरह वह बार-बार भरता और खाली होता रहता है और इसके परिणाम स्वरूप उसके हृदय में सदैव हलचल मचती रहती है। 'असिपत्र वन' नरक दूषित कामवासना का रूपक है। दुराचार या व्यभिचार की वासना यद्यपि दूर से बड़ी सुन्दर और मनोमोहक जान पड़ती है, पर उसका परिणाम तलवार या छुरी से आलिंगन करने के समान ही नाशकारी होता है। क्रोधाग्नि के समान कामाग्नि भी बहुत जलाने वाली है। इससे शक्ति का और भी क्षय होता है और मनुष्य का जीवन नष्ट प्राय हो जाता है। छठा नर्क 'तप्त कुम्भ' कहा गया है जो 'मद' का परिणाम होता है। इसके कारण मनुष्य अपनी छोटी-मोटी सफलताओं या सामान्य वैभव पर बहुत फूलता रहता है, पर जब वह दूसरों को अपने से बढ़ा-चढ़ा देखता है तो उसके भीतर ईर्ष्या द्वेष की ऐसी अग्नि प्रज्वलित होती है कि शरीर का समस्त रस-रक्त खौलने लगता है और हृदय में लोहे के हजारों नुकीले टुकड़े चुभने लगते हैं।

मार्कण्डेय पुराण का यह नर्क-वर्णन एक बहुत बड़ा प्रभावशाली रूपक है जिसका आशय यही है कि यदि मनुष्य को सांसारिक व्यथाओं, पीड़ाओं, ज्वालाओं से बचना है तो उसे काम, क्रोध, आदि मानसिक दुष्प्रवृत्तियों से बचकर सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिये। सदाचार और इंद्रियों का संयम ही स्वर्ग का द्वार है और इसके विपरीत इन्द्रियों का दुरुपयोग, दुराचरण हर प्रकार से कष्टदायक और दुर्गति में ग्रस्त करने वाला है। साथ ही हम यह भी स्वीकार करते हैं कि नर्क-वर्णन में तथ्य का अंश चाहे कितना भी कम या ज्यादा हो, पर सामान्य अशिक्षित जनता पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ा है और करोड़ों व्यक्ति उससे भयभीत पाप कर्मों से न्यूनाधिक परिणाम में बचते रहते हैं।

महामानव के लक्षण—

नरकों के वर्णन के प्रसंग में विपश्चित नामक एक राजा का भी कथानक आ गया है, जो थोड़ी देर के लिये नरक दर्शन के लिये लाया गया था और जिसने उस अवस्था में भी परोपकार धर्म को नहीं छोड़ा। अगणित नारकीय जीवों का उसने उसी समय उद्धार किया। उसका सम्पर्क प्राप्त होने से समस्त नर्कवासी जीवों को कुछ सुख मिलने लगा, यह देखकर उसने स्वर्ग-सुख को छोड़ कर वहीं रहने का आग्रह किया और कहा कि उसने जो कुछ पुण्य किया है उसके बदले में इन पापियों का उद्धार कर दिया जाय। वह वहाँ से तभी हटा जब वहाँ पर उपस्थित नरक निवासियों को छुटकारा मिल गया। राजा की इस महामानवता के फलस्वरूप भगवान् विष्णु का विमान उसे लेने आया और उसे स्वर्ग की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त होगई।

ऐसा पुण्यवान् राजा भी किस कारण नर्क दर्शन के लिये लाया गया इसकी कथा भी बड़ी शिक्षाप्रद है। यमदूतने उसे बताया कि विदर्भ देश की राजकुमारी आपकी पत्नी थी। जब वह ऋतुमती हुई तो आप उसकी उपेक्षा करके केकय देश की रानी के साथ विहार करते रहे। ऋतुकाल के समय तो स्त्री-पुरुष का समागम एक प्राकृतिक नियम है जिससे प्रजा की उत्पत्ति होती है और सृष्टि-क्रम स्थिर रहता है। इस दृष्टि से उसे दूषित नहीं बतलाया गया है।

पर अन्य समय में स्त्री का उपभोग कामसक्तता का लक्षण है। प्राकृतिक नियम का उल्लंघन करके विषयासक्तता का आचरण धर्म की दृष्टि से एक पाप कर्म ही है और इसी के फलस्वरूप आपको कुछ क्षणों के लिये नर्क प्रदेश में आना पड़ा। शास्त्र में भी कहा गया है कि जैसे हवन के समय अग्नि घृताहुति की प्रतीक्षा करती है इसी प्रकार ऋतुकाल में स्वयं प्रजापति ऋतुआधान की प्रतीक्षा करता है। दूसरी शिक्षा इस आख्यान से यह भी प्राप्त होती है कि त्याग सबसे बड़ा पुण्य है और इसके द्वारा सामान्य पुण्य भी अनेक गुणा बढ़ जाता है।

पातिव्रत धर्म की लोकोत्तर महिमा—

पातिव्रत का आदर्श भारतवर्ष की एक ऐसी विशेषता है जिसका अस्तित्व संसार के अन्य किसी समाज में नहीं पाया जाता। भारतीय धर्म-कथा लेखकों ने पति-पत्नी के सम्बन्ध को अमिट बना दिया है और उसकी शृङ्खला को जन्मान्तर तक विस्तृत कर दिया है। इस सम्बन्ध में जो आख्यान विभिन्न स्थानों में पाये जाते हैं उनमें अतिशयोक्ति से काम लिया गया है, पर उसका उद्देश्य यही है कि लोगों के हृदय में यह तथ्य भली-भाँति जम जाय। मार्कण्डेय पुराण के सोलहवें अध्याय में एक पतिव्रता द्वारा सूर्य का उदय होना रोक देने की कथा ऐसी ही है। ब्राह्मणी का पति कोढ़ी होने पर भी वेश्यागमन के लिये लालायित हुआ, पर मार्ग में उसे माण्डव्य ऋषि द्वारा सूर्योदय होते ही मरने का शाप दे दिया गया। इस पर पतिव्रता ने कहा कि 'अब सूर्य का उदय ही नहीं होगा?' ऐसा होने पर सब प्रकार के यज्ञ, संध्या, श्राद्ध आदि भी रुक गये। तब देवताओं की प्रार्थना पर अत्रि ऋषि की पतिव्रता पत्नी उस ब्राह्मणी के पास गई और उसे राजी करके सूर्योदय कराया और उसके पति की मृत्यु हो जाने पर उसे अपने पतिव्रत के बल से पुनर्जीवित किया। इस आख्यान का उद्देश्य पतिव्रत धर्म की अलौकिक शक्ति का प्रभाव सामान्यजनों के हृदय में स्थापित करना ही है, जो समाज के हित की दृष्टि से एक कल्याणकारी प्रवृत्ति ही मानी जायगी। इसी घटना के परिणाम स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियों ने चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में अनुसूया के पुत्र होकर जन्म लिया।

मदालसा का उपाख्यान—

मदालसा का उपाख्यान कई दृष्टियों से धार्मिक जगत् में प्रसिद्ध है और वह भारतीय नारियों की आध्यात्मिक ज्ञान-प्रियता तथा वैराग्य-भावना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। मदालसा राजकुमार ऋतध्वज की पत्नी थी जो उनको पातालकेतु नामक दैत्य का सहार करते हुए मिली थी। कुछ समय पश्चात् पातालकेतु के एक भाई ने ऋतध्वज के साथ छल करके मदालसा को यह असत्य सनाचार सुनाया कि "ऋतध्वज तपस्वियों की रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्य के हाथ से मारे गये।" इसको सुनकर मदालसा ने शोक मग्न होकर उसी समय प्राण त्याग दिये। ऋतध्वज को वापस आने पर इस शोकजनक घटना का हाल विदित हुआ और उसने कहा—"यह बाला धन्य थी जिसने मेरी मृत्यु की बात सुनते ही प्राण त्याग दिये। मैं बड़ा कठोर प्राणी हूँ जो उसके बिना जीवित हूँ। पर यदि मैं जीवन दे डालूँ तो उसका क्या उपकार होगा? इसलिये मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मदालसा ने मेरे लिये प्राण त्याग दिया तो मैं भी जीवनभर अन्य स्त्री को अपनी सहचारिणी नहीं बनाऊँगा और सदैव उसकी स्मृति को ताजा रखकर परोपकारमय कार्यों में ही लगा रहूँगा।"

कुछ समय पश्चात् ऋतध्वज की दो नाग कुमारों से मित्रता हो गई जो ब्राह्मण के वेश में उसके पास आते थे। उन्होंने ऋतध्वज की मनोव्यथा को जान कर एक दिन उसका जिक्र अपने पिता अश्वतर नाग से किया और कहा कि हमको कोई ऐसा उपाय नहीं सूझता कि जिससे उसका कुछ उपकार किया जा सके। जो मर चुका उसे सिवाय भगवान् के और कौन फिर से जीवित कर सकता है। पिता ने कर्म की महिमा बतलाते हुए कहा—"द्युलोक और पृथ्वी में ऐसा कोई असम्भव कार्य नहीं है जिसे मन और इन्द्रियों के संयम से युक्त मनुष्य सिद्ध न कर सके। कर्म सर्व प्रधान है। चलती हुई चींटी अनेक योजन तक चली जाती है, पर बिना चले शीघ्रगामी गरुड़ भी जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है।"

अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिये अश्वतर ने शिवजी की तपस्या करके मदालसा को जीवित करा दिया और उसे ऋतध्वज को प्रदान करके उसके जीवन को पुन सरस और सुखी बना दिया। इस प्रकार उन्होंने यह भी दिखला दिया कि शिक्षा का अर्थ केवल ऊपरी शिष्टाचार ही नहीं है वरन् मनुष्य को मित्र का सच्चा हित साधन करने के लिये कठिन से कठिन कर्त्तव्य को अंगीकार करने में भी संकोच नहीं करना चाहिये।

जब मदालसा के प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ और राजा ऋतध्वज ने उसका विक्रान्त नाम रखा तो वह बहुत हँसने लगी। राजा की कल्पना थी कि मेरा पुत्र समस्त शत्रुओं को नष्ट करने वाला महावीर योद्धा बनेगा और बड़े-बड़े वीरता के काम करके वंश के नाम को बढ़ायेगा। पर मदालसा उसको अपना दूध पिलाने के साथ शैशवावस्था से ही लोरियों के रूप में अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा देने लगी। वह कहती थी—

"हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है। तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर भी पाँच भूतों का बना है। न यह तेरा है, न तू इसका है। फिर तू किसलिये रोता है?"

"जैसे इस जगत् में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतों के सहयोग से वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थों के पाने से पुरुष के पाँच भौतिक देह की पुष्टि होती है। इससे तुझ शुद्ध आत्मा की न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।"

"तू अपने इस देह रूपी चोले के जीर्ण शीर्ण होने पर मोह न करना शुभाशुभ कर्मों के अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला माँस-मेद आदि से बँधा है, पर तू इससे सर्वथा पृथक् है।"

"कोई जीव पिता के रूप में प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसी को माता और किसी को प्रिय पत्नी कहते हैं। कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'यह मेरा नहीं है' इस भाव से पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूत समुदाय के ही नाना रूप हैं, ऐसा तुझे मानना चाहिये।"

"यद्यपि समस्त भोग दुःख रूप है तथापि मूढ चित्त मानव उन्हें दुःख दूर करने वाला तथा सुख की प्राप्ति कराने वाला समझ लेता है। पर जो ज्ञानी है और जिनका चित्त मोह से आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखों को भी दुःख ही मानते हैं।"

"स्त्रियों की हँसी क्या है हड्डियों (दाँतों) का प्रदर्शन। जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हैं वे मज्जा की कलुषता है। कुच आदि अंग मांस की ग्रन्थियाँ हैं। इसलिये पुरुष जिस स्त्री पर मोह के भाव से अनुराग रखता है क्या वह एक प्रकार से हाड-मांस की ढेरी ही नहीं है?"

"पृथ्वी पर सवारी चलती है, सवारी पर यह शरीर बैठा रहता है। और इस शरीर के भीतर भी एक दूसरा पुरुष बैठा हुआ है। पर हम सवारी और पृथ्वी पर वैसी ममता नहीं रखते जैसी की अपनी इस देह मे रखते है। यही मूर्खता है।"

इसी प्रकार के सत् उपदेश देकर मदालसा ने अपने प्रथम तीन पुत्रों को अध्यात्म मार्ग का पथिक और सांसारिक प्रपंच से विरागी बना दिया। तब राजा ने उससे कहा कि अब एक पुत्र को राजधर्म तथा गृहस्थ धर्म की भी शिक्षा देनी चाहिये जिससे वह हमारे उत्तराधिकार को ग्रहण करके राज्य-संचालन कर सके। राजा के आग्रह को स्वीकार करके मदालसा चौथे पुत्र अलर्क को लोरियाँ सुनाते हुए इस प्रकार उपदेश देने लगी—

"बेटा! तू धन्य है जो शत्रु रहित होकर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता रहेगा। पृथ्वी के पालन से तुझे सुख की प्राप्ति हो और धर्म के फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले। पर्वों पर सद् ब्राह्मणों को भोजन से तृप्त करना, बन्धु-बान्धवों की इच्छापूर्ण करना, अपने हृदय मे दूसरों की भलाई का ध्यान रखना और पराई स्त्रियों की ओर कभी मनको न जाने देना। अपने मन मे सदा भगवान् का चिन्तन करना, उनके ध्यान द्वारा अन्तःकरण के काम, क्रोध आदि छहों शत्रुओं को जीतना, ज्ञान के द्वारा माया का निवारण करना और जगत् की अनित्यता का विचार करते रहना। अन्त की आयके लिये राजाओं

पर विजय प्राप्त करना, यज्ञ के लिये धन का सद्व्यय करना, पराई निन्दा सुनने से विरत रहना और विपत्ति मे पड़े हुए व्यक्तियो का उद्धार करना।

"बाल्यावस्था मे तू भाई बन्धुओ को आनन्द देना, कुमारावस्था मे आज्ञा पालन द्वारा गुरुजनों को सन्तुष्ट रखना, युवावस्था मे गृहस्थ धर्म का पालन करके कुल को सुशोभित करने वाली पत्नी को प्रसन्न करना और वृद्धावस्था मे वनके भीतर निवास करके वहाँ रहने वाले त्यागी तपस्वियो की सहायता करना।

हे लाल ! राज्य करते हुए मित्रो को सुख देना, सज्जनो की रक्षा करते हुए लोकोपयोगी यज्ञो और उत्तवो की परम्परा को स्थिर रखना और देश की रक्षा के लिये आवश्यकता हो तो दुष्ट, शत्रुओ का सामना करके प्राण भी निछावर कर देना।"

राजधर्म और राजनीति का आदर्श—

माता द्वारा खेल खेलते हुए ही इस प्रकार के जीवनादर्श के उपदेश प्राप्त करता हुआ अलर्क जब कुछ बडा हो गया और उसका उपनयन सस्कार हुआ तो उसने माता को प्रणाम करके कहा कि "लोक और परलोक के सुख तथा जीवन की सफलता प्राप्त करने के लिये क्या करना चाहिये इसका मेरे प्रति उपदेश करिये।"

मदालसा ने कहा—"पुत्र-राज्य का सर्वप्रथम कर्तव्य धर्मानुकूल आचरण करते हुए प्रजा की रक्षा और उसे सतुष्ट रखना है राजा को उचित है कि वह सातो व्यसन-कटुभाषण, कठोर दण्ड, धन का अपव्यय, मदिरापान, कामासक्ति, आखेट मे व्यर्थ समय गँवाना और जुआ खेलना से सदैव बचकर रहे क्योकि ये मूलोच्छेद करने वाले है। अपनी गुप्त मन्त्रणा को कभी प्रकट नही होने देना चाहिये, क्योकि शत्रु सदैव ऐसे मौके की ताक मे रहते है और गुप्त भेदो का पता लगाकर आक्रमण करके राज्य का नाश करने को तत्पर हो जाते है। राजा को अपना गुप्तचर-विभाग बहुत उत्तम रूप से सगठित करके रखना चाहिये जिससे मालूम पडता रहे कि शत्रु उसके राज्य मे किस प्रकार की भेदनीति या तोड फोड की योजना कर रहे है और अपने साथियो मे से कौन सच्चा है और कौन

शत्रु के बहकावे में आ गया है। सब के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करते हुए भी राजा को अपने मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों पर भी आँख बन्द करके विश्वास नहीं करना चाहिये, पर आवश्यकता पड़ने पर शत्रु पर भी विश्वास कर लेना चाहिये। उसे युद्ध तथा शान्ति के अवसरों का पूरा ज्ञान रखना चाहिये। सन्धि (शत्रु से मेल रखना) विग्रह (युद्ध छोड़ना) यान (आक्रमण करना) आसन (अवसर की प्रतीक्षा में रहना) द्वैधीभाव (दुरंगी नीति से काम लेना) समाश्रय (किसी बलवान् राजा की शरण लेना)—इन छः उपायों का राजा को पूरा ज्ञान होना चाहिये। राजा को पहले अपनी आत्मा को जीतना चाहिये, फिर मन्त्रियों को जीते, फिर कुटुम्बीजनों तथा सेवकों के हृदय पर अधिकार करे, फिर समस्त प्रजा को अपना अनुरक्त बनाये और तब शत्रुओं के साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओं से विरोध कर लेता है वह प्रायः असफलता का ही मुख देखता है और अपनी हानि कर लेता है।

"काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्षोन्मत्तता ये मनुष्यों के लिये पतन कराने वाले दोष हैं। राजा तो इनके वशीभूत होकर नष्ट ही हो जाता है। राजा को कौआ, कोयल, भौंरा, हिरन, साँप, हंस मुर्गा और लोहे के व्यवहार से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। जिस प्रकार कौआ सदैव आलस्य रहित रहता है, कोयल दूसरों से अपना काम निकालती है, भौंरा सब से रस लाभ लेता रहता है, हिरन निरन्तर चौकन्ना रहता है, साँप फुफकार कर सब को डराता रहता है, हंस नीर क्षीर विवेक रखता है, मुर्गा ब्रह्म मुहूर्त में ही जगकर कर्मरत हो जाता है तथा लोहा सबके लिये अभेद्य और तीक्ष्ण रहता है, वैसा ही आचरण राजा को रखना चाहिये। राजा चींटी की तरह उचित समय पर समस्त आवश्यक, पदार्थों का संग्रह करे। उसे जानना चाहिये कि जिस प्रकार एक छोटी सी आग की चिन्गारी बड़े-बड़े वनों को जला डालने की शक्ति रखती है, इसी प्रकार एक छोटा-सा शत्रु अवसर आ जाने पर बहुत अधिक हानि कर सकता है, जिस प्रकार सेमल का छोटा-सा बीज धीरे-धीरे एक बहुत विशाल पेड़ के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार कोई साधारण शत्रु भी बढ़ते-बढ़ते अत्यन्त प्रबल हो सकता है। इस लिये उसे आरम्भ में ही उखाड़ फेंकना चाहिये।

"राजा को सब देवताओं का अंश कहा गया है और उसे इन्द्र, वायु, सूर्य, चन्द्र एवं यम इन पांच देवों की तरह पृथ्वी का पालन करना चाहिये, जैसे इन्द्र चार महीने तक वर्षा करता है वैसे ही राज्य को दान दक्षिणा, उपहार द्वारा प्रजा को प्रसन्न करना चाहिये। जैसे सूर्य आठ मास तक सूक्ष्म रूप से जल सोखता रहता है वैसे ही राजा को ऐसे ढंग से कर वसूल करते रहना चाहिये जिससे किसी को कष्ट का अनुभव न हो। जिस प्रकार यमराज समभावसे भले-बुरे सबको अपने नियन्त्रण में रखता है और सदैव उचित न्याय ही करता है वैसे ही राजा को सज्जन और दुष्ट सबको स्ववश में रखना चाहिये। जैसे वायु अलक्षित में ही सर्वत्र पहुँचता रहता है, उसी प्रकार राजा को गुप्तचरों द्वारा मित्र-शत्रु सबका पूरा भेद मालूम करते रहना चाहिये। जैसे पूर्ण चन्द्रमा को देख कर सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं वैसे ही राजा को अपने मधुर व्यवहार द्वारा सबको सुखी और प्रसन्न रखना चाहिये। जो कुमार्गगामी और स्वधर्म से विचलित मनुष्यों को उनके धर्म में स्थापित कर देता है वही सच्चा राजा है। सब भूतों-प्राणियों के पालन में ही राजधर्म की सफलता मानी जाती है।"

गृहस्थ धर्म की विशेषता—

मार्कण्डेय पुराण में गृहस्थ को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया है और स्पष्ट कहा है कि पितृगण, ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतंगगण, पक्षिगण और असुरगण—ये समस्त ही गृहस्थाश्रम का अवलम्बन कर जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं। 'गृहस्थ हमको अन्न देगा या नहीं' यह चिन्ता करके उसी के मुख की तरफ देखते रहते हैं।

आगे चलकर गृहस्थ की उपमा एक गाय से दी है कि "ऋग्वेद जिसकी पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा, इड़ापूर्त उसका सींग, साधुसूक्त रोम, शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रम ही उस धेनुकर प्रतिष्ठा है। इस धेनुका कभी क्षय नहीं होता। स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार इस धेनु के थन हैं। इनमें से देवगण स्वाहाकार, पितृगण वषट्कार और मनुष्य-गण हन्तकार स्तन का पान करते रहते हैं। जो गृहस्थ इस प्रकार देवता आदि की तृप्ति नहीं करता वह महापापी होता है। इस प्रसंग में एक बहुत महत्त्वपूर्ण श्लोक यह है—

श्रीमत ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
सीदताय तत्कृत तेन तत्पाप स समश्नुते ।।

"किसी निर्धन और असहाय व्यक्ति के क्षुधार्त होकर प्रार्थना करने पर उसको भी आहार दे। सम्पत्ति होने पर समर्थ पुरुष को उसे भोजन कराना चाहिये। जो जाति वाला श्रीमान् व्यक्ति के समीप होते हुए भी दुखी रहता है और इस कारण कोई पाप-कर्म करता है तो श्रीमान् को भी पाप के अंश का भागी होना पडता है।"

अगर हम वर्तमान समय की विचारधारा और भाषा के अनुसार इस विचार को प्रकट करें तो इसे भारतवर्ष का धार्मिक साम्यवाद कह सकते है। अपने आस पास तथा परिचित समाज मे कोई व्यक्ति भूखा, नगा, अभाव ग्रस्त न रहे इसका ध्यान रखना सम्पत्तिशाली व्यक्तियो का कर्तव्य है। परिस्थिति वश सम्पति कही भी कम या ज्यादा आती, जाती रहे पर वास्तव मे वह समस्त समाज की है और उसका उपयोग उसके हित की दृष्टि से ही किया जाना चाहिये। जो व्यक्ति किसी उपाय अथवा सयोग से सम्पत्ति को पाकर उसे निजी समझकर ताले मे बन्द रखने की चेष्टा करता है, उसके स्वाभाविक प्रवाह को रोकता है वह बहुत बडा सामाजिक पाप करता है। इस प्रकार अन्य लोगो को जीवन साधनो का अभाव होने से वे जो कुछ चोरी, जमा, ठगी, लूटमार या अन्य पाप कर्म करते है उनके उत्तरदायी वास्तव मे वे व्यक्ति ही होते है जो किसी प्रकार सम्पत्ति के प्रवाह को अवरुद्ध करते है।

आज हम समाज मे इसी दूषित प्रणाली को ओर से फैलता देख रहे है। आज चारो तरफ यही दृश्य दिखलाई पड रहा है कि 'धनी दिन पर दिन अधिक धनवान् बनता जाता है और गरीब निरन्तर अधिक गरीब होता जाता है।' मानव धर्म की निगाह से यह प्रवृत्ति अत्यन्त जघन्य और कुफल उत्पन्न करने वाली है। इसी के परिणाम स्वरूप समाज मे तरह-तरह के विग्रह, फूट, अनेकता और अनुचित विरोध भावो की उत्पत्ति होती है और क्लेश तथा अशान्ति की वृद्धि होती है। इसी लिये शास्त्रो मे कदम-कदम पर दान की प्रेरणा दी है। उसका आशय यही है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकता से अधिक जो

कुछ मिल जाय उसे दान, धर्म, यज्ञ अतिथि सत्कार आदि के रूप में स्वेच्छा से समाज को ही लौटा देना चाहिये। इसी भाव को कई सौ वर्ष पहले महात्मा कबीर ने एक छोटे दोहे में प्रकट किया था—

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढ्यो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥

जिस प्रकार नाव के भीतर पानी जमा हो जाने से वह डूबने लगती है उसी प्रकार एक व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक धन का भंडार जमा हो जाने से अनेक प्रकार के दोष दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। उनसे एक तरफ व्यक्तिगत अहंकार, लोभ, निष्ठुरता, दुश्चरित्रता की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं और दूसरी तरफ अभाव ग्रस्तता दीनता, हीन आचरण आदि बढ़ने लगते हैं। इस दूषित परिस्थिति को रोकने के लिये भारतीय शास्त्रकारों ने स्वेच्छा से त्याग का उपदेश दिया था और जब तक समाज उचित रूप से उसका पालन करता रहा तब तक यहाँ शान्ति और सामाजिक एकता कायम भी रही। आज अनेक देशों के शासक या सत्ताधारी दल साम्यवाद के नाम से इसी कार्य को करने की चेष्टा करते रहे हैं, भारतीय संविधान का अन्तिम लक्ष्य भी 'समाजवाद' की स्थापना बतलाया गया है, पर व्यक्तियों की स्वार्थपरता और लोभ की भावनाओं के रहते हुए इन सब प्रयत्नों का परिणाम बहुत कम दिखलाई पड़ रहा है। 'मार्कण्डेय पुराण' के लेखक ने इस सत्य को स्पष्ट शब्दों में प्रकट-करके निस्सन्देह समाज-निर्माण एक बहुत बड़े समाज निर्माण के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है।

अनासक्त भाव की श्रेष्ठता—

मदालसा उपाख्यान के अन्त में मनुष्यों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन के इन दोषों को मिटाने का एक सीधा उपाय अनासक्त भावना को उत्पन्न करना बताया है। क्योंकि सब प्रकार के सम्पत्ति और चरित्र सम्बन्धी दोष प्रायः तभी बढ़ते हैं जब मनुष्य अपने आत्म-स्वरूप को भूलकर इस पंचभौतिक जगत् को ही सत्य और अपना अन्तिम लक्ष्य समझ बैठता है। इस उपदेश को स्पष्ट रूप से समझाने के लिये पुराणकार ने मदालसा के पुत्र अलर्क की कथा को आगे

बढाते हुए कहा है कि मदालसा के उपदेशानुसार धर्मराज्य करते हुए भी वह अन्तिम अवस्था में सामारिक माया मोह में विशेष फस गया और आत्मोत्थान के वास्तविक लक्ष्य को भूल ही गया। यह देख कर उसके बडे भाई वनवासी सुबाहु को चिन्ता हुई और उसने एक युक्ति की दृष्टि से काशीराज के पास पहुँच कर उसे अलर्क पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। इस आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण अलर्क की मोह निद्रा टूटी उसने माता की अन्तिम चिह्न स्वरूप अंगूठी के भीतर लिखा हुआ यह उपदेश पढा—

सङ्ग सर्वात्मना त्याज्य स चेत् त्युक्तु न शक्यते।
स सद्भि सह कर्तव्य सता सङ्गो हि भेषजम्॥

"मनुष्यों को आसक्ति का पूर्णतया त्याग करना चाहिये, पर यदि वैसा सम्भव न हो तो सत्पुरुषों की संगति ही करनी चाहिये, क्योंकि विषयासक्ति की औषधि सत्संग ही है।"

इस उपदेश से अलर्क को जो मार्ग दर्शन हुआ तदनुसार वह सत्सङ्ग के उद्देश्य से महात्मा दत्तात्रेय के पास जा पहुँचा और उनसे अपनी विपत्ति का पूरा वर्णन सुनाकर दुःख दूर करने की प्रार्थना की। दत्तात्रेय ने उसकी बुद्धि पर पडे पर्दे को देख लिया और सब से प्रथम प्रश्न यही किया कि "तुम अपने मन में अच्छी तरह सोच विचार कर मुझे यह बतलाओ कि तुमको दुःख किस प्रकार का है और वह क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम अपने वास्तविक स्वरूप पर विचार करो, सांसारिक वस्तुओं से उसके सम्बन्ध का निर्णय करो और तब बतलाओ कि किस बात ने तुमको क्यों दुःखी किया है?" इन शब्दों को सुनकर जब अलर्क राज्य पर आक्रमण सम्बन्धी समस्त घटना पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने लगे तो उनका संशय बहुत शीघ्र दूर हो गया और वे हँसते हुए कहने लगे—मैं वास्तव में बडे भ्रम में पडा था कि इन पंच तत्वों को ही अपना मुख्य आधार समझ कर उनके लिए शोक कर रहा था। अगर तात्विक दृष्टि से विचार किया जाय तो मैं न तो भूमि हूँ, न जल हूँ, न अग्नि हूँ न वायु हूँ और न आकाश ही हूँ। इन सब

पदार्थों में न्यूनता अथवा अधिकता होने से ही हम शोक और हर्ष करते हैं पर आत्मा की दृष्टि से यह निरर्थक है। यदि सुख-दुःख का कारण मन और बुद्धि को माने तो आत्मा इनसे भी अलग है। इसलिये वास्तव में मेरा कोई राज्य है, न कोष है, न कोई मेरा शत्रु है। जैसे विभिन्न पात्रों में भरे हुए जल में आकाश का प्रतिबिम्ब अलग-अलग जान पड़ता है, पर वास्तव में वह एक ही होता है उसी प्रकार मैं गलती से काशीराज तथा बड़े भाई सुबाहु को अपने से पृथक् समझ रहा हूँ। ये लोग मेरे दुःख का कारण नहीं, वास्तव में मेरे दुःख का कारण मेरी ममता है। यदि ममता की भावना को त्यागकर विचार करें तो कहीं दुःख नहीं है। जब बिल्ली किसी गौरैया या चुहिया को पकड़ने जाती है तो हमको कुछ भी दुःख नहीं होता, और जब वह घर में पाले तोता या मुर्गे को खा डालती है तो हम शोक करने लगते हैं। इसलिए आत्मा की दृष्टि से हमको कोई दुःख या सुख नहीं होता। किसी एक भौतिक पदार्थ द्वारा दूसरे भौतिक पदार्थ को उत्पीड़ित देखकर ही हम झूठमूठ सुख-दुःख की कल्पना कर सकते हैं।"

दत्तात्रेय जी ने राजा अलर्क की भ्रांति को इस प्रकार दूर करके उसे दुःख से मुक्त होने का मार्ग बतलाया कि तुम्हारा सोचना युक्तियुक्त है। वास्तव में सब प्रकार के दुःखों का मूल यह 'मेरा-मेरा' ही है। जब हम इस ममता को त्याग देते हैं तो दुःख की जड़ स्वयं ही कट जाती है। यह संसार कर्मों का एक महावृक्ष है। उसका अंकुर अहंभाव में से फूटता है। ममता ही उसका भारी तना है। घर-बार का मोह उसकी शाखायें हैं, स्त्री-पुत्र धन, सम्पत्ति आदि पत्ते हैं। यह वृक्ष निरन्तर बढ़ता रहता है और तब उस पर पाप-पुण्य के फूल और सुख-दुःख के फल लगते हैं। अज्ञानी लोग उसे लालसा, कामनाओं द्वारा सींचते रहते हैं। यह वृक्ष बन्धन-मुक्ति के मार्ग को रोक कर खड़ा रहता है। जो लोग संसार रूपी वन में भ्रमण करते हुए इसका आश्रय लेते हैं उन्हें सच्चा सुख कहाँ मिल सकता है? इसलिए आवश्यकता है कि अपने ज्ञान रूपी कुठार को सत्संग रूपी सान धरने के पत्थर पर तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को

काट डाला जाय। तभी हम आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान के आनंददायक उद्यान में पहुंच सकते है जहां फूल और कांटो का भय नहीं है।"

इसके पश्चात् दत्तात्रेय ने अलर्क को योग साधन का पूरा विधि-विधान उसके बीच में आने वाले उपसर्ग और प्रलोभनों की चेतावनी दी और योगी के आचार व्यवहार का उपदेश दिया। अन्त में ओंकार की महिमा को समझाते हुए कहा कि उसकी 'अ' 'उ' 'म' तीन मात्रायें सत, रज, तम तीनों गुणों अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन ईश्वरीय शक्तियों के प्रतीक है और चौथी ऊर्ध्व मात्रा परब्रह्म की ओर संकेत करती है। जो साधक ओंकार के इस स्वरूप को हृदयगम करके उसका ध्यान करेगा वह केवल इसी साधन से मुक्ति का अधिकारी बन सकता है।

दत्तात्रेय के आत्मोपदेश से अलर्क कृतार्थ हो गया। उसका शोक, मोह सर्वथा लोप हो गया और उसने राज्य काशीराज तथा सुबाहु के पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक समस्त राज्य अर्पण कर दिया। उसकी इस निस्पृहता को देखकर वे भी बड़े प्रभावित हुए और सुबाहु ने अपना अभीष्ट लक्ष्य पूरा हुआ देखकर उसका राज्य उसी को लौटा दिया। पर अब अलर्क को सच्चा आत्मज्ञान हो चुका था और वह आत्मा के शाश्वत रूप को अनुभव कर चुका था अतः उसी समय पुत्र को राज्य भार देकर वनवास के लिए चला गया।

सृष्टि रचना और उसका विकास—

[यहां तक मदालसा-उपाख्यान के रूप में मानव धर्म तथा अध्यात्म ज्ञान की चर्चा की गई जिसका मनन करने से मनुष्य को लौकिक और पारलौकिक जीवन की सफलता का मार्ग विदित हो जाता है।] इसके पश्चात् पुराण का मूल विषय "सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर, राज्यवंश" आरम्भ होता है। ये विषय थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रत्येक पुराण में पाये जाते है और इसे हम पौराणिक "सृष्टि विद्या" कह सकते है। जिस प्रकार वेदों में एक अक्षर-तत्त्व से सत्-रज-तम तीन गुणों की उत्पत्ति बतला

कर उनसे समस्त सृष्टि का विकास और विस्तार बतलाया है, उसी प्रकार पुराणों ने एक निराकार ब्रह्म से ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तीन सृजन, पालन तथा संहार करने वाली शक्तियों का उद्भव बतलाकर देव, ऋषि, पितर, एवं भूतगणों के वंशों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। वास्तव में वेद और पुराणों के वर्णन में कोई सिद्धान्त भेद नहीं है, वरन् पुराणकारों ने वेदों के सूक्ष्म और शुष्क विषय को रूपकों, और दृष्टान्तों की शैली में विस्तृत व्याख्या करके उसे साधारण बुद्धि के लोगों के लिए भी बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। इस सृष्टि-रचना-क्रम का सारांश इन शब्दों में दिया जा सकता है।

इस भौतिक जगत् का जो मूल कारण है उसे 'प्रधान' कहते हैं। उसी को महर्षियों ने अव्यक्त, सूक्ष्म, नित्य अथवा सदसत्स्वरूप प्रकृति कहा है। सृष्टि के आदि काल में केवल एक ब्रह्म ही था जो अजन्मा अविनाशी, अजर, अप्रमेय और आधार निरपेक्ष है। वह गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द से रहित है और अनादि तथा अनन्त है। वही सम्पूर्ण जगत की 'योनि' और तीनों गुणों का कारण है। यह ज्ञान, विज्ञान से अगम्य है। सृष्टि का समय आने पर वही ब्रह्म गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृति को क्षुब्ध करता है जिसके फल स्वरूप महत्तत्व का प्राकट्य होता है। महत्तत्व से वैज्ञानिक, तैजस, भूतादि अर्थात् सात्विक, राजस और तामस इस त्रिविध अहंकार का आविर्भाव होता है। तामस अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध-इन पांच तन्मात्राओं का उद्भव होता है और इन तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी तत्व का आविर्भाव होता है। राजस अहंकार से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण इन पांच ज्ञानेन्द्रियों तथा वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से इन दसों इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता तथा ग्यारहवें मनकी उत्पत्ति होती है। फिर महत्तत्व से पृथ्वी तत्व पर्यन्त सब तत्व मिलकर पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध से एक अण्ड उत्पन्न करते हैं। यह अण्ड धीरे-धीरे बढ़ता है और साथ ही उसके भीतर प्रतिष्ठित 'ब्रह्मा' नाम से प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ पुरुष भी वृद्धि को प्राप्त होता है।

आवश्यक वृद्धि और विलास हो जाने पर प्रथम शरीरी या साकार ब्रह्मा का प्रादुर्भाव होता है और फिर वही ब्रह्मा उस अण्ड में समस्त चराचर जगत् की रचना करते हैं।' यह बात मार्कण्डेय पुराण में बहुत स्पष्ट शब्दों में कही है।

स वै शरीरी प्रथम स वै पुरुष उच्यते।
आदि कर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत।
तेन सर्वमिद व्याप्त त्रैलोक्य सचराचरम्॥

पर यह 'ब्रह्मा' कोई बाह्य शक्ति या व्यक्ति नहीं है। संसार में उस परब्रह्म के अतिरिक्त चैतन्य सत्ता का कोई अन्य स्रोत नहीं है, इसलिये ब्रह्म ही विविध रूपों में प्रकट होकर सृष्टि का विकास करता है। इस तथ्य को 'मनुस्मृति' में बहुत स्पष्टता से कह दिया गया है—

यत्तत्कारणमव्यक्त नित्य 'सदसदात्मकम्।
तद् विसृष्ट स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥

अर्थात् 'जो अव्यक्त, सदसदात्मक नित्य कारण है वह ब्रह्म है और उसी से विसृष्ट या प्रेरित सृष्टि में जो अनुप्रविष्ट कारण है वह ब्रह्मा कहा जाता है।"

इन सबका तात्पर्य यही है कि पुराणों ने ब्रह्मा विष्णु महेश—तीन प्रधान देव और इन्द्र, वरुण, मारुत यम, कुबेर, गणेश आदि सैकड़ों गौण देवता मानने पर भी इस मूल तत्त्व से इनकार नहीं किया है कि इस समस्त विश्व-प्रपंच का मूल एक ही है जिसे परमात्मा, परब्रह्म, निराकार ईश्वर आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। जिस प्रकार पिता अपनी स्त्री के गर्भ में स्वयं बीज रूप से प्रविष्ट होकर पुत्र बनता है या वृक्ष अपना समावेश बीज के भीतर कर देता है उसी प्रकार निराकार ब्रह्म स्वयं ही अंडे के भीतर प्रविष्ट होकर साकार देवतत्त्वों का आविर्भाव करते हैं और बाद में वे ही चराचर जगत् के रूप में अपना विस्तार करते हैं। इसी दृष्टि से वेदान्त ने प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूप ही माना है और मुक्त कण्ठ से 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा कर दी है।

यद्यपि ऊपर से देखने पर अनेक व्यक्तियों को सृष्टि के आदि कारण

का यह विवेचन अनावश्यक अथवा निरर्थक भी मालूम पड सकता है। वे कहेंगे कि इतनी दूर जाने की, ऐसे अज्ञेय क्षेत्र में प्रवेश करके महा कठिन कल्पना करने की क्या आवश्यकता है ? जो कुछ सामने है उसी को यथार्थ मान कर उपयोग और व्यवहार क्यो न किया ? पर यह बहुत सकीर्ण अथवा अदूर-दर्शी दृष्टिकोण है। ऐसे ही विचारो के कारण आज ससार मे भौतिकवाद का बोलबाला है और अधिकाश मनुष्य किसी प्रकार स्वार्थ साधन को ही सबसे महत्त्व का काम समझ बैठे हैं। इसका परिणाम घोर व्यक्तिगत स्वार्थपरता, पारस्परिक सघर्ष, दूसरे का नाश करके भी अपना लाभ करने की प्रवृत्ति के रूप मे देखने मे आता है। यही प्रवृत्ति बढते-बढते आज समग्र ससार को एक साथ नष्ट करने के बम के रूप मे उपस्थित हो गई है।

यह सब नाशकारी परिणाम उन मनुष्यो के जीवन के पीछे किसी तरह की उच्च दार्शनिक पृष्ठ भूमि न होने से ही उत्पन्न हुए हैं। पर जो मनुष्य यह विश्वास करता है कि यह समस्त जगत् और तमाम प्राणी एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए है और वह एक अविनाशी महाशक्ति का खेल मात्र है, जो कुछ समय बाद फिर उसी एक तत्त्व मे विलीन हो जायगा, तो वह मिट्टी से बने और थोडे ही समय बाद फिर मिट्टी हो जाने वाले पदार्थों के लिये किसी तरह का हीन, निकृष्ट काम करने को तैयार न होगा। इस दार्शनिक दृष्टिकोण के कारण ही पूरब और पश्चिम की मनोवृत्तियो मे जमीन-आसमान का अन्तर होगया है जिसका वर्णन एक विनोदी उर्दू कवि ने इन दो लाइनो मे किया है।

कहा मन्सूर ने खुदा हूँ मैं।
डार्विन बोले बूजना हूँ मैं॥

अर्थात्—"मन्सूर (ईरान के ब्रह्मज्ञानी सत) ने घोषणा की कि मैं खुदा हूँ, (अहं ब्रह्मास्मि) और योरोप के विज्ञानी पुरुष डार्विन ने कहा—'मैं बन्दर हूँ।"

जिस व्यक्ति की यह भावना होगी कि मैं इस समस्त ससार के आदि कारण परब्रह्म का अंश हूँ वह सदा अपनी निगाह बहुत ऊपर रखेगा और

नीचतापूर्ण कार्यों से बचता रहेगा। पर जिसकी धारणा यह होगी कि मैं तो मिट्टी, पानी आदि पंचभूतों का पुतला हूँ, जो सौ-पचास वर्ष में फिर उन्हीं में मिल जाऊँगा, उसकी निगाह सोना चाँदी इकट्ठा करके तरह तरह के भोग अधिक से अधिक मात्रा में प्राप्त कर लेने के अतिरिक्त और कहाँ जा सकती है? इसलिये भारतीय आत्मकारों का सबसे पहले सृष्टि के मूल कारण पर विचार करना और मनुष्यों को सदैव अपने सच्चे स्वरूप पर विचार करते रहने की प्रेरणा देना निस्सन्देह व्यक्ति और समाज के लिये परम कल्याणकारी है।

समाज का निर्माण और विकास—

सृष्टि-विकास के पश्चात् समाज निर्माण पर विचार करना आवश्यक है। पुराणों में भौतिक पदार्थों और जीव-जगत् की उत्पत्ति का जो क्रम बतलाया गया है वह अधिकांश में विज्ञान-सम्मत है, उसे सर्वथा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है। पहले कहा जा चुका है कि महत्तत्व से सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार का अहङ्कार पैदा होता है। आगे चलकर सर्व प्रथम तामस अहङ्कार से 'असञ्ज' (चेतना रहित) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे मिट्टी, पत्थर, लोहा आदि। फिर राजस अहङ्कार से 'अन्त सञ्ज' (सुप्त चैतन्य) पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे घास, बेल, वनस्पति, वृक्ष आदि। इनमें प्राण शक्ति प्रकट हो जाती है, पर मन की क्रिया भीतर छिपी रहती है। अन्त में सात्विक अहङ्कार से 'सञ्ज' (चैतन्य) जीवधारी सृष्टि होती है जैसे कीट, पतङ्ग, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि। पंच कर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। इस विकार-सर्ग के विकसित होने के कारण नवम सृष्टि को 'वैकारिक' भी कहा जाता है।

जीवधारी सृष्टि के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने जो प्राणी प्रथम बनाये वह 'सर्दी-गर्मी' से बहुत कम प्रभावित होकर नदियों, झीलों, समुद्र और पर्वतों के निकट विचरण करते रहते थे। वे उपभोग के विषय में अनायास तृप्ति लाभ कर लेते थे और उनमें किसी प्रकार विघ्न, द्वेष अथवा मत्सर नहीं था। वे घर न बना कर पर्वत या समुद्र तट पर निवास करते एवं सदा

निष्कर्मचारी और प्रसन्नचित्त थे। यह स्पष्टत उस समय का वर्णन है जिसे हम 'प्रकृति का साम्राज्य' या 'स्टेट आफ नेचर' कहते हैं। उस समय प्राणी अपना निर्वाह घास-पात, फल-फूल से करते हैं और इसलिये उनको किसी प्रकार चिंता या संघर्ष की आवश्यकता नहीं होती है। यही वह युग होता है जिसके लिये कथाओं में कहा जाता है कि पशु और पक्षी भी बातें करते हैं और देवता भी उनकी सहायता को आ जाते हैं। वास्तव में जिस समय तक भाषा का आविर्भाव नहीं होता तब तक प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी के भावों को उसकी आकृति और ध्वनि, चीत्कार आदि से पहचान लेता है। उनका प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा ही सञ्चालन होता है और वे प्रकृति के संकेतों का आशय भी भली प्रकार समझते हैं। इस दृष्टि से उस आदिकाल-हीन युग में एक प्रकार से देवता ही पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

पर परिवर्तनशील सृष्टि-क्रम में यह अवस्था सदैव स्थिर नहीं रह सकती थी। क्रमश जीवों की अनायास तृप्ति हो जाने की 'सिद्धि' समाप्त होने लगी और आकाश से जल रूपी दूध बरसना बंद हो गया और लोगों के निवास स्थानों में कल्पवृक्ष उत्पन्न होगये जिनसे उनको आवश्यकता की समस्त वस्तुएँ प्राप्त हो जाती थीं। तत्पश्चात् जब मनुष्यों में कल्पवृक्षों के प्रति राग उत्पन्न होने लगा तो वे नष्ट होगये और चार शाखा वाले अन्य वृक्ष पैदा हुए जिनके प्रत्येक पुट में बिना मक्खियों के ही मधु उत्पन्न होता था और उसी को पीकर लोग जीवन निर्वाह करते थे। यह स्थिति त्रेतायुग में थी। क्रमश मनुष्य अत्यन्त लोभी होने लगे, उन वृक्षों पर अपना अधिकार जमाने लगे और उनकी जड़ों में अपने रहने के घर बना लिये। इससे वे वृक्ष भी कुछ काल में नष्ट होगये।

उस समय में सब प्राणी भूख-प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्त कातर होने लगे। कुछ समय पश्चात् आकाश से जल की विशेष रूप से वर्षा होने लगी और उसका जल मिट्टी के संयोग से दोष रहित होकर नदियों के रूप में परिणत होगया। नदियों के प्रभाव से पृथ्वी पर तरह-तरह की उत्तम 'ओषधियाँ' (वनस्पतियाँ) पैदा हुईं, जिनका उपयोग करने से लोगों का सुखपूर्वक निर्वाह

होने लगा। पर जब लोग इन वनस्पतियों को भी अधिक से अधिक परिमाण में इकट्ठा कर लेने का लालच करने लगे तो वे भी नष्ट हो गईं कोई अन्य उपाय न देखकर लोगों ने भगवान् ब्रह्माजी (बुद्धि) की शरण ली तो उन्होंने कुछ बीज उत्पन्न करके लोगों को कृषि-विद्या का उपदेश दिया और सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से उनको चार वर्णों में विभाजित करके प्रत्येक वर्ण को एक-एक कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा। उन्होंने कर्म परायण ब्राह्मणों के लिये प्राजापत्य-स्थान, संग्राम करने वाले क्षत्रियों के लिये ऐन्द्रस्थान, स्वधर्म निरत वैश्यों के लिये मारुत-स्थान और सेवा परायण शूद्रों के लिये गान्धर्व-स्थान की कल्पना की।"

इस विवेचन से आदिम मानव-समाज और उनके क्रमशः विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। वर्तमान युग के अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र के एक बड़े विवेचक कार्ल मार्क्स ने यह मत प्रकट किया है कि मानव-समाज में सब तरह की प्रथाओं और रीति-रिवाजों के उत्पन्न और प्रचलित होने का मूलाधार आर्थिक व्यवस्था ही थी। जिस काल में जीवन-निर्वाह के जैसे साधन प्राप्त थे वैसी ही सामाजिक व्यवस्था भी उस समय बन गई। उपर्युक्त पौराणिक वर्णन में भी यही बतलाया गया है कि जैसे-जैसे जीवन निर्वाह के साधन बदलते गये उसी प्रकार प्राणियों और उनकी जीवन-निर्वाह विधि में भी परिवर्तन होता गया। जब तक लोगों में स्वार्थ बुद्धि की वृद्धि नहीं हुई और वे प्रकृति दत्त पदार्थों में से आवश्यकतानुसार ही लेकर अपनी भूख मिटा लेते थे तब तक उनका काम बिना किसी विशेष प्रयत्न के जंगल और वनों की स्वाभाविक उपज से होता रहा। पर जैसे-जैसे उनमें संग्रह और परिग्रह की भावना उत्पन्न होने लगी प्रकृति भी अपने दान को संकुचित करने लगी और लोगों को जीवन-निर्वाह के परिश्रम और युक्तियुक्त विधियों का आश्रय लेना पड़ा। इसी से खेती और पृथक् परिवार की प्रथा का जन्म हुआ। आगे चलकर विभिन्न प्रकार के सामाजिक कार्यों तथा पेशों के बढ़ने से जाति-प्रथा का भी उद्भव हुआ। जितने ही अधिक लोग विभाजित हुए और अपने उत्पादन को सुरक्षित रखकर उसका स्वयं ही उपभोग करने लगे वैसे-वैसे ही मानव-सम्बन्धों में जटिलता आती गई

और क्रमशः शासन, राज्य और राष्ट्र का प्रादुर्भाव होकर मानव-समुदाय आधुनिक सभ्यता, संस्कृति तक पहुँच गया।

यह तो भौतिक पदार्थों के विभाजन तथा स्वामित्व के कारण उत्पन्न सामाजिक व्यवस्था की एक मोटी रूपरेखा हुई। जब इसके साथ भली-बुरी मनोवृत्तियों, धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, सत्य-झूँठ, प्रेम-घृणा, मित्रता-शत्रुता आदि भावनाओं का योग होता है तो मानव-व्यवहारों में ऐसी जटिलता आ जाती है कि जिसके निर्णय और कार्य रूप में परिणत करने में बड़े-बड़े समाज शास्त्री तथा न्यायवेत्ता विद्वानों की बुद्धि भी चकरा जाती है। इसका वर्णन पुराणकार ने अपनी रूपक और अलङ्कारों की विशिष्ट शैली में इस प्रकार किया है—

"जब ब्रह्मा के मानस पुत्रों से सृष्टि का विस्तार न हो सका तो उन्होंने एक पुरुष उत्पन्न करके उसके आधे भाग से एक स्त्री को भी उत्पन्न किया और उनको पति-पत्नी बनाकर प्रजा की उत्पत्ति का आदेश दिया। ये ही संसार के प्रथम मानव-प्राणी स्वायम्भुव मनु और शतरूपा थे। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो कन्याएँ भी हुईं—प्रसूति और ऋद्धि सृद्धि का विवाह रुचि से हुआ जिससे यज्ञ और दक्षिणा नामक दो सन्तानों की उत्पत्ति हुई। दक्ष और प्रसूति के चौबीस कन्याएँ हुईं उन्हें धर्म ने अपनी पत्नी बनाया। इसके साथ ही अधर्म का परिवार भी बढ़ा। उनकी पत्नी हिंसा ने अनृत नामक पुत्र और निर्ऋति नामक कन्या उत्पन्न हुई। उनसे नरक और भय नामक पुत्र हुए और माया तथा वेदना दो कन्याएँ हुईं। माया से मृत्यु और वेदना से दुःख नामक पुत्र उत्पन्न हुए। मृत्यु के व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। दुःख से जो सन्तति हुई वह सब अधर्म का आचरण करने वाली थी। मृत्यु ने अलक्ष्मी नामक एक और स्त्री से विवाह किया जिसके चौदह पुत्र हुए जो मनुष्यों के मन तथा इन्द्रियों में प्रविष्ट होकर उनको नाश की तरफ ले जाते हैं।

इन पुत्रों में से एक का नाम दुःसह है जिसको अत्यन्त भयंकर बतलाया

है। कहा है कि वह जन्म लेते ही ऐसा भूखा था कि समस्त संसार के उसके द्वारा नष्ट होने की सम्भावना जान पड़ी। तब ब्रह्मा ने उनके रहने के स्थान नियत कर दिये कि जहाँ बुरे लक्षण, आलस्य, प्रमाद, दारिद्र्य हो वहाँ पर वह निवास करे। जहाँ देवाचार, जाति-धर्म, लोकाचार का ठीक तरह से आचरण किया जाता है, जप, होम, मंगल, यज्ञ शौच आदि का विधिवत् पालन किया जाता है, उन स्थानों से वह दूर रहे। इस दुःसह के 'निर्ऋति' नाम पत्नी से दुर्लाकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अभ्रद्युक, शकुनि, ग्रह, प्रास्तरति और गर्भहा नामक आठ पुत्र हुए। नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारकारी, भ्रामणी, ऋतु हारिका, स्मृति हरा, बीजहरा और विद्वेषिणी नामक आठ कन्याएँ भी हुईं दुःसह की इन सोलह सन्तानों ने मनुष्यों के जीवन को महाकष्टमय बना दिया है और जिस पर उनका वश चलता है उसे वे नष्ट करके ही छोड़ते हैं।"

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि दुःसह और उनकी सन्तानों के आश्रय तरह-तरह की दूषित मनोवृत्तियों, मैत्रिक, सामाजिक और भौतिक दोषों तथा भाँति-भाँति के रोगों से ही है, जो कर्तव्य विमुख और आलसी व्यक्तियों पर सवार हो कर उन्हें नष्ट किया करते हैं। पुराणकार ने दुःसह के रहने के जितने स्थान बतलाये हैं वे सब दूषित आचरणवालों के ही लक्षण हैं। सदाचारी और कर्तव्यरत व्यक्तियों की तरफ वह आँख उठाकर भी नहीं देखता। अड़तालीसवें अध्याय में दुःसह के क्रिया-कलापों का विस्तृत वर्णन निस्सन्देह पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

रुद्र सृष्टि अथवा अग्नि तत्व की व्याख्या—

अगले अध्याय में कहा गया है कि ब्रह्माजी ने कल्प के आदि में अपने समान एक पुत्र का ध्यान किया तो एक नील लोहित कुमार उत्पन्न हुआ। वह ब्रह्माजी की गोदी में रोने लगा। ब्रह्माजी ने पूछा—तू क्यों रोता है? उसने कहा "मेरा नाम रखिये।" उनने उत्पन्न होते ही रुदन किया इस लिये ब्रह्मा ने कहा—तुम्हारा नाम 'रुद्र' हुआ। इस पर वह सात बार और रोया तब ब्रह्मा ने उसके सात नाम और रखे—भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम

ग्नि और महादेव। तब उसके रहने के लिये आठ स्थान नियत किये—सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और सोम। उसकी आठ स्त्रियाँ भी बनादीं—सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिक्, दीक्षा रोहिणी। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, मर्ग, सन्तान और बुध को रुद्र के आठ पुत्र बताया गया है।

यह रुद्र का रूपक वैदिक साहित्य में वर्णित प्राण तत्त्व की कथा के रूप में व्याख्या है। 'शतपथब्राह्मण' में कहा गया है "यो वै रुद्र सोऽग्नि" अर्थात् अग्नि या प्राणतत्त्व का एक नाम रुद्र भी है। पुराणों में इसका नाम जो 'नील लोहित कुमार' गया है उसका आशय यही है कि अग्नि की रश्मियों का अथवा सूर्य-रश्मियों का वर्ण एक छोर पर नीला और दूसरे पर लोहित (लाल) ही होता है। 'अथर्व वेद' के एक सूक्त में भी रुद्र के 'नील लोहित धनुष' का उल्लेख मिलता है। अग्नि तत्त्व जब अपने केन्द्र में जागृत होता है तो वह 'अग्नि रूप' में होता है। उसमें बुभुक्षा वृत्ति उत्पन्न होती है अर्थात् वह बाहर से कोई पदार्थ अपने पोषण को चाहता है। जब उसे वह पदार्थ मिल जाता है तो वह रक्षणात्मक अर्थात् 'शिव' बन जाता है। रुद्र के जो नाम और उपलक्षण गये हैं वे अग्नि तत्त्व के वे गुण धर्म हैं जो अव्यक्त पदार्थों को व्यक्त रूप में लाने के साधन बनते हैं। अग्नि या प्राण तत्त्व ही समस्त भौतिक पदार्थों को प्राण या गति-तत्त्व प्रदान करता है अतः वे उसके स्थान हैं। इसी प्रकार स्वधा, स्वाहा आदि आहवनीय अग्नि से सम्बन्धित हैं। शनि, शुक्र, बुध आदि सभी ग्रह उपग्रह अग्नि तत्त्व के ही विभिन्न रूप या उसके परिवार की तरह हैं।

मन्वन्तर और सप्त द्वीप वर्णन—

इसके पश्चात् स्वायम्भुव व मन्वन्तर और उसमें उत्पन्न राजाओं के शासन-क्षेत्र के रूप में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर इन सात द्वीपों का वर्णन आया है। इन सातों द्वीपों का विस्तार नव मिला

कर पचास करोड योजन बतलाया गया है, जिसमे से जम्बू द्वीप की लम्बाई चौडाई एक लाख योजन है और भारत वर्ष इसी का एक भाग है।

स्वायम्भुव मनु के बडे पुत्र प्रियव्रत की प्रजावती नामक पुत्री का विवाह प्रजापति कर्दम के साथ किया गया। इसके सात पुत्र हुए जिनमे से आग्नीध्र को जम्बू का, मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का, व वपुष्मान को शाल्मलि का, ज्योतिष्मान् को कुश का, द्युतिमान् को क्रौञ्च का, भव्य को शाक द्वीपका और सवन को पुष्कर का अधिपति बनाया गया। फिर इनमे से प्रत्येक के भी प्राय सात-सात ही पुत्र हुये जिनके लिये उक्त द्वीपो को सात विभागो मे जिनका नाम वर्ष रखा गया है, बाँट दिया गया। इनमे से प्रत्येक द्वीप मे सात पर्वत और सात नदियाँ भी थी। इन सब की बडी नामावली अनेक पुराणो मे पाई जाती है, पर वह पाठको के लिये रुचिकर नही हो सकती। उनका एकाध नाम वर्तमान इतिहास वा भूगोल के नामो से मिलता है, पर उसे अधिक महत्व देना ठीक नही। एक विद्वान् का इस सम्बन्ध मे यह भी मत है कि ये सातो द्वीप एक समय मे एक साथ मौजूद नही थे, पर पृथ्वी के उथल पुथल के फल स्वरूप विभिन्न कालो मे बने और नष्ट हुये है। वर्तमान समय मे हम पृथिवी के जिस रूप को देख रहे है वह जम्बू द्वीप है और उसी का वर्णन कुछ अशो मे हमको प्रत्यक्ष दिखाई देता है। शेष छ द्वीप भूत काल या भविष्य से सम्बन्धित है। पर पुराणो ने इस विषय पर एक त्रिकालज्ञ ऋषि की हैसियत से विचार किया है और सृष्टि रचना और इनके विलय के नाटक को इस प्रकार लिख लिख दिया है जैसे वह एक ही समय मे उनके नेत्रो के सम्मुख हो रहा हो।

अधिकाश विद्वानो के मतानुसार जम्बू द्वीप का जो वर्णन पुराणो मे किया गया है उसमे एशिया के एक बडे भाग का समावेश हो जाता है। पर चूँकि पुराने समय मे आवागमन के साधन बहुत ही सीमित थे इस लिये सभी लेखको ने जो भौगोलिक वर्णन किये है उनमे वास्तविकता और कल्पना का सम्मिश्रण है। पुराणो के वर्णन मे ही नही वरन् यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस तथा इटैलियन मार्कोपोलो के वर्णनो मे भी बहुत सी ऐसी बात

पाई जाती है जो इन्होंने दूसरे लोगों से सुन कर ही लिख दी थी और जो अब कल्पनिक सिद्ध हो रही है। इस लिये पुराणों में पृथ्वी के विभिन्न द्वीपों समुद्रों, खण्डों का जो वर्णन किया गया है वह कथा रूप में ही ग्रहण किया जाना चाहिये। वास्तव में पुराणकार भारतवर्ष में ही रहते थे, यहीं के निवासियों से उनका परिचय और सम्बन्ध था, इस लिये उन्होंने यहाँ के नगरों, जनपदों, पर्वतों, नदियों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वही प्रामाणिक और उपयोगी सिद्ध होता है। फिर पुराणों का मुख्य उद्देश्य जन साधारण को धार्मिक और नैतिक शिक्षा देना था। इसी दृष्टि से उनकी महत्ता पर विचार करना चाहिये। इस प्रकार के भौगोलिक वर्णन तो इन्होंने कथाओं को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से किये हैं और वे सभी पुराणों में प्रायः उसी रूप में लिख दिये गये हैं जिससे वे परम्परा से चलते आते थे। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के दृष्टि कोण से उनकी आलोचना में प्रवृत्त होना अपनी 'विद्या' के अहङ्कार का निरर्थक प्रदर्शन ही है।

आग्नीध्र को जम्बू द्वीप दिया गया उनके अपने पुत्रों में उसने नौ हिस्से कर दिये। इनमें हिम नाम दक्षिणवर्ष नाभि राजा को मिला। नाभि से इसका उत्तराधिकार उनके पुत्र ऋषभ को मिला और ऋषभ अपने पुत्र भरत को राज्य देकर तपस्या करने चले गये। इन्हीं भरत के नाम से यह खण्ड भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पुराणों के मतानुसार शकुन्तला के पुत्र भरत के नाम के आधार पर इस देश का नाम भारतवर्ष होने की कल्पना ठीक नहीं है। यह भरत भी महायोगी और तपस्वी थे। वे भी कुछ समय पश्चात् अपने पुत्र सुमति को गद्दी पर बिठा कर वन को चले गये। इस प्रकार स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत का वंश समस्त पृथ्वी पर बहुत समय तक शासन करता रहा।

इसके पश्चात् अन्य पाँच मन्वन्तरों के सम्बन्ध में भी तरह-तरह की कथायें दी गई है, जिनसे अनेक प्रकार की शिक्षायें प्राप्त हो सकती है। पर ऐतिहासिक या सामाजिक विकास की दृष्टि से इनमें विशेष तथ्य दृष्टिगोचर नहीं होता।

सूर्य का तात्त्विक विवेचनः—

सृष्टि-रचना का मुख्य आधार सूर्य है। समार के प्रत्येक पदार्थ में उसी से उष्णता प्राप्त होती है और वही प्राणी रूप बनकर प्रत्येक जीवित प्राणी में गति उत्पन्न करता है। मनुष्यों में निरोगिता, स्वास्थ्य, शारीरिक बल, उत्साह, साहस, पराक्रम आदि गुण भी उसी के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं। वही प्रकाश का एक मात्र साधन है। उसके बिना सर्वत्र घोर अन्धकार ही है। प्रकाश के अन्य जितने कृत्रिम साधन मनुष्य ने खोज निकाले हैं वे भी सूर्य की ही देन है। सूर्य अग्नि-तत्त्व का प्रतीक है और उसके बिना समस्त संसार जड और मृतक ही है।

मार्कण्डेय पुराण में इस प्राकृतिक तत्त्व को ही सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है और उसी को पूजा उपासना के योग्य बतलाया गया है। वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ सूर्य के पुत्र मनु से ही माना गया है और उसके वर्णन में सूर्य की महिमा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कथा में कहा गया है कि त्वष्टा (विश्वकर्मा) की पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य हुआ था जिससे वैवस्वतमनु तथा यम, दो पुत्रों तथा एक पुत्री यमुना का जन्म हुआ। उस समय सूर्य का तेज अत्यन्त प्रखर था और संज्ञा उसे सह सकने में असमर्थ थी। इससे वह अपनी एक छायामय शरीर बनाकर गुप्त रूप से अपने पिता के घर चली गई और छाया से कह गई कि तुम इस भेद को कभी प्रकट मत करना। कुछ समय पश्चात् पिता ने संज्ञा को फिर पति गृह जाने की सलाह दी तो वह वहाँ से चली आई और घोडी का रूप रखकर सूर्य के रूप का सुधार होने के उद्देश्य से तप करने लगी।

कुछ समय पश्चात् सूर्य को छाया के रूप में कृत्रिम संज्ञा का भेद मालूम पड गया और उन्होंने विश्वकर्मा के पास जाकर इस सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि सूर्य के असहनीय तेज के कारण पिता के यहाँ चली आई थी और अब कहीं तप करने चली गई है। यह जानकर सूर्य ने विश्वकर्मा से अपने स्वरूप को काट छाँटकर सौम्य बना देने को कहा। उन्होंने सूर्य को

'मदरतर' रूपी रथ पर चढ़ाकर इस प्रकार छोड़ दिया जिससे उनका स्वरूप बहुत दर्शनीय और लोकोपयोगी बन गया। उनके उस स्वरूप के दर्शन करके देवता उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

"हे देव! तुम ऋग्वेद स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम्हीं यजु स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है। तुम्हीं ज्ञान (प्रकाश) के एक मात्र आधार हो, तुम्हीं तम (अन्धकार) के नाशक, शुद्ध ज्योति स्वरूप और निर्मल हो, तुमको नमस्कार है। तुम शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग, पद्म धारण करने वाले विष्णु रूप हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं दृष्टि, दरेरय, पर और परमात्मा हो, तुम ही समस्त जगत् में व्यापक हो, आत्म स्वरूप हो तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं ज्ञानी मनुष्यों की निष्ठा, सर्वभूतों के कारण स्वरूप हो। तुम्हीं प्रकाश आत्म रूपी भास्कर, दिनकर हो, तुम्हीं रात्रि के कारण स्वरूप हो, तुम्हीं सन्ध्या और ज्योत्स्नाकारी हो। तुम्हीं भगवान् हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् जागृत और गतिमान होता है। तुम्हारे प्रकाश से ही यह चराचर युक्त अखिल ब्रह्माण्ड भ्रमण करता है। सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारी किरणों से स्पर्श होकर पवित्र होते हैं। तुम्हारी किरणों द्वारा ही जलादि की पवित्रता साधित होती है। हे देव! जब तक यह जगत् आपकी किरणों के सम्पर्क को प्राप्त नहीं होता तब तक होम शालादि कोई उत्कारक कर्म भी नहीं हो पाता। आपके अंग से जो किरणें निकलती हैं वे ही ऋक् यजु साम रूपी तीन विद्या हैं। तुम्हीं ब्रह्म रूपी प्रधान और अप्रधान हो। तुम्हीं मूर्तिधारी और अमूर्त हो, स्थूल और सूक्ष्म रूप से तुम्हीं काल रूप हो।"

इन स्तोत्र में सूर्य का जो वर्णन किया है उससे प्रकट होता है कि इन पंक्तियों का लेखक सूर्य को ही परमात्मा का मुख्य स्वरूप मानता है और संसार में एक मात्र उन्हीं को पूजनीय, अर्चनीय, उपासनीय तत्व स्वीकार करता है। वेद में भी प्रकाश और तम दोनों का कारण सूर्य को ही बतलाया गया है और ब्रह्माण्ड में जो गति और जगत् में प्राण तत्व दिखाई पड़ता है उसका मूल भी सूर्य के अतिरिक्त कोई नहीं। सूर्य को अग्नि विद्या का भी मूल बतलाया

करने से प्रतीत होता है कि वही हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी मान्यताओं का मूल स्रोत है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान् ने लिखा है—

"ऋक्-यजु-साम का सम्मिलित रूप सूर्य है। वस्तुतः यह वैदिक तत्वज्ञान का मूलभूत दृष्टिकोण था। विश्व की प्रत्येक रचना सूर्य की हो सकती है। त्रयी विद्या को ही यज्ञ कहते हैं, इसलिए सूर्य को यज्ञ-नारायण कहा जाता है। त्रयी विद्या 'त्रिक' का ही दूसरा नाम है। भारतीय धर्म, दर्शन, वैदिक और पुराण तत्व सबका मूल त्रयी विद्या या त्रिक है। वेद में अव्यय-पुरुष, अक्षर-पुरुष और क्षर-पुरुष, पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूपी त्रिदेव एवं दर्शन में सत्व, रजु तम नामक तीन गुण त्रयी विद्या के ही रूप हैं। ये ही भू-भुव-स्व नामक तीन व्याहृतियाँ हैं। भारतीय साहित्य में 'त्रिकों' की अनेक समानान्तर सूचियाँ हैं। मन-प्राण-वाक् एवं प्राण-अपान व्यान त्रिक के ही रूप हैं। इस प्रकार त्रयी विद्या या 'त्रिक' का अपरिमित विस्तार भारतीय साहित्य में पाया जाता है। सूर्य उस विद्या का सर्वोत्तम प्रतीक है।"

'मार्कण्डेय पुराण' में इस एक स्थान पर ही नहीं वरन् अनेक प्रसङ्गों में सूर्य को ही सृष्टि का सबसे महान् और रचनात्मक साधन बतलाया गया है। अध्याय ६४ में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जब चारों वेदों को, प्रकट किया और उनका तत्व उत्तम तेज एक होकर 'ॐकार' के श्रेय तेज से संयुक्त हुआ तब सूर्य का सर्वोच्च तेज दृष्टिगोचर होने लगा। यह तेज सृष्टि-रचना में सबसे पहले उत्पन्न हुआ था इसी से 'आदित्य' कहा जाता है। पर उस प्रारम्भिक दशा में यह इतना प्रखर और अनियन्त्रित था कि ब्रह्माजी ने देखा कि वे जो कुछ सृष्टि रचने जा रहे हैं उसकी तीव्रता से नष्ट हो जायगी। इसका उत्ताप जल तत्व को सोख लेगा और पृथ्वी तत्व को भी भस्म रूप कर देगा। इसलिए उन्होंने सूर्य नारायण की स्तुति करते हुए कहा—

"जो सम्पूर्ण विश्व के आत्म स्वरूप हैं जो इस विश्व रूप में ही वर्त्तमान हैं, विश्व ही जिनकी मूर्ति है, योगीगण जिनकी इन्द्रियों से अग्राह्य परम ज्योति का ध्यान करते हैं, मैं उनको नमस्कार करता हूँ। जो अविनाश

शक्ति ऋग्वेदमय, यजुर्वेद का आधार सामवेद की उत्पत्ति का कारण है, जो परम ब्रह्म स्वरूप और गुणातीत है, सबसे पहले मैं उन्हीं सर्वोंकारस्वरूप, परम पूज्य, परमदेव, परम ज्योति, देवात्मता हेतु स्थूल रूपी श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान् को नमस्कार करता हूँ। हे देव! तुम्हारी शक्ति ही 'आशा' है क्योंकि उसी के द्वारा प्रेरित होकर मैं जल, पृथ्वी, पवन और अग्नि रूपी देवताओं और प्रजापति की सृष्टि करता हूँ। इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी मैं तुम्हारी शक्ति से प्रेरित होकर ही करता हूँ।

हे भगवन्! तुम्हीं वह्नि रूप हो। जब तुम पृथ्वी का जल सोखते हो तब मैं जगत् की रचना और अन्नादि को सम्पन्न करता हूँ। तुम्हीं सर्वव्यापी गगन स्वरूप हो और तुम्हीं इस पंच भूतात्मक विश्व की रक्षा करते हो। हे विवस्वन्! परमात्म तत्व के ज्ञाता अखिल यज्ञमय विष्णुरूप में यज्ञों द्वारा तुम्हारी ही अर्चना करते हैं, आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम्हीं देव रूप हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। तुम्हीं योगीजनों द्वारा चिन्तनीय परब्रह्म स्वरूप हो, तुमको प्रणाम करता हूँ। हे विभो! तुम अपने तेज को निवृत्त करो, मैं सृष्टि करने को उद्यत हुआ हूँ। तुम्हारा जो प्रखर तेज समूह सृष्टि में विघ्नकारी होता है उसे संयमित करो।"

इसी प्रकार देवमाता अदिति द्वारा और राज्य अर्घण के व्याख्यान में ब्राह्मणों और राजा द्वारा सूर्य के कई स्तोत्र इस पुराण में दिये गये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि पौराणिक प्रतीकों के स्थान पर मार्कंडेय पुराण के रचयिता ने 'विवस्वान्' (जिनसे आगे चल कर इन्द्र (प्राण) और विष्णु तथा शिव का आविर्भाव होता है) को ही उपासना तथा ध्यान का सर्व श्रेष्ठ और मूल लक्ष्य माना है। पुराण में देवासुर संग्राम भी जो कथायें गढ़ी पड़ी है, उसका बहुत कुछ सम्बन्ध भी सौर-शक्ति के अविर्भाव से ही है। वेदों में जिस वृत्रासुर का प्रसङ्ग आया है और जिसको नष्ट करके इन्द्र 'देवराज' बने थे वह वास्तव में सौर-शक्ति के अवरोधक अन्धकार तत्व के मिटने का ही वर्णन है।

शक्ति के दो रूप और देवी द्वारा असुरों का पराभव—

७२ से ८५ अध्याय तक देवी के आविर्भाव और उसकी अपार महिमा का वर्णन किया गया है। इसके लिये किसी सुरथ नामक राजा का उपाख्यान दिया गया है कि उसके राज्य को शत्रुओं ने षड्यन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सब कुछ छोड़कर वन में चला जाना पड़ा। पर वहाँ भी उसका ध्यान अपने महल, कोशागार, नगर, हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषय में चिन्ता करता हुआ दुःखी रहने लगा। वहीं उसकी भेंट समाधि नामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदि ने समस्त धन अपहरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वनवासियों के साथ रहकर जीवन-निर्वाह कर रहा था। पर अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा न था और वह घर वालों के हानि लाभ सुख-दुःख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उसी अरण्य में आश्रम बनाकर रहने वाले मेधा ऋषि से अपनी दुर्दशा और मनोव्यथा के विषय में प्रश्न किया। ऋषि ने उनको मोहजनित भ्रम का रहस्य समझाया और साथ ही देवी की महिमा तथा उपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्ति से छुटकारा पा सकते थे।

देवी का यह उपाख्यान "दुर्गा सप्तशती" के नाम से प्रसिद्ध है और वह कितने ही स्थानों में थोड़े बहुत अन्तर के साथ कहा गया है। इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टि के आरम्भ होने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्ता भगवान् विष्णु सो रहे थे और उनकी नाभि से सृष्टि के रचयिता ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई थी। उस समय विष्णु के कान के मैल से मधु और कैटभ नाम के दो दैत्य उत्पन्न हुए और ब्रह्माजी को मारने को दौड़े। ब्रह्मा उनका सामना करने में असमर्थ थे अतः उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामाया की स्तुति की। इससे सन्तुष्ट होकर देवी प्रकट हुई और उसने विष्णु को जगा कर मधु और कैटभ के कुकृत्य का उनको ज्ञान करा दिया। विष्णु इन असुरों से पांच हजार वर्ष तक बाहु युद्ध करते रहे, पर उनका विनाश न कर सके। तब महामाया ने ही उनको मोहित करके कहलवाया कि "हे विष्णु

हम तुम्हारे साथ युद्ध करके सन्तुष्ट हुए है, हमसे कोई वर मांगो।" विष्णु ने कहा 'तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं मांगता हूँ।' वचन बद्ध होने से उन्हे वर देना पडा और तब विष्णु ने चक्र से उनका मस्तक काट दिया।

जब देवलोक का अधिपति इन्द्र को बनाया गया तो महिष नामक असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेना के द्वारा उनको हरा कर देवलोक पर अधिकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देवगण ब्रह्माजी को साथ लेकर विष्णु और महादेव की शरण मे गये और महिषासुर के अत्याचारो की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे बड़े क्रोधित हुए और उनके मुखो से एक महा तेज निकला। उसी समय ब्रह्मा, इन्द्र तथा अन्य देवगणो से मुख से भी तेज प्रकट हुआ। समस्त देवताओं के उस तेज ने सम्मिलित होकर एक देवी का रूप धारण कर लिया। सब देवताओ ने उसे अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ अलङ्कार और अस्त्र-शस्त्र दिये और उसे त्रैलोक्य मे अजेय एक महाशक्ति बना दिया। इस प्रकार वह देवी जब युद्ध के लिये प्रस्तुत होकर गर्जने लगी तो उस महा-शब्द से तीनों लोक काँपने लगे। उसे सुनकर महिषासुर भी अपनी सेना को सजा कर दौडा और दोनो पक्षो मे घोर सग्राम होने लगा। आरम्भ मे महिषा-सुर के चिक्षुर, चामर, उदग्र, महाहनु, असिलोमा, बाष्कल और बिडालाक्ष सेना-पतियो से सामना हुआ और एक एक करके वे सब मारे गये। फिर दुर्धर और दुर्मुख आदि महिषासुर के महा पराक्रमी सहयोगी रणभूमि मे उतरे पर देवी के सामने वे भी अधिक देर तक न ठहर सके और सेना सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियो को इस तरह नष्ट होता देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्भुत साधनो से भयङ्कर सग्राम करने लगा। वह कभी महिष, कभी सिंह और कभी हाथी का रूप धारण करके लडता था। कभी भूमि पर और कभी आकाश मे जाकर शस्त्र वर्षा करता था। उसके भयङ्कर सग्राम से तीनो लोक क्षुब्ध हो गये। तब देवी अपने सिंह से उछाल लेकर महिषासुर के ऊपर कूद पडी और उसे पैर से दबाकर तलवार से उसका मस्तक काट डाला। उसका वध होते ही

आवेश हुआ की लहर उठ गई और समस्त देवता देवी की जय-जयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणों ने देवी की जो स्तुति की वह बड़ी अर्थपूर्ण है। उसमें कहा गया है कि देवी ने अपनी शक्ति का समस्त विश्व में विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उनके रहस्य को ज्ञात नहीं कर सकते। वही जगत् का कारण अव्याकृता प्रकृति, देवताओं और पितरों की स्वाहा और सुधा तथा मोक्षाभिलाषियों को मोक्ष प्रदान करने वाली परा-विद्या है। देवी ही तीनों वेदों की शब्दमयी मूर्ति, सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने वाली, वार्ता समस्त शास्त्रों का रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती, व सागर से उद्धार करने वाली दुर्गा, विष्णु के हृदय में निवास करने वाली लक्ष्मी और शिव के सिर पर विराजने वाली गौरी है। उनकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी बार जब शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरों ने देवताओं को हराकर भगा दिया तो वे फिर देवी की शरण में पहुँचे। उस समय पार्वती की देह से अम्बिका प्रकट होकर देवताओं की रक्षा के लिए असुरों से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरता का वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेजकर अपना प्रणय सन्देश कहलवाया। पर देवी ने उत्तर दिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि "जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा।" इस पर शुम्भ ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचन को एक बड़ी सेना के साथ देवी को पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। इस असुर सेना के साथ देवी का विकट संग्राम हुआ, और अन्त में सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मुण्ड नामक महावीर असुर लड़ने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे काली का नाम 'चामुण्डा' पड़ गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रण-भूमि में आया। इसमें यह विशेषता थी कि उसके रक्त की जितनी बूँदें पृथ्वी पर गिरती थीं उतने ही नये असुर और पैदा हो जाते थे और उनका नाश असम्भव प्रतीत होता था। तब देवी ने काली से कहा कि जब मैं रक्तबीज पर अस्त्र से प्रहार करूँ तो

तुम उसके रक्त को पी जाओ, एक भी बूँद को भूमि पर मत गिरने दो। काली ने ऐसा ही किया और तब उस महा असुर का बध किया जा सका।

रक्तबीज के मारे जाने पर स्वयं शुम्भ और निशुंभ सम्पूर्ण सेना सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहले निशुम्भ का देवी के साथ घोर संग्राम हुआ और वह मारा गया। फिर शुम्भ सामने आया और उसने देवी की सहायक सप्त मातृका शक्तियों ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री की ओर संकेत करके कहा—"तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रम का झूँठमूँठ अभिमान करती हो।" इस पर देवी ने उन सातों शक्तियों को अपने भीतर समेट लिया और कहा कि ये सब मेरी विभिन्न शक्तियाँ है जो मेरी इच्छा से प्रकट होती रहती है। अब देख मैं अकेली ही तेरा वध करती हूँ।" इसके पश्चात् असुर सेना से देवी का सबसे बड़ा संग्राम हुआ और शुम्भ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरों को पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। इस महान् विजय के पश्चात् देवताओं ने निर्भय और प्रसन्न होकर देवी की जो स्तुति की उसमें उनको ही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओं ने कहा—

"महामाया ही विपत्ति में पड़े जनों का कष्ट दूर करती है। वही जगत् की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विद्याएँ और समस्त दैवी शक्तियाँ उन्हीं के रूप है। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार उनकी इच्छा से होता है।"

स्तुति से प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान देते हुए आश्वासन दिया कि "पृथ्वी पर जब-जब असुरों का उत्पात बढ़ेगा मैं विभिन्न रूपों में अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।"

'देवी सप्त शती' का यह उपाख्यान 'मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्त्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश है और नवरात्रियों के अवसर पर लाखों भक्त इसका पाठ करते हुए देवी से अपने कल्याण की याचना करते है; एक धार्मिक कथा के रूप में निस्सन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक

है, पर इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षाप्रद है।

आधिभौतिक रूप में तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि संसार में दैवी शक्तियों के साथ आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा संघर्ष सदैव होता है। असुर या दुष्ट स्वभाव के व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमणकारी और शूर्त होते हैं और इस कारण प्रायः आरम्भ में देव शक्तियों या सज्जन व्यक्तियों को दबा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट सहने से देवगण सावधान होते हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रित और संगठित करते हैं तब वे असुरों के लिए अजेय बन जाते हैं। असुरों का संगठन अहङ्कार, स्वार्थपरता दूसरों के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है, जब कि देवताओं (सज्जनों) के संगठन में त्याग तपस्या, परोपकार, विश्वकल्याण जैसी उच्च भावनायें भी निहित रहती है। इसलिए संघर्ष में असुरगण चाहे जैसी माया, छल-बल से काम लें, अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर उत्पन्न होने वाली सद् और असद् वृत्तियों के संघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखों को प्रधानता देना और उनके लिए अनुचित दङ्गों को अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी धारणा यही होती है कि हम अपने अन्तकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, वही सार है, क्योंकि देह त्याग के बाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो। इस प्रकार के निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थपरता के भावों को भड़काते हैं जिससे अन्य व्यक्तियों को किसी भी प्रकार की हानि पहुँचाने में संकोच नहीं करता।

यह एक प्रकार का तामसी अहंभाव होता है जिससे मनुष्य के अन्तर के सद्विचार क्षीण हो जाते हैं और वह समाज तथा संसार के लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रु का रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थोन्मत्तता के विचारों का नाम ही महिषासुर है जो आत्मा की सद्वृत्तियों

को दबाकर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित कर देता है। इस दूषित अहम्भाव के छुटकारा पाने के लिए मनुष्य को बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़ती है। उसके लिए समस्त देव शक्तियों-श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को जागृत करके एक लक्ष्य पर एकत्रित करना पड़ता है। तब वह शक्तिरूपा देवी एक-एक करके दुर्विचारों की सेना का संहार करती है। अन्त में दूषित अहम्भाव विभिन्न रूपों में उसके सामने आता है पर सद्विचारों की पैनी तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आधिदैविक दृष्टि से 'देवी सप्तशती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास के आरम्भिक परिवर्तनों से है। जैसा हमें मालूम है हमारी जानी हुई चराचर सृष्टि का मूल आधार सूर्य है। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवों की उत्पत्ति और वृद्धि हो सकी है। पर सृष्टि के आरम्भ में जब सूर्य का आविर्भाव हुआ तब बहुत समय तक तम का आवरण उसके प्रकाश को रोके रहा। जो पदार्थ या शक्ति प्रकाश (देव-भाव) के फैलने में बाधक होती है उसे सृष्टि विज्ञान के ज्ञाता ऋषियों ने 'असुर' के नाम से पुकारा है। प्रकाश की तरह प्राण-तत्व या गति तत्व भी देव-भाव का सूचक है क्योंकि उसी से प्राणि-जगत् का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्य के तेज का परिपाक नहीं होता और उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्यशील नहीं होती तब तक की तम के आवरण-युक्त अवस्था को वृत्र अथवा महिषासुर का आधिपत्य कहा जाता है। उस समय तक सूर्य या इन्द्र अपने 'राज्य' से वंचित होता है। जब सूर्य की शक्ति का परिपाक हो जाता है और सौर-तेज सर्वत्र व्याप्त होकर सृष्टि-रचना के कार्य को अग्रसर करते हैं तो वही वृत्र या महिष का वध हो जाता है। यह कार्य देव-भाव की शक्ति का संग्रह होने से ही होता है, इसलिये उसे शक्ति या देवी द्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीक ही है। यह सृष्टि-विकास और रचना के परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं अतएव 'देवासुर संग्राम' उतने समय तक चलता ही रहता है। यह सब वर्णन वेदों में स्थान-स्थान पर पाया जाता है और पुराणकारों ने भी उसे उपाख्यान का रूप देकर अपेक्षाकृत सरल भाषा में लिख दिया है। इस विषय पर प्रकाश

डालते हुए एक विद्वान् ने देवासुर संग्राम का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है—

"देवों के अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आश्रय सौर-प्राण से है। सूर्य में जागरण-भाव ही है। सूर्य के भीतर सोना (निद्रा) नहीं है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य-मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नहीं पहुंच सके। इसीलिये 'शतपथ ब्राह्मण' में इन्द्र के देवासुर संग्राम को बनावटी कहा है—

न त्व युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रोमघवन् कश्चनास्ति ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुराणयुत्सु ॥

अर्थात्—"हे इन्द्र ! तुम कभी लड़े नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धों का सब वर्णन माया या बनावटी है। न आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न पहले तुमने लड़ने वाला कोई था।"

"देवों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्र के मरने से इन्द्र 'अशत्रु' (बिना शत्रु के) होगया वही भाषा मार्कण्डेय पुराण में महिषासुर के लिये प्रयुक्त की गई है—'इन्द्रोऽभून्महिषासुर' (७५–२) महिषासुर ने इन्द्र को स्वर्ग के सिंहासन से पदच्युत कर दिया और स्वयं इन्द्र बन बैठा। पुनः इन्द्र (सूर्य मंडल का अधिष्ठातृ देवता) देव–भाव की वृद्धि से या देवी की सहायता से शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारा गया। जो आवरण करने वाला भाव है, जो अपने तम से सौर तेज को ढक देता है वही वृत्र या महिष है। सृष्टि काल के हिसाब से परमेष्ठी को सूर्य-भाव में आने के लिये समय लगा होगा सूर्य के जन्म से लेकर उनके तेज का पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुर ही शक्तिशाली रहा होगा अन्त में जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए तब वही महिष वध हुआ।

देवासुर संग्राम और देवी के युद्धों की कथायें वास्तव में बड़े सुन्दर रूपक हैं जिनके माध्यम से पुराणकारों ने आध्यात्मिक और आधिदैविक गूढ़ तत्वों को सर्व साधारण के बोधगम्य रूप में वर्णन किया है। उनमें तामसिक शक्ति के ऊपर सात्विक शक्ति की विजय का भाव दर्शाया गया है जो मनुष्य

को सतोगुण का अवलम्बन करने की प्रेरणा देता है। उससे प्रकट होता है कि अन्धकार या तम की शक्तियाँ चाहे कुछ समय के लिये प्रकाश—सत्य की शक्ति को आच्छादित करने पर अन्त में विजय सत्य—सतोगुण की होती है।

चौदह मन्वन्तर—

मन्वन्तरों का वर्णन और विवेचन पुराणों का एक मुख्य लक्षण माना गया है और 'मार्कण्डेय पुराण' में भी इस सम्बन्ध में अनेक रोचक कथायें दी गई हैं। उपर्युक्त 'देवी-महत्म्य' जिसका सारांश पिछले पृष्ठों में दिया गया है, स्वारोचिष मन्वन्तर के कथानक का ही एक अंश है। मन्वन्तरों की संख्या चौदह बतलाई है जिनमें से स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष—ये छः बीत चुके हैं। सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान समय में चल रहा है। इसके पश्चात् सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्र-सावर्णि, रौच्य और भौत्य नाम के सात मन्वन्तर और व्यतीत होंगे। ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन के अन्तर्गत होते हैं जिसका परिमाण मनुष्यों के ४ अरब ३२ करोड़ वर्षों का बतलाया गया है। ब्रह्मा के इस एक दिन अथवा चौदह मन्वन्तरों की सम्मिलित अवधि को एक 'कल्प' कहा जाता है।

यदि हम मानवीय इतिहास के दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो दस बीस हजार वर्ष का इतिहास ही बहुत अस्पष्ट जान पड़ता है जिसका पता लगाने में बहुत कुछ अनुमान और कल्पना से काम लेना पड़ता है। ऐसी दशा में पुराणकारों का चार अरब वर्ष पहिले का इतिहास नाम-धाम सहित लिख देना निश्चय ही जान पड़ता है। पर इसका कारण यही है कि पुराणकार सृष्टि के निर्माण और प्रलय को एक सामान्य नियम मान कर उसके मुख्य परिवर्त्तनों (सर्गों) की चर्चा करते हैं। यह ठीक है कि वर्त्तमान मानव-सभ्यता का इतिहास आठ-दस हजार वर्ष से अधिक का विदित नहीं होता और वह भी अधूरा और कुछ अंशों में अनुमानों पर ही आधारित है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वी की सृष्टि और प्रलय होते रहने से ऐसी सभ्यताएँ हजारों बार बनी और बिगड़ चुकी हैं और हजारों ही बार बनें और बिगड़ेंगी। जब देश और काल अनन्त और अनादि हैं और निरन्तर परिवर्तन विश्व का अटल

नियम है तब आजकी दुनिया और मनुष्य जाति को ही सब कुछ समझ लेना या उनके आगे पीछे संसार को शून्य ही मान लेना ज्ञान का बहुत सीमित प्रयोग करना है।

हम जानते है कि पुराणों ने विभिन्न मन्वन्तरों के राजाओं, ऋषियों और व्यक्तियों की जो कथायें दी गई है वह वर्तमान दुनिया के स्वरूप और नमूने के अनुसार ही लिखी गई है, पर उसमें किसी तरह की हानि नहीं जान पड़ती। इन वर्णनों का मुख्य उद्देश्य पाठकों को सृष्टि की विशालता और अनादिकाल से होते चले आने वाले विविध परिवर्तनों का आभास कराना ही है जिससे वह अपनी वास्तविकता का अनुभव कर सके और अधर्म तथा अनीति से बचकर अपने धर्म कर्त्तव्यों पर आरूढ रहे। व्यक्तियों के नाम और उनके कथोपकथन तो इस उद्देश्य से लिखे गये है जिससे पाठकों को वे स्वाभाविक जान पड़े और वे उनसे शिक्षा और प्रेरणा प्राप्त कर सकें। हम तो यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रत्येक मन्वन्तरों में मनुष्यों का आकार प्रकार और शरीर रचना वर्तमान तरह की ही थी और वे इसी प्रकार बोलकर अपना मनोभाव प्रकट करते थे। पर इसमें सन्देह नहीं कि पञ्चभूत, प्राण शक्ति और चेतन-तत्त्व मिल कर इसीसे मिलती-जुलती प्राणियों की रचना और विनाश सदैव करते ही रहते है और विविध प्रकार की भली-बुरी घटनाओं का होते रहना प्रकृति का एक स्वाभाविक और अनिवार्य नियम है। यदि किसी काल के मनुष्य चार हाथ पैरों से गमन करने वाले हों या उड कर आते-जाते हों तो इससे भी भलाई-बुराई, नैतिकता-अनैतिकता, पाप-पुण्य की शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पौराणिक कथाओं का मुख्य उद्देश्य लोगों को सदाचरण की सत्-शिक्षाएँ देना ही है। इसलिये के नाम, गति, संख्या, कथोपकथन के ब्यौरों का ठीक होने पर जोर देना निरर्थक है। रामायण और महाभारत के नायकों के अथवा बुद्ध, ईसा, सिकन्दर, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों के जो सम्भाषण उनके जीवन चरित्रों या ऐतिहासिक कथाओं में दिये गये है वह भी उस समय किसी 'शार्ट हैण्ड' लेखक ने नहीं लिखे थे। पर घटनाओं को सम्पूर्णता और स्वाभाविकता का रूप देने के ख्याल से कथा

लेखक, कविगण या नाटककार उसे ऐसे रूप में लिखते ही है मानो वे घटनायें उनकी आंखों के सामने ही हुई हो। पौराणिक कथाओं की रचना भी इसी प्रकार और ऐसे ही शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई है। हम तो उन लेखकों के व्यापक दृष्टिकोण की प्रशंसा ही करेंगे जिन्होंने मानव मात्र को ही नहीं प्राणीमात्र में एक ही सत्ता का अनुभव करके मनुष्यों के सम्मुख सत्य, न्याय, सहानुभूति, दया क्षमा के दैवी गुणों के आदर्श ऐसे रूप से उपस्थित किये जो किसी सहृदय व्यक्ति के अन्तःकरण को सहज ही प्रभावित कर सकते हैं।

इस दृष्टि से मार्कंडेय पुराण का दर्जा बहुत ऊँचा माना जाता है। इसने मतमतान्तर, सम्प्रदायवाद और विशेष स्वार्थों की भावना से ऊपर उठ कर आत्मोत्थान, सच्चरित्रता, परोपकार, दया, क्षमा आदि सद्गुणों की ही शिक्षा दी है। इन तथ्यों को साधारण बुद्धि के मनुष्य भी हृदयंगम कर सकें इसके लिये उपाख्यानों की रोचक शैली का अवलम्बन किया है। इसके 'हरिश्चन्द्र' और 'मदालसा' के उपाख्यान धार्मिक-जगत् में अमर बन चुके हैं और 'देवी महात्म्य' शाक्त-सम्प्रदाय ही नहीं हिन्दूमात्र का पारायण ग्रन्थ बन चुका है। नरक वर्णन, योग निरूपण, सूर्य तत्त्व विवेचन, पातिव्रत महिमा आदि का इसने ऐसे प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है कि प्रत्येक पाठक को उससे कुछ न कुछ सदुपदेश अवश्य प्राप्त होता है। सृष्टि-रचना, जड और प्राणी-जगत् का क्रमविकास, मानव स्वभाव के दोष और दुरितों का कथन, राजवंशों की कथायें आदि पौराणिक विषयों के वर्णन में भी मार्कंडेय पुराण ने अति-शयोक्ति से यथासम्भव बच कर शिक्षा और उपदेश पर अधिक दृष्टि रखी है। इन सब विशेषताओं के कारण सामान्य जनता तथा विद्वानों में भी मार्कंडेय पुराण का अपेक्षाकृत अधिक मान है और हमारा विश्वास है कि पाठक इसके पारायण से पर्याप्त लाभान्वित हो सकते हैं।

मार्कंडेय पुराण की श्लोक संख्या अन्य पुराणों के विस्तार को देखते हुए पर्याप्त न्यून है। अतः इसमें कोई खास कमी नहीं की गई है। केवल श्राद्ध सम्बन्धी कुछ विषय जो अप्रासंगिक जान पड़ता था छोड़ा गया है। अन्यथा आदि से अन्त तक सम्पूर्ण ग्रन्थ ज्यों का त्यों रखा गया है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

मार्कण्डेय पुराण की विषय-सूची

१	जैमिनि की महाभारत विषयक चार शकायें और मार्कण्डेय महामुनि द्वारा वसु अप्सरा शाप वर्णन	६५
२	महाभारत-संग्राम में वसु के तीर लगना और चार पक्षी-शावकों का जन्म	७४
३	पक्षियों का शर्णीक मुनि द्वारा पालन और द्विज शाप वृत्तान्त कह कर विन्ध्याचल गमन	८३
४	पक्षियों के पास जैमिनि मुनि का आगमन और पूर्वोक्त चार प्रश्न करना, भगवान् के चतुर्व्यूह अवतार का वर्णन	९५
५	इन्द्र के शापग्रस्त होने से उसका द्रौपदी के पाँच पतियों के रूप में प्रकट होना	१०४
६	बलदेवजी द्वारा मद्य-दोष से ब्रह्म हत्या और प्रायश्चित के लिए तीर्थयात्रा वर्णन	१०८
७	द्रौपदी के पाँच पुत्र अविवाहित अवस्था में ही मृत्यु को क्यों प्राप्त हुए ?	११३
८	हरिश्चन्द्र और विश्वामित्र का उपाख्यान, हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा	१२३
९	विश्वामित्र तथा वशिष्ठ का आडि और बक के रूप में महासंग्राम और ब्रह्माजी की शान्ति स्थापना	१६२
१०	पिता-पुत्र सम्वाद रूप में प्राणियों के जन्मादि और जीव पर आने वाले सङ्कटों का वर्णन	१६७
११	गर्भ-स्थापन होकर प्राणियों की उत्पत्ति और कर्म विपाक	१८०
१२	पापियों को दण्ड देने के लिए छः नरकों का लोमहर्षण स्वरूप वर्णन	१८४
१३	पुत्र के सातवें पूर्व जन्म की कथा और कर्मफल के सम्बन्ध में राजा अविक्षित का यमदूत से सम्वाद	१९१

१४	विभिन्न पापों के कर्मफल स्वरूप घोर नरक यातनाओं का वर्णन	१६४
१५	कर्मफल भोगने के पश्चात् प्राणियों का नरक से छुटकारा और विविध योनियों में भ्रमण	२०६
१६	पतिव्रता का अपने कोढ़ी पति की रक्षार्थ सूर्योदय को रोक देना और देवताओं का अनसूया की शरण में आना सोम, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अनसूया के पुत्र रूप में जन्म लेना और कार्तवीर्य अर्जुन का गर्ग मुनि से दत्तात्रेय की महिमा श्रवण करना	२१७
१७	कार्तवीर्य अर्जुन का दत्तात्रेय की शरण जाना और महान् वर लाभ करना	२४२
१८	ऋतध्वज को कुवलय नामक दैवी अश्व की प्राप्ति और उसका कुवलयाश्व नाम होना	२४७
१९	कुवलयाश्व का पातालोक गमन, मदालसा से विवाह और पातालकेतु दैत्य का सेना सहित संहार	२५५
२०	तालकेतु दैत्य का माया द्वारा कुवलयाश्व की मृत्यु की मिथ्या समाचार और मदालसा का मरण	२६९
२१	कुवलयाश्व का चिता सुनकर नागराज अश्वतरका तपस्या द्वारा मदालसा को जीवित कराना।	२७६
२२	कुवलयाश्व को नागराज अश्वतर के यहाँ जाना और मदालसा की पुनः प्राप्ति	२९३
२३	मदालसा द्वारा प्रथम तीन पुत्रों को आत्मज्ञान का उपदेश देकर संसार से विरक्त बना देना और फिर राजा के आग्रह से चौथे पुत्र अलर्क को गृहस्थ धर्म का उपदेश	२९९
२४.	अलर्क के प्रश्न करने पर मदालसा का राजधर्म और राजनीति कथन	३०८
२५	वर्णाश्रम धर्म कीर्तन	३१३
२६	गृहस्थ धर्म वेद विद्या का महत्त्व तथा धार्मिक कर्तव्य वर्णन	३१९

२७	सदाचार, शिष्टाचार, और नागरिक कर्तव्यों का वर्णन	३२५
२८	अलर्क को राज्यभार और रहस्यमय अँगूठी देकर मदालसा का पति सहित वन गमन	३४२
२९	अलर्क को सांसारिक विषयों में आसक्त देखकर उसके बड़े भाई सुबाहु द्वारा काशी नरेश को आक्रमण के लिए प्रेरित करना तथा अलर्क का आत्मानुभूति प्राप्त होकर दत्तात्रेय के निकट आकर योग का उपदेश ग्रहण करना	३४४
३०	दत्तात्रेय का ममता का रूप और उससे होने वाले अन्धनों का वर्णन	३५०
३१	दत्तात्रेय का अलर्क को अष्टाङ्ग योग का उपदेश तथा योग-मार्ग में आने वाले विघ्नों का वर्णन	३५३
३२	पाँच उपसर्ग, सात भाव तथा अष्ट सिद्धियों का वर्णन करके योग सिद्धि तथा मुक्ति की प्राप्ति कथन	३६२
३३	योगी के आहार-विहार के नियम और अनासक्त रागविहीन ध्यान की श्रेष्ठता	३६८
३४	अहङ्कार के स्वरूप और प्रणवकी महिमा कथन	३७२
३५	जीवन के अन्त होने पर मृत्यु सूचक अरिष्टों का वर्णन और उनसे सावधान होने का उपदेश	३७४
३६	अलर्क का आत्मज्ञान प्राप्त करके काशीराज के पास जाना राज्य की पुनः प्राप्ति तथा पुत्र को राज्य देकर तपस्या के लिये वन जाना	३८६
३७	मार्कण्डेय और क्रौष्टुकि का सम्वाद, ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और विकास का वर्णन	३९३
३८	प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति, एक ही ईश्वरका ब्रह्मा विष्णु और शिव के रूप में प्राकट्य, ब्रह्मा का दिन, मन्वन्तर और ब्रह्मा की आयु का वर्णन	४०३

पाद्मकल्प के पश्चात् वाराह कल्प में नारायण द्वारा पृथिवी का उद्धार और ब्रह्माजी द्वारा नौ प्रकार की वैकृत और प्राकृत सृष्टि कथन ४०६

ब्रह्मा द्वारा देवकाल, वेद, मनुष्य, प्रकाश और जगत् के विविध पदार्थों का निर्माण ४१४

ब्रह्मा से सात्विक, राजस, तामस, नर नारियों की उत्पत्ति, मिथुन-सृष्टि, मनुष्यों के निवास स्थान, नाप और गणना का आरम्भ जीविका-प्रणाली, कृषिकला का विकास समाजसगठन कथन ४२०

ब्रह्मा के आठ मानस पुत्र, स्वायम्भुव मनु और शतरूपा, दक्ष और अन्य प्रजापतियों की सन्तति का वर्णन ४३२

कलि की कन्या के दुःख देने वाले परिवार और भीषणकर्मा दुःसह की उत्पत्ति और उसके रहने के स्थानों के रूप में मनुष्य के भले बुरे कार्यों का उल्लेख ४४६

रुद्र सृष्टि और मार्कण्डेय ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन ४६३

स्वायम्भुव मनु के वंश का विस्तार और मर्यादा, ऋषभ पुत्र भरत का चरित्र कथन ४६८

पृथ्वी का विस्तार, सात द्वीप और जम्बू द्वीप में भारतवर्ष का वर्णन ४७४

जम्बू द्वीप के प्रमुख पर्वत, नदी और भारतवर्ष का महत्त्व कथन ४७८

गङ्गा की अनेक धाराओं और किम्पुरुष आदि देशों का वर्णन ४८२

भारतवर्ष का विस्तार और वहाँ के विभिन्न स्थानों का वर्णन ४८६

कूर्म संस्थान के रूप भारत में के विभिन्न प्रदेशों का परिचय ४९४

मार्कण्डेय पुराण

॥प्रकरण-१ महाभारत विषयक चार शंकायें ॥

अघौघभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमाद्यवदिनमतीवविविक्तचित्तैः।
स्तुत्यं पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवस्वः॥१॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रवृत्यभिवयन्यकरोतिसर्गः॥२॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्॥ देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥३॥

तपःस्वाध्याय निरतं मार्कण्डेयं महामुनिम्।
व्यास शिष्यो महातेजा जैमिनि पर्यपृच्छत ॥४॥

संसार के भय और दुःख के नाशक, एकान्त चित्त योगियों और सन्यासियों द्वारा ध्यान योग्य तथा वंदनीय, भू भुव और स्वर्लोक का वामन रूप से अतिक्रमण करने वाले, नारायण के पद्म-पद्म आपको पवित्र करे ॥१॥ जो शेषशायी, श्वास से जल के कराल कण को कम्पायमान करने वाले, जिससे समुद्र नर्तन करता-सा प्रतीत होता है, वह अविनाशी नारायण तुम्हारे रक्षक हो ॥२॥ नर नारायण, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके जय कीर्तन एवं पुराण आदि का पाठ करें। ३॥ एक समय की बात है महर्षि वेदव्यास के शिष्य महा तेजस्वी जैमिनि ने, वेदादि के अध्ययन में परायण, महा तपस्वी मार्कण्डेयजी से प्रश्न किया ॥४॥

भगवन् भारताख्यानव्यासेनोक्त महात्मना ॥
पूर्णसप्ततलं शुभ्रं नानाशास्त्रसमुच्चय ॥२॥
नानिर्वृद्धिसमायुक्त साधुशब्दोपशोभितम् ॥
सर्वदृक्षोक्तिसिद्धान्तैश्च निष्ठासमन्वितम् ॥३॥
विदुशानां यथा विष्णुर्द्विपदा ब्राह्मणो यथा ॥
भूषणानां यथा चूडामणिर्वर ॥४॥
यथायुधानां कुलिशं न्द्रियाणां यथा मन ॥
वेदसर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम् ॥५॥
अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च दर्शते ॥
परस्परानुबन्धाच्च यथानुबन्धाश्चते पृथक् ॥६॥
धर्मशास्त्रमिदश्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदपरम् ॥
कामशास्त्रमिदन्यु मोक्षशास्त्र तथोत्तमम् ॥७॥
चतुराश्रमधर्माणामचारस्थितिसाधनम् ॥
प्रोक्तमेतन्महाभागवेदव्यासेनधीमता ॥८॥

हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यास जी ने जिस 'भारत' ग्रन्थ को कहा है, वह अनेक शास्त्रों के मर्मार्थ वाला ॥२॥ पवित्र शब्द से युक्त, छन्दालंकारों से सम्पन्न, कानों को सुखप्रद है तथा उसमें कथित यथार्थ प्रश्नों का उत्तर सन्निविष्ट है ॥३॥ जैसे देवगण में विष्णु, मनुष्यों में ब्राह्मण और आभूषणों में चूड़ामणि ॥४॥ अस्त्रों में वज्र तथा इन्द्रियों में मन प्रमुख है, वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों में एक मात्र महाभारत ही है ॥५॥ इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का पारम्परिक सम्बन्ध है तथा वे प्रकट और पृथक-पृथक कहे गये है ॥६॥ इसलिये यही धर्मशास्त्र, अर्थ-शास्त्र, कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र है ॥७॥ हे महाभाग ! महर्षि वेदव्यास ने इसमें चारों आश्रम, उनका आचार, अवस्थान तथा साधन, सभी कुछ विशेष रूप से कहा है ॥८॥

तथातातकृतह्यस्मै कृष्णद्वैपायनोदारकर्मणा ॥
यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥९॥
व्यासवाक्यजलौघेनकृतकल्मषहारिणा ॥
वेदशैलावतीर्णेननीरजस्कामहीकृता ॥१०॥
कलशब्दमहाह्रदसमाख्यानपरम्बुजम् ॥
कथाविस्तीर्णसलिलंकार्ष्णं वेदमहाह्रदम् ॥११॥
तदिदं भारताख्यानंबह्वर्थंश्रुतिविस्तरम् ॥
तत्त्वतोज्ञातुकामोहंभगवंस्त्वामुपस्थित ॥१२॥
कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽविजनार्दन ॥
वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥१३॥
कृष्णायाश्चपाण्डुपुत्राणामेकस्याश्चपदात्मजा ॥
पञ्चानामहिषीकृष्णाह्यत्र संशयोमहान् ॥१४॥

उन उदारकर्मा व्यासजी ने इस महाशास्त्र को इस प्रकार रचा है कि उसके अत्यन्त विस्तृत होने पर भी इसमें कोई स्थल, किसी भी स्थल का परस्पर विरोधी नहीं है ॥९॥ वासुदेव की वचन रूप जल राशि वेद रूप पर्वत से प्रकट हुई और उसने कुतर्क रूप पेड़ों को उखाड़ कर भूमि को रजहीन बना दिया ॥१०॥ यह पवित्र वेद रूप जलाशय महाशब्द रूप हुआ और महाआख्यान रूप अरविंदों से सुशोभित तथा विस्तीर्ण कथा नीर के द्वारा परिपूर्ण हुआ है ॥११॥ हे प्रभो ! जो महाभारत अत्यन्त वेदार्थ और श्रुतियों से सम्पन्न है, उसका यथार्थ जानने के निमित्त ही आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ ॥१२॥ विश्व सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता जनार्दन वासुदेव निर्गुण होते हुए भी मनुष्यत्व को किस लिए प्राप्त हुए ॥१३॥ द्रुपद सुता द्रौपदी एक ही पाँच पाण्डवों की पत्नी कैसे हुई इस विषय में मुझे अत्यन्त शंका है ॥१४॥

भैषज्यब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबल ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्मात्तत्कौहलायुध ॥ १५॥
कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथा ॥
पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥ १६॥
एतत्सर्वं विस्तरशोऽस्माकमाख्यातुमर्हसि ॥
भवन्तोभूतभव्यज्ञाःसन्दर्वोक्तकरा सदा ॥१७॥
इतितस्यवचःश्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनि ॥
दशाष्टदोषरहितोवक्तुं समुपचक्रमे ॥१८॥
क्रियाकालोऽयमस्माकंप्राप्तो मुनिवरोत्तम ॥
विस्तरेणापि वक्तव्येनैवकाल प्रशस्यते ॥१९॥
येतु वक्ष्यन्तितवक्षेऽद्यतानहंजैमिनेतव ॥
तथाचनष्टसन्देहं तत्कारिष्यन्तिपक्षिणः ॥२०॥
पिङ्गाक्षश्चविबोधश्चसुपुत्र सुमुखस्तथा ॥
द्रोणपुत्रा खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञा शास्त्रचिन्तका ॥२१॥

तथा महाबली बलदेवजी ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग में कैसे ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किया ? ॥१५॥ पाण्डवों से रक्षित द्रौपदी के महारथी पुत्रों ने अनाथ के समान ही अविवाहितावस्था में ही कैसे प्राण छोड़ दिये? ॥१६॥ यह सब मेरे प्रति विस्तार सहित कहिये, क्योंकि आप ही अज्ञानियों को ज्ञानोत्पन्न करने में समर्थ हैं ॥१७॥ योगकाक्ष से गणित अठारह दोषों से बचे हुए महर्षि मार्कण्डेयजी ने मुनि श्रेष्ठ जैमिनी के यह वचन सुनकर कहा ॥१८॥ मार्कण्डेयजी बोले—यह समय मेरे संध्या वन्दनादि का है, विस्तार सहित कुछ कहने का नहीं है ॥१९॥ परन्तु, इस विषय को तुम्हारे प्रति जो पक्षी कहेंगे और तुम्हारा संदेह नष्ट करेंगे, उनका वर्णन तुम्हारे प्रति कहता हूँ ॥२०॥ पिङ्गाक्ष विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि द्रोण-पुत्र पक्षी श्रेष्ठ, सब शास्त्रों का तत्व जानने वाले हैं ॥२१॥

वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेनागच्छन्तिमानिनि ॥
विस्मयस्फुल्लनयनास्तानुवाचेदमब्रुवन् ॥२२॥
एवमुक्तस्तदातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥
प्रत्युवाचपिशङ्गाक्षोविस्मयोत्फुल्ललोचन ॥२३॥
अत्यद्भुतमिदब्रह्मन्वाग्विभासुरी ॥
यत्पक्षिणस्तेविज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४॥
तिर्यग्योन्यायदिभवन्तेषाज्ञानकुतोऽभवत् ॥
कथचद्रोणतनया प्रोच्यन्तेतेपतत्रिण ॥२५॥
कश्चद्रोण प्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम् ॥
जातगुणवतातेपाधर्मज्ञानमहात्मनाम् ॥२६॥
शुश्रूषाबहिनो भूत्वायद्वृत्त नन्दनेपुरा ॥
शक्रस्याप्सरसाचैवनारदस्यचसंगमे ॥२७॥

वे विन्ध्याचल की कन्दरा मे निवास करते है उनकी दृष्टि वेदशास्त्र के अर्थ मे कभी अवरुद्ध नही होती, इसी उद्देश्य से प्रश्न करने को सम्पूर्ण द्विजगण को ज्ञान तुम्हे हो गया है ॥ २१ ॥ मेधावी मार्कण्डेयजी के यह वचन सुनकर उन मुनि श्रेष्ठ जैमिनि ने विस्मय मे विस्फारित हुए नेत्रो से प्रश्न किया ॥२३॥ जैमिनि बोले—ब्रह्मन् तो यह आश्चर्य की बात है कि पक्षी भी मनुष्य के समान वाणी कह सकते हैं कि अत्यन्त आश्चर्य यह है कि उन्हे अलभ्य शास्त्र ज्ञान प्राप्त हो चुका है ॥२४॥ उनका जन्म यदि तिर्यग्योनि मे हुआ है तो ऐसे ज्ञान की उपलब्धि उन्हे कहा से हुई और वे द्रोणपुत्र किस प्रकार कहे जाते है ? ॥२५॥ वह द्रोण कौन है जिसके पुत्र यह चार पक्षी है तथा इन गुणज्ञ एव महात्मा द्विजियो को धर्मज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? ॥२६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने प्राचीन काल मे इन्द्र, नारद तथा अप्सराओ के नन्दन वन मे एकत्र मिलन होने पर जो घटना हुई, उसे एकाग्र मन होकर श्रवण करो ॥२७॥

नारदोनन्दनेऽपश्यत्पु ञ्जलीनराडध्यगम् ॥

शक्रं सुराधिराजानतन्मुखालक्तलोचनम् ॥२८॥
सतेनाधिष्ठितेनहृष्टमाश्च शचीपति ॥
समुत्तस्थौस्वकात्तस्मैददावासनमादरात् ॥२९॥
तदृष्ट्वाबलदृक्चन्नमुत्थितत्रिदशाङ्गना ॥
प्रणेमुस्ताश्चदेवर्षिविनयावनता स्थिता. ॥३०॥
ताभिरभ्यर्चित सोऽथ उपविष्टेशतक्रतौ ॥
यथार्हं कृतसंभाषःकथाश्चक्रेमनोरमाः ॥३१॥

ततः कथान्तरेशक्रस्तमुवाचमहामुनिम् ॥
देह्याज्ञानृत्यतामासातवयाभिमतेतिवै ॥३२॥
रम्भाचाक्रकैशाद्याश्चउवश्यश्च तिलोत्तमा ॥
घृताचीमेनकावापियत्रवःभवतोरुचि ॥३३॥
एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठोवाचशक्रस्यनारद ॥
विचिन्त्याप्सरसः प्राहविनयावनता स्थिता ॥३४॥

एक दिन नारदजी ने वहाँ पहुँचकर देखा कि देवराज इन्द्र अनेक वाराङ्गनाओं से घिरे हुए उनके ही मुख को देख रहे हैं ॥२८॥ सुरपति इन्द्र महर्षि श्रेष्ठ नारद को देखते ही उठे और अत्यन्त आदरपूर्वक उनके निमित्त अपना आसन दिया ॥२९॥ इन्द्र को उठता हुआ देखकर उन वाराङ्गनाओं ने भी उठकर महर्षि नारद को प्रणाम किया और विनयपूर्वक नतमस्तक हुई खड़ी रहीं ॥३०॥ उनके द्वारा इस प्रकार पूजित हुए नारदजी इन्द्र के सहित बैठ कर परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे ॥३१॥ इसी मध्य उन महर्षि से इन्द्र बोले—हे महाभाग ! यदि आपकी इच्छा हो तो नृत्यगान की आज्ञा दीजिये ॥३२॥ रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा उर्वशी, घृताची या मेनका में से जिसे आप चाहें उसी को नृत्य करने का आदेश दें ॥३३॥ द्विजोत्तम नारद जी ने इन्द्र की यह बात सुनी तो कुछ समय विचार कर उन्होंने विनय से झुकी हुई उन अप्सराओं से कहा ॥३४॥

युष्माकमिहसर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ॥
आत्मानमन्यतेयातुसानृत्यत्वमसाधत ॥३५॥
गुणरूपविहीनायां सिद्धिर्नाट्यस्यनास्तिवै ॥
चार्वंगिष्ठानवन्नृत्यनृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥३६॥
तद्वाक्यसमकालंचएकैकास्तानतास्तत ॥
अहंगुणाधिकात्वंनत्वंचान्याश्चवीदिदम् ॥३७॥
तासामभ्रमालोक्य भगवान्पाकशासन ॥
पृच्छ्यतामुनिरित्याहवक्तायाचोगुणाधिकाम् ॥३८॥
शक्रच्छन्दानुयाताभि पृष्टस्ताभि सनारद ॥
श्रोवाचयत्तदावाक्यजैमिनेतन्निबोधमे ॥३९॥
तपस्यतनगेन्द्रस्थयाव.क्षोभयतेयतात् ॥
दुर्वाससमुनिश्रेष्ठ तावोमध्येगुणाधिकाम् ॥४०॥
तस्यतद्वचनश्रुत्वासर्वाविपलितम्बरा ॥
अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरेकथा ॥४१॥

देखो, तुम्हारे मध्य जो भी अधिक रूपवती हो, तथा जो अपने में उदारता आदि गुणों को पाती हो, वही मेरे समक्ष नृत्य करे ॥३५॥ क्योंकि नाट्यशास्त्र में रूपवती और गुणवती नारी के अतिरिक्त किसी अन्य की सिद्धि नहीं तथा हाव, भाव, कटाक्ष, विक्षेपादि से सम्पन्न नृत्य ही नृत्य कहा जाता है ॥३६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—नारदजी की यह बात सुनकर अप्सराएँ परस्पर में विवाद करने लगीं—सब गुणों से विभूषित विशिष्ट मैं ही हूँ, तुम नहीं हो ॥३७॥ उनमें इस प्रकार विवाद होता देख कर इन्द्र बोले—इन मुनि से ही पूछो कि तुम में से गुणवती कौन-सी है ? इस बात को यही कह सकते हैं ॥३८॥ हे जैमिने ! इन्द्र की इच्छा पर उनके रहने वाली अप्सराओं द्वारा पूछने पर उस समय नारदजी ने जो कुछ कहा, वह कहता हूँ ॥३९॥ नारदजी ने कहा—पर्वत पर मुनिवर दुर्वासा तप करते हैं, तुम में से जो कोई उन्हें मोहित कर सकेगी, वही अधिक गुणवती होगी ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

उनकी बात सुनकर सब अप्सराओं का मस्तक घूम गया और वे बोलीं कि हम इस कार्य में समर्थ नहीं हैं ॥४१॥

तत्राप्सरावपुर्नाम्नैकोक्षोभणगर्विता ॥
प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रासौ मुनिसत्तमः ॥४२॥
अक्षतं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ॥
स्मरशस्त्रालद्रश्मिकरिष्यामि कुसारथिम् ॥४३॥
ब्रह्माजनार्दनोवापि यदि वा नीललोहितः ॥
तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम् ॥४४॥
इत्युक्त्वाप्रजगामाथ प्रालेयाद्रिवपुस्तदा ॥
पुनस्तप प्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम् ॥४५॥
सापि सुस्वकोकिलमाधुर्यमदास्तेसमहामुनि ॥
क्रोशमात्र स्थितातस्मादगायत्तवरवाप्सरा ॥४६॥
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानसः ॥
जगामतत्रयत्रास्तेसावाल्रुचिरानना ॥४७॥
तांदृष्ट्वाचारुसर्वाङ्गीमुनिः सस्तम्भ्यमानसः ॥
क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वितः ॥४८॥

परन्तु, उनमें वपु नाम की एक अप्सरा अनेक मुनियों का तप भंग कर चुकी थी, इसलिये उसने गर्व कहा कि आप मुझे आज्ञा करें, दुर्वासाजी जहाँ निवास करते हैं, मैं वहाँ जाने को उद्यत हूँ ॥४२॥ मैं उनकी मन रूप लगाम को काम बाण से काट कर इन्द्रिय रूप अश्वों को उल्टी दिशा में फेर कर देह रूप रथ को बुद्धि रूप सारथी से विहीन कर डालूँगी ॥४३॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी हों, तो भी मैं उनके अन्तर को काम बाण से अवश्य ही जर्जर कर डालूँगी ॥४४॥ यह कह कर वह अप्सरा हिमालय में पहुँची, वहाँ दुर्वासा के तप के प्रभाव से आश्रम के हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त रहते थे ॥४५॥ जहाँ दुर्वासा रहते थे, वहाँ से एक कोश दूर रह कर वह अप्सरा श्रेष्ठ वपु अपने कोकिल कंठ से गायन करने लगी ॥४६॥ जहाँ पर वह

कोकिल कटी गारही थी, वहाँ उन गाद को सुन कर आश्चर्यान्वित हुए दुर्वासा पहुँचे ॥४७॥ और उन्होंने उस गन्धर्वाङ्गनुन्दरी को देखकर मन को रोकते हुए सोचा कि यह मेरी तपस्या मे विघ्न करने को उपस्थित हुई है और क्रोध मे भर कर बोले ॥४८॥

उवाचेदंततोवाक्य महर्षिस्तामहातपा ॥४९॥
यस्माद् खार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् ॥
आगतासिमदोन्मत्ते मनदु खापखेचरि ॥५०॥
तस्मात्सुपर्णगोत्रेव मत्कोपकलुषीकृता ॥
जन्मप्राप्स्यसिदुष्टे ज्ञेयाद्वर्षाणिषोडश ॥५१॥
निजरूपपरित्यज्यपक्षिणीरूपधारिणी ॥
चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽयमाप्सरा ॥५२॥
अप्राप्यतेषुतप्रीतिनिजरूपुतप्रुनर्दिवि ॥
वाक्यमाप्स्यसिवक्तव्यनोत्तरंतेकथञ्चन ॥५३॥

इति वचनमसह्य कोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलुषनयनामालिनी श्रावयित्वा ।
तरलतरतरङ्गापरित्यज्यविप्र प्रथितगुणगणौघासत्रयातःखगङ्गाम् ॥

उस महा तपस्वी महर्षि ने उसके प्रति कहा ॥४९॥ अरी मदोन्मत्त खेचरी ! कष्टो से उपार्जित मेरे इस तप मे विघ्न करने के लिये ही तू यहाँ आई है ॥५०॥ हे दुर्बुद्धि वाली ! तू मेरे क्रोध से कलुषित होकर पक्षि-कुल मे जन्म लेकर सोलह वर्ष तक रहेगी ॥५१॥ अरी अधम अप्सरे ! तू अपने इस रूप को छोड़ चार पक्षी का रूप धारण करेगी, उस समय तेरे चार पुत्र होगे ॥५२॥ तू पुत्रोत्पत्ति को प्रीति से वंचित रहेगी और शस्त्र के आघात से पक्षी से छूट कर पुनः स्वर्ग को प्राप्त होगी, अब इसमे किसी प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नही है ॥५३॥ विप्र ऐसे दुर्वासा क्रोधपूर्ण रक्त नयनो से, मनोरम ककण को धारण करने वाले मानवती वपु से इतना कह कर पृथ्वी को त्याग कर, प्रसिद्ध गुणो वाली आकाश गगा को चले गये ॥५४॥

।। प्रकरण २—महाभारत सभाव में पक्षी शावकों का जन्म ।।

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडोनामपक्षिराट् ।।
गरुडस्याभवत्पुत्र सम्पातिरतिविश्रुत ।।१।।
तस्याप्यासीत्सुत शूर सुपार्श्वोवायुविक्रम ।।
सुपार्श्वस्य नय कुन्ति कुन्तिपुत्र प्रलोलुप ।।२।।
तस्यापितनयावास्तांकङ्क कन्धर एवच ।।३।।
कङ्क कैलासशिखरेविद्युद्रूपनिभेक्षणम् ।।
ददर्शाम्बुजपत्राक्षराक्षस धनदानुगम् ।।४।।
आपानात्तक्षमस्वच्छस्रग्दामाम्बर धारिणम् ।।
भार्यासहायमासीनशिलापट्टेऽमलेशुभे ।।५।।
तद्दृष्टमात्र कङ्केनरक्ष क्रोधसमन्वित ।।
प्रोवाचकस्मादायातस्त्वमिहोच्छिष्टजाधम ।।६।।
स्त्रीसन्निकर्षेतिष्ठन्तकस्मान्मामुपसर्पसि ।।
नेषधर्म सुबुद्धिनामितोनिष्पाह्यवस्तुत ।।७।।

मार्कण्डेयजी ने कहा—अरिष्टनेमि के पुत्र पक्षिराज गरुड हुए तथा गरुड का पुत्र सम्पाति हुआ ।।१।। उस सम्पाति का अत्यन्त बली एवं वायु के समान विक्रम वाला पुत्र सुपार्श्व हुआ, सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ।।२।। प्रलोलुप के कंक और कन्धर नाम के दो पुत्र हुए ।।३।। कंक एक दिन कैलाश पर्वत में गया और वहाँ उसने कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले कुबेर-किंकर विद्युद्रूप नाम के राक्षस को देखा ।।४।। वह राक्षस उस समय स्वच्छ माला और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये एक स्वच्छ शिला पर अपनी पत्नी के सहित बैठा हुआ मद्य पी रहा था ।।५।। कंक को देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रोधपूर्वक बोला—रे पक्षिय अधम ! तू यहाँ किसलिये उपस्थित हुआ है ? ।।६।। मैं इस समय अपनी भार्या के साथ बैठा

हूं, तब तू मेरे पास क्यों आया है ? रहस्य कार्य में बुद्धिमानों का ऐसा आचरण उचित नहीं है ॥७॥

साधारणोऽयमस्माकं तवान्येषां च भोजनम् ॥
अन्येषामेव जन्तूनां ममतोऽत्र कथा ॥८॥
ब्रुवाणमित्यसङ्गेन कङ्कस्त्रिच्छेद राक्षस ॥
क्षरत्क्षतजबोत्सर्गविस्फुरत्सचेतनम् ॥९॥
कङ्कविनिहतभ्रातृशोकान्धरकाश्यपमूर्छितम् ॥
विद्युद्रूपधरायाशु मनश्चक्रेऽजेश्वरम् ॥१०॥
सगत्वाशैलशिखरं कङ्कोऽपि तत्र हतं स्थितम् ॥
तस्य सकलनक्षेभ्रातुर्ज्येष्ठस्यश्वेचरम् ॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षोनागेन्द्रइवनिश्वसन् ॥११॥
जगामाथसयत्रास्तेभ्रातृहाततरराक्षस ॥
पक्षवातेनमहता चालयन्भूधरान्वरान् ॥१२॥
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षण ॥
क्षणात्क्षयितशत्रु सपक्षाभ्याक्रान्तभूधर ॥१३॥
पानासक्तमतित्रस्तददर्शनिशाचरम् ॥
आताम्रैकनयनहेमपर्वङ्गमाश्रितम् ॥१४॥

कंक बोला—इस पर्वत पर हमी का समान अधिकार है, जैसा तुम्हारा अधिकार है, वैसा ही मेरा तथा अन्य-अन्य जीवों का है, फिर तुम्हें इसके प्रति इतना ममत्व क्यों है ? ॥८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—कंक की यह बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए उस राक्षस ने खड्ग से उसका शीश काट डाला, उस समय अधिक रक्त गिरने से अति भयानक कार्य हुआ और कंक को मृत्यु होगई ॥९॥ फिर पक्षिराज श्रेष्ठ कश्यप ने कंक का मरण सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर उसने विद्युद्रूप राक्षस को मार डालने का विचार किया ॥१०॥ फिर कंक के उस ज्येष्ठ भ्राता कश्यप ने कैलाश में जहां कंक की मृत्यु हुई थी वहां पहुंच कर उसकी अन्त्येष्टि की और विस्फारित नेत्रों से सर्प के समान श्वास लेने लगा ॥११॥ और जहां कंक का हत्यारा वह विद्युद्रूप राक्षस था,

वहाँ पहुँचा। उसके जाते समय उसके तथा दो हंस के वेग से कटे बड़े पर्वत हिलने लगे ॥१३॥ और समुद्र का जल भी उसके वेग से क्षुब्ध हो गया ॥१४॥ उसके पक्षी के बल से ही कथर ने पर्वत पर [illegible] ॥१५॥ उसने वहाँ जाकर देखा कि सुवर्णमय वेदी पर स्थित वह राक्षस मधुपान कर रहा है ॥१६॥

स्रग्दामापूरितशिखहृच्चिन्दनभूषितम् ॥
केतकीपत्रगर्भाभैर्दंतैर्दीप्तनरायतम् ॥१५॥
वामोरुमाश्रितान्यस्यदक्षोत्संगतलोचनाम् ॥
पत्नीमदनिकानाम्नीं सकोकिलकलस्वनाम् ॥१६॥
ततोऽयपरीतान्ताकन्धर कन्दरस्थितम् ॥
तमुवाचमुदुष्टात्मन्नेहिमुध्यस्ववेगया ॥१७॥
यस्माज्ज्येष्ठोममभ्रातादीनवोघातित्वया ॥
तस्मात्त्वामद्यसंसक्तं निपिष्येयमसादनम् ॥१८॥
विश्वस्तघातिनांलोकायेस्त्रीबालघातिनाम् ॥
यास्यसे निरयान्सर्वान्तास्त्वमद्यमयाहत ॥१९॥
इत्येवमुक्तगेन्द्रेणप्रोक्तं स्त्रीमश्रिधौतदा ॥
रक्षः कोपसमाविष्ट प्रत्यभाषतपक्षिणम् ॥२०॥

जिसका मुख मण्डल और दोनों नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे हैं, उसके मस्तक में माला पड़ी है तथा वह सर्वाङ्ग चन्दन से चर्चित है और उसका मुख-मण्डल केतकी पुष्प के सर्प पत्र के तुरन्त श्वेत दन्त-पंक्ति से सुशोभित है ॥१५॥ तथा उसने यह भी देखा कि एक सर्वाङ्ग सुन्दरी, कोकिलकण्ठ वाली नारी उसके निकट बैठी है उसके दोनों नेत्र विशाल हैं, वह उसकी पत्नी है, जिसका नाम मदनिका है ॥१६॥ फिर पक्षिय श्रेष्ठ कथर ने पर्वत कन्दरा में स्थित उस राक्षस को क्रोधपूर्वक बुला कर कहा—अरे दुष्ट आत्मा वाले! तू शीघ्र यहाँ आकर मुझसे संग्राम कर ॥१७॥ तू ने मदोन्मत्त होकर मेरे भाई की हत्या की है, इसलिये मैं तुझे अवश्य ही यम सदन को भेज दूंगा ॥१८॥ जिन नरकों को विश्वासघात करने वाले, स्त्री और बालकों के हत्यारे प्राप्त होते हैं, उन्हीं नरकों में तुझे भी मेरे हाथ से आत्मसात् करना पड़ेगा ॥१९॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—कबंध के ये वचन सुनकर वह राक्षस अत्यन्त क्रोध-पूर्वक उस पक्षिराज से कहने लगा ॥२०॥

यदितेनिहतोभ्राताक्षिप्तःकिंचिद्विहंगम ॥
तवानद्यबधहनिष्येहखड्गेनतिनिशाचर ॥२१॥
तिष्ठतिष्ठ नजीवन्हिशक्योनाक्षसमेत्यसि ॥
इत्युक्त्वाखड्गमुद्धृत्यभविमलखड्गमादेद ॥२२॥
तत पतगराजस्यगरुडाधिपभटस्यच ॥
बभूवयुद्धमतुलमथागरुडशक्रयो ॥२३॥
तत सराक्षस क्रोधाल्लखड्गमादित्यवेगवत् ॥
चिक्षेपगरुत्मद्वायनिर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥२४॥
पतगेन्द्रश्चतखड्ग किञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात् ॥
ग्रसकेराजग्राहनदागरुत्मान्पन्नग यथा ॥२५॥
खड्गपादतलैर्भङ्क्त्वाचक्रेक्षोभमथाण्डज ॥
तस्मिन्भग्नेतत खड्गे बाहुयुद्धमवर्तत ॥२६॥

अरे तेरे भाई की मृत्यु से मेरा पौरुष ही प्रकट हुआ है, इसलिये अब इस खड्ग द्वारा तेरा भी वध करूँगा ॥२१॥ अरे अधम ! तू क्षण भर ठहर, मेरे पास से अब तू जीवित कदापि नहीं जा सकता । यह कहकर उस राक्षस ने निर्मल खड्ग को हाथ में ग्रहण किया ॥२२॥ और जिस प्रकार प्राचीन काल में इन्द्र-गरुड का तुमुल सग्राम हुआ था, उसी प्रकार इस राक्षस में और कबंध में युद्ध होने लगा ॥२३॥ फिर अत्यन्त क्रोध में भर कर उस राक्षस ने अग्नि के समान चमचमाते हुए उस खड्ग को वेग पूर्वक कबंध के ऊपर चलाया ॥२४॥ परन्तु, जिस प्रकार गरुड सर्प को चोंच में दबा लेता है, उसी प्रकार कबंध ने कूद कर खड्ग को चोंच में दबा लिया ॥२५॥ तथा उस खड्ग को पाँव के अग्रभाग से तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और अब उन दोनों में बाहु युद्ध होने लगा ॥२६॥

तत पक्षगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षस ॥
हस्तपादकरैरंगशिरसश्चवियोजित ॥२७॥
तस्मिन्निनिहतेसाक्षीखगराजनमस्कृतान् ॥
किंब्रूत्स्मेत्यालसन्त्रासप्रहारुधार्यमिवासिते ॥२८॥
तामाहाश्वगश्रेष्ठ स्वकगृह्यमनाद्रुत ॥
गत्वासनिष्कृतिभ्रातुर्विद्धूर्ध्वंपतनात् ॥२९॥
कन्यारस्यवसावेशमभ्रात्येच्छारूपधारिणी ॥
मेनकातनयामुष्य सौपर्णी रूपमाददे ॥३०॥
तस्यासजनयामासतार्क्षी नामसुतानदा ॥
मुनिशापाग्निविप्लुष्टाबपुमप्सरसावराम् ॥
तस्यानामतदाचक्रे तार्क्षीमिति बहुगम ॥३१॥
मन्दपालसुताश्चासञ्चत्वारोऽमिततेजस ॥
जग्मुस्तारिप्रभृतयोद्रोणान्तास्द्विजसत्तमा ॥३२॥
तेषाजघन्योधर्मात्मावेदवेदागपारग ॥
उपयेमेसतातार्क्षीकन्यकानुमतेशुभाम् ॥३३॥

फिर वह राक्षस कबर के द्वारा वक्षस्थल मे चोट मारे जाने से जर्जर होगया और उसकी नाडी, हाथ, पाव, मस्तक शरीर से अलग होगये ॥२७॥ उस राक्षस की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी भय से व्याकुल होकर कबर की शरण मे गई और बोली कि 'मै आपकी पत्नी होती हूँ'॥२८॥ पक्षिवर कबर राक्षस को मार कर भाई के शोक से निवृत्त होगये और मदनिका को साथ लेकर अपने घर पहुँचे ॥२९॥ वह राक्षसी मदनिका इच्छानुसार रूप बदलने वाली मेनका की पुत्री थी, वह कबर के घर मे पक्षिय रूप धारण कर रहने लगी ॥३०॥ दुर्वासा की शापाग्नि से पीडित वपु नाम की अप्सरा ने इसी के उदर मे जन्म पाया और कबर ने उसका नाम तार्क्षी रखा ॥३१॥ हे ब्रह्मन् ! मन्दपाल नामक एक ब्राह्मण था, उसके चार पुत्र थ, उसमे बडे का नाम जितारि और छोटे पुत्र का नाम द्रोण था,

वे सभी अत्यन्त मेधावी थे ॥३३॥ वेद वेदाङ्गों के तत्त्वज्ञाता द्रोण के साथ पक्षोंरूपी कक्षा की अनुमति से वह सर्वाङ्ग सुन्दरी ताक्षी विवाही गयी थी ॥३४॥

कस्यचित्त्वथ कालस्यतार्क्षीगर्भमवापह ॥
सप्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षेत्रंजगामसा ॥३४॥
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमानेसुदारुणे ॥
भावित्वाच्चैवकार्यस्यरथमभ्येविवेशसा ॥३५॥
तत्रापश्यतयुद्धं सासर्वेषांपृथिवीक्षिताम् ॥
शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमंयथादेवासुररणम् ॥३६॥
तत्रापश्यत्तदायुद्धं भगदत्तकिरीटिनो ॥
निरन्तरं शरैरासीदाकाशंशलभैरिव ॥३७॥
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तपाशमार्गनियेगवन् ॥
तस्याजघनमहिच्यामरुचच्छिद्रजाठरीम् ॥३८॥
भिन्नेकोष्ठेशराङ्काभभूमावण्डनतुण्डयम् ॥
आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥३९॥
तत्पातसमकालंचसुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ॥
पपातमहतीघण्टाबाणसञ्छिन्नबन्धना ॥४०॥

कुछ समय व्यतीत होने पर ताक्षी गर्भवती हुई, गर्भ धारण के दिन से सात बरस व्यतीत होने पर ताक्षी कुरुक्षेत्र गई ॥३४॥ उस समय वहाँ कौरव पाण्डवों का भीषण संग्राम चल रहा था, परन्तु भवितव्य को कोई नहीं मिटा सकता, इसीलिये ताक्षी उस संग्राम भूमि में पहुँच गई ॥३५॥

वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त और अर्जुन में घोर युद्ध होरहा है और उनके द्वारा निरन्तर छोड़े जाने वाले बाणों से व्योम टीड़ी दल के समान व्याप्त है ॥३६॥३७॥ पार्थ के धनुष से वेग पूर्वक निकलेहुए एक बाण ने ताक्षी के जठर की त्वचा बींध दी ॥३८॥ उसकी कोख विदीर्ण होने पर चन्द्रमा के समान शुभ्र अण्डे ऊपर से गिर कर भी आयु होने के कारण रुई के समान सुख पूर्वक पृथिवी में आ गिरे ॥३९॥ उसी समय भगदत्त के सुप्रतीक नामक हाथी के कण्ठ का घण्टा बाण से कट कर भूमि पर गिरा ॥४०॥

समसप्तान्तरप्राप्तावनिभिन्नधरणीतला ॥
छादयन्तोखमण्डानिस्वकानिविशितापरि ॥४१॥
हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तेनरेश्वरे ॥
बहून्यहान्यभूद्युद्ध कुरुपाण्डवसैन्यो ॥४२॥
द्यूतेयुद्धं धर्मपुत्रेगतेशान्तनवान्तिकम् ॥
भीष्मस्यगदतोऽशेषान्धर्मान्मोहान्मन ॥४३॥
घण्टागतानितिष्टन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ॥
अजगामतमुद्देशमोकोलासमयी ॥४४॥
सतत्रचव्दमशृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ॥
बाल्यादस्फुटवाक्यानाविज्ञानेऽपि परेसति ॥४५॥
अथर्षि शिष्यसहितोघण्टासूत्पाटयद्विस्मित ॥
अमातृपितृपक्षाणशिशुकानिददर्शह ॥४६॥

यद्यपि दोनो एक समय ही पृथ्वी पर गिरे थे, परन्तु वैवयक्त योनि पिण्ड के सब अण्डे जो चारो ओर ऊपर से ढकता हुआ वह घण्टा ढकने के समान होगया ॥४१॥ राजाओ मे श्रेष्ठ भगदत्त के वध होने पर भी कौरव पाण्डव सेनाओ मे बहुत समय तक युद्ध चलता रहा ॥४२॥ जब युद्ध समाप्त होगया, तब धर्मपुत्र युधिष्ठिर अनेक प्रकार के धर्म विषयक उपदेश सुनने के लिये शान्तनु पुत्र भीष्म के पास गये ॥४३॥

फिर नवम चित्त वाले विप्र श्रेष्ठ शमीक मुनि, जहा घटे से ढँके हुए पक्षी के बालक थे, वहाँ सहसा जा पहुचे ॥४४॥ और उन्होने घटे के भीतर उन बालको का 'चिचा कुची' शब्द सुना । यद्यपि बालको को बहुत ज्ञान होगया था, फिर भी वह बाल्यावस्था के कारण समझ मे न आने वाले शब्द ही बोल रहे थे ॥४५॥ फिर शिष्यो सहित उन ऋषि ने पक्षि बालको का शब्द सुनकर आश्चर्य सहित घटे को भूमि से उठाया तब उन्हे माता, पिता तथा पखो से रहित वे बालक दिखाई दिये ॥४६॥ उन शमीक मुनि ने पृथिवी पर उन बालको को यथावत् देखकर आश्चर्य सहित अपने साथी ब्राह्मणो से

तान्दितन्नतथाभूमौशमीकोभगवान्मुनि ।
दृष्ट्वासविस्मयाविष्ट प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ।।४७।।
सम्यगुक्त द्विजाग्र्येणशुक्रेणोशनसास्वयम् ।
पलायनपरदृष्ट्वादैत्यसैन्यमुराार्दितम् ।।४८।।
नगन्तव्यनिवर्तध्वकस्मादुद्भ्रजलकातरा ।।
उत्सृज्यशौर्य्यवशमीक्वगतानमरिष्यथ ।।४९।।
नश्यतोयुध्यतोवापिता बद्धुबतिर्जीवितम् ।
यावद्धातासृजत्पूर्वनयावन्मनसेप्सितम् ।।५०।।
एकेम्रियन्तेस्वगृहेपलायन्तोऽपरे जना ।
भुञ्जन्तोऽन्न तथैवाप पिबन्तोनिधनगता ।।५१।।
विलासिनस्तथैवायेकामयानानिरामया ।
अविक्षतागा शस्त्रैश्चप्रेतराजवशगता ।।५२।।
अन्येतपस्यभिरतानीता प्रेतनृपानुगै ।
योगाभ्यासेरताश्चान्येनैवप्रापुरमृत्युताम् ।।५३।।
शम्बरायपुराक्षिप्त वज्र कुलिशपाणिना ।
हृदयेऽभिहतस्तेनतथापिनमृतोसुर ।।५४।।
तेनैवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रेणदानवा ।
प्राप्ते कालेहतादैत्यास्तत्क्षणाच्चधनगता ।।५५।।
विदित्वैवंवनसत्रास कर्तव्योविनिवर्तत ।
ततो निवृत्तास्तेदैत्यास्त्यक्त्वाभरणजभयम् ।।५६।।

कहा ।।४६।। हे ब्राह्मणो ! पुराकाल में देवताओं द्वारा ताड़ित दैत्य सेना के इधर-उधर भागने पर द्विजोत्तम शुक्राचार्यजी ने उससे स्वयं ही कहा था ।।४७।। हे दैत्यो ! तुम मत भागो, रुको, इस प्रकार कातर होकर क्यों भागते हो ? शौर्य और यश को छोड़ कर कहां जाओगे ? क्या तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी ? जिस विधाता ने तुम्हें उत्पन्न किया है, उसकी जब तक इच्छा न हो, तब तक मत भागो, संग्राम करो, इससे तुम किसी भी प्रकार मृत्यु को प्राप्त न होगे ।।४८।। घर रहते हुए भी कोई मर जाता है, कोई भाग कर भी मर

है ॥५०॥ कोई काम का अनुगत होकर, कोई स्वस्थ रह कर, कोई दिव्य भोग विलास करता हुआ, कोई शस्त्र आदि से घायल न होने पर भी काल के कराल गाल मे जा पडता है ॥५१॥ कोई तपस्या मे रत रहता हुआ तथा कोई योगाभ्यास करता हुआ ही यमपुर को प्राप्त होगया, परन्तु अमर कोई भी नही हो सका ॥५२॥ पुराकाल मे वज्रपाणि इन्द्र ने शम्बर पर वज्र से आघात किया और हृदय विदीर्ण हो जाने पर भी वह असुर नही मर सका ॥५३॥ उसी इन्द्र ने उसी वज्र से सब असुरो पर आघात किया और उनका काल था, इसलिए वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए ॥५४॥ इसलिए यह सब जानकर भी तुम त्रास क्यो करते हो ? उससे निवृत्त होओ, तब सुन कर दैत्यो ने मृत्यु भय त्याग दिया और वे भागने से रुक गये ॥५५॥ हे ब्राह्मणो ! पक्षी के इन बालको ने शुक्राचार्यजी के वे वचन सत्य कर दिये । अहो, इस अद्भुत युद्ध मे भी इनके प्राण नही गये ॥५६॥

इतिशुक्रवच सत्यकृतमेभि खगोत्तमै ।
येयुद्धेऽपिनसप्राप्ता पञ्चत्वमतिमानुषे ॥५७॥
काण्डानापतनविप्रा ववघण्टापतनसमम् ।
क्वचमासबसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥५८॥
केऽत्येतेसर्वथाविप्रनैतेसामान्यपक्षिण ।
दैवानुकूलतालोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥५९॥
एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ।
निवर्तताश्रमयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ॥६०॥
मार्जारास्रुभयंयत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ।
श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यतातत्र पक्षिण ॥६१॥
द्विजा किवातियत्नेनमार्यन्तेकर्मभि स्वकै ।
रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैतेपक्षिबालका ॥६२॥
तथापियत्न कर्तव्योनरै सर्वेषुकर्मसु ।
कुर्वन्पुरुषकारतुवाच्यतायातिनोसताम् ॥६३॥
इतिमुनिवरचोदितास्ततस्तेमुनितनया परिगृह्यपक्षिण स्ताम् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसङ्घययुरथतापसरम्यमाश्रमस्वम् ॥६४॥

सचापिवन्यमनसाभिकामितप्रगृह्यमूलकुसुमफलकुशान् ।
चकारचक्राथुधरुद्रवेधसासुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥६५॥
अथापतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणो समीरणस्यापितथाद्विजोत्तम ।
धातुर्विधातुस्त्वथवैश्वदेविका श्रुतिप्रयुक्ताविविधास्तुसक्रिया ॥६६॥

कितने आश्चर्य का विषय है कि कहाँ तो नव अण्डों का पृथ्वी पर गिरना और उसी समय घटे का गिरना और कहाँ मांस, रक्त और वसा से पृथिवी का ढका जाना, यह सब परस्पर भिन्न होते हुए भी, एक ही समय में होगया ॥५७॥ हे ब्राह्मणो ! यह कौन है ? प्रतीत होता है कि सामान्य पक्षी तो नहीं है, क्योंकि दैव की अनुकूलता से भाग्य भी अनुकूल होता है ॥५८॥ इतना कह कर महर्षि शमीक उन्हें देख कर पुन कहने लगे—हे ब्राह्मणो ! निवृत्त होकर पक्षि-बालकों को ले लो और आश्रम में जाओ ॥५९॥ जहाँ बिल्ली, मूषक, नकुल, बाज आदि का भय न हो, इन पक्षि-शावकों को वहीं रखो ॥६०॥ हे ब्राह्मणो ! अधिक यत्न की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक जीव अपने कर्म से ही अवध्य और रक्षित होता है, यह बालक यहाँ किसके द्वारा रक्षित हुए थे ? ॥६१॥ फिर भी सब कार्यों में मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिए, यदि पुरुषार्थ न किया जाय तो साधु जनों के समक्ष निन्दनीय होना होता है ॥६२॥ महर्षि के वचन सुनकर मुनि-बालकों ने पक्षि के उन बच्चों को उठा लिया और वे वृक्ष-शाखों में गुंजारते हुए भ्रमरों से युक्त अपने रमणीय आश्रम को गये ॥६३॥ इधर महर्षि शमीक ने उनके फल, मूल, पुष्प और कुश लेकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, यम और अग्नि का पूजन किया। वरुण, बृहस्पति, कुबेर, पवन, धाता और विधाता का पूजन तथा वेदोक्त विधान से हवन आदि कर्म किये ॥६४–६६॥

प्रकरण ३—पक्षियों का शाप वृत्तान्त

अहन्यहनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तम ।
चकाराहारपयसातथागुप्त्याचपोषणम् ॥ १ ॥
मासमात्रेणजग्मुस्तेभानो. स्यन्दनवर्त्मनि ॥
कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्ट्वामुनिकुमारकै ॥ २ ॥
दृष्ट्वा महीसनगरासाम्भोनिधिसरिद्वराम् ।

रथचक्रप्रमाणातेपुनराश्रममागता ॥ ३ ॥
श्रमबलातातरात्मानोमहात्मानोवियोनिजा ।
ज्ञानंच प्रकटीभूत तत्रतेषाप्रभावत ॥ ४ ॥
ऋषे शिष्यानुकम्पार्थंवदतोधर्मनिश्चयम् ।
कृत्वाप्रदक्षिणसर्वेचरणावभ्यवादयन् ॥ ५ ॥
ऊचुश्चमरणाद्घोरान्मोक्षिता स्मस्त्वयामुने ।
आवासभक्ष्यपयसात्वनोदाताचितागुरु ॥ ६ ॥
गर्भस्थानामृतामाताचित्रानैवापिपालिता ।
त्वयानोजीवितदत्त शिशवोयेनरक्षिता ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! मुनिवर शमीक नित्यप्रति उन पक्षि शावकों को आहार देकर रक्षा एवं पोषण करने लगे ॥१॥ मुनि के द्वारा इस प्रकार पोषण को प्राप्त हुए, वे बालक एक मास के भीतर ही आकाश मार्ग में उडने लगे और कौतूहल से भर कर मुनि बालक उनको देखने लगे ॥२॥ वे तिर्यक् योनि से उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर, नगर आदि में रथ-चक्र के समान घूमते हुए पृथिवी को देखते और थकने पर आश्रम में लौट आते। तभी मुनि के ज्ञान प्रभाव वश उन्हें क्रमशः ज्ञान प्राप्त हुआ ॥३-४॥ एक समय अपने शिष्यों पर कृपा करके महर्षि शमीक धर्मोपदेश कर रहे थे, तभी उन पक्षियों ने प्रदक्षिणा करके मुनि-चरणों में प्रणाम किया ॥५॥ और कहने लगे—हे मुने ! आपने घोर मृत्यु के कष्ट से हमारी रक्षा की है, आपने ही हमको निवास, आहार, और दल प्रदान किया है, इसलिए आप ही हमारे पिता एवं गुरु है ॥६॥ हमारी माता की गर्भवास के समय ही देहान्त हो गया और पिता द्वारा भी हमारा पालन नहीं हो सका, आपने ही हमारी उस समय से अब तक रक्षा की है ॥७॥

क्षितावक्षततेजास्त्वकृमीणामिवशुष्यताम् ।
गजघटासमुत्पाट्यकृतवान्दु खरेचनम् ॥ ८ ॥
कथवर्द्धेगुरुबला खस्थान्द्रक्ष्यामयहंकदा ।
कदाभूमेर्दुमप्रानान्द्रक्ष्येवृक्षान्तरगताम् ॥ ९ ॥
कदामेसहजाकान्ति पासुनानाशमेष्यति ।

एषापक्षानिलोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ॥१०॥
इतिचिन्तयतातातभवताप्रतिपालिता ।
तेसाम्प्रतम्प्रवृद्धा स्म प्रबुद्धा करवामकिम् ॥११॥
इत्यृषिर्वचनतेषाश्रुत्वासस्कारवत्स्फुटम् ।
शिष्यैः परिवृत सर्वैः सहपुत्रेणशृङ्गिणा ॥१२॥
कौतूहलपरीभूत्वारोमाञ्चपटसवृत ।
उवाचतत्वतोब्रूतप्रवृत्ते कारणगिर ॥१३॥
कस्य शापादियम्प्राप्ताभवद्भिर्विक्रियापरा ।
रूपस्यवचसश्चैवतन्मेवक्तुमिहार्हथ ॥१४॥

हे अक्षय तेज वाले मुनिवर ! जब पृथिवी मे पडे हुए हम कृमि के समान सुख रहे थे, तभी आपने घडा उठा कर हमारा सकट दूर कर दिया ॥८॥ यह दुर्बल पक्षि शावक किस प्रकार बुद्धि को प्राप्त हो, कब पृथिवी से वृक्ष पर पहुँचे और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाँय तथा आकाश मे उडने लगें ॥९॥ तथा मेरे पास विचरण करते हुए कब उडेगे और कब इनके पख चलाने से निकली हुई वायु से उडी हुई धूलि द्वारा मेरी सहज कान्ति नष्ट होगी ॥१०॥ आपने इस प्रकार विचार करते हुए हमारा पालन किया है, अब हम बडे हो गए और आपकी कृपा से हमे ज्ञान भी प्राप्त होगया है, अब हम क्या करे, यह आज्ञा करिये ॥११॥ शिष्यो सहित महर्षि शमीक उनके इस प्रकार सस्कारमय वचन सुन कर अपने पुत्र शृङ्गी सहित अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुये ॥१२॥ और अत्यन्त कुतूहल से पुलकायमान शरीर होकर उन पक्षियो के प्रति बोले ॥१३॥ हमे सत्य बताओ कि तुमने ऐसे स्पष्ट वचनो का उच्चारण किस प्रकार किया है ? किस के शाप से तुम्हारे रूप और वाणी को ऐसी विक्रिया हुई है ॥१४॥

विपुलस्वानितिख्यात प्रागासीन्मुनिसत्तम ।
तस्यपुत्रद्वयजज्ञेसुकृषस्तु बुरुस्तथा ॥१५॥
सुकृष स्यवयपुत्राश्चत्वार सयतात्मन ।
तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्रा सदैवहि ॥१६॥

यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्योपपादितम् ॥१७॥
समित्पुष्पादिकसर्वमयच्चैवाभ्यहारिकम् ।
एवंतत्राथवसतांतस्यास्माकंचकानने ॥१८॥
आजगामम्हावर्ष्माभग्नपक्षोजरान्वित ।
आताम्रनेत्र स्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वर ॥१९॥
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ।
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवायच ॥२०॥
द्विजेन्द्रमाक्षुधाविष्टपरित्रातुमिहार्हसि ।
भक्षणार्थीमहाभागगतिर्भवममातुला ॥२१॥

पक्षियो ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! पुराकाल मे विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे, उनके सुकृष्ण और तुम्बरु नामक दो पुत्र हुए ॥१५॥ उन जितेन्द्रिय महात्मा सुकृष्ण के हम पुत्र है, हम सदा विनय, आचार, भक्ति और नम्रता पूर्वक ही उनके पास रहते थे ॥१६॥ जब वे संयतचित्त से तपस्या मे लगे रहते, तब हम उनकी स्वेच्छा के अनुसार वस्तु ला देते थे ॥१७॥ हम ही उनके लिये समिधा, पुष्प तथा भोजन की सम्पूर्ण सामग्री ले आते थे, इस प्रकार वह हमारे साथ वन मे रहते थे ॥१८॥ एक दिन देवराज इन्द्र एक विशालकाय पक्षी के रूप मे हमारे पास आये, उनके सभी पङ्ख टूटे हुए तथा नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और उनका आत्मा शिथिल हो रहा था ॥१९॥ वह उन सत्य, शौच, क्षमा और आचार युक्त मुनि से कोई बात पूछने लगे, हम समझते है कि वे हमारे प्रति पितृ-शाप होने के कारण ही वहाँ उनका आगमन हुआ था ॥२०॥ पक्षी ने कहा—हे द्विजेन्द्र ! मै क्षुधा से अत्यन्त आतुर एव नितान्त भक्षणार्थी हूँ, आप ही मेरी गति है अत मेरी रक्षा कीजिये ॥२१॥

विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेनवै ।
पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा ॥२२॥
सोहमोहसमाविष्टोभूमौसंप्राहमस्मृति. ।
स्थितस्तत्राष्टमेनाह्नाचेतनाप्रातवानहम् ॥२३॥
प्राप्तचेता क्षुधाविष्टोभवतशरणंगत ।

तत्कुरुष्वामलमतेमत्प्राणायाचला मतिम् ।
प्रयच्छभक्ष्यविप्रर्षेप्राणयात्राक्षमम मम ॥२५॥
यएवमुक्त प्रोवाचतमिन्द्र पक्षिरूपिणम् ।
प्राणसन्धारणार्थायद्दास्येभक्ष्यतवेप्सितम् ॥२६॥
इत्युक्त्वापुनरप्येनमप्रुच्छत्सद्विजोत्तम ।
आहार कस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ।
सचाहतरमासेनतृप्तिर्मेभवतिमेपरा ॥२७॥

हे महाभाग ! मैं विन्ध्याचल के शिखर चूडा मे रहता हूँ और पक्षिराज गरुड के पङ्खो की वायु के वेग से यहाँ गिर कर मूर्च्छित हो गया था ॥२२॥ उसी अवस्था मे पडे हुए मुझे एक सप्ताह होगया और आठवे दिन मूर्छा नष्ट होकर चैतन्यता प्राप्त हुई ॥२३॥ कुछ देर मे जब स्वस्थ हुआ, तब भूख से आतुर होकर आपकी शरण मे आगया । मेरा हृदय भूख से अत्यन्त कातर होने के कारण सम्पूर्ण आनन्द का हरण किये लेता है ॥२४॥ हे ब्रह्मर्षे ! मेरी रक्षा का प्रयत्न करिये, जिससे मेरी भूख मिट सके, ऐसा भोजन मुझे दीजिये ॥२५॥ पक्षी रूप धारी इन्द्र की ऐसी बात सुन कर उन महर्षि ने उनसे कहा—हे खग ! तुम अपने प्राण-धारण के लिए उपयोगी किस आहार को चाहते हो, मैं तुम्हारे भोजनार्थ किस द्रव्य को उपस्थित करूँ ? ॥२६॥ हे ब्रह्मन् ! इतना कह कर उन मुनि ने पुन कहा—कहो, क्या भोजन करोगे ? तुम्हारे लिए किस आहार को लाऊँ ? इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरी परम तृप्ति मनुष्य का माँस खाने से ही होगी ॥२७॥

कौमारतेव्यतिक्रातमतीतयौवनत्वते ।
वयस परिणामस्तेवर्ततेनूनमडज ॥२८॥
यस्मिन्नराणासर्वेषामज्ञेयेच्छानिवर्त्तते ।
सकस्माद्बृद्धभावेऽपिसुनृशसात्मकोभवान् ॥२९॥
क्वमानुषस्यपिशितक्वबयश्चरमतव ।
सर्वथादुष्टभावानाप्रथमोनोपपद्यते ॥३०॥
अथवाकिमयैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् ।

इत्युक्त्वातस्विप्रेन्द्रस्तथेतिकृतनिश्चय ।
शीघ्रमस्मान्समाहूयगुणतोऽनुप्रशस्यच ॥३२॥
उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यसुनिष्ठुरम् ।
विनयादनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृताजलीन् ॥३३॥
कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठऋणैर्युक्तामयासह ।
जातश्चेष्टमपत्यवोयूय ममयथाद्विजा ॥३४॥
गुरु पूज्योयदिमतोभवतापरम पिता ।
तत कुरुतमेवाक्यनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥३५॥

ऋषि ने कहा—तुम्हारी कौमारावस्था जाकर युवावस्था आई और वह भी व्यतीत होकर वृद्धावस्था आगई है ॥२८॥ जिनमे सभी वासनाएँ अशेष हो जाती है, फिर भी तुम वृद्धावस्था को प्राप्त होकर इतने तृशस क्यो हो ? ॥२९॥ मनुष्य मॉस के भक्षण और वृद्धावस्था दोनो मे बहुत अन्तर है, तो भी दुष्ट जीवो की दुराशा नही मिट पाती ॥३०॥ परन्तु मुझे इस सब की आलोचना क्यो करनी चाहिए ? अङ्गीकृत विषय का दान अवश्य करना चाहिए, ऐसा सोचना ही ठीक है ॥३१॥ उस पक्षी से इतना कह कर निश्चय को कार्य रूप देने वाले मुनि ने तुरन्त हमे बुलाकर हमारे गुणो की प्रशसा की ॥३२॥ तथा हमारे विनय और भक्ति पूर्वक हाथ जोड खडे होने पर अत्यन्त क्षोभ सहित हमारे पिता ने यह निष्ठुर वचन कहे ॥३३॥ तुम सब विद्वान् हो, ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे समान ही ऋण-मुक्त हो चुके हो, जैसे श्रेष्ठ तुम मेरे पुत्र हो, वैसे ही श्रेष्ठ पुत्र तुम्हारे हो चुके है ॥३४॥ मै तुम्हारा पिता हूँ, तुम यदि मुझे बडा और पूज्य मानते हो, तो कपट रहित हृदय से मेरे वचनो का पालन करो ॥३५॥

तद्वाक्यसमकालञ्चप्रोक्तमस्माभिराहतैं ।
यद्वक्ष्यतिभवास्तद्वै कृतमेवावधार्यताम् ॥३६॥
मासेषशरणप्राप्तोविहग क्षुत्तृषान्वित ।
युष्मन्मासेनयेचास्यक्षणतृप्तिर्भवेत्तवै ॥३७॥
तृष्णात्यजश्चरक्तेनतथाशीघ्र विधीयताम् ।
ततोवयप्रव्यथिता प्रकम्पोद्वृत्तसाध्वसा ।

कष्टकष्टमितिप्रोक्त्वनैतत्कर्मेतिचाब्रुवन् ॥३८॥
कथपरशरीरस्यहेतोर्देह स्वकबुध ।
विनाशयेद्दुष्टातवेद्वायथाह्यात्मातथासुत ॥३९॥
पितृदेवमनुष्याणायान्युक्तानिऋणानिवै ।
तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रद सुत ॥४०॥
तस्मान्नैतत्करिष्यामोनोचीर्णयत्पुरातनं ।
जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यकरोतिच ॥४१॥
मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्यु परतिस्तथा ।
आत्मानसर्वतोरक्ष्यमाहुर्धर्मविदोजना ॥४२॥

यह सुनकर हमनेभी आदर सहित कहा-आपकी जो आज्ञा होगी, उसका सपादन हमारे द्वारा हुआ ही समझिये ॥३६॥ तब उन्होने कहा—पुत्रो ! यह पक्षी भूख-प्यास से आतुर होकर यहाँ आया है, इस समय तुम्हारे मांस का आहार करके इसकी क्षुधा ॥३७॥ तथा रक्त पान द्वारा प्यास की निवृत्ति होगी, इसलिए शीघ्र ही ऐसा करो, यह सुन कर हम भय से काँप उठे और बोले कि यह अत्यन्त कष्टप्रद कार्य हमसे होना सभव नही है ॥३८॥ कौन-सा मनुष्य विद्वान् होकर परायें शरीर की पुष्टि के लिए अपने जीवन का नाश करेगा ? क्योकि आत्मा की भी सन्तान के समान रक्षा करनी उचित है ॥३९॥ शास्त्र मे जिस पितृ ऋण, देव ऋण और मनुष्य ऋण का आदेश है, उसी को सन्तान चुकाती है, परन्तु शरीर-दान नही किया जा सकता ॥४०॥ इसलिए यह कार्य हमारे द्वारा सभव नही है, पहिले भी कभी किसी के द्वारा ऐसा आचरण नही मिलता, जीवन है तो पुण्यादि के आचरण द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ॥४१॥ मर जाने पर शरीर नष्ट हो जाने से धर्माचरण आदि नष्ट हो जाते है, इसीलिये धर्मशाला पडितो ने आत्मा की सदा रक्षा करने का उपदेश दिया है ॥४२॥

इत्थश्रुत्वावचोऽस्माकमुनि क्रोधादिवज्वलन् ।
प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निर्दहन्निवलोचनै ॥४३॥
प्रतिज्ञातवचोमह्य यस्मान्नैतत्करिष्यथ ।

एवमुक्त्वातदामोस्मास्तं विहगममब्रवीत् ।
अन्त्येष्टिमात्मन कृत्वाशास्त्रतश्चौर्ध्वदैहिकम् ॥४५॥
भक्षयस्वसुविश्वस्तोममत्रद्विजसत्तम ।
आहारोकृतमेतत्ते मयादेहमिहात्मन ॥४६॥
एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वप्रचक्ष्यते ।
यावत्पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम् ॥४७॥
नयज्ञं दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यप्राप्यतेमहत् ।
कर्मणान्येनवाविप्रं यत्सत्यपरिपालनात् ॥४८॥

हमारे इन वचनो को सुन कर मुनि श्रेष्ठ क्रोधानल से दग्ध होने लगे और क्रोध से हुए लाल नेत्रो से जैसे हमको भस्म करना चाहते हो, देखते हुए पुन कहने लगे ॥४३॥ अरे दुर्वृत्तो ! मैंने इससे प्रतिज्ञा की है, और तुम मेरा वचन पालन नही कर रहे हो, इसलिए मेरे शाप से भस्म होकर तिर्यग् योनि को प्राप्त हो जाओगे ॥४४॥ हे द्विजोत्तम ! इतना कह कर ही उन्होने शास्त्र विधिसे अपनी ऊर्ध्वदैहिक अन्त्येष्टि क्रिया का सम्पादन किया और पक्षी से बोले ॥४५॥ हे पक्षी ! तुम विश्वस्त चित्त से मेरा भक्षण करो, मैने अपना ही शरीर तुम्हारे आहार के निमित्त दिया ॥४६॥ हे खग श्रेष्ठ ! जब तक ब्राह्मण अपने सत्य के पालन मे दृढ है, तभी तक वह ब्राह्मण कहलाता है ॥४७॥ जितना पुण्य सत्य के प्रतिपालन मे होता है, उतना दक्षिणा वाले यज्ञ के अनुष्ठान से अथवा किसी अन्य कर्म के द्वारा भी नही होता ॥४८॥

इत्यृषेर्वचनश्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिर्भर ।
प्रत्युवाचमुनिश्रेष्ठं पक्षिरूपधरस्तदा ॥४९॥
योगमास्थायविप्रेन्द्रत्यजेदस्वकलेवरम् ॥
जीवञ्जतु हिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन ॥५०॥
तस्यतद्वचनश्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनि ।
ततस्यनिश्चयज्ञात्वाशक्रोऽप्याहस्वदेहभृत् ॥५१॥
भोभोविप्रेन्द्रयुष्मस्वबुद्धयाबोधंबुधात्मक ।
जिज्ञासार्थमयाऽयत्तेऽपराध.कृतोऽनघ ॥५२॥

पालनात्सत्यवाक्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि ॥५३॥
अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ।
तपस्यथनथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति ॥५४॥
इत्युक्त्वातुगतेशक्रेपिताकोपसमन्वित ।
प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनि ॥५५॥

ऋषिवर के यह वचन सुन कर उन खग रूपी इन्द्र ने अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा ॥४९॥ हे ब्रह्मन् ! आप पहिले योग के अवलम्बन से अपने शरीर का त्याग कर दें, तब मैं आपके मांस को खाऊँगा, क्योंकि जीवित प्राणी के मांस का मैंने कभी आहार नहीं किया ॥५०॥ पक्षी की यह बात सुन कर मुनि ने योग का अवलम्बन किया और उनको अपने सकल्प मे दृढ देख कर इन्द्र ने अपना देह धारण करके कहा ॥५१॥ हे पक्षियो मे अग्रणी ब्रह्मर्षे ! ज्ञातव्य विषय को बुद्धि से जानिये, हे पाप-रहित ! आपको भले प्रकार जानने के लिए ही मैंने आपके प्रति यह अपराध किया है ॥५२॥ हे स्वच्छ-चित्त ! मुझे क्षमा कीजिये, आपको जो अभिलाषा हो वह मेरे प्रति कहिए, सत्य वचन के प्रतिपालनार्थ आपके प्रति मुझको अत्यन्त प्रीति हुई है ॥५३॥ अब आपको ऐन्द्रज्ञान की उत्पत्ति होगी और तपस्या के आचरण मे कभी भी विघ्न उपस्थित न होगा ॥५४॥ देवराज इन्द्र के इस प्रकार कह कर वहाँ से चले जाने पर हमने उन क्रोधयुक्त महामुनि, अपने पिता-श्री के चरणों मे प्रणाम करके कहा ॥५५॥

विभ्यतामरणात्तातत्वमस्माकमहामते ।
क्षन्तुमर्हसिदीनानांजीवितप्रियताहिन. ॥५६॥
त्वगस्थिमाससंघातेपूयशोणितपूरिते ।
कर्त्तव्यानरतिर्यत्रतत्रास्माकमियरति ॥५७॥
श्रूयतांचमहाभागयथालोकोविमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषैरवश प्रबलारिभि ॥५८॥
प्रज्ञाप्राकारसयुक्तमस्थिस्थूणंपरमहत् ।
चर्मभित्तिमहारोधमासशोणितलेपनम् ॥५९॥

नृपश्चापुरुषस्तत्रचेतनावानवस्थित ॥६०॥
मन्त्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चैवविरोधिनौ ।
यतेतेवैरनाशायतावुभाविवरेतरम् ॥६१॥
नृपस्यतस्यचत्वारोनाशमिच्छन्तिनित्यशः ।
काम क्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपु ॥६२॥
यदातुसनृपस्तानिद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति ।
सदानुस्थवलश्चैवनिरातङ्कश्चजायते ॥६३॥

हे पिता, हे महामुने ! मृत्यु के भय से अत्यन्त डर कर हमने अपने जीवन के प्रति मोह करके ऐसा कहा था, इसलिए हमको क्षमा कर दीजिए ॥५६॥ यह शरीर, हड्डी, मॉस, त्वचा, रक्त आदि से भरा हुआ है, इसके प्रति किंचित् भी मोह न करे, परन्तु उसी शरीर के प्रति हमारा मोह बढ़ा हुआ है ॥५७॥ हे महाभाग ! प्रबल शत्रु रूप काम क्रोधादि दोषों के द्वारा ही सब लोक मोहित हुए सुने जाते हैं ॥५८॥ हे पिता ! प्रज्ञा रूप प्राचीरों वाली इस देह-नगरी का अस्थि ही स्तम्भ है, जो चर्म रूप भित्ति से रुद्ध और रक्त मॉस रूप कीचड से लिप्त रही है ॥५९॥ उसे नस चारों ओर से घेरे हुये है, उसके नौ बड़े द्वार है और चैतन्य रूपी पुरुष उसमें राज्य करता है ॥६०॥ उस राजा के दो मन्त्री मन बुद्धि रूपी है, परन्तु वे परस्पर विरोधी होने के कारण एक दूसरे के विनाश के लिए सदा प्रयत्नशील रहते है ॥६१॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह नामक चार शत्रु उस राजा को नष्ट करने की चेष्टा में लगे रहते हैं ॥६२॥ जब वह राजा सभी द्वारों को रोक कर स्थित होता है, तब वह अत्यन्त स्वस्थ और आतङ्क रहित होता है ॥६३॥

जातानुरागोभवतिशत्रुभिर्नोभिभूयते ॥६४॥
यदातुसर्वद्वाराणिविवृतानिसमुत्सृजति ।
रागोनामतदाशत्रुर्नैर्ऋादिद्वारमुच्छ्रति ॥६५॥
सर्वव्यापीमहायाम पञ्चद्वारप्रवेशन ।
तस्यानुमार्गविशतितद्वै घोररिपुत्रयम् ॥६६॥
प्रविश्याथसवैतत्रद्वारैरिन्द्रियसज्ञकै ।
राग सक्लेशमायातिमत्तसाचसहेतरै ॥६७॥

इन्द्रियाणिमनश्चैववशेकृत्वादुरासद ।
द्वाराणिचवशेकृत्वाप्राकारनाशयत्यथ ॥६८॥
मनस्तस्याश्रितदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ।
अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झितस्तथा ॥६९॥
रिपुभिर्लब्धविवर क्षतपीनाशमृच्छति ।
एवरागस्तथामोहोलोभ क्रोधस्तथैवच ॥७०॥
प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशका ।
रागात्क्रोध प्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥७१॥

तथा उस समय उसके प्रीतिनाद होने के कारण उसके शत्रु उसे अभिभूत करने मे समर्थ नही होते ॥६४॥ वह जब सभी द्वारो को खोल कर अवस्थान करता है, तब नेत्रादि सब द्वारो पर अनुराग नामक शत्रु आक्रमण कर देता है ॥६५॥ यह अत्यन्त बलवान् शत्रु सर्वत्र व्यापी है, जब यह अनुराग रूप शत्रु चक्षु आदि द्वारो मे प्रविष्ट होता है, तब उसके पीछे-पीछे लोभ, मोह और क्रोध रूप तीनो शत्रु दौड पडते है ॥६६॥ अनुराग रूप वह शत्रु इन्द्रियादि सब द्वारो से पुरी मे प्रवेश करके मन और बुद्धि से सगति करने की इच्छा करता है ॥६७॥ वह इन्द्रियो को और मन को अपने वश मे करके बुद्धि रूपी परकोटे को तोड डालता है ॥६८॥ मन को उसके आश्रित हुआ देख कर बुद्धि भी तत्काल नाश को प्राप्त होती है, इस प्रकार मन्त्रियो और प्रजावर्ग से हीन हुआ ॥६९॥ वह राजा शत्रुओ के आक्रमण से विवर होने के कारण नष्ट हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह रूप ॥७०॥ दुरात्मा उस पुरी मे वास करने लगते है । उस समय मनुष्य की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, अनुराग से क्रोध और क्रोध से लोभ की उत्पत्ति होती है ॥७१॥

लोभाद्भवतिसम्मोह सम्मोहात्स्मृतिविभ्रम ।
स्मृतिभ्र शाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥७२॥
एवप्रणष्टबुद्धीनारागलोभानुवर्तिनाम् ।
जीवितेचसलोभानाप्रसादकुरुसत्तम ॥७३॥
योऽयशापोभगवतादत्त सनभवेत्तथा ।
नतामसीगतिकष्टाव्रजेत्समुनिसत्तम ॥७४॥

यन्मयोक्तन तन्मिथ्या भविष्यतिकदाचन ।।
नमेवागनृतप्राह्यावदद्यं तिपुत्रका ।।७५।।
दैवमात्रपरमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ।
अकार्यकारितोयेनबलादहमचिन्तितम् ।।७६।।
यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रसादित ।।
तस्मात्तिर्य्यक्त्वमापन्ना परज्ञानमवाप्स्यथ ।।७७।।
ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषा ।
मतप्रसादादसन्दिग्धा परांसिद्धिमवाप्स्यथ ।।७८।।

लोभ से मोह उत्पन्न होता और मोह स्मृति को नष्ट कर देता है, स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि नष्ट होती और बुद्धि नष्ट हो जाती है तो मृत्यु हो जाती है ।।७२।। राग और लोभ के वश मे पड कर ही हमारी बुद्धि नष्ट हो गयी, इसलिए जीवन के प्रति इतना मोह हममे है, अत आप प्रसन्न हों ।।७३।। आपका दिया हुआ शाप हम पर फलित न हो, हम पर प्रसन्न होकर ऐसा ही करे, जिससे हमको यह कष्ट देने वाली गति न मिलेगी ।।७४।। ऋषि ने कहा— हे पुत्रो ! मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होगा, मेरे मुख से कभी भी कोई मिथ्या वचन नही निकला ।।७५।। अनर्थक पौरुष को धिक्कार है, मै समझता हूँ कि दैव बलवान् है, उसी ने मुझे इस प्रकार के अकार्य मे प्रवृत्त किया है ।।७६।। तुमने जिस प्रकार प्रणामादि से मुझे प्रसन्न किया है, उससे तिर्यक् योनि मे उत्पन्न होकर भी अत्यन्त ज्ञानी होगे ।।७७।। मेरे अनुग्रह से ज्ञान के द्वारा तुम सन्मार्ग को देखते हुये अपने पापो को नष्ट करते हुए असदिग्ध चित्त के द्वारा प्रधान सिद्धि को पा सकोगे ।।७८।।

एवंशप्ता स्मभगवन्निन्द्रादैवबलात्पुरा ।
तत कालेनमहतायोन्यन्तरमुपागता ।।७९।।
जाताश्चरणमध्येवैभवतापरिपालिता ।
वयंमित्थद्विजश्रेष्ठखगत्वसमुपागता ।।८०।।
नास्त्यसाविहससारेयोनिर्दिष्टेनवाध्यते ।
सर्व्वेषामेवजन्तूनादैवाधीन हिचेष्टितम् ।।८१।।
इतितेषावचश्रुत्वाशमीकोभगवान्मुनि ।

प्रत्युवाचमहाभाग समीपस्थायिनोद्विजान् ॥८२॥
पूर्वमेवमयाप्रोक्तं भवतासन्निधाविदम् ।
सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येतेद्विजसत्तमा ।
येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ता पञ्चत्वमतिमानुषे ॥८३॥
तत प्रीतिमतातेनतेऽनुज्ञातामहात्मना ।
जग्मु शिखरिणाश्रेष्ठविंध्यद्रुमलतायुतम् ॥८४॥
यावदद्यस्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिण ।
तप स्वाध्यायनिरता समाधौकृतनिश्चया ॥८५॥
इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेता ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे ॥८६॥

हे भगवन् ! पुराकाल मे दैववश हमारे पिता ने हमको इस प्रकार शाप दिया था तथा कुछ समय व्यतीत होने पर हमने पक्षि-योनि मे जन्म लिया ॥७६॥ हे द्विजोत्तम ! हमारा जन्म रणभूमि मे हुआ, आपने यहाँ लाकर हमारा पालन किया और अब हम आकाश मार्ग मे विचरण करने योग्य हो गए है, ॥८०॥ हे मुने ! विश्व मे ऐसा जीव कोई भी नही है, जो प्रारब्ध के वश मे न हो, प्राणियो की जितनी भी चेष्टाएँ है, वह सब दैवाधीन ही है ॥८१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—पक्षियो की यह बात सुन कर षड्गुण सम्पन्न महर्षि वर शमीक ने अपने पास बैठे हुए ब्राह्मणो से कहा ॥८२॥ हे ब्राह्मण ! मै पहिले ही कह चुका हूँ कि जब वह युद्ध भूमि मे भी मृत्यु मुख मे नही जा सके, तो यह सामान्य पक्षी नही, अवश्य ही कोई ब्राह्मण पुत्र है ॥८३॥ फिर वह पक्षी प्रसन्न हुये महर्षि शमीक की आज्ञा पाकर वृक्ष-लता आदि से परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वत को चले गये ॥८४॥ वह धर्मखग उस पर्वत मे रहते हुए वेदपाठ मे निरत रहकर समाधि मे रहने के लिए तत्पर हुये ॥८५॥ शमीक मुनि ने समस्त क्रिया का उपदेश ग्रहण करके, उनकी आज्ञा से वह खग रूपी मुनि कुमार उस अत्यन्त स्वच्छ जल मे परिपूर्ण गिरि-शिखर पर आनन्द सहित रहने लगे ॥८६॥

प्रकरण—४—भगवान् का चतुर्व्यूहावतार

एकतेद्रोणतनया पक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् ।
वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच ॥१॥

इत्यृषेर्वचनश्रुत्वामार्कण्डेयस्यजैमिनि ।
जगामविन्ध्यशिखरंयत्रतेध्वर्मपक्षिण ॥२॥
तत्रगासन्नभूतश्चशुश्रावपठताध्वनिम् ।
श्रुत्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनि ॥३॥
स्थानसौष्ठवसम्पन्नजितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोपंचपठ्यतेद्विजसत्तमै ॥४॥
वियोनिमपिसंप्राप्तालेतान्मुनिकुमारकान् ।
चित्रमेतदहमन्येनजहातिसरस्वती ॥५॥
बन्धुवर्गस्तथासिक्षयच्चेष्टमपरगृहे ।
त्यक्त्वागच्छतितत्सर्वनजहातिसरस्वती ॥६॥
इतिसचिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् ।
प्रविश्यचददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने ! वह सब ज्ञानवान् पक्षी इस प्रकार द्रोणपुत्र हुये और अब वह विध्याचल मे निवास करते है, तुम उनकी उपासना करके प्रसन्न करो ॥१॥ मुनिवर मार्कण्डेय के वचन सुनकर महर्षि जैमिनि उस धर्मपक्षियो के निवास स्थान विध्य पर्वत को चले ॥२॥ विध्य पर्वत के समीप पहुँचते ही उनको पक्षियो द्वारा वेदपाठ करने का शब्द सुनाई पडा, तब वे अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक विचार करने लगे ॥३॥ अहो, कैसा आश्चर्य है कि विहगगण पक्षी होकर भी स्थान की श्रेष्ठता से श्वास को जीत कर दोष-रहित, विश्राम रहित एव स्पष्ट रूप वेदपाठ करते है ॥४॥ इन बालको को तिर्यक् योनि प्राप्त होने पर सरस्वती ने उनको नही छोडा, यह आश्चर्य की बात है ॥५॥ इससे प्रतीत होता है कि बन्धु, मित्र या घर की सभी इच्छित वस्तुएँ त्याग कर चली जाती है, परन्तु सरस्वती कभी भी त्याग नही करती ॥६॥ ऐसा विचार करते करते मुनिवर जैमिनी पर्वत की कन्दरा मे घुसे और उन्होंने वहाँ देखा कि वे ब्राह्मण पाषाण-शिला पर विराजमान है ॥७॥

पठतस्तान्समालोक्यमुखदोषविवर्जितान् ।
सोऽथशोकेनहर्षेणसवलिवाक्यमाषत ॥८॥
स्वस्त्यस्तुवोद्विज श्रेष्ठाजैमिनिमांनिबोधत ।

व्यासशिष्यमनुप्राप्तभवनादर्शनोत्सुकम् ॥९॥
मन्युर्नखलुकर्तव्योयत्पित्राऽतीवमन्युना ।
शप्ता खगत्वमापन्ना सर्वथादिष्टमेवतत् ॥१०॥
स्फीतद्रव्येकुलेकेचिज्जाता किलमनस्विन ।
द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशवरेणसुसान्त्विता ॥११॥
दत्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ।
पातयित्वाच्चपाश्यन्तेतएवतपस क्षयात् ॥१२॥
एतद्दृष्टसुबहुशोविपरीततथामया ।
भावाभावसमुच्छ्वेदैरजस्र व्याकुलजगत् ॥१३॥
इतिसञ्चिन्त्यमनसानशोक कर्तुमर्हथ ।
ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४॥

उन सब दोषों से रहित पक्षियों को वेदपाठ करते देख कर हर्ष-शोक मिश्रित कहा ॥८॥ हे श्रेष्ठ द्विजो ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं व्यास शिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शन की इच्छा से इस स्थान में उपस्थित हुआ हूँ ॥९॥ तुम्हें अत्यन्त कुपित पिता के शाप वश पक्षि रूप ग्रहण करना पड़ा, परन्तु इसके प्रति शोक न करना चाहिए क्योंकि यह सब प्रारब्ध का ही परिणाम है ॥१०॥ धन, सम्मान आदि युक्त ऐश्वर्य सम्पन्न उत्तम वंश में कोई महात्मा जन्म लेता है, और द्रव्यादि के नष्ट होने पर भीलों के द्वारा उसी को सान्त्वना प्राप्त होती है ॥११॥ कोई दानी भी भिखारी हो जाता है, कोई हत्या करके भी अवध्य रहता है, कोई दूसरे की मृत्यु से रक्षा करके भी दूसरों के द्वारा मारा जाता है, तप के क्षीण होने पर ऐसी ही घटनाएँ होती रहती हैं ॥१२॥ मैं अनेक बार ऐसी घटनाएँ देख चुका हूँ, इस प्रकार भाव और अभाव की परम्परा से सम्पूर्ण विश्व निरन्तर व्याकुल है ॥१३॥ ऐसा विचार कर शोक रहित करो, क्योंकि हर्ष या शोक से अभिभूत न होना ही तप का फल है ॥१४॥

ततस्तेजैमिनिसर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ।
अनामयञ्चपप्रच्छु प्रणिपत्यमहामुनिम् ॥१५॥
अथोचु खगमा सर्वेव्यासशिष्यंतपोनिधिम् ।
सुखोपविष्ट विश्रान्तपक्षानिलहृतक्लमम् ॥१६॥

अद्यन सफलजन्मजीवित चसुजीवितम् ।
यत्पश्याम सुरैर्वन्द्यतवपादाम्बुजद्वयम् ॥१७॥
पितृकोपाग्निरुद्भूतोयोनोदेहेषुवर्त्तते ।
सोद्यशान्तिगतोद्विप्रयुष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८॥
कच्चित्ते कुशलन्नह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषु ।
वृक्षेष्वथलतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥१९॥
अथवानैतदुक्त हिसम्यगस्माभिरादृतं ।
भवतासंगमोयेषातेषामकुशलकुत ॥२०॥
प्रसादन्नकुरुष्वात्रब्रूह्यागमनकारणम् ।
देवानामिवससर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ।
केनास्मद्भाग्यगुरुणाआनीतोदृष्टिगोचरम् ॥२१॥

इसके पश्चात् उन धर्मपक्षियो ने पाद्यार्घ्य आदि से महामुनि का पूजन किया तथा प्रणाम के पश्चात् कुशल-प्रश्न किया ॥१५॥ उनके पङ्खो की हवा से व्यास शिष्य जैमिनि का श्रम दूर हुआ और वे सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षिगण उनसे बोले ॥१६॥ पक्षियो ने कहा—हे महाभाग ! हमारा जन्म और जीवन अब सफल हो गया है, क्योकि देवताओ द्वारा पूजित आपके चरणारविंदो का हमे दर्शन प्राप्त हुआ है ॥१७॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पिता की जो क्रोधाग्नि हमारे शरीरो मे अत्यन्त प्रबल रूप से रहती है, वह आपके दर्शन रूप जल से शान्त होगई है ॥१८॥ हे विप्र ! आपके आश्रम के मृग, पक्षिवृन्द, वृक्ष, लतादि सब कुशल पूर्वक तो है ॥१९॥ अथवा हमारा यह प्रश्न ही उचित नही है, क्योकि आपके समीप निवास करने वालो के लिए अमङ्गल ही कहा ? ॥२०॥ अब आप यहाँ किसलिये पधारे है, यह हमको कृपा पूर्वक बताइये, आपका आगमन और देवताओ का ससर्ग यह समान ही है, यह समझ मे नही आता कि भाग्य की किस प्रबलता से आपका दर्शन प्राप्त हो सका है ॥२१॥

श्रुतद्विजशार्दूला कारणयेनकन्दरम् ।
विन्ध्यस्येहागतोरम्यंरेवावारिकणोक्षितम् ।
सन्देहान्भारतेशास्त्रे तान्प्रष्टु गतवानहम् ॥२२॥
मार्कण्डेयमहात्मानपूर्वभृगुकुलोद्वहम् ।

तमहंपृष्टवान्प्राप्यसन्देहान्भारतप्रति ॥२३॥
सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले ।
द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥२४॥
तद्वाक्यचोदितश्चेमामागतोऽहमहागिरिम् ।
तच्छृणुध्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥२५॥
विषयेसतिवक्ष्यामोनिर्विशङ्कं शृणुध्वतत् ।
कथतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥२६॥
चतुर्ष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रेषुचैवहि ।
समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥२७॥
एतेषुगोचरोऽस्माकबुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ।
प्रतिज्ञातुसमाबोद्धुंतथापिनहिशक्तुम ॥२८॥

जैमिनि ने कहा—रेवा नदी जलकणों द्वारा नीचे हुए इस विन्ध्य पर्वत की मनोहर कन्दरा मे, मै जिन लिए उपस्थित हुआ हूँ, वह सुनो ! हे विप्रगण ! महाभारत शास्त्र मे अनेक सदेह होने के कारण उनके समाधानार्थ ॥२२॥ मै महात्मा मार्कण्डेयजी के पास गया था और उनसे महाभारत के प्रति सदेह-प्रश्न किये थे ॥२३॥ उन्होंने कहा कि विन्ध्य पर्वत मे महात्मा द्रोण के पुत्र रहते है, वहाँ जाकर उनसे ही यह बात पूछो, इन प्रश्नो का सविस्तार वर्णन वही करेंगे ॥२४॥ उन्ही के आदेश से मै इस महापर्वत मे उपस्थित हुआ हूँ, मेरे उन प्रश्नो को भले प्रकार सुनकर उनकी व्याख्या करदो ॥२५॥ पक्षी बोले—यदि कहने योग्य होगा तो अवश्य कहेंगे, आप शका रहित चित्त से कहे, जो हमारी बुद्धि मे आयेगा, उसे क्यो न बतावेंगे ? ॥२६॥ चारो वेद, सभी धर्मशास्त्र, वेदाङ्ग अथवा अन्य कोई भी वेद सम्मत शास्त्र ॥२७॥ यद्यपि हमारी बुद्धि के लिए गोचर है, फिर भी हम इसकी प्रतिज्ञा नही करेंगे ॥२८॥

तस्माद्वदस्वविश्रब्धसन्दिग्धंयद्भिभारते ।
वक्ष्यामस्तवधर्मज्ञनचेन्मोहोभविष्यति ॥२९॥
सन्दिग्धानीहवस्तूनिभारतप्रतियानिमे ।
शृणुध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥३०॥
कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दन ।

वासुदेवोऽखिलाधार सर्वकारणकारणम् ॥३१॥
कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेका साद्रुपदात्मजा ।
पञ्चानामहिषीकृष्णासुमहानत्रसंशय ॥३२॥
भेषजब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबल ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुध ॥३३॥
कथंचद्रौपदेयास्तेऽक्षतदारामहारथा ।
पाण्डुनाथामहात्मानोवध्यमापुरनाथवत् ॥३४॥
एतत्सर्वकथ्यतामेसन्दिग्धंभारत प्रति ।
कृतार्थोऽहंसुखंयेनगच्छेयंनिजमाश्रमम् ॥३५॥

इसलिए आपको महाभारत के प्रति जो शङ्का है, उसे व्यक्त कीजिए, हे धर्मज्ञ ! यदि मोह न हुआ तो उसे आपके प्रति अवश्य ही कहेंगे ॥२९॥ जैमिनि ने कहा—हे स्वच्छ चित्त खगगण ! महाभारत के जिन स्थलों में मुझे सदेह हुआ है, उन्हे सुनो और व्याख्या करो ॥३०॥ मेरी शका है कि सम्पूर्ण कारणों के कारण और समस्त ब्रह्माण्ड के आधार जनार्दन वासुदेव गुण-रहित होकर भी मनुष्य किस कारण हुए ॥३१॥ तथा द्रुपद की एक ही कन्या पाँच पाण्डवों की महिषी किस प्रकार हुई, यह अत्यन्त सशय है ॥३२॥ महाबली बलरामजी तीर्थयात्रा के प्रसग में ब्रह्महत्या के पाप से किस प्रकार मुक्त हुए थे ? ॥३३॥ तथा युधिष्ठिर आदि पाँचो पाण्डव द्वारा रक्षित द्रौपदी के अविवाहित पुत्र अनाथ के समान मृत्यु को किस प्रकार प्राप्त हुए थे ॥३४॥ इन सब विषयो के प्रति मुझे अत्यन्त सदेह है, इन सदेहो का अपने उत्तर से समाधान करके मुझे कृतार्थ करो तो मैं सुख पूर्वक अपने आश्रम को लौट सकूँगा ॥३५॥

नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे ।
पुरुषायाप्रमेयायशाश्वतायाव्ययायच ॥३६॥
चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायागुणायच ।
वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायामृतायच ॥३७॥
यस्मादणुतरनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम् ।
येनविश्वमिदंव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८॥

आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ।
वदन्तियत्सृष्टमिदन्तथैवान्तेचसंहृतम् ॥३६॥
ब्रह्मणेचादिदेवायनमस्कृत्यसमाधिना ।
ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यं पुनातिजगत्त्रयम् ॥४०॥
प्रणिपत्यतयैशानमेकबाणविनिर्जितैः ।
यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ॥४१॥
प्रवक्ष्यामोभृतकृत्स्नव्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्या प्रकटीकृता ॥४२॥

पक्षियो ने कहा—जो देवताओ के अधीश्वर, सर्वव्यापी, अत्यन्त प्रभाव शाली, आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत एव अव्यय स्वरूप है ॥३६॥ तथा जो वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप है, जो त्रिगुण अथवा निर्गुण है, जो उत्तम, वरिष्ठ, वरेण्य एव अमृत है ॥३७॥ जो यज्ञाङ्ग तथा चराचर विश्वात्मक है, वेदान्त शास्त्र मे जिनके स्वरूप का सक्षिप्त वर्णन हुआ है, सम्पूर्ण ससार मे जिनके समान सूक्ष्मतर या बृहत्तर नही है, सम्पूर्ण जगत् जिससे व्याप्त है, जो जगत् के आदि तथा अजन्मा है ॥३८॥ जिन भगवान् विष्णु के द्वारा आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन, अदर्शन आदि सभी कार्य सम्पन्न होते है, और जो उनसे अतीत, सृष्टिकर्त्ता और सहारकर्त्ता कहलाते है ॥३९॥ जो आदिदेव है तथा अपने चारो मुखो से चारो वेद प्रकट करके त्रैलोक्य को पवित्र करते है, उन ब्रह्माजी को ध्यान पूर्वक नमस्कार है ॥४०॥ जिनके एक बाण से ही सम्पूर्ण असुर परास्त होकर याज्ञिको के यज्ञ को नष्ट करने मे असमर्थ होते है, उन देवाधिदेव महादेव के चरणारविन्दो मे प्रणाम करके ॥४१॥ अद्भुत कर्म युक्त महर्षि बादरायण द्वारा महाभारत रूप से प्रकट हुए धर्मादि को महर्षि व्यास के मतानुसार सम्पूर्ण विषय आपको कहेगे ॥४२॥

आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अयनतस्यता पूर्वंतेननारायणः स्मृतः ॥४३॥
सदेवोभगवान्सर्वव्याप्यनारायणोविभुः ।
चतुर्धासंस्थितोब्रह्मन्सगुणोनिर्गुणस्तथा ॥४४॥
एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लाकृष्णेतिताबुधाः ।

ज्वालामालोपरुद्धाङ्गी निःश्वासायोगिनापरा ॥४५॥
दूरस्थाचान्तिकस्थाचविज्ञेयासागुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेनदृश्यते ॥४६॥
रूपवर्णादियस्तस्यानभावा कल्पनामय ।
अस्त्येवसासदाशुद्धासुप्रतिष्ठैकरूपिणी ॥४७॥
द्वितीयापृथिवीमूर्ध्नाशेषाब्धाधारयत्यध ।
तामसीसासमाख्याताितिर्यक्त्वसमुदाश्रिता ॥४८॥
तृतीयाकर्मकुरुतेप्रजापालनतत्परा ।
सत्वोद्रिक्तातुसाज्ञेयाधर्मसस्थानकारिणी ॥४९॥
चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नगतल्पगा ।
रजस्तस्यागुण सर्गसाकरोतिसदैवहि ॥५०॥

तत्त्वदर्शी मुनियो ने कहा—'नार' का अर्थ जल है, वह जल ही जिसका एक मात्र 'अयन' अर्थात् गृह है, इसलिए वे नारायण कहे जाते है ॥४३॥ हे भगवन् ! अनन्त लीलामय भगवान् नारायण सगुण तथा निर्गुण दोनो प्रकार से चार मूर्ति से अवस्थित है ॥४४॥ उनकी जो एक मूर्ति वाणी से परे है उसे ज्ञानीजन शुक्लवर्ण कहते है, जो योगियो का एक मात्र आश्रय है तथा चन्द्र सूर्य आदि सम्पूर्ण तेजोमय पदार्थ स्वरूप ज्वालमाला से जिसके सब अङ्ग आच्छादित है ॥४५॥ जो नित्य मूर्ति तीनो गुणो का अतिक्रम करके दूर तथा समीप स्थित रहती है उस प्रधान मूर्ति का नाम वासुदेव है, इसमे ममता किंचित् भी नही है ॥४६॥ उसके रूप, वर्ण आदि कल्पनात्मक है, वह सर्व काल मे विराजमान, एक रूप तथा परम पवित्र है ॥४७॥ जो मूर्ति पाताल मे निवास करके पृथिवी को अपने मस्तक पर धारण करती है, उस दूसरी मूर्ति को सकर्षण कहते है, तामसी होने के कारण यह मूर्ति तिर्यग् योनि वाली है ॥४८॥ नारायण के जिस मूर्ति से सभी कर्म भले प्रकार से साध्य होते है और प्रजापालन आदि सब कार्य सम्पादन होते है तथा जो धर्म की रक्षा करने वाली सत्वगुणी मूर्ति है, उसे प्रद्युम्न कहते है ॥४९॥ चौथी मूर्ति जल मे पन्नगशय्या पर शयन करती है, वह रजोगुणी है, उसी के द्वारा सृष्टिकार्य

यातृतीयाहरेर्मूर्ति प्रजापालनतत्परा ।
सातुधर्मव्यवस्थानकरोतिनियतभुवि ॥५१॥
प्रोद्भूतानसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिण ।
पातिदेवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ॥५२॥
यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानसृजत्यसौ ॥५३॥
भूत्वापुरावराहेणतुण्डेनापोनिरस्यच ।
एकयादंष्ट्रयोत्खात्याननलिन्दीववसु धरा ॥५४॥
कृत्वानृसिंहरूपचहिरण्यकशिपुर्हत ।
विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवाविनिपातिता ॥५५॥
वामनादीस्तथैवान्यान्नसख्यातुमिहोत्सहे ।
अवताराश्चतस्येहमाथुर साम्प्रतत्वयम् ॥५६॥
इतिसासात्विकीमूर्तिरवतारान्करोतिवै ।
प्रद्युम्नेतिचसाख्याताररक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥५७॥
देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसस्थिता ।
गृह्णातितत्स्वभावत्वासुदेवेच्छयासदा ॥५८॥
इत्येतत्तेसमाख्यातकृतकृत्योऽपियत्प्रभु ।
मानुषत्वगतोविष्णु श्रृणुष्वास्योत्तरपुन ॥५९॥

प्रजा का पालन करने वाली तीसरी मूर्ति के द्वारा ही पृथिवी मे सदैव धर्म सस्थापन कार्य होता है ॥५१॥ धर्म को नष्ट करने वाले असुरगण उसी मूर्ति के द्वारा नाश को प्राप्त होते है तथा उसी के द्वारा धर्म रत साधुओ की रक्षा होती है ॥५२॥ हे जैमिने ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब यह मूर्ति धर्म के अभ्युत्थानार्थ प्रकट होती है ॥५३॥ प्राचीन समय मे इसी मूर्ति ने वराह रूप धारण करके दाँतो के अग्र भाग से जल को हटा कर केवल दाढो से पृथिवी को निकाला और पहिले के समान स्थिर किया ॥५४॥ उसी ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का सहार किया और उसी ने विप्रचित्ति इत्यादि दैत्यो को मारा ॥५५॥ उसके वामनादि अन्यान्य बहुत से अवतार हुए जिनकी गणना नही कर सकते, इस समय वह

मूर्ति श्रीकृष्ण के रूप में उत्पन्न हुई है ॥५६॥ इस प्रकार उस सतोगुणी मूर्ति के उद्भूत होने पर उसकी रक्षा प्रद्युम्न मूर्ति करती है ॥५७॥ वह देवत्व, मनुष्यत्व अथवा तिर्यक् आदि योनियों में अवस्थान कर वासुदेव की इच्छानुसार उसके स्वभाव का अवलम्बन करती है ॥५८॥ आपके प्रति हमने यह सब कहा, अब भगवान् विष्णु ने मनुष्य शरीर जिस लिए धारण किया, उसे कहते हैं ॥५९॥

॥ इति ॥

५—द्रौपदी के पाँच पति

त्वष्टुपुत्रेहतेपूर्वंब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजस ।
ब्रह्महत्याभिभूतस्यपराहानिरजायत ॥१॥
तद्धर्मप्रविवेशाथशक्रतेजोऽपचारत ।
निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मेतेजसिनिर्गते ॥२॥
तत पुत्रहतश्रुत्वत्वष्टाक्रुद्ध प्रजापति ।
अवलुच्यजटामेकामिदवचनमब्रवीत् ॥३॥
अद्यपश्यन्तुमेवीर्यंत्रयोलोका सदेवता ।
सचपदन्यतुदुर्बुद्धिर्न ह्यहापाकशासन ॥४॥
स्वकर्माभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातित ।
इत्युक्त्वाकोपरक्ताक्षोजटामग्नौजुहावताम् ॥५॥
ततोवृत समुत्तस्थौज्वालामालीमहासुर ।
महाकायोमहादष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभ ॥६॥
इन्द्रशत्रुरमेयात्मात्वष्टृतेजोपबृ हित ।
अहन्यहनिसोऽवर्द्धदिषुपातमहाबल ॥७॥

पक्षियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! प्रजापति त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तप कर रहा था, उसके तप से डर कर इन्द्र ने उसे मार डाला, उसके मारने से ब्रह्महत्या से उत्पन्न पातक से इन्द्र का तेज नष्ट होगया ॥१॥ अधर्म का आचरण करने से इन्द्र के तेज ने धर्म में प्रवेश किया और इस कारण इन्द्र निस्तेज होगये ॥२॥ त्रिशिरा की मृत्यु का वृत्तान्त सुनकर त्वष्टा अत्यन्त

क्रोधित हुए और उन्होंने अपने मस्तक की एक जटा उखाड़ कर कहा ॥३॥ देवगण सहित स्वर्ग और पाताल में निवास करने वाले सभी लोग इस समय मेरे तेज को देखें तथा मेरे पुत्र का हत्यारा दुर्बुद्धि वाला इन्द्र भी मेरे विक्रम को देखे ॥४॥ जिसने अपने कर्म में लगे हुए मेरे पुत्र का वध किया है, यह कह कर उन्होंने रक्त नेत्र किये हुए क्रोध पूर्वक उस जटा को अग्नि में होम दिया ॥५॥ तब तत्काल ज्वालमाला युक्त विशालकाय, विशाल दाढ़ों से युक्त, अंजनपिण्ड जैसा रूप धारण किये वृत्र नामक एक घोर असुर अग्नि से प्रकट हुआ ॥६॥ त्वष्टा के तेज से उत्पन्न हुआ वह शत्रुकारि वृत्र, धनुष से छूटे हुए बाण की ऊँचाई के समान नित्य वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥७॥

वधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रंशक्रोमहासुरम् ।
प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुर ॥८॥
सख्यचक्रुस्ततस्तस्यवृत्रेणासमयास्तथा ।
ऋषय प्रीतमनस सर्वभूतहितेरता ॥९॥
समयस्थितिमुल्लङ्घ्ययदाशक्रेणघातित ।
वृत्रोहत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्यत ॥१०॥
तच्छक्रदेहविभ्रष्ट बलमारुतमाविशत् ।
सर्वव्यापिनमव्यक्त बलस्यैवाधिदैवतम् ॥११॥
अहल्याचयदाशक्रोगौतमरूपमास्थित. ।
धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदारूपमहीयत ॥१२॥
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्ययदतीवमनोरमम् ।
विहायदुष्ट देवेन्द्र मात्वत्यावगमत्तत ॥१३॥
धर्मेणतेजसात्यक्त बलहीनमरूपिणम् ।
ज्ञात्वासुरेशदैतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥१४॥

अपने वध के लिए उस घोर असुर वृत्र को उत्पन्न हुआ देख कर इन्द्र भय से अत्यन्त आतुर हुए और उन्होंने उससे सधि करने के उद्देश्य से मरीच्यादि से सप्त ऋषियों को उसके पास भेजा ॥८॥ सब जीवों की कल्याण-कामना वाले सप्त ऋषियों ने इन्द्र और वृत्रासुर के मध्य परस्पर प्रतिज्ञा करा के, मित्रता करायी ॥९॥ प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लंघन करके जब वृत्रासुर

इन्द्र के द्वारा वध को प्राप्त हुआ, तब उसी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप के कारण इन्द्र का बल नष्ट हो गया ॥१०॥ वह बल इन्द्र के देह से निकल कर बल के एक मात्र अधिदेव सर्व व्यापी एव अव्यक्त पवन देवता मे प्रविष्ट होगया ॥११॥ और जब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहिल्या से सगति की, तब भी उसका स्वरूप श्री हीन होगया ॥१२॥ उस समय उस दुरात्मा इन्द्र के अङ्ग प्रत्यङ्ग का सम्पूर्ण लावण्य उसका त्याग करके दोनो अश्विनी कुमारो मे प्रवेश कर गया ॥१३॥ उस समय इन्द्र को धर्म और तेज के द्वारा त्यागा हुआ तथा बल और रूप से भी हीन समझ कर दैत्यो ने उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया ॥१४॥

राजामुद्रिक्तवीर्याणादेवेन्द्रविजिगीषव ।
कुलेष्वतिबलादैत्याअजायन्तमहामुने ॥१५॥
कस्यचित्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ।
जगाममेरुशिखरसदोयत्रदिवौकसाम् ॥१६॥
तेषासाकथयामासभूरिभारावपीडिता ।
तनुजात्मजदैत्योत्थ खेदकारणमात्मन ॥१७॥
एतैभवद्भिरसुरानिहता पृथुलौजस ।
तेसर्वेमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभृताम् ॥१८॥
अक्षौहिण्योहिबहुलास्तद्भारार्त्तात्रिजाम्यक्ष ।
तथाकुरुध्वमिदशायथाशातिर्भवेन्मम ॥१९॥
तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेरुर्दिवोमहीम् ।
प्रजानामुपकारार्थभूभारहरणायच ॥२०॥

हे महामुने ! महान् बल वाले दैत्यो ने इन्द्र पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से बल, वीर्य और मद युक्त राजाओ के वश मे जन्म लिया ॥१५॥ फिर कुछ समय व्यतीत होने पर दैत्यो के भार से पृथिवी बोझिल हो गई और वह सुमेरु पर्वत मे देवताओ की सभा मे पहुँची ॥१६॥ और वह अत्यन्त बोझ की पीडा वाली देवी वसुन्धरा दैत्य-दानवो के कारण होने वाले अपने दु ख का सम्पूर्ण कारण वहाँ कहने लगी ॥१७॥ हे देवगण ! तुमने जिन अत्यन्त बली असुरो का सहार किया था, उन्होने अब मर्त्यलोक के राजवश

मे जन्म धारण किया है ॥१८॥ वे दैत्य असख्य अक्षौहिणी सख्यक है, इसलिए उनके भार से अत्यन्त पीडित हुई मै नीचे की ओर झुकी जा रही हूँ, हे देवगण ! मुझे जिस प्रकार शान्ति मिल सके, वही करो ॥१९॥ पक्षियो ने कहा— हे मुनिवर ! इसके पश्चात् प्रजा के उपकार और पृथिवी के भार हरणार्थ देवताओं ने अपने-अपने तेजांश से भू मडल पर जन्म लिया ॥२०॥

यदिन्द्रदेहजन्तेजस्तन्मुमोचस्वयंधृष ।
कुन्त्याजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिर ॥२१॥
बलमुमोचपवनस्ततोभीमोव्यजायत ।
शक्रवीर्यार्धतश्चैवजज्ञेपार्थोधनंजय ॥२२॥
उत्पन्नौयमलौमाद्र्याशक्ररूपौमहाद्युती ।
पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्ण शतक्रतु ॥२३॥
तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनात् ॥२४॥
शक्रस्यैकस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यकस्यचित् ।
योगीश्वरा शरीराणिकुर्वतिबहुलान्यपि ॥२५॥
पचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितंतव ।
श्रूयतांबलदेवोऽपियथायात सरस्वतीम् ॥२६॥

तब इन्द्र के शरीर से उत्पन्न उस तेज को स्वय धर्म ने कुन्ती के गर्भ मे स्थापित किया, उसी से अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिर की उत्पत्ति हुई ॥२१॥ और देवताओं से श्रेष्ट वायु ने इन्द्र के जिस तेज को कुन्ती के गर्भ मे स्थापित किया उससे भीमसेन और इन्द्र के आधे बल से कुन्ती के गर्भ से ही पार्थ अर्जुन उत्पन्न हुए ॥२२॥ इन्द्र के लावण्य को धारण करने वाले दोनो अश्विनी कुमारो ने माद्री मे गर्भ धारण कर दो (यमल) कुमारो को उत्पन्न किया, इस प्रकार इन्द्र ही इन पाँच रूपो मे प्रकट हुए ॥२३॥ तथा उन्ही इन्द्र की भार्या शची यज्ञभाग एव याज्ञ सेना रूप से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुई ॥२४॥ इससे निश्चय हुआ कि द्रौपदी केवल एक इन्द्र की ही महिषी थी क्योकि महात्मा एव योगीश्वर अपने देह के अनेक विभाग करने मे समर्थ है ॥२५॥ जसे वह द्रौपदी पाँच व्यक्तियो की एक ही पत्नी हुई वह कारण बता दिया अब बलदेवजी जिस प्रकार सरस्वती मे पहुँचे, वह श्रवण करो ॥२६॥

६—बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या

राम पार्थेपराप्रीतिज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ।
चिन्तयामासबहुधाकिंकृतसुकृतभवेत् ॥१॥
कृष्णेनहिविनाहयास्येदुर्योधनान्तिकम् ।
पाण्डवान्वासमाश्रित्यकथदुर्योधननृपम् ॥२॥
जामातरंतथाशिष्यघातयिष्येनरेश्वरम् ।
तस्मान्नपार्थंयास्यामिनापिदुर्योधननृपम् ॥३॥
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मानमात्मना ।
कुरूणांपाण्डवानांचयावदन्तायकल्पते ॥४॥
इत्थामन्त्र्यहृषीकेशपार्थंदुर्योधनावपि ।
जगामद्वारकांपौरि स्वसैन्यपरिवारित ॥५॥
गत्वाद्वारवतीरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
स्वागन्तव्येषुतीर्थेषुपपौपानहलायुध ॥६॥
पीतपानोजगामाथरेवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्तेगृहीत्वासमदारेवतीमप्सरोपमाम् ॥७॥

पक्षियों ने कहा—अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रीति देख कर बलरामजी क्या करने से मगल होगा, इस विषय पर अनेक प्रकार विचार करने लगे ॥१॥ श्री कृष्ण को साथ लिए बिना ही मै एकाकी दुर्योधन के पास नही जाऊँगा, इस पाण्डवो का पक्ष लेकर ॥२॥ अपने ही जामाता और शिष्य राजा दुर्योधन का किस प्रकार वध करूँ ? अतएव मै राजा दुर्योधन और अर्जुन दोनो मे से किसी के पास नही जाऊँगा ॥३॥ इसलिए कौरव-पाँडवो का जब तक नाश न हो जाय तब तक इकला ही तीर्थ-यात्रा करता हुआ अपने आत्मा को पवित्र करूँ ॥४॥ ऐसा निश्चय करके बलरामजी ने हृषीकेश, अर्जुन और दुर्योधन को आमन्त्रण करते हुए अपनी सेना से घिरे हुए, द्वारका को प्रस्थान किया ॥५॥ जब वे हृष्ट-पुष्ट मनुष्यो वाली द्वारका नगरी मे पहुँचे तब तीर्थ यात्रा का विचार करते हुए उन्होने ताड़ी का रस पान किया ॥६॥ रस पीने के उपरान्त अप्सरा के समान गर्विता रेवतीजी का कर ग्रहण

करते हुए अनेक वैभवों से युक्त रैवत उद्यान में पहुँचे ॥७॥

स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोयथौमत्त पदास्खलन् ।
ददर्शचवनंवीरारमणीयमनुत्तमम् ॥८॥
सर्वर्तु फलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ।
पुण्यपद्मवनोपेतसल्वलमहावनम् ॥९॥
सशृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् ।
श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥१०॥
सर्वर्तु फलभाराढ्यान्सर्वर्तु कुसुमोज्ज्वलान् ।
अपश्यत्पादपांस्तत्रविहगैरनुनादितान् ॥११॥
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ।
आबिल्वकास्तथाजीरान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥१२॥
पनसाल्लकुचान्मोचान्नीपाञ्श्रातिमनोहरान् ।
पारावतांश्चकङ्कोलान्नलिनाम्लवेतसान् ॥१३॥
भल्लातकानामलकाल्लिन्दुकाञ्श्रमहाफलान् ।
इङ्गुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥१४॥
एतान्न्याञ्चसस्तरुन्ददर्शयदुनन्दन ।
तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥१५॥

मद्यपान से उन्मत्त होने के कारण स्त्रियों से घिरे रह कर क्रीडा रत होने पर उनके पाँव लड़खड़ाने लगे, फिर स्वस्थ होकर उन्होंने उस अत्यन्त रमणीय रैवत वन को देखा ॥८॥ वह समस्त ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फलों, पुष्पों से सुशोभित, बंदरों से व्याप्त, कमल वन से सम्पन्न तथा छोटे सरोवर और महावन से सम्पन्न था ॥९॥ रेवतीजी के साथ उस वन में प्रविष्ट होकर बलरामजी आह्लाद उत्पन्न करने वाले तथा कानों को सुख देने वाले विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों का मधुर कूजन सुनने लगे ॥१०॥ वहाँ वृक्षों में सब ऋतुओं के फल लगे है, उन वृक्षों पर प्रसन्न पक्षी चहचहा रहे है तथा सभी ऋतुओं के पुष्प प्रफुल्लित हो रहे है और सभी वृक्षों के फल शोभा दे रहे है ॥११॥ आम, अम्रातक, नारियल, तिन्दु, बेल, अजीर, अनार, निम्बु ॥१२॥ कटहल, बडहल, मोचरस, कदम्ब, पारावत, ककोल, नलिनि, अम्ल-

वेत ॥१३॥ भिलावा, तिल, तेंदू, हिंगोट, करौंदा, हरड, बहेडा ॥१४॥ वहाँ इन सब वृक्षो को बलरामजी ने देखा तथा अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलश्री ॥१५॥

चम्पकान्सप्तपर्णाश्चकर्णिकारान्समालतीन् ।
पारिजातान्कोविदारान्दारान्च्चवदरांस्तथा ॥१६॥
पाटलान्पुष्पितान्नम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ।
सालास्तालास्तमालाश्चकियुकान्बजुलान्वराम् ॥१७॥
चक्रोरैः पातपत्रैश्चभृंगराजैस्तथाशुकैः ।
कोकिलैः कलविंकैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः ॥१८॥
प्रियपुत्रैश्चातकैश्चतथान्यैर्विविधैः खगैः
श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाभ्यधिष्ठितम् ॥१९॥
स्मरासिक्तमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानिच ।
कुमुदैः पुण्डरीकैश्चतथानीलोत्पलैः शुभैः ॥२०॥
कह्लारैः कमलैश्चापिआचितानिसमन्ततः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथैवजलकुक्कुटैः ॥२१॥
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः क्रौंमैर्मद्गुभिरेवच ।
एभिश्चान्यैश्चकीर्णानिसमन्ताज्जलचारिभिः ॥२२॥

चम्पा, कनेर, सप्तपर्ण, पारिजात, मालती, कोविदार, मन्दार, बेर ॥१६॥ पाटल, देवदार, सुबुआ, ताल, तमाल, पलाश और बजुल आदि उत्तमोत्तम फल-पुष्पो से सम्पन्न वृक्षो से वह वन सुशोभित है ॥१७॥ उन वृक्षो पर चकोर, जालपत्र, भृङ्गराज, शुक, सारिका, कोकिला, हरैल, जीवजीवक ॥१८॥ प्रियपुत्र तथा चातक आदि विभिन्न प्रकार के पक्षी, सुनने मे मनोहर शब्द करते हुए, इन सब वृक्षो की शाखाओ के आश्रय मे निवास करते है ॥१९॥ उस रैवतक वन मे स्वच्छ जल वाले सरोवर सुशोभित है, जिन्हे देखते ही चित्त प्रसन्न होता है, कुमुद, पुण्डरीक, नीलपद्म ॥२०॥ कह्लार और कमल आदि पुष्पो से सर्वत्र शोभायमान तथा कलहस, चकवा और जल कुक्कुट ॥२१॥ प्लव, हस तथा कारण्डव आदि जलचर आदि के सहित अत्यन्त सुशोभित है ॥२२॥

क्रमेणोत्थवनश्रीरिर्वीक्ष्यमाणोमनोरमम् ॥
जगामानु गत स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥२३॥
ददर्शद्विजास्तत्रवेदवेदागपारगान् ॥
कौशिकान्भार्गवाश्चैत्रभरद्वाजान्सगौतमान् ॥२४॥
विविधेषुचसम्भूतान्वशेषुद्विजसत्तमान् ॥
कथाश्रवणवद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सुच ॥२५॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेषुकुशेचषुचबृसीषुच ॥
सूतचतेषामध्यस्थकथयानकथा शुभा. ॥२६॥
पौराणिकी सुरर्षीणामाद्यानाचरिताश्रया ॥
दृष्ट्वारामद्विजा सर्वेमधुपानारुणेक्षणम् ॥२७॥
मत्तोऽयमितिमन्वाना समुत्तस्थुस्त्वरान्विता ॥
पूजयन्तोहलधरमृतेतसूतवशजम् ॥२८॥

उस वन को देखते हुए बलराम जी स्त्रियो के सहित एक अत्यन्त श्रेष्ठ लतागृह मे पहुचे ॥ २३ ॥ वहाँ उन्होने देखा कि अनेको वेदवेदाङ्ग ज्ञाता ब्राह्मण, कुशिक वशी, भृगुवशी, तथा भारद्वाज और गौतम के वशधर ॥ २४ ॥ तथा अन्यान्य वशो के पवित्र ब्राह्मण और श्रेष्ठ मनुष्य बैठे हुए कथा श्रवण कर रहे है ॥ २५ ॥ कोई मृगचर्म पर, वस्त्र पर, कोई कुशाओ पर और कोई घास पर ही बैठे है तथा उनके मध्य मे पुराण की कथा कहने वाले सूतजी कल्याणमयी कथा कह रहे है ॥ २६ ॥ उस कथा मे देवताओ और ऋषिओ का वर्णन था । उसी समय उन ब्राह्मणो ने मदिरा के मद से लाल हुए नेत्रो वाले बलराम जी को देखा ॥ २७ ॥ सब मुनियो ने उन्हे मदोन्मत्त देखा उस समय सूतजी के अतिरिक्त अन्य सभी ने उठ कर अत्यन्त आदर पूर्वक बलराम जी का पूजन किया ॥ २८ ॥

तत क्रोधसमाविष्टोहलीसूत महाबलः ॥
निजधानवृथोत्ताक्ष क्षोभिताशेषदानव ॥२९॥
अध्यास्यतिपदब्राह्म तस्मिन्सूतोनिपातिते ॥
निष्क्रान्तास्ते द्विजा सर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बरा ॥३०॥
अबधूततथात्मानमन्यमानोहलायुध ॥

चिन्तयामास सुमहन्मयापापमिदं कृतम् ॥३१॥
ब्राह्मे स्थानगतो ह्येष यत्सूतोविनिपातितः ॥
तथाह्येमेद्विजा सर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गता ॥३२॥
शरीरस्यचमेगन्धोलोहस्येवासुखावहः ॥
आत्मानंचावगच्छामिब्रह्म घ्नमिवकुत्सितम् ॥३३॥
धिगमर्षंतथामह्यमतिमानमभीरुताम् ॥
यैराविष्टेनसुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥३४॥
तत्क्षयार्थंचरिष्यामिव्रतद्वादशवार्षिकम् ।
स्वकर्मख्यापनकुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५॥
अथयेयंसमारब्धातीर्थयात्रामयाधुना ।
एतामेवप्रयास्यामिप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥३६॥
अतोजगामरामोऽसौप्रतिलोमांसरस्वतीम् ।
तत्र परंशृणुष्वेमंपाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७॥

फिर दानवों के हन्ता महान् पराक्रमी बलरामजी ने सूतजी के द्वारा अपना तिरस्कार हुआ समझ कर अत्यन्त क्रोध से लाल नेत्र कर सूतजी को मार डाला ॥ २९ ॥ पुराणवेत्ता सूतजी के मर-कर स्वर्ग में पहुँच जाने पर मृगछालाओं पर बैठे हुए सभी ब्राह्मण वहाँ से उठकर चले गए ॥ ३० ॥ तब जिन बलरामजी को देह पर मद प्रतीत हो रहा था, वह चिन्ता और पश्चात्ताप करने लगे कि मैं ऐसा घोर पाप क्यों कर बैठा ? ॥ ३१ ॥ मैंने जिन सूतजी को मारा, वह ब्रह्मस्थान को प्राप्त हुए और सभी ब्राह्मण मुझे देखते ही चले जाते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे देह से असुरत्व प्रदर्शित करने वाली लौह तुल्य गंध निकल रही है और आत्मा भी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप से कलुषित प्रतीत होती है ॥ ३३ ॥ अरे अमर्ष ! तुझे धिक्कार है, अरे मद्य ! तुझे भी धिक्कार है, अत्यन्त सम्मान और साहस को भी धिक्कार है, क्योंकि इन्हीं के वशीभूत होकर मैं ऐसा घोर पातक कर बैठा ॥ ३४ ॥ अब इस ब्रह्महत्या से उत्पन्न महा पातक को दूर करने के लिए बारह वर्ष तक व्रत करता हुआ अपने पाप को सर्वत्र विख्यात करके इसका प्रायश्चित्त करूँगा ॥ ३५ ॥ अथवा जिस तीर्थ यात्रा का जो उद्यम मैं कर रहा हूँ, उसी यात्रा में प्रतिलोमा सरस्वती

मे जाऊँगा ।। ३६ ।। हे मनु ! ऐसा कह कर यदुकुल धुरन्धर बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वती को जाकर प्राप्त हुए, अब तुम्हारे प्रति पाण्डव पुत्रों का वृत्तान्त कहते हैं, उसे श्रवण करो ।। ३७ ।।

७—द्रौपदी के पांच पुत्रों की मृत्यु

हरिश्चन्द्रे तिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगेपुरा ।
धर्मात्मापृथिवीपाल प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तम ।।१।।
नदुर्भिक्ष नचव्याधिर्नकालमरणंनृणाम् ।
नाधर्मरुचय पौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे ।।२।।
नभूवुर्नतथोन्मत्ताधनबीर्यतपोमदै ।
नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवना ।।३।।
सकदाचिन्महाबाहुरथैऽनुसरन्मृगम् ।
शुश्रावशब्दमशक्तत्रायस्वेतिचयोषिताम् ।।४।।
सविहायमृगराजामाभैषीरित्यभाषत ।
मयिशासतिदुर्मेधा कोऽयमन्यायवृत्तिमान् ।।५।।
तत्क्रन्दितानुसारिचसर्वारम्भविघातकृत् ।
एतस्मिन्नन्तरेरौद्रोविघ्नराट्समचिन्तयत् ।।६।।
विश्वामित्रोऽयमतुलतपआस्थायवीर्यवान् ।
प्रागसिद्धाभवादीनाविद्या साध्यतिव्रती ।।७।।

धर्मात्मा पक्षियो ने कहा—हे जैमिनि ! पुराकाल मे, त्रेता मे हरिश्चन्द्र नाम के एक धार्मिक नरेश हुए, वह अत्यन्त कीर्ति से युक्त, पृथ्वी का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष थे ।। १ ।। उनके शासन-काल मे दुर्भिक्ष नही पडा और प्रजा को रोग, अकाल मृत्यु का फल तथा अधर्म-फल नहीं भोगना पडता था ।। २ ।। उनकी प्रजा भी धन, बल या धर्म के मद से उन्मत्त नही होती थी, स्त्रियाँ भी यौवनावस्था प्राप्त किये बिना सन्तानवती नही होती थी ।। ३ ।। एक समय की बात है वह आखेट के लिए वन मे गए, उसी समय उन्होने अनेक स्त्रियो के कठ से 'रक्षा करो, रक्षा करो' का शब्द सुना ।। ४ ।। तब राजा मृगया छोड कर 'डरो मत' कहते हुए बोले कि मेरे शासनकाल मे कौन दुर्बुद्धि अन्याय का आचरण करता है ? ।। ५ ।। यह कह कर उन्होने

उस करुण स्वर का अनुसरण किया, उसी समय सब कार्यों को नष्ट करने वाला भयंकर विघ्नराज सोचने लगा ।। ६ ।। इस वन मे जिन साधनों को पहिले कोई नही साध्य सका उन्हे भवादि सम्पूर्ण विद्याओ का साधन व्रतालम्बन एव घोर तप द्वारा महामुनि विश्वमित्रजी कर रहे है ।। ७ ।।

साध्यमाना क्षमामौनचित्तसयमिनाऽमुना ।
तावद्भयार्त्ता क्रन्दन्तिकथकार्यमिदमया ।।८।।
तेजस्वीकौशिकश्रेष्ठोवयमस्यसुदुर्बला ।
क्रोशन्त्येतास्तथाभीतादुष्प्रारप्रतिभातिमे ।।९।।
अथवायनृप प्राप्तोमाभैरितिवदन्मुहु ।
इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम् ।।१०।।
इतिसचिन्त्यरौद्रेणविघ्नराजेनवैतत ।
तेनाविष्टोनृप कोपादिदवचनमब्रवीत् ।।११।।
कोऽयबलेनातिबलान्तेपापकपापकृत्तर ।
बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यावुपस्थिते ।।१२।।
सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरै ।
शरैर्विभिन्नसर्वागोदीर्घनिद्राप्रवेक्ष्यति ।।१३।।
विश्वामित्रस्तत क्रुद्ध श्रुत्वातन्नृपतेर्वच ।
क्रुद्धेचर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्या क्षणेनता ।।१४।।

क्षमा, मौन और चित्त के सयम द्वारा वे मुनिवर जिन विद्याओ के साधन मे अहर्निश श्रद्धा से रत है, वे विद्याएँ अत्यन्त भयभीत हो नारी रूप मे 'रक्षा करो' कहती हुई रोती है, अब मुझे क्या कर्त्तव्य है ? ।। ८ ।। क्योकि विश्वामित्रजी अत्यन्त तेजस्वी है और मै इनके समक्ष अत्यन्त दुर्बल हूँ और यह विद्याएँ भी भय से रुदन कर रही है, इस प्रकार अत्यन्त कठिन वार्त्ता उपस्थित है ।। ९ ।। अथवा मुझे किसी प्रकार चिन्तित नही होना चाहिए, क्योकि राजा हरिश्चन्द्र 'डरो मत' कहता हुआ आ पहुँचा है, इसलिए इस राजा के देह मे घुस कर ही अपनी इच्छा पूर्ण करता हूँ ।। १० ।। उस समय भयकर विघ्नराज ने इस प्रकार विचार कर राजा के देह मे प्रवेश किया, तब राजा ने और भी क्रोध पूर्वक कहा ।। ११ ।। यह कौन पापी,

वस्त्र में अग्नि को बाँध रहा है ? जब मैं साक्षात् बल रूप, अत्यन्त तेजस्वी भूपति हरिश्चन्द्र यहां आ गया हूँ ।। १२ ।। इस समय कौन मूर्ख धनुष से छूट कर दिशाओं में प्रकाश करने वाले मेरे बाणों से छिद कर योग निद्रा को प्राप्त होगा ।। १३ ।। तब राजा हरिश्चन्द्र के यह अहंकारमय वचन सुन कर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी क्रोधित हो उठे और उनके क्रोध करते ही सब विद्या नष्ट हो गई ।। १४ ।।

सचापिराजातदृष्ट्वाविश्वामित्रतपोनिधिम् ।
भीत प्रावेपतात्यर्थसहसाश्वत्थपर्णवत् ।।१५।।
सदुरात्मन्निति यदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत् ।
तत सराजाविनयात्प्रणि पत्याभ्यभाषत ।।१६।।
भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराद्धोममप्रभो ।
नक्रोद्धु मर्हसिमुनेनिजधर्मरतस्यमे ।।१७।।
दातव्यक्ष तव्यचधर्मज्ञेनमहीक्षिता ।
चापचोद्यमयोद्धव्यधर्मशास्त्रानुसारत ।।१८।।
दातव्यकस्यकेरक्ष्या कैर्योद्धव्यचतेनृप ।
क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्मेभयतव ।।१९।।
दातव्यविप्रमुख्येभ्योयेचान्येकृशवृत्तय ।
रक्ष्याभीता सदायुद्ध कर्त्तव्यपरिपन्थिभि ।।२०।।
यदिराजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ।
निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहंदीयतामिष्टदक्षिणा ।।२१।।

सहसा तपोनिधि विश्वामित्रजी को देख कर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त भयभीत होकर पीपल-पत्र के समान काँपने लगे ।। १५ ।। उसी समय मुनिवर विश्वामित्र ने कहा 'दुरात्मन् ! ठहर' यह सुन कर राजा ने उनको प्रणाम किया और विनय पूर्वक बोले ।। १६ ।। हे भगवन् ! मेरा धर्म यही है, आप मेरे अपराध को न मानिये, मैंने अपने धर्म का त्याग नहीं किया है, इसलिए मेरे प्रति क्रोध न करिये ।। १७ ।। धर्मज्ञ नरेशों का कर्त्तव्य ही धर्मानुसार दान, रक्षा और धनुष धारण करके युद्ध करना है ।। १८ ।। विश्वामित्र बोले—राजन् ! यदि तुम्हें अधर्म से भय है तो यह बताओ कि

दान किसको करना चाहिए, किसकी रक्षा और किस के युद्ध साथ करना उचित है ? ॥ १६ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—जो सदैव व्रत अनुष्ठान में तत्पर और ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी के लिए दान करे, भयभीत की रक्षा करे और शत्रुओं के साथ युद्ध करे ॥ २० ॥ विश्वामित्र ने कहा कि राजन् ! यदि तुम्हें सम्पूर्ण राजधर्म का ज्ञान है तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूँ, मुझे इच्छित दक्षिणा प्रदान करो ॥ २१ ॥

एतद्राजावचः श्रुत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पुनर्जातमिवात्मानमेनेप्राह चकौशिकम् ॥२२॥
उच्यतामभगवन्यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥२३॥
हिरण्यवासुवर्णवापुत्रस्त्रियकलेवरम् ।
प्राणाराज्यपुरलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मन ॥२४॥
राजन्यतिगृहीतोऽयस्तेदत्त प्रतिग्रह ।
प्रयच्छप्रथमतावद्दक्षिणाराजसूयिकीम् ॥२५॥
ब्रह्म स्तामपिदास्यामिदक्षिणाभवतोह्यहम् ।
ब्रियतांद्विजशार्दूलयस्तवेष्ट प्रतिग्रह ॥२६॥
ससागराधरामेतांसभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ।
राज्यचसकलंवीररथाश्वगजसकुलम् ॥२७॥
कोष्ठागारंचकोशंचयच्चान्यद्विद्यतेतव ।
विनाभार्यांचपुत्रंचशरीरंचतवानघ ॥२८॥
धर्मंचसर्वधर्मज्ञयोयान्तमनुगच्छति ।
बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥२९॥

पक्षियों ने कहा कि हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्र ने यह बात सुन कर आह्लाद और प्रफुल्लता युक्त होकर अपना नया जन्म समझते हुए मुनि से कहा ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहें, मैं उसे देने के लिए तत्पर हूँ तथा प्रतिज्ञा करता हूँ कि कठिन से कठिन बात को भी पूरी करूँगा ॥ २३ ॥ आपको स्वर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, देह, प्राण, राज्य, ग्राम, धन जिस वस्तु की इच्छा हो वही बतलाइये ॥ २४ ॥ विश्वामित्र ने कहा—आप जो

देंगे, वही मैंने ग्रहण कर लिया समझो, परन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मुझे दो ।। २५ ।। राजा बोले—ब्रह्मन् ! यह देने को मैं तत्पर हूँ, राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के रूप में आपकी जो इच्छा हो तो आज्ञा करें ।। २७ ।। विश्वामित्र ने कहा—समस्त नगर, ग्राम, पर्वत, सागर आदि से युक्त पृथिवी एवं रथ, अश्व, हाथी सहित सम्पूर्ण राज्य ।। २७ ।। अन्तर्गृह, राजकोश आदि तुम्हारी सभी वस्तुएँ, बिना भार्या, पुत्र तथा अपने शरीर के ।। २८ ।। तथा धर्मशास्त्र के अनुसार तुम्हारे सभी अनुगत अथवा तुम्हारे पास जो कुछ है, सब कुछ मुझे दे दो ।। २९ ।।

प्रहृष्टेनैवमनसासोऽविकारमुखोनृप ।
तस्यर्षेर्वचनश्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलि ।।३०।।
सर्वस्वयदिमेदत्त राज्यमुर्वीबलधनम् ।
प्रभुत्वकस्यराजर्षेराज्यस्थेतापसेमयि ।।३१।।
यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ।
तस्मिन्नपिभवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपति ।।३२।।
यदिराजस्त्वयादत्तासमसर्वावसुन्धरा ।
यन्ममेविषयेस्वाम्यतस्माच्छिघ्रान्तुमर्हसि ।।३३।।
श्रोणीसूत्रादिसकलमुत्सृज्याभूषणंसग्रहम् ।
तरुवल्कलमाबिभ्रत्सहपत्न्यासुतेनच ।।३४।।
तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजा गन्तु प्रचक्रमे ।
स्वपत्न्याशैब्ययासार्धबालकेनात्मजेनच ।।३५।।

पक्षियों ने कहा—मुनि के वचन सुन कर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड कर 'जो आज्ञा, ऐसा ही होगा' मुख से कहा ।। ३० ।। विश्वामित्र ने कहा—तुमने पृथिवी, बल, धन इत्यादि सर्वस्व ही मुझे अर्पण कर दिया है, तब तपस्वी होकर राज्य करने से किसका प्रभुत्व रहेगा ? ।। ३१ ।। हरिश्चन्द्र बोले—ब्रह्मन् ! जब से मैंने यह वसुधरा आपको दे दी, तभी से आप इसके स्वामी हैं, फिर आप प्रभुत्व का प्रश्न क्यों करते हैं ।। ३२ ।। विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! तुमने जब यह वसुधरा मुझे दे दी और मेरा स्वामित्व हो गया तो तुम अब इस राज्य से चले जाओ ।। ३३ ।। कटि-

भूषण आदि तुम्हारी भार्या और पुत्र के देह में है, उन सब को उतार कर वृक्षों छाल धारण करके पत्नी पुत्र सहित मेरे राज्य से निकल जाओ ॥ ३४ ॥ पक्षियों ने कहा-राजा हरिश्चन्द्र ने मुनि विश्वामित्र की आज्ञा के अनुसार देश के कार्य किये और अपनी भार्या शैव्या और पुत्रके सहित जाने लगे ॥ ३५ ॥

व्रजत सततोरुद्धापन्थानप्राहृतनृपम् ।
क्वयास्यसीत्यदत्त्वामेदक्षिणाराजसूयिकीम् ॥३६॥
भगवन्सराज्यमे तत्ते दत्तं निहृतकण्टकम् ।
अवशिष्टमिदब्रह्मन्नवदेहत्रयमम ॥३७॥
तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ।
विशेषतो ब्राह्मणानाहन्त्यदत्त प्रतिश्रुतम् ॥३८॥
यावत्तोषोराजसूयेब्राह्मणानाभवेन्नृप ।
तावदेवतुदातव्यादक्षिणाराजसूयिकी ॥३९॥
प्रतिश्रुत्यचदातव्य योद्धव्यचाततायिभि ।
रक्षितव्यास्तथाचार्त्ता स्त्वयैवप्राक्प्रतिश्रुतम् ॥४०॥
भगवन्साम्प्रतनास्तिदास्येकालक्रमेणते ।
प्रसादकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच ॥४१॥
किप्रमाणोमयाकाल प्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ।
शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्निरन्यथात्वाप्रधक्ष्यति ॥४२॥

तभी विश्वामित्र ने उनका मार्ग रोका और कहने लगे—हे राजन् ! राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दिये बिना कहाँ जा रहे हो ? ॥ ३६ ॥ हरिश्चन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! मैंने आपको अपना सम्पूर्ण राज्य निष्कटक रूप से आपको दे दिया है, अब इन तीन प्राणियों के शरीर के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र बोले—यदि इन तीन शरीरों के अतिरिक्त कुछ और नहीं है तो भी यज्ञ की दक्षिणा तो देनी ही होगी, क्योंकि ब्राह्मण से कही हुई वस्तु न देने से सब कुछ नष्ट हो जाता है ॥ ३८ ॥ हे नरेश ! राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण जिस वस्तु से सन्तुष्ट हो वही उसकी यज्ञ दक्षिणा है ॥ ३९ ॥ तुम्हारी तो प्रतिज्ञा है कि अंगीकृत दान, आततायी से युद्ध और आर्त्त पुरुष की भले प्रकार रक्षा करनी चाहिए ॥ ४० ॥ हरिश्चन्द्र

बोले—हे ब्रह्मर्षे ! आप साधुत्व का अवलम्बन करके प्रसन्न हों, इस समय मेरे पास कुछ नहीं है, कालक्रम से आपको दूँगा ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र ने कहा—हे राजन् ! मैं कब तक प्रतीक्षा करूँ ? मुझे शीघ्र बताओ, नहीं तो शापानल से भस्म हो जाओगे ॥ ४२ ॥

मासेनतव विप्रर्षेप्रदास्येदक्षिणाधनम् ।
साम्प्रतंनास्तिमेवित्तमनुज्ञादातुमर्हसि ॥४३॥
गच्छगच्छ नृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।
शिवश्चतेऽस्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिन ॥४४॥
अनुज्ञात सगच्छेतिजगामवसुधाधिप ।
पद्भ्यामनुचितागन्तुमन्वगच्छच्चत प्रिया ॥४५॥
तसभार्यंनृपश्रेष्ठ निर्यान्तसपुरात् ।
दृष्ट्वाप्रचुक्रुशु पौरा राजश्चैवानुयायिन ॥४६॥
हानाथकिंजहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।
त्वधर्मतत्परोराजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥४७॥
नयास्मानपिराजर्षेयदिधर्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त्तंतिष्ठराजेन्द्रभवतोमुखपङ्कजम् ॥४८॥
पिबामोनेत्रभ्रमरै कदाद्रक्ष्यामहेपुन ।
यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृ ेचपार्थिवा ॥४९॥
तस्यानुयातिभार्येय गृहीत्वाबालकसुतम् ।
यस्यभृत्या प्रयातस्यधान्त्यग्रेकुञ्जरस्थिता ॥५०॥
सएषपद्भ्यांराजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोद्यगच्छति ।
हाराजकुमारतेसुभ्र सुत्वचमुन्नसम् ॥५१॥

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे पास अब कुछ भी नहीं है, एक मास में आपकी दक्षिणा उपस्थित कर दूँगा, इसलिए आज्ञा दीजिये ॥ ४३ ॥ विश्वामित्र ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! जाओ, अपने धर्म के पालनार्थ गमन करो तुम्हारे विघ्न दूर हों और तुम्हारा कल्याण हो ॥ ४४ ॥ पक्षियों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! जमिने ! फिर वह राजर्षि हरिश्चन्द्र मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र द्वारा जाने की अनुमोदन प्राप्त कर चल दिये, रानी शैव्या भी उनके पीछे-पीछे

चली ।। ४५ ।। इधर नगर में रहने वाले प्रजाजन पुत्रादि के सहित राजा को जाते देख कर ऊँचे स्वर से रोते हुए उनके पीछे चलने लगे ।। ४६ ।। हे महाराज ! यदि आप धर्म में लगे रहने वाले और अनुग्रह पूर्वक प्रजा के पालन में तत्पर रहने वाले हैं तो अपनी प्रजा का किस लिए त्याग कर रहे हैं ? ।। ४७ ।। हे राजर्षि ! यदि आप धर्म की ओर देखें तो हमको भी साथ ले चलें, हे राजेन्द्र ! थोड़े समय के लिए तो ठहरिये हम एक बार आपके मुखारविंद को ।। ४८ ।। भौंरे के समान पान कर सकें फिर कब आपका दर्शन हो सकेगा ? जिनके चलते समय भूमंडल के सभी नरेश आगे-पीछे गमन करते थे ।। ३९ ।। उन्हीं राजा हरिश्चन्द्र की पत्नी आज अपने बालक को लिए हुए उनका अनुगमन कर रही है । जिनके चलते समय सभी भृत्य हाथियों के मस्तक पर चढ़ कर आगे-आगे दौड़ते थे ।। ५० ।। आज वे राजेन्द्र स्वयं पदयात्रा कर रहे हैं ।। ५१ ।।

पथिघासुपरिक्लिष्ट मुखकीदृग्भविष्यति ।
तिष्ठतिष्ठनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।।५२।।
आनृशंस्यपरोधर्म क्षत्रियाणांविशेषत ।
किदारैं-किमुतैनंधिधनैर्धान्यैरथापिवा ।।५३।।
सर्वमेतत्परित्यज्यच्छायाभूतावयंतव ।
हानाथहामहाराजहास्वाभिन्किंजहासिन ।।५४।।
यत्रत्वंतत्रहिवयंतत्सुखयत्रत्वंभवान् ।
नगरंतद्वनान्यत्रसत्रगोयत्रनोनृप ।।५५।।
इतिपौरवचश्रुत्वाराजाशोकपरिलुप्त
अतिष्ठत्सतदामार्गेतेषामेवानुकम्पया ।।५६।।

आपका यह शोभायमान मुख मंडल मार्ग में धूल धूसरित हो जायगा, उस समय कितनी शोचनीय अवस्था होगी ? इसलिए आप मत जाइये, यहीं रह कर अपना धर्म-पालन कीजिए ।। ५२ ।। क्षत्रियों का मुख्य धर्म दया है, हमको पुत्र, धन अथवा धान्यादि किसी वस्तु की भी आवश्यकता नहीं है ।। ५३ ।। हम भी सर्वस्व त्याग कर आपके साथ छाया के समान रहेंगे, इसलिए हे प्रभो आप हमारा त्याग न कीजिये ।। ५४ ।। जहाँ आप जायेंगे, वहीं

हम जायेंगे, जहाँ आपको सुख है, वहीं हमको भी होगा, जहाँ आप रहेंगे, वही हमारा नगर है, जहाँ राजा का निवास हो, वही स्वर्ग है ॥ ५५ ॥ प्रजा के इस प्रकार के वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोक मग्न होगए और उनकी दया वेश कर कुछ समय मार्ग मे ही खड़े रहे ॥ ५६ ॥

विश्वामित्रोऽपिसदृष्ट्वापौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षविवृत्ताक्ष समागम्यवचोऽब्रवीत् ॥५७॥
धिक्त्वादुष्टसमाचारमनृतजिह्मभाषिणम् ।
ममराज्यचदत्त्वाय पुन प्राक्रष्टुमिच्छसि ॥५८॥
इत्युक्त परुषतेनगच्छामीतिसवेपथु ।
ब्रुवन्नेवययौशीघ्रमाकर्षन्दयिताकरे ॥५९॥
कर्षतस्ततोभार्या सुकुमारीश्रमातुराम् ।
सहसादण्डकाष्ठेनताडयामासकौशिक ॥६०॥
तातथाताडिताहृष्ट्वाहरिश्चन्द्रोमहीपति ।
गच्छामीत्याहदु खार्तोनान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥६१॥
अथविश्वे तदादेवा पचप्राहु कृपालव ।
विश्वामित्र सुपापोऽयलोकान्कान्समवाप्स्यति ॥६२॥
येनाययज्वनाश्रेष्ठ स्वराज्यादवरोपित ।
कस्यवाश्रद्धयापूतसुतसोममसाऽवरे ।
पीत्वावयप्रयास्यामोमुदमन्त्रपुर सरम् ॥६३॥

तभी प्रजा के वचनो से राजा को आकुल हुआ देख कर विश्वामित्रजी आ पहुँचे और रोष पूर्वक घूरते हुए कहने लगे ॥ ५७ ॥ ये दुष्ट ! मिथ्या-वादिन् ! इस सम्पूर्ण राजत्व को अब पुन मुझसे ले लेना चाहता है, तुझे धिक्कार है ॥ ५८ ॥ इस प्रकार विश्वामित्र के वचन सुन कर 'जाता हूँ' कहते हुए राजा हरिश्चन्द्र कम्पित गात से चलने को उद्यत हुए और उन्होंने शैव्या का हाथ खीचा ॥ ५९ ॥ कोमलागी शैव्या अत्यन्त थक गई थी, राजा उसे चलने को खीच रहे थे, फिर भी विश्वामित्र अपने डण्डे से रानी की पीठ मे आघात करने लगे ॥ ६० ॥ पृथिवीपति हरिश्चन्द्र शैव्या को इस प्रकार ताडित होते देख कर अत्यन्त दु खी हुए, फिर भी इतना ही बोले कि भगवन् मै जारहा हूँ

॥ ६१ ॥ यह देख कर पाँच जन लोकपाल, विश्वेदेवा देवताओं ने दया पूर्वक कहा—इस पापात्मा विश्वामित्र ने श्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र को राज से भ्रष्ट कर दिया, इसकी कौन-सी गति होगी ? अब हम किसके यज्ञ में सोम पान करके आनन्द को प्राप्त होंगे ॥ ६२ ॥ ॥ ६३ ॥

इतितेषांवच श्रुत्वाकौशिकोऽतिरुषान्वित ।
शशापतान्मनुष्यत्वंसर्वेयूयमवाप्स्यथ ॥६४॥
प्रसादितश्चतं प्राहपुनरेवमहामुनि ।
मानुषत्वेऽपिभवतामविनैवसन्ततिं ॥६५॥
नदारसग्रहश्चैवभवितानत्वमत्सर ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथसुरा पुन ॥६६॥
ततोऽवतेरुशं स्वर्देवास्तेकुरुवेश्मनि ।
द्रौपदीगर्भसम्भूता पचवैपाण्डुनन्दना ॥६७॥
एतस्मात्कारणात्पचपाण्डवेयामहारथाः ।
नदारसग्रहप्राप्ता.शापात्तस्यमहामुने ॥६८॥
एतत्तेसर्वमाख्यातपाण्डवेयकथाश्रयम् ।
प्रश्नंचतुष्टयंगीतकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥६९॥

पक्षियों ने कहा कि उन पाँचो विश्वेदेवो को वचन से रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दिया कि अरे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य-योनि ग्रहण करोगे ॥ ६४ ॥ इस पर विश्वेदेवो के प्रार्थना करने पर विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम यद्यपि मनुष्य तो होंगे परन्तु स्त्री-सम्पर्क और सन्तानोत्पत्ति से दूर रहोगे ॥ ६५ ॥ तुम मात्सर्य से बचे रहोगे और काम क्रोधादि से परे रहोगे ॥ ६६ ॥ फिर वही विश्वेदेवा द्रौपदी के गर्भ से पाण्डवो की सन्तान रूप मे उत्पन्न हुए ॥ ६७ ॥ हे महामुने ! विश्वामित्र के शापवश ही उन पाँचो महारथी द्रोपदी-पुत्रो का विवाह नही हुआ ॥ ६८ ॥ पाण्डवो की कथा के आश्रय से तुम्हारे चारो प्रश्नो का उत्तर दिया जा चुका अब और क्या सुनना चाहते हो, सो कहिये ॥ ६९ ॥

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे द्रौपदेयोत्पत्ति कथन

८—राजा हरिश्चन्द्र की कथा

भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात् ।
महत्कौतूहलं मेऽस्तिहरिश्चन्द्रकथां प्रति ॥१॥
अहोमहात्मनातेनप्राप्तकृच्छ्रमनुत्तमम् ।
कच्चित्सुखमनुप्राप्तताद्दृग्भेवद्विजोत्तमाः ॥२॥
विश्वामित्रवशं श्रुत्वासराजाप्रययौशनैः ।
शैब्ययानुगतोदुःखीभार्ययाबालपुत्रया ॥३॥
संगत्यावसुधापालोदिव्यांवाराणसीपुरीम् ।
नैषामनुष्यभोग्यांहिशूलपाणे परिग्रहम् ॥४॥
जगामपद्भ्यांदुःखार्त्तःसहपत्न्यानुकूलया ।
पुरीप्रविश्यददर्शविश्वामित्रमुपस्थितम् ॥५॥
तद्दृष्ट्वासमनुप्राप्तविनयावनतोऽभवत् ।
प्राहचैवाञ्जलिकृत्वाहरिश्चन्द्रोमहामुनिम् ॥६॥
इमेप्राणा सुतश्चायमियंपत्नीमुनेमम ।
येनतेकृत्यमस्त्याशुतद्ग्रहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥७॥
यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥८॥

जैमिनी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे प्रश्नों का आपने क्रमानुसार समाधान कर दिया । अब मुझे हरिश्चन्द्र की कथा में अत्यन्त कुतूहल है ॥ १ ॥ उन महात्मा ने कितना कष्ट पाया ? क्या उन्हे वैसे ही सुख की प्राप्ति भी हुई ? ॥ २ ॥ पक्षियो ने कहा—विश्वामित्र के वचन सुन कर राजा दुःखी हृदय से धीरे-धीरे चल पडे तथा बालक पुत्र लिए हुए उनकी रानी के साथ ही चली ॥ ३ ॥ वह वहाँ से चल कर वाराणसी पहुँचे, क्योंकि शूलपाणि शंकर द्वारा निर्मित वह नगरी मनुष्यों के भोग के लिए नहीं है ॥ ४ ॥ दुःखित चित्त से चिन्ता करते हुए राजा पत्नी के सहित पैदल ही वाराणसी में गये, और उन्होंने वहाँ सामने ही मुनिवर विश्वामित्र को खडे देखा ॥ ५ ॥ राजा हरिश्चन्द्र ने उन महामुनि को वहां आया देख कर हाथ जोडे और विनय पूर्वक कहा ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! अब तो मेरा प्राण, पत्नी और पुत्र यही शेष

है। इनमे से जिसे आप स्वीकार करना चाहे वही आपको अर्घ्य स्वरूप दिया जाय ॥ ७ ॥ इसके अतिरिक्त आप जैसी आज्ञा दे वैसे मैं करूँ ॥ ८ ॥

पूर्णःसमासोराजर्षेदीयतामम दक्षिणा ।
राजसूयनिमित्तंहिस्मर्यतेस्ववचोयदि ॥९॥
ब्रह्मन्नद्य वसपूर्णोमासोऽम्लानतपोधन ।
तिष्ठत्येतद्दिनार्धयत्तत्प्रतीक्षस्वमाचिरम् ॥१०॥
एवमस्तुमहाराजआगमिष्याम्यहंपुनः ।
शापंतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रदास्यसि ॥११॥
इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोराजाचान्वितयत्तदा ।
कथमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता ॥१२॥
कुत पुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थ.साप्रतमम ।
प्रतिग्रह प्रदुष्टोमेनाहयायामध कथम् ॥१३॥
किमुप्राणान्विमुञ्चामियादिशत्याम्यकिञ्चन ।
यदिनाशगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम् ॥१४॥
ब्रह्मस्वहृत्कृमि पापोभविष्याम्यधमाधम ।
अथवाप्रेष्यतायास्येवरमेवात्मविक्रय ॥१५॥

इस पर विश्वामित्र ने कहा—आपने राजसूय यज्ञ के उपलक्ष्य मे जो दक्षिणा एक मास बाद देने को कहा था उसका समय पूरा हो चुका, अब उसे तत्काल दो ॥ ९ ॥ हरिश्चन्द्र ने निवेदन किया...हे ब्रह्मन् ! एक मास आज सध्या तक पूरा होगा, अभी आधा दिन शेष है, आप उतनी देर और प्रतीक्षा कीजिये, उसी समय मै चुका दूँगा ॥ १० ॥ विश्वामित्रजी बोले—हे राजा, यही हो महाराज ! मै सध्या के समय आऊँगा। यदि उस समय दक्षिणा नही दोगे तो तुम्हे शापग्रस्त होना पडेगा ॥ ११ ॥ पक्षियो ने कहा कि इस प्रकार कहकर विश्वामित्र तो चले गये और राजा वह चिन्ता करने लगे कि इनको वह दक्षिणा किस प्रकार दी जा सकती है। इस समय न तो मेरा कोई अर्थ-सम्पन्न बान्धव यहाँ है और न सम्पदा मे से कुछ शेष रहा है। ऐसी दशा मे क्या मुझे दान न चुकाने के लिये पतित होना पडेगा ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ अब तो मेरे पास कुछ भी नही रहा। मै कहाजाऊँ ? अगर अस्वीकार की हुई

वस्तु को दिये बिना मैं प्राण भी त्याग दूँ तो वह भी एक पापकर्म होगा और ब्रह्मअंश को हरण करने के पाप से या तो मैं कृमियोनि में जाऊँगा अथवा आत्मा को बेच कर सन्यासी होना पड़ेगा ॥ १५ ॥

राजानव्याकुलदीनचिन्तयानमधोमुखम् ।
प्रत्युवाचतदापत्नीबाष्पदग्दग्धवागिरा ॥१६॥
त्यजचिन्तामहाराजस्वसत्यमनुपालय ।
श्मशानवद्वर्जनीयोनर सत्यबहिष्कृत ॥१७॥
नातपरतरधर्मवदन्तिपुरुषस्यतु ।
यादृशपुरुषव्याघ्रस्वसत्यपरिपालनम् ॥१८॥
अग्निहोत्रमधीतवादानाद्याश्चाखिला क्रिया ।
भजन्तेतस्यवैफल्यमस्यवाक्यमकारणम् ॥१९॥
सत्यमत्यन्तमुदितधर्मशास्त्रेषुधीमताम् ।
तारणायानृततद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥२०॥
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयंचपार्थिव ।
कृतिनंमिमच्युत स्वर्गादसत्यवचनात्सकृत् ॥२१॥
राज्जातमपत्यंमेइत्युक्त्वाप्ररुरोदह ।
बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रातामुवाचेदमहीपति ॥२२॥

पक्षियों ने कहा—हे मुने ! इस प्रकार राजा को नीचा मुख किये घोर चिन्ता युक्त देख कर रानी शैव्या ने आँसू बहाते हुए कण्ठ से कहा—हे महाराज ! चिन्ता मत कीजिये और वचन दिया है, उसका पालन कीजिये क्योंकि असत्य व्यवहार करने वाला व्यक्ति श्मशान के समान त्याज्य है ॥ १५ ॥ ॥ १६ ॥ वचन के असत्य होने पर अग्निहोत्र, फल, वेद-पठन और दान-आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते है, हे महावीर ! विद्वानों का कथन है कि सत्य-पालन का कितना महान् धर्म होता है । वैसा किसी अन्य प्रकार नहीं होता ॥ १८ ॥ धर्म शास्त्रों का भी यही मत है कि सत्य वचन मनुष्य को तारने वाला और असत्य नीचे गिराने वाला है ॥ २० ॥ हे पृथ्वी नाथ ! आपने सात अश्वमेध करके राजसूय यज्ञ किया है । इस समय पर क्या एक छोटी-सी बात के लिये उस सब को नष्ट कर स्वर्ग से वंचित होंगे ॥२१॥ हे

महाराज ! मेरे सन्तान हो चुकी है'' इतना कह कर वह रोने लगी। तब राजा उस अश्रुवर्षा करती हुई रानी से कहने लगे ॥ २२ ॥

विमुंचभद्रे सतापमयतिष्ठतिबालक ।
उच्यतावक्तुकामासियद्वात्वंगजगामिनि ॥२३॥
राजन्जातमपत्यमेसतापुत्रफला स्त्रिय ।
समाप्रदायवित्तं नदेहिविप्रायदक्षिणाम् ॥२४॥
एतद्वाक्यमुपश्रुत्यययौमोहमहीपति ।
प्रतिलभ्यचसज्ञासविललापातिदुःखित ॥२४॥
महद्दुःखमिदभद्रे यत्वमेवब्रवीषिमाम् ।
कितवस्मितसॅल्लापाममपापस्यविस्मृता ॥२६॥
हाहाकथत्वयाशक्यवक्तुमेतच्छुचिस्मिते ।
दुर्वाच्यमेतद्वचनकर्त्तुंशक्नोम्यहंकथम् ॥२७॥
इत्युक्त्वासनश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ।
निपपातमहीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुत ॥२८॥

राजा हरिश्चन्द्र ने रानी से कहा---शोक को त्याग कर जो कहने की इच्छा हो कहो। तुम्हारी सन्तान तो यह मौजूद ही है ॥ २३ ॥ रानी बोली —हे महाराज ! मेरे सन्तान हो गई है, इसी उद्देश्य से साधु पुरुषों से पत्नी की आवश्यकता होती है। इससे अब आप मुझे बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुका दें ॥ २४ ॥ पक्षियों ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या का ऐसा वचन सुनकर शोक से मूर्च्छित-से हो गये। फिर चैतन्य होकर दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे कि हे प्रिये जो कुछ कहा वह अत्यन्त कष्ट दायक है। यह पापी हरिश्चन्द्र क्या स्मितपूर्वक भाषण करना भूल गया ॥ २५ ॥ ॥ २६ ॥ नहीं तो तुम्हारे मुख से ऐसी अशुभ बात क्यों निकलती और मैं भी ऐसे वचन सुनकर किस प्रकार सहन करता ॥ २७ ॥ राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार कह कर अपने को धिक्कारते हुये पृथ्वी पर गिरकर बेसुध हो गये ॥ २८ ॥

शयानभुवितदृष्ट्वाहरिश्चन्द्रं महीपतिम् ।
उवाचेदंसकरुणराजपत्नीसुदुःखिता ॥२९॥
हामहाराजकस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ।

यत्त्वनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचित ॥३०॥
येनकोटिचयज्ञशोवित्त विप्राणामपवर्जितम् ।
सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपति ॥३१॥
हाकष्ट कितवानेनकृतदेवमहीक्षिता ।
यदिद्रोपेद्रतुल्योऽयनीत पापामिमादशाम् ॥३२॥
इत्युक्त्वासापिसुश्रोणीमूच्छितानिपपातह ।
भर्तृदुखमहाभारेणासह्येननिपीडिता ॥३३॥
तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशु ।
दृष्ट्वात्यतक्षुधाविष्ट प्राहवाक्यसुदु खित ॥३४॥
तातततावदस्वान्नमम्बाम्बभोजनदद ।
क्षुन्मेबलवतीजाताजिह्वाग्रशुष्यतेतथा ॥३५॥

महाराज हरिश्चन्द्र को इस प्रकार पृथ्वी पर लौटते देख महारानी शैव्या अत्यन्त दु खी हुई और करुण स्वर से कहने लगी कि आज कैसे कष्ट का दृश्य देख रही हूँ कि जो महाराज मृग चर्म की कोमल शैय्या पर शयन करते थे वे आज इस प्रकार कठोर भूमि पर पडे है ॥२९–३०॥ जिन्होंने करोडो गौऐ ब्राह्मणो को दान दी वही पृथ्वीनाथ हरिश्चन्द्र भूमि पर पडे है ॥३१॥ हा दैव ! इन्होने कौन सा ऐसा अपराध किया है, जिससे एक ऐसे उपेन्द्र की समता वाले पुरुष की पापियो की-सी दुर्दशा हो रही है ॥३२॥ इस प्रकार महारानी शैव्या शोक सन्तप्त होती हुई अचेत होकर मूर्च्छित हो गई । जब राजपुत्र ने माता और पिता को इस प्रकार सुधि पडे देखा और उसे भूख भी लगी तो रोकर कहने लगा—हे तात ! हे माता ! मुझको बडी भूख लगी है, भोजन दो । मेरी जीभ सूख रही है ॥३३–३४–३५॥

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपा ।
कालकल्पइवक्रुद्धोधनसमार्गितु तदा ।
दृष्ट्वातु हरिश्चन्द्र पतितोभुविमूच्छित ॥३६॥
सवारिणासमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेन्द्रताददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥३७॥
ऋणधारयतोदुःखमहन्यहनिवर्द्धते ।

आप्यायमान सततदाहिसशीतेनवारिणा ।।३८।।
अवाप्यचेतनाराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ।
पुनर्मोहसमापेदेसचक्रोधययौमुनि ।।३९।।
ससमाश्वास्यराजानवाक्यमाहद्विजोत्तम ।
दीयतादक्षिणासाभेयदिधर्ममवेक्षसे ।।४०।।
सत्येनार्क प्रतपतिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ।
सत्यचोक्त परोधर्म स्वर्गं सत्येप्रतिष्ठित ।।४१।।
अश्वमेधसहस्र चसत्यचतुलयाधृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेवविशिष्यते ।।४२।।

पक्षियो ने कहा—कि उसी महात्मा विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोध प्रकट करते हुए वहाँ आ पहुंचे । उन्होंने जब राजा को मूर्च्छित अवस्था मे पृथ्वी पर पडे देखा तो जल के छींटे देकर उसे चैतन्य किया और कहा.. राजन् ! उठ कर मेरी दक्षिणा दो, क्योंकि जब तुम पर यह ऋण बना रहेगा तब तक दुःख इसी प्रकार बढ़ता रहेगा । शीतल जल के स्पर्श से राजा हरिश्चन्द्र चैतन्य हुए, पर सामने ही विश्वामित्र को खडा देख कर फिर मूर्च्छित हो गये । तब विश्वामित्रजी ने कहा—हे राजा यदि तुम धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो मेरी दक्षिणा देने मे विलम्ब न करो ।।३६ से ४०।। सूर्य सत्य के बल से ही तपते है, पृथ्वी सत्य की महिमा से ही टिकी है, सत्य ही सब से बडा धर्म है और स्वर्ग भी एक मात्र सत्य के ऊपर ही स्थित है ।।४१।। अगर एक तराजू के पलडे पर सत्य को रखा जाय और दूसरे पर हजार अश्वमेध यज्ञो के फल को तो सत्य का पलडा ही भारी रहेगा ।।४२।।

अथवाकिममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणम् ।
अनार्येपापसकल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ।।४३।।
त्वयिराज्ञिप्रभवतिसद्भाव श्रूयतामयम् ।
अद्यमेदक्षिणाराजन्नदास्यतिभवान्यदि ।।४४।।
अस्ताचलप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वाततोध्रुवम् ।
इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुर ।।४५।।
कान्दिग्भूतोऽध्वनोनि स्वोनृशसधनिनादित. ।

भार्यास्यभूय प्राहेदक्रियतावचनममम ।।४६।।
माशापानलनिर्दग्ध पचत्वमुपयास्यसि ।
सतयाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुन पुन ।।४७।।
प्राहभद्रेकरोम्येषविक्रयतवनिर्घृण ।
नृशसैरपियत्कर्तुनशक्यतत्करोम्यहम् ।।४८।।
यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमीदृक्सुदुर्वच ।
एवमुक्त्वाततोभार्यागत्वानगरमातुर ।
बाष्पाहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवीत् ।।४९।।

पर जाने दो, मुझे अनार्य, पापी, क्रूर, मिथ्यावादी राजा को समझाने बुझाने की आवश्यकता ही क्या है ।।४३।। मैं स्पष्ट रूप से कहे देता हूँ कि यदि तुम आज मेरी दक्षिणा नहीं दोगे, तो सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही मैं निश्चय रूप से शाप दूँगा ? विश्वामित्र ऐसा कह कर वहाँ से चले गये, और ब्रह्म शाप की आशंका से अत्यन्त डरने लगे कि अब दक्षिणा कहाँ से और कैसे चुकाऊँ । मैं तो इस समय पूर्णत, निर्धन हूँ, और धन वाले बड़े कठोर है । अब किस प्रकार करने से लोक होगा ? हम कहाँ जाये ? यह देख कर रानी शैव्या ने कहा कि महाराज मैंने आपसे जो कहा है वही कीजिये ।।४४–४५–४६।। जब यह उपाय मौजूद है तो ऋषि के शाप से ग्रस्त होकर नाश को प्राप्त होने की क्या आवश्यकता है । इस प्रकार पत्नी के बार-बार आग्रह करने पर हरिश्चन्द्र ने कहा—अच्छा ! मैं इस घृणित कार्य को भी करूँगा, यद्यपि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है तो भी यही करूँगा ।।४७–४८।। देखता हूँ कि मैं ऐसे कठोर वचन कह भी सकता हूँ या नहीं ? तब नगर में गये और आँसुओं को जबर्दस्ती रोक कर कहने लगे ।।४९।।

भोभोनागरिका सर्वेशृणुध्वमेवचनममम ।
किमापृच्छथकस्त्वभोनृशसोऽहममानुषं ।।५०।।
राक्षसोवालिकठिनस्तत पापतरोऽपिवा ।
विक्रेतु दयिताप्राप्तोयोनप्राणास्त्यजाम्यहम् ।।५१।।
यदिव कस्यचित्कार्यदास्याप्राणेष्वयामम ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयाम्यहम् ।।५२।।

अथ वृद्धोद्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् ।
समर्पयस्व मे दासीमहङ्कृताधनप्रद ॥५३॥
अस्ति मे वित्तमस्तोकमसुकुमारीच मे प्रिया ।
गृहकर्मनशक्नोमि कर्त्तुमस्मात्प्रयच्छ मे ॥५४॥
कर्मण्यतावयोरूपशीलानालक्ष्य योषितः ।
अनुरूपामिदं वित्तं गृहाणार्पयमेऽबलाम् ॥५५॥
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ।
व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनं किञ्चिदब्रवीत् ॥५६॥

राजा कहने लगे—यदि आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ, तो मैं बतलाऊँगा कि मैं एक नृशंस अत्याचारी हूँ, मनुष्य नहीं हूँ। मैं राक्षस हूँ या उससे भी अधिक निर्दयी हूँ, पापात्मा हूँ। क्योंकि प्राणप्यारी पत्नी को बेचने के लिए तैयार होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला ॥५०-५१॥ अस्तु जब तक सन्ध्या न हो, और मेरा प्राण देह के भीतर रहे तब तक हम मेरी प्राणों से प्यारी दासी को यदि खरीदना चाहो तो कहो ॥५२॥ पक्षी बोले, उसी अवसर पर एक बूढ़े ब्राह्मण ने वहाँ आकर कहा—मुझे दासी की आवश्यकता है, मैं उसका मूल्य देने को तैयार हूँ। मेरे पास पर्याप्त अन्न-सम्पत्ति है और मेरी स्त्री बड़ी कोमल है जिससे घर का काम नहीं कर सकती, अतएव वह दासी मुझे दे दो ॥५३-५४॥ तुम इस अपनी स्त्री की कार्य दक्षता, अवस्था, रूप, और स्वभाव के अनुपम यह अर्थ राशि लेकर इसे मुझे दो ॥५५॥ ब्राह्मण के वचनों को सुन कर शोक से राजा का हृदय फटने लगा और उसने कुछ उत्तर नहीं दिया जा सका ॥५६॥

ततः सविप्रोनृपतेर्बलक्लान्तेर्दृढग्रहम् ।
बद्धाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७॥
रुरोदरोहितास्योऽपिदृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ।
हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरः शिशुः ॥५८॥
मुञ्चार्यमुञ्चतावन्मायावत्पश्याम्यहंशिशुम् ।
दुर्लभदर्शनंतातपुनरस्यभविष्यति ॥५९॥
पश्येहवत्समामेवमातरंदास्यतागताम् ।

मामाम्प्राक्षीराजपुत्रमस्पृश्याहतावाधुना ॥६०॥
ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ।
समभ्यधावदम्बेतिरुदन्सस्राविलेक्षण ॥६१॥
तमागतद्विज क्रोधाद्बालमभ्याहनत्पदा ।
वदस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामु चतमातरम् ॥६२॥
प्रसादकुरुमेनाथक्रीणीष्वेमंनबालकम् ।
क्रीतापिनाहमवतोविनैनकार्य्यसाधिका ॥६३॥
इत्थममाल्यभाग्यायाः प्रसादसुमुखोभव ।
मासयोजयबालेनवत्सेनेवपयस्विनीम् ॥६४॥

तब उस ब्राह्मण ने दासी के मूल्य स्वरूप वह धनराशि राजा के वस्त्र मे बाँध दी और रानी को वे पकड कर ले जाने लगा ॥५७॥ यह देख कर उसका पुत्र रोहिताश्व उसका आँचल खीचता रोने लगा ॥५८॥ रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे आर्य ! मुझे जरा देर के लिए अपना पुत्र को प्यार कर लेने दो, फिर मैं इसे कहाँ देख सकूँगी ? हे पुत्र ! अब मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूँ, इससे अब मुझे मत छूना, मैं अब इस योग्य नही रही ॥५९–६०॥ इसके पश्चात् बालक माता को खिचती हुई जाती देखकर रोते रोते "मा-मा" कहता हुआ उसके पीछे दौडा ॥६१॥ वृद्ध ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर उसे जोर से एक लात मारी पर वह बालक "मा-मा कह कर दौडता ही रहा और उसने किसी प्रकार माता को न छोडा ॥६२॥ रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे स्वामी ! कृपा करके इस बालक को भी खरीद लीजिए, क्योंकि यद्यपि मै बिक चुकी, पर इस बालक के बिना मुझसे काम नही किया जायगा । इस लिए आप मुझ अभागिनी पर दया कीजिये कि जिस प्रकार दूध देने वाली गाय को बछडे के सग ही लाया जाता है उसी प्रकार इस बालक को भी मेरे साथ ही रहने दीजिये ॥६३–६४॥

गृह्यतावित्तमेतत्तेदीयतांबालकोमम ।
स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेवहिवेतनम् ।
शतसहस्र लक्षचकोटिमूल्यतथापरैः ॥६५॥
तथैवतस्यतद्वित्त बद्धोत्तरपटेतत ।

प्रगृह्य बालकमात्मासहैकस्थमबन्धयत् ॥६६॥
नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ।
विललापसुदुःखार्तोनि श्वस्योष्णपुनः पुनः ॥६७॥
यानवायुर्नचादित्योनेन्दुर्नचपृथग्जनः ।
इष्टवान पुरापत्नीसेयंदासीत्वमागता ॥६८॥
सूर्यवंशप्रसूतोऽयसुकुमारकरांगुलिः ।
सम्प्राप्तोविक्रयंबालोधिङ् मामस्तुसुदुर्मतिम् ॥६९॥
ह्रीश्रियेहाशिशोवत्समममानार्यस्यदुर्नयैः ।
दैवाधीनादशाप्राप्तोनमृतोऽस्मिंस्तथापिधिक् ॥७०॥

ब्राह्मण ने कहा—अच्छा, बालक को भी मुझे दो और उसके बदले मे यह धन ग्रहण करो। धर्म शास्त्रो मे स्त्री और पुरुष दोनो का ही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष व करोड़ मुद्रा बतलाया है ॥६५॥ पक्षियो ने कहा—हे जैमिनि! यह कह कर उस ब्राह्मण ने वह धन भी राजा के वस्त्रो मे बाँध दिया और रानी तथा उसके पुत्र दोनो को बाँध कर ले गया ॥६६॥ राजा हरिश्चन्द्र पत्नी और पुत्र इस प्रकार विलग होता हुआ देख कर लम्बी साँस लेकर अत्यन्त शोक करने लगे कि जिसको अभी वायु, सूर्य, चन्द्र व बाहरी व्यक्ति भी अभी तक नही देख पाते थे उसको आज इस प्रकार दासी बनना पड़ा ॥६७-६८॥ जिस छोटे बालक ने सूर्य वंश मे जन्म लिया और जो अभी अत्यन्त कोमल है, उसको भी बिकना पड़ा, यह मेरी दुर्बुद्धि है जिसके लिए मैं निन्दा का पात्र हूँ ॥६९॥ मेरे अन्याय युक्त आचरण के कारण ही इन निर्दोषो की ऐसी गति हुई, पर खेद है अब भी मेरे प्राण नही निकलते ॥७०॥

एवंविलपतोराज्ञः सविप्रोऽन्तरधीयत ।
वृक्षगेहादिभिस्तूर्णंस्तावादायत्वरान्वितः ॥७१॥
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तोनृपवित्तमयाचत ।
तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ॥७२॥
तद्वित्तस्तोकमालोक्यदारविक्रयसंभवम् ।
शोकाभिभूतराजानंकुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥७३॥
क्षणंबध्नोममेमात्वंसदृशीयज्ञदक्षिणाम् ।

मन्यसेयदितत्क्षिप्रपश्यत्वमेवलपरम् ॥७४॥
तपसोऽस्मसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच ।
मत्प्रभावस्यचोग्रस्यबुद्धस्याध्ययनस्यच ॥७५॥
अन्यादास्यामिभगवन्काल कञ्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
अनृतनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चदासक ॥७६॥
चतुर्भाग स्थितोयोऽयदिवसस्यनराधिप ।
एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यनोत्तरत्वया ॥७७॥

पक्षियों ने फिर कहा—राजा हरिश्चन्द्र तो इस प्रकार विलाप करते रहे और उधर वह ब्राह्मण रानी और कुमार को वृक्षों और महलों की ओट से चला गया ॥७१॥ उसी समय विश्वामित्र मुनि ने आकर राजा से दक्षिणा का धन देने को कहा तो जितनी मुद्राएं उसके पास थीं वे उन्होंने अर्पित कर दीं। विश्वामित्र उतने धन को बहुत थोड़ा देख कर बड़े क्रोध से कहने लगे कि हे नीच, क्या मेरे यज्ञ कराने की उपयुक्त दक्षिणा यही है? यदि तू ऐसा विचारता है तो मैं तुझे अपनी तपस्या की शक्ति दिखलाता हूँ। तुझे मालूम हो जायगा कि मेरे ब्रह्मतेज और अध्ययन का कितना प्रभाव है ॥७२ से ७५॥ राजा ने विनय पूर्वक कहा—महर्षे! दक्षिणा के लिए मैंने पत्नी और पुत्र को भी बेच दिया और उससे जो धन मिला वह यही है। अब आप थोड़ी देर ठहरें तो मैं शेष दक्षिणा भी देने की व्यवस्था करता हूँ। विश्वामित्र ने कहा कि अब दिन का केवल चौथा भाग शेष है, इतनी ही देर मैं प्रतीक्षा करूँगा। इसके पश्चात् मैं तुम्हारी कोई बात नहीं सुनूँगा ॥७६—७७॥

तमेवमुक्त्वाराजेन्द्रनिष्ठुरंनिर्घृणंवच ।
तदादायधनंतूर्णंकुपित कौशिकोययौ ॥७८॥
विश्वामित्रेगतेराजाभयशोकादिमध्यग. ।
स्वविक्रयविनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुख ॥७९॥
वित्तक्रीतेनयोह्यर्थोमयाप्रेष्येणभानव ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्कर ॥८०॥
अथाजगामत्वरितोधर्मश्चाण्डालरूपधृक् ।
दुर्गन्धोविकृतोरूक्ष श्मश्रुलोदन्तुरोघृणी ॥८१॥

कृष्णोलम्बोदर पिङ्गरूक्षाक्ष परुषाक्षर ।
गृहीतपक्षिपु जघ्नशवमाल्यैरलङ्कृत ॥८२॥
कपालहस्तोदीर्घास्योभैरवोऽतिवदन्मुहु ।
श्वगणाभिवृतोघोरोयष्टिहस्तोनिराकृति ॥८३॥
अहमर्थीत्वयाशीघ्र कथयस्वात्मवेतनम् ।
स्तोकेनबहुनावापियेनवैलभ्यतेभवान् ॥८४॥

पक्षियो ने कहा—विश्वामित्र मुनि राजा से ऐसे कठोर और क्रोध युक्त वचन कह कर उस धन को लेकर चले गये। तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र भय और शोक से अभिभूत होकर और अन्तिम निश्चय करके उच्च स्वर से कहने लगे कि यदि किसी को सेवक खरीदने की इच्छा हो तो वह मुझे सूर्यास्त से पहले ही क्रय करले ॥७८–७९–८०॥ उस समय चाण्डाल के रूप मे धर्म वहा उपस्थित हुआ। उसके शरीर से बुरी गन्ध आती थी, आकृति बडी रूखी, डाढी, मूँछो से युक्त थी। स्वभाव बडा भयकर, दाँत ऊँचे और रूप घृणा उत्पन्न करने वाला था। काले रङ्ग का, लम्बे पेट का, पिंगल, रूखे नेत्र वाला कर्कश था। उसके हाथ मे कितने ही पक्षी थे, गले मे मुण्डो की माला, एक हाथ मे नरकपाल और दूसरे मे लादे हुए मृग शरीर बडा दुबला-पतला, बहुत से कुत्तो को साथ लिये और ऊट-पटाग बकता था ॥८१–८२–८३॥ वह धर्म-राज इस प्रकार चाण्डाल के वेश मे आकर राजा से कहने लगे—मैं तुमको खरीदना चाहता हूँ। तुम्हारा जो कुछ कम वा अधिक मूल्य हो वह बतलाओ ? ॥८४॥

ततोदृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिसुनिष्ठुरम् ।
वदन्तमतिदुःशीलकस्त्वमित्याहपार्थिव ॥८५॥
चण्डालोऽहमिहरख्यात प्रवीरेतिपुरोत्तमे ।
विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारक. ॥८६॥
नाहंचण्डालदासत्वमिच्छेयंसुविगर्हितम् ।
वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगत. ॥८७॥
तस्यैवंवदत प्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधि ।
कोपामर्षविवृत्ताक्ष प्राहच्छेदनराधिपम् ॥८८॥

चण्डालोऽयमनल्पतेदातु वित्तमुपस्थित ।
कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥८८॥
भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानंवेद्मिकौशिक ।
कथंचण्डालदासत्वंगमिष्येवित्तकामुक ॥८०॥
यदिचण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजंमम ।
नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यामित्वामसंशयम् ॥८१॥

पक्षियों ने कहा—बहुत कठोर बोलने वाले, क्रूर दृष्टि और कर्कश व्यवहार वाले उस चाण्डाल को देख कर राजा ने जिज्ञासा की कि तुम कौन हो ? ॥८५॥ उसने उत्तर दिया—मैं चाण्डाल हूँ और इस महा नगरी में मेरा निवास स्थान है। मेरा नाम प्रवीर है और पेशा बध करने योग्य पुरुषों को मारने का है। मैं मरे हुए पुरुषों का कम्बल (कफन) भी लेता हूँ ॥८६॥ राजा ने कहा—चाण्डाल के यहाँ दास कार्य करना तो बहुत ही बुरा है, इस कारण मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे ऊपर से पहले ही शाप रूपी कोप पड़ा हुआ है, पर यह चाण्डाल का दासत्व तो और भी नीच है ॥८७॥ पक्षियों ने कहा—राजा ने इतना कहा ही था, तभी विश्वामित्र वहाँ आ गये और क्रोध पूर्वक लाल नेत्र करके बोले ॥८८॥ विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! यह चाण्डाल तुम्हें बहुत-सा धन दे रहा है, तो तुम मेरी दक्षिणा क्यों नहीं देते ? ॥८९॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैं अपने को सूर्यवंशी मानता हूँ, इसलिये धन के लोभ से चाण्डाल का दासत्व कैसे स्वीकार करूँ ॥९०॥ विश्वामित्र बोले—यदि तुम अपने को इस चाण्डाल के हाथ बेच कर मुझे समय के भीतर धन नहीं दोगे तो मैं तुम्हें अवश्य ही शाप दूँगा ॥९१॥

हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावस्थितजीवित ।
प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वल ॥९२॥
दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषत ।
कुरुप्रसादविप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्कर ॥९३॥
भवेयवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवश ।
तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तक ॥९४॥
यदिप्रेष्योममभवाञ्चण्डालायततोमया ।

दासभाव मनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्थुदेनवै ॥९५॥
यद्यसौशक्यतेविप्र कौशिक परितोषितुम् ।
ततोगृहाणमामद्यदासत्वतेकरोम्यहम् ॥९६॥
शतयोजनविस्तीर्णानानाग्रामैरलङ्कृताम् ।
भूमिरक्षामयीकृत्वादास्येहकौशिकप्रति ॥९७॥

पक्षियों ने कहा—फिर राजा हरिश्चन्द्र ने व्याकुल मन से 'भगवन् ! प्रसन्न हों' कहते हुए विश्वामित्र के दोनों चरण पकड़ लिए ॥९२॥ मैं आपका दास इस समय अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हूँ, मैं आपका ही भक्त हूँ, ब्रह्मर्षे ! कृपा करिये चाण्डाल का दास होना अत्यन्त ही कष्टदायक होगा ॥९३॥ हे प्रभो ! मेरे पास धन नहीं है, फिर भी मैं आपका दास होकर रहूँगा, आप जो आज्ञा देंगे वही करूँगा तथा सदा आपके चित्त के अनुसार ही कार्य करूँगा ॥९४॥ विश्वामित्र ने कहा—राजन् ! यदि तुम मेरे अधीन होते हो तो मैंने तुम्हें इस चाण्डाल को एक अर्बुद मुद्रा में बेच दिया है, अब तुम इसके ही दास बनो ॥९५॥ हरिश्चन्द्र बोले—जिससे यह विश्वामित्रजी सन्तुष्ट हो, वही करो, मैं तुम्हारा दास होकर सेवा कार्य करूँगा ॥९६॥ चाण्डाल बोला—सौ योजन विस्तार वाली भूमि, जो अनेकों ग्रामों से युक्त है, उसे मैं विश्वामित्रजी को दे रहा हूँ ॥९७॥

एवमुक्तेतदातेनश्वपाकोहृष्टमानस ।
विश्वामित्रायतद्द्रव्यदत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम् ॥९८॥
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ।
इष्टबन्धुवियोगार्तननयन्निजपक्कणम् ॥९९॥
हरिश्चन्द्रस्ततोराजावसन्चण्डालपक्कणे ।
प्रातर्मध्याह्नसमयेसायञ्चैतदगायत ॥१००॥
बालादीनमुखीदृष्ट्वाबालदीनमुखपुर ।
मास्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनोनृप ॥१०१॥
उपात्तवित्तोविप्रायदत्त्वावित्तमतोऽधिकम् ।
नसामामृगशावाक्षीवेत्तिपापतरकृतम् ॥१०२॥
राज्यनाश सुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रय. ।

प्राप्ताचण्डालतान्वेयमहोदुःखपरम्परा १०३॥
एवंसंनिवसंश्चित्यंसस्मारदयितंसुतम् ।
भार्यांचात्मसमाविष्टाहृतसर्वस्वआतुर ॥१०४॥
कस्यचित्वथकालस्यमृतचैलापहारक ।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशानेतद्वशानुग ॥१०५॥

पक्षियो ने कहा—फिर राजा के मुख से 'जो आज्ञा' शब्द निकलते ही चाण्डाल रूपी धर्म ने विश्वामित्र को वह धन देकर राजा को बाँध लिया और अपने निवास को गया ॥९८॥ राजा हरिश्चन्द्र भार्या तथा पुत्र के वियोग से पहिले ही अत्यन्त कातर थे, फिर चाण्डाल द्वारा डंडे मारने से वे और भी व्याकुल हो गये ॥९९॥ फिर चाण्डाल के यहाँ रहते हुए वे प्रात मध्याह्न, सायंकाल आदि सब समय इसी प्रकार कहते रहते थे ॥१००॥ वह दीन मुख वाली रानी, अपने दीनमुख बालक को देख कर दुःखी चित्त से सोचती होंगी कि धनोपार्जन कर राजा इस ब्राह्मण को अधिक धन देकर हमें छुड़ा लेंगे, परन्तु उसे यह क्या मालूम होगा कि मै चाण्डाल के दासत्व रूपी पाप की दशा में गिर गया हूँ ॥१०१–१०२॥ राज्य का नाश, सुहृदो से विछोह, पत्नी-पुत्र का विक्रय और अन्त मे चाण्डालत्व की प्राप्ति अहो, दुःख पर दुःख मिल रहा है ॥१०३॥ सर्वस्व से भ्रष्ट वह राजा चाण्डाल के घर रहता हुआ दुःखित चित्त से प्रिय पुत्र और भार्या का स्मरण करने लगा ॥१०४॥ फिर कुछ समय व्यतीत होने पर चाण्डाल के दास राजा हरिश्चन्द्र को श्मशान मे मृतको के वस्त्र लेने के कार्य पर नियुक्त किया गया ॥१०५॥

चण्डालेनानुशिष्टश्चमृतचैलापहारिणा ।
शवागमनमन्विच्छन्निहतिष्ठन्दिवानिशम् ॥१०६॥
इदं राज्ञेऽपिदेयञ्चषड्भागन्तुशवप्रति ।
त्वयस्तुममभागा स्युर्द्वौभागौतववेतनम् ॥१०७॥
इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमन्दिरम् ।
दिशंतुदक्षिणांयत्रवाराणास्यास्थितातदा ॥१०८॥
श्मशानघोरसंनादंशिवाशतसमाकुलम् ।
शवमौलिसमाकीर्णदुर्गन्धबहुधूमकम् ॥१०९॥

पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसकुलम् ।
महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥११०॥
गृध्रगोमायुसकीर्णश्वबृन्दपरिवारितम् ।
अस्थिसघातसकीर्णमहादुर्गन्धसकुलम् ॥१११॥
नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ।
हापुत्रमित्रहाबन्धोभ्रातर्वत्सप्रियाद्यमे ॥११२॥
हापतेभगिनिमातर्हामातुलपितामह ।
मातामहपित पौत्रक्वगतोऽस्येहिबान्धव ॥११३॥

मृतकों के वस्त्र का अपहरण करने वाले चाण्डाल ने आदेश दिया कि दिनरात श्मशान में रहकर कौन मुर्दा आता है, यह देखो तथा ॥१०५॥ प्रत्येक मृतक से जो धन प्राप्त हो, उसका छठा भाग राजा को दो, तीन भाग मेरे लिए और दो भाग अपने वेतन में लो ॥ १०७ ॥ इस प्रकार चाण्डाल की आज्ञा प्राप्त कर राजा हरिश्चन्द्र दक्षिण दिशामें स्थित श्मशान में गये ॥ १०८ ॥ उसकी चारों दिशाएँ घोर शब्द से प्रतिध्वनित हो रही थी, गीदड़ियों से युक्त भूत-प्रेतकों से व्याप्त तथा दुर्गन्धित धूम्र से आच्छन्न ॥ १०९ ॥ भूत, पिशाच, डाकनी, यक्ष, ग्रह आदि से युक्त और उनके शब्दों से निनादित था तथा इधर उधर अनेक श्वान घूम रहे थे, वह स्थान अस्थियों और महा दुर्गंध से भर रहा था ॥ ११० ॥ ॥ १११ ॥ मृतक सम्बन्धियों के आर्त्तनाद के कारण अत्यन्त कोलाहलमय था, वहाँ हा मित्र, हा पुत्र, हा वत्स, हा बन्धो, हा प्रिये ॥ ११२ ॥ हा नाथ ! हा बहिन, हा माता, हा मामा, हा पिता, हा पितामह, हा मातामह, हा पौत्र, आज किधर गये, एक बार तो आओ ॥ ११३ ॥

इत्येवंवदतायत्रध्वनि सश्रूयतेमहान् ।
यत्रनेत्रैरनिमिषं शवाभयमिवाविशन् ॥११४॥
निमीलितैश्चनयनैर्बंधुचितापथेस्थित ।
ज्वलन्मासवसामेदश्छमच्छमितसकुलम् ॥११५॥
अर्द्धदग्धा शवा श्यामाविकसद्दन्तपक्तय ।
हसंत्येवाग्निमध्यस्था कायस्येयदशात्विति ॥११६॥
अग्नेश्चटचटाशब्दोत्रयसामस्थिपक्तिषु ।

बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुत्कसेषुप्रहर्षज ॥११७॥
गायताभूतवेतालपिशाचगणरक्षासाम् ।
श्रूयतेसुमहान्घोर कल्पान्तइवनि स्वन ॥११८॥
महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसकुलम् ।
तदुत्थभस्मकूटैश्चवृतसास्थिभिरुन्नतै ॥११९॥

इस भाँति अनेक प्रकार के विलाप युक्त आर्त्तस्वर वहाँ सुनाई पड़ते थे, तथा भूतक बिना पलक मारे देखते हुए लगते थे, उनसे भी भय प्रतीत होता था ॥ ११४ ॥ कोई नेत्र खोले हुए बन्धु-चिन्तन मे था, माँस, मज्जा, मेद के दग्ध होने पर छन-छन शब्द निकलता था उससे चारो दिशाएँ व्याप्त होती थी ॥ ११५ ॥ कोई शव अग्नि मे पड़ कर अधजला होने पर काला होगया, दन्तपंक्ति निकल गई उसे देखने से लगता 'उस देह की यह दशा ?' जैसे विचार उसकी हँसी उड़ा रहे हो ॥ ११६ ॥ हड्डियो पर बैठे हुए कौओ के विभिन्न प्रकार के शब्द हो रहे थे, मृतको के बाँधव आर्त्तनाद कर रहे थे, अग्नि के चट चट और चाण्डालों के आनन्द सूचक शब्दो से श्मशान भर रहा था ॥ ११७ ॥ कहीं भूत, पिशाच, बेताल और राक्षसो के नृत्य-गान के स्वर उठ रहे थे, जिससे वह स्थान भयकर प्रलयात्मक प्रतीत होता था ॥ ११८ ॥ कहीं कहीं भस्म के और गोबर के ढेर दिखाई देरहे थे, वे भस्म कण कभी उड उड कर अस्थियो पर गिरती हुई पर्वत जैसी सुन्दरता दिखाती थी ॥ ११९ ॥

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसकुलम् ।
अनेकशब्दबहुलश्मशाननरकायते ॥१२०॥
सवह्निगर्भैरशिवै शिवास्तैर्निनादितभीषणारावगह्वरम् ।
भयंभयस्याप्युपसर्जनैर्भृशश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥१२१॥
सराजातत्वसप्राप्तोदु खित शोचनोद्यत ।
हाभृत्यामन्त्रिणोविप्रा क्वतद्राज्यविधेमतम् ॥१२२॥
हाशैव्येपुत्रहाबालमात्यक्त्वामन्दभाग्यकम् ।
श्वामित्रस्यद्वेषेणगता कुलापितेमम ॥१२३॥
इत्येवचिन्तयस्तत्रचण्डालोक्त पुन पुन ।

मलिनोरूक्षसर्वांग केशवान्नन्ध्रवान्बजी ॥१२४॥
लगुडोकालकल्पश्चभावश्चापिततस्तत ।
अस्मिञ्शवइदमूल्यप्राप्त प्राप्स्यामिचाप्युत ॥१२५॥
इदमस्मइदराज्ञेमुख्यचडालकेविदम् ।
इतिध्यावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरगत ॥१२६॥

कहीं काकवली की माला और दीपक पड़े थे, कहीं सियार अमंगल सूचक शब्द बोल रहे थे, इस कारण वह स्थान नरक तुल्य प्रतीत हो रहा था ॥ १२० ॥ कहीं सियारों का भयंकर शब्द, मनुष्यों की क्रन्दन ध्वनि सुनाई पड़ रही थी, जिससे भय भी अत्यन्त भीत होरहा हो ॥ १२१ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस घोर श्मशान में जाकर सोचने लगे—वह सेवक गण, मन्त्रिगण, विप्रगण और वह राज्य कहाँ गया ? ॥ १२२ ॥ हा शैव्या ! हा पुत्र ! तुम इस अभागे को त्याग कर कहाँ गये ? देखो ! अकेले विश्वामित्र के क्रोध से ही मेरा सर्वस्व छिन गया ॥ १२३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते हुए भी चाण्डाल के वचन की चिन्ता अधिक थी । उनका मलिन वेश, रूखा शरीर, सब देह में बाल और दुर्गंध तथा ध्वजा ॥ १२४ ॥ और लाठी लेकर यमराज के समान चलना तथा इस पर विचार करना कि इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इसमें इतना मिल गया और इतना अभी लेना है ॥ १२५ ॥ यह मेरा, यह राजा का और यह उसी चाण्डाल का, ऐसी चिन्ता करते हुए इधर-उधर घूमते तब प्रतीत होता कि जीवित ही प्रेत होगये हैं ॥ १२६ ॥

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रह ।
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराघ्रिक ॥१२७॥
नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यगुलि श्वसन् ।
नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायण ॥१२८॥
तदीयमाल्यसश्लेषकृतमस्तकमण्डन ।
नरालौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहु ॥१२९॥
एवद्वादशमासास्तुनीता शतसमोपमा ।
सकदाचिन्नृपश्रेष्ठ श्रान्तोबन्धुवियोगवान् ॥१३०॥
निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गोनिश्चेष्ट सुप्तएवच ।

तत्रापिशवनीयेसदृष्टवानद्भुतमहत् ॥१३१॥
श्मशानाभ्यासयोगेनदेवस्यबलवत्तया ।
अन्यदेहेनदत्वानुसुखेनगुरुदक्षिणाम् ॥१३२॥
तदाद्वादशवर्षाणिदु-खदानात्तु निष्कृति. ।
आत्मानसददर्शाथपुल्कसीगर्भसंभवम् ॥१३३॥
तत्रस्थश्चाप्यसौराजासोऽचिन्तयदितदा ।
इतोनिष्क्रान्तमात्रोहिदानधर्मकरोम्यहम् ॥१३४॥

फटे हुए वस्त्र से गाँठ लगाकर कन्था धारण किये हुए तथा मुख, भुजा, उदर और पावो मे चिता-भस्म लगाये हुए ॥ १३७ ॥ हाथ की अँगुलियो मे मेद, वसा और मज्जा लगी रहती थी और मृत पिण्डो से शेष भात का आहार करके रहते थे ॥ १२८ ॥ मृतक की उतारी हुई माला को धारण कर 'हा, हा, शब्द कहते हुए, दिन या रात्रि कभी भी नही सोते थे ॥ १२९ ॥ इस प्रकार श्मशान मे रहते हुए उनका एक वर्ष सौ वर्षों के समान व्यतीत हुआ फिर किसी दिन वे वस्तु वियोग से श्रान्त होकर ॥ १३० ॥ रूखे शरीर से निश्चेष्ट सोगए, तब स्वप्न मे उन्हें एक अत्यन्त अद्भुत बात दिखाई पड़ी ॥ १३१ ॥ श्मशान के अभ्यास या दैवेच्छा से उन्होंने देखा कि अन्य देह धारण करके गुरु को दक्षिणा देकर ॥ १३२ ॥ बारह वर्ष दुःख भोग लेने पर मुझे मुक्ति मिलेगी, फिर उन्होंने देखा कि मै डोमनी के गर्भ मे स्थित हूँ ॥ १३३ ॥ उस डोमनी के गर्भ मे पड़े हुए ही वे सोचने लगे कि इस गर्भ से निकलते ही दान-धर्म का आचरण करूँगा ॥ १३४ ॥

अनन्तरंसजातस्तुतदापुल्कसबालक ।
श्मशानमृतसंस्कारकरणेषुसदोद्यत ॥१३५॥
प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मशानेऽथमृतोद्विज ।
आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राश्रुनोगुणी ॥१३६॥
मूल्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणा ।
ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥१३७॥
पापिष्ठमशुभकर्मकुरुत्वपापकारक ।
हरिश्चन्द्र-पुराराजाविश्वामित्रेणपुल्कस ॥१३८॥

कृत पुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात् ।
यदानक्षमतेतेषातँ सशप्तोरुषातदा ॥१३४॥

तभी पुन दिखाई दिया कि उसी गर्भ से उत्पन्न होकर उसी जाति के कर्म मे उद्यत हुँ ॥ १३५ ॥ जब चाण्डाल के बालक रूप मे सात वर्ष की आयु हुई तब किसी गुणज्ञ एक अनाथ ब्राह्मण के शव को लोग श्मशान मे लाये ॥१३६॥ उस समय दाह करने का मूल्य देने मे असमर्थ वे ब्राह्मण उनसे अत्यत तिरस्कृत होते हुए बोले कि विश्वामित्र का कौन सा पापमय कार्य था ? अरे, पापकर्मा ! तू ऐसे ही अशुभ कर्म करता रहता है, पूर्व जन्म मे तू राजा हरिश्चन्द्र था, तुझे विश्वामित्र ने चाण्डाल बना दिया है ॥ १३७ ॥ १३८ ॥ तूने ब्राह्मस्व न देकर पुण्य नष्ट किया, इनसे विश्वामित्र के द्वारा तुझे चाण्डाल-योनि मे आना पडा ? जब वे ब्राह्मण शवदाह का मूल्य न देने के कारण दाह न कर सके, तब उन्होने अत्यत क्रोध पूर्वक राजा को शाप दिया ॥ १३९ ॥

गच्छत्वनरकघोरमधुनैवनराधम ।
इत्युक्तमात्रेवचनेस्वप्नस्थ सनृपस्तदा ॥१४०॥
अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान् ।
तै सगृहीतमात्माननीयमानतदाबलात् ॥१४१॥
पश्यतिस्मभृशखिन्नोहामात पितरद्यमे ।
एववादीसनरकेतैलद्रोण्यानिपातित. ॥१४२॥
ककचै पाट्यमानस्तुक्षुरधारामिरप्यच ।
अन्धेतमसिदु खार्त्त पूयशोणितभोजन ॥१४३॥
सप्तवर्षमृतात्मानपुल्कसत्वेददर्शह ।
दिनदिनतुनरकेदह्यतेपच्यतेऽन्यत ॥१४४॥
खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्रमार्यतेपाट्यतेऽन्यत ।
क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्रशीतवाताहतोऽन्यत ॥१४५॥
एकदिनवर्षशतप्रमाणनरकेऽभवत् ।
तथावर्षशततत्रश्वावितनरकेभटै ॥१४६॥
ततोनिपातितोभूमौविश्वाशीश्चाण्यजायत ।
वान्ताशीशीतदग्धश्चमासमात्रेमृतोऽपिस. ॥१४७॥

अरे नराधम ! तू अभी घोर नरक को प्राप्त हो, ब्राह्मणों की बात सुन कर स्वप्न देखते हुए उस राजा ने ॥ १४० ॥ देखा कि भयङ्कर यमदूत अपने हाथों में पाश लिए हुए चले आते हैं और बल पूर्वक मेरी आत्मा को बाँध ले चले ॥ १४१ ॥ तब वे खेद पूर्वक 'हा माता' हा पिता, आज मेरी ऐसी दशा होगई, इस प्रकार विलाप करने लगे, तभी यमदूतों ने उन्हें नरक में लेजाकर तैल-द्रोणी में डाल कर ॥ १४२ ॥ तीक्ष्ण धार वाले आरों से चीर कर अन्धतम नरक में गिरा कर पीव और रक्त का आहार किया ॥ १४३ ॥ इस प्रकार वह आत्मा सात वर्ष तक नरक में पड़ी हुई दिखाई देने लगी, कभी जलता हूँ, कभी कोल्हू में पिलता हूँ ॥ १४४ ॥ कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी मारा जाता, कभी चीरा जाता, कभी खायी में फेंका जाता और कभी शीत वा वायु से आहत होता ॥ १४५ ॥ उनका एक-एक दिन सौ-सौ वर्ष के समान व्यतीत होरहा था, इस प्रकार दुःख-भोग करते-करते एक दिन नरक रक्षकों से सुना कि सौ वर्ष पूरे होगये हैं ॥ १४६ ॥ तब उन्हें यमदूतों ने पृथिवी में गिराया और उन्होंने विष्ठा खाने वाले श्वान की योनि में जन्म लिया और एक दिन भयङ्कर शीत से व्याकुल होकर एक मास में ही मर गये ॥ १४७ ॥

अथापश्यत्खरदेहहस्तिमवानरपशुम् ।
छागबिडालकङ्कचगार्मविपक्षिणकृमिम् ॥१४८॥
मत्स्यकूर्मवराहचश्वाविधकुक्कुटशुकम् ।
शरिकास्थावराश्चैवसर्पमन्याश्चदेहिन ॥१४९॥
दिवसेदिवसेजन्मप्राणिन प्राणिनस्तदा ।
अपश्यद्दु खसन्तप्तोदिनवर्षशततथा ॥१५०॥
एववर्षशतपूर्णगततत्रकुयोनिषु ।
अपश्यच्चकदाचित्सराजातत्स्वकुलोद्भवम् ॥१५१॥
तत्रस्थितस्यतस्यापिराज्यद्यूतेनहारितम् ।
भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनगत ॥१५२॥
तत्रापश्यत्ससिहवैव्यादितास्यभयावहम् ।
बिभक्षयिषुमायातशरभेणसमन्वितम् ॥१५३॥

पुनश्चभक्षित सोऽपिभार्याशोचितुमुद्यत ।
हाशैब्येक्वगतास्यद्यमामिहापास्यदु खितम् ॥१५४॥
अपश्यत्पुनरेवापिभार्यास्वाहृतपुत्रकाम् ।
लायस्वत्वहरिश्चद्रकिङ्कृतेनतवप्रभो ॥१५५॥
पुत्रस्तेशोच्यतापाप्तोभार्य्यायाशैब्ययासह ।
सनापश्यत्पुनरपिधावमान पुन पुन ॥१५६॥

फिर गधे की योनि मे, फिर हाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, कौआ, नेवला, पक्षी और कृमि ॥ १४८ ॥ फिर मछली, कछुआ, शूकर, भृग, मुरगा तोता, मैना, ऋक्ष, अजगर आदि विभिन्न योनियो मे ॥ १४९ ॥ तथा अन्य कुयोनियो मे जन्म लेकर दु ख भोगते हुए सौ वर्ष व्यतीत होगये ॥ १५० फिर देखा कि वह पुन अपने ही कुल मे उत्पन्न होकर राजा बने है ॥ १५१ वहाँ कभी जुआ खेल कर राज्य, स्त्री और पुत्रादि को हार गये और एकाक वन मे गये ॥ १५२ ॥ वहाँ देखा कि एक भयानक सिह मुख फैलाये हु उनका भक्षण करने के निमित्त उनकी ओर आरहा है ॥ १५३ ॥ फिर उस द्वारा खाये जाते हुए 'हा शैब्ये ! इस दु खी हृदय का त्याग कर तुम कह जाती हो' इस प्रकार जैसे ही शोक विह्वल हुए ॥ १५४ ॥ वैसे ही देखा रानी शैब्या पुत्र सहित वहाँ आकर 'हा राजन् ! हमारी रक्षा करो, जुआ खेलने से आपका क्या कार्य है ॥१५५ ॥ देखिये आपकी पत्नी शैब्या अप पुत्र के सहित किस शोचनीय दशा मे पड गयी है, इस प्रकार विलाप कर रह है, वे बारबार उसे देखने के लिए इधर-उधर जाते है, परन्तु उसे देख नह पाते ॥ १५६ ॥

अथापश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थ सनराधिप ।
नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनाबलात् ॥१५७॥
हाहावाक्यप्रमु चन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत्पुनस्तत्रधर्मराजस्यशासनात् ॥१५८॥
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ।
विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजस्तदार्थत ॥१५९॥
इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीयतेबलवद्विभु ।

श्राद्धदेवेनकथितं विश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥१६०॥
तत्रापितस्यविकृतिर्नाधर्मोत्थाव्यवर्द्धत ।
एता सर्वादशास्तस्यया स्वप्नेसम्प्रदर्शिता ॥१६१॥
सर्वास्तास्तेनसम्भुक्तायावद्वर्षाणिद्वादश ।
अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ॥१६२॥

फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने को स्वर्ग में वास करते हुए देखा तथा दीन, वस्त्र विहीन और खुले केश वाली रानी शैव्या को किसी पुरुष द्वारा बल पूर्वक हरण करते हुए देखा ॥ १५७ ॥ वह 'महाराज' रक्षा करो, रक्षा करो, कहती हुई बारबार चिल्ला रही है, फिर देखा कि यमराज के शासन में स्थित यमदूत ॥ १५८ ॥ आकाश में कह रहे हैं कि राजन् ! विश्वामित्रजी ने यमराज को आपके विषय में सूचना दी है, अतः आप यहाँ आवें, ऐसा कह कर घोर शब्द करते हैं ॥ १५९ ॥ फिर देखा कि इतना कहने के पश्चात् यमदूत मुझे नागपाश में दृढ़ता से बाँध कर ले चले और यमराज तथा विश्वामित्र के चरित्र को कहते हैं ॥ १६० ॥ यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र विभिन्न प्रकार के यातना भोग रहे थे, फिर भी उनके चित्त में कोई अधार्मिक विकार नहीं आया । इसभाँति जो-जो दशा उन्होंने स्वप्न में देखी ॥ १६१ वह सब उन्होंने इस बारह वर्ष के समय में निरन्तर भोगी थी, बारह वर्ष व्यतीत होने पर यमदूतों के द्वारा वे बल पूर्वक ले जाये गये ॥ १६२ ॥

यमसोऽपश्यदाकारंदुराचचनराधिपम् ।
विश्वामित्रस्यकोपोऽयंदुर्निवार्योमहात्मन ॥१६३॥
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिक ।
गच्छत्वमानुषलोकंतु स्वशेषंचभुंक्ष्वकर्म ।
गतस्यतत्रराजेन्द्रश्रेयस्तवभविष्यति ॥१६४॥
व्यतीतेद्वादशेवर्षेतु स्वस्यान्तेनराधिप ।
अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतैः प्रणोदित ॥१६५॥
पतितोयमलोकाच्चविबुद्धोभयसंभ्रमात् ।
अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम् ॥१६६॥
स्वप्नेतु स्वमहद्दृष्टं यस्यान्तोनोपलभ्यते ।

स्वप्नेदृष्टं मयायत्तु किन्तुमेद्वादशी समा ॥१६७॥
गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसास्तुससम्भ्रमात् ।
नेत्यूचु केचित्तत्रस्थाएकमेवापरेऽब्रुवन् ॥१६८॥

वहाँ उन्होंने यमराज का दर्शन किया तब यमराज बोले—राजन् ! यह महात्मा विश्वामित्रजी के क्रोध का दुर्निवार्य फल है ॥ १६३ ॥ ये विश्वामित्रजी आपके पुत्र की सी मृत्यु करायेंगे, इसलिए अब मर्त्यलोक में जाकर अपने पुत्रों को भोगिये, वहाँ जाने पर तुम्हारा कल्याण होगा ॥ १६४ ॥ वहाँ बारह वर्ष व्यतीत होने पर दुःखों का अन्त हो जायगा, यमराज के ऐसा कहने पर यमदूतों ने उन्हें आकाश से फेंक दिया ॥ १६५ ॥ यमलोक से गिरते ही भय और श्रम से वे मूर्छित जैसे पड़े और सोचने लगे कि यह मैं स्वप्न देखने के समान अद्भुत क्या हुआ ? ॥ १६६ ॥ जैसे स्वप्न में घोर दुःख दिखाई दिये हैं, वे तो असीमित ही हैं ; किंतु स्वप्न में जो देखा क्या वे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके ॥ १६७ ॥ यह कहकर उन्होंने अपने पास के चाण्डालों से पूछा तो उनमें से किसी ने कहा कि अभी बारह वर्ष व्यतीत नहीं हुए और किसी ने कहा बीत भी सकते हैं ॥ १६८ ॥

श्रुत्वादुःखीतदाराजादेवाब्धरणमीयिवान् ।
स्वस्तिकुर्वन्तुमेदेवा यौवनायाबालकस्यच ॥१६९॥
नमोऽग्नयेमयिमहतेनम कृष्णायवेधसे ।
पराद्वरायगुह्यायपुराणायाव्ययायच ॥१७०॥
नमोबृहत्पतेतुभ्यनमस्तेवासवायव ।
एवमुक्त्वाऽवराजानुयुक्त पुल्कसकर्मणि ॥१७१॥
जवानामूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ।
मलिनोजटिल कृष्णोलगुडीविह्वलोनृप ॥१७२॥
नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यवैस्मृतिगोचरे ।
नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छ्मशानेनिवसंस्तदा ॥१७३॥
अथाजगामस्वसुतमृतसादायलापिनी ।
भार्यातस्यनरेन्द्रस्यालर्पदष्ट हिबालकम् ॥१७४॥
हावत्सहापुत्रशिशोहत्थवैवदतीमुहु ।

कृशाविवर्णाविमना पपसुव्यस्तशिरोरुहा ॥१७५॥

यह सुन कर राजा हरिश्चन्द्र ने देवताओं की शरण लेते हुए कहा—हे देवगण ! आप मेरी रानी शैव्या और पुत्र का मंगल करें ॥ १७६ ॥ सर्व प्रधान धर्म को नमस्कार है विधाता रूप कृष्ण को नमस्कार है, सर्वश्रेष्ठ, अव्यय एवं पुराण पुरुष को नमस्कार है ॥ १७० ॥ हे बृहस्पते ! आपको नमस्कार है, हे वासव ! आपको नमस्कार है, ऐसा कह कर राजा हरिश्चन्द्र पुन चाण्डाल रूप धारण ॥ १७१ ॥ मृतक का मूल्य निर्धारण करने में लगे और उसी प्रकार मलिनवेष, जटा धारण किये हुए, लकुटिधारी कृष्णवर्ण युक्त स्मृति को भुलाये हुए विह्वल हो उठे ॥ १७२ ॥ उस समय उनकी स्मृति में भार्या या पुत्र कोई भी नहीं आया, क्योंकि सत्य से भ्रष्ट होकर श्मशान में उत्साहहीन रहते थे ॥ १७३ ॥ तभी उनका जो पुत्र सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त होगया था, उसे लेकर उनकी पत्नी रोती हुई श्मशान में आयी ॥ १७४ ॥ वह अत्यन्त कृश देह, दुखी हृदय वाली, शिर में धूलि-धूसरित थी, वह बार-म्बार 'हा पुत्र' पुकारती हुई रुदन कर रही थी ॥ १७५ ॥

हारराजस्वद्यबालत्वपश्यसीममहीतले ।
रममाणपुराहृष्ट दष्टकृष्णाहिनामृतम् ॥१७६॥
तस्याविलापशब्दमाकर्ण्यसंसरराजिप ।
जगामत्वरितोऽतिसंविताम्रतकम्बल ॥१७७॥
सत्तारोरुयतीभार्यानाभ्यजानात्तुपार्थिव ।
चिरप्रवाससन्तप्तापुनर्जातामिबाबलाम् ॥१७८॥
सापिलचारुकेशान्तपुराहृष्ट्वाराजडालकम् ।
नाभ्यजानान्नृपसुतालुष्कवृक्षोपमनृपम् ॥१७९॥
सोऽपिकृष्णपटेदानदृष्ट्वाशीविषदंशितम् ।
नरेन्द्रलक्षणोपेतचिन्तासापनरेश्वर ॥१८०॥

रानी कहने लगी—राजन् ! जिस चन्द्रमा के समान बालक को आप खिलाते थे, उसने आज सर्पदंश से प्राण छोड दिया है, उसे एक बार तो देखो ॥ १८० ॥ उस विलाप को सुन कर 'मृतक-वस्त्र प्राप्त होगा' ऐसा विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ॥ १७६ ॥ वे प्रवास के

नन्दाप में और पुत्र शोक से दुःखित हुई अवन्ती रानी को न पहिचान सके ॥ १७८ ॥ रानी शैव्या ने भी राजा को मनोहर केश युक्त देखा था और अब वे जटिल तथा शुष्क वृक्ष के समान हो रहे थे, इसलिए वह उन्हें न पहिचान सकी ॥ १७९ ॥ उस समय सर्प-दंश से मृत उस बालक को काले वस्त्र में लपेटा हुआ, परन्तु राजचिह्नों से युक्त देख कर राजा विचार करने लगे ॥ १८० ॥

तस्यास्यचन्द्रबिम्बाभसुभ्रूरम्यसमुन्नसम् ।
नीला केशा कुञ्चिताश्चसमादीर्घास्तरङ्गिता ॥१८१॥
राजीवनेत्रयुगलोबिम्बोष्ठपुटसंवृत ।
चतुर्दष्ट्रश्चतु किष्कुर्दीर्घायोदीर्घबाहुक ॥१८२॥
चतुर्लेख करोमत्स्यवयुक्तंकपर्वत ।
शिरालुपादोगभीर सूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधर ॥१८३॥
अहोकष्टनरेन्द्रस्यकस्याप्येषकुलेशिशु ।
जातोनीत कृतान्तेनकामप्याशादुरात्मना ॥१८४॥
एवदृष्ट्वाहितंबालमात्तुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतोबालोरोहिताश्वोऽञ्जलोचन ॥१८५॥
सोऽप्येतामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागत ।
नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ॥१८६॥
हावत्सकस्यपापस्यअपथ्यानादिदमहत् ।
दुःखमापतितघोरयस्यान्तोनोपलभ्यते ॥१८७॥
हानाथराजन्भवतामामानाश्वास्युदुःखिताम् ।
क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेविश्वस्यस्थीयतेकथम् ॥१८८॥
राज्यनाश सुहृत्त्यागोनार्य्यातिनयविक्रय ।
हरिश्चन्द्रश्चराजर्षे किमिदेनकृतत्वया ॥१८९॥

जिसका चन्द्र के समान मुख, सुन्दर भौं, उच्च नासिका, घुँघराले केश, समान तथा दीर्घ तरंग युक्त ॥ १८१ ॥ एवं जैसे दोनों ओष्ठ, चार दाढ़े, सुशोभित मुख और विशाल भुजाएँ ॥ १८२ ॥ हाथ में मत्स्य, जौ युक्त तथा पर्वत रेखा, कंठ के पीछे की नाड़ी और पैर गंभीर, पतली त्वचा एवं उदर,

कर में बिजली रेखा का दिखायी देना ॥ १८३ ॥ इससे इसने किसी राजकुल में जन्म लिया प्रतीत होता है, अहो, काल ने इसकी क्या दशा करदी है ॥ १८४ ॥ फिर माता की गोद में पड़े हुए उस बालक को भले प्रकार देखने पर उन्हें रोहिताश्व की याद आगई ॥ १८५ ॥ उन्होंने सोचा कि यदि दुरात्मा काल के वशीभूत न हुआ हो तो मेरा रोहिताश्व भी इतनी ही अवस्था का होगया होगा ॥ १८६ ॥ इधर रानी बोली—हा पुत्र ! किस पाप के कारण इस असीम घोर दुःख की प्राप्ति हुई है ॥ १८७ ॥ हे नाथ ! हे राजन् ! तुम इस सत्ता को त्याग कर निष्ठुर चित्त से कहाँ किस प्रकार रहते हो ॥ १८८ ॥ एक राज्य का छिनना, उस पर भी बन्धुओं से वियोग, फिर पत्नी-पुत्र का विक्रय, हा विधाता ! क्या तूने राजर्षि हरिश्चन्द्र का सर्वनाश ही नहीं कर डाला ? ॥ १८९ ॥

इतिलस्यावचः श्रुत्वाराजास्वम्यानतश्च्युतः ।
प्रत्यभिज्ञायदयितापुत्रंचनिधनगतम् ॥१९०॥
कथंनामगृहेयुक्तामममयोपिद्वराभवेत् ।
बालश्चममृतः क स्यादितिराजाविचारयन् ॥१९१॥
कष्टशैब्येयमेषाहिसबालोऽयमितीरयन् ।
रुरोदद्दु खसन्तप्तोमूर्च्छामभिजगामच ॥१९२॥
साचतत्प्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ।
मूर्च्छितानिपपातार्तानिश्चेष्टाधरणीतले ॥१९३॥
चेत सप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ।
विलेपतु सुसन्तप्तौशोकभारातिपीडितौ ॥१९४॥
हावत्ससुकुमारतेत्वक्षिभ्रूनासिकालकम् ।
पश्यतोमेमुखदीनहृदयंकिनदीर्यते ॥१९५॥
तातताततिमधुरब्रुवाणस्वयमागतम् ।
उपगृह्यवदिष्येकवत्सवत्सेतिसौहृदात् ॥१९६॥

उसके वचन सुनकर राजा ने अपने पुत्र और स्त्री को पहिचान लिया तथा अपने स्थान से गिर पड़े ॥ १९० ॥ यह स्त्री कौन है, क्या मेरी पत्नी है ? यह मृत बालक कौन है ? इस प्रकार विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र

व्याकुल हो उठे ॥ १६१ ॥ हा, कैसा दुःख है ? यही वह जैव्या है और यही वह बालक है ऐसा कहते हुए अत्यन्त सन्ताप से रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥ १६२ ॥ रानी भी राजा को पहिचान कर मूर्च्छा को प्राप्त होकर पृथिवी मे गिर पड़ी ॥ १६३ ॥ फिर दोनों ही चैतन्य होकर शोक से सन्तप्त होकर अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ १६४ ॥ राजा ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारे सुन्दर नेत्रादि से युक्त सुकोमल वदन को इस प्रकार मलीन देख कर हृदय फट क्यों नहीं जाता ? ॥ १६५ ॥ मीठे स्वरों से तात, तात, कहना हमें अब कौन मेरे पास आयेगा ? अब मैं किसे स्नेह पूर्वक गोदी में लेकर वत्स, वत्स करूँगा ॥ १६६ ॥

कस्यजानुप्रणीतेनपिङ्गेनश्लिष्टिरेणुना ।
ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति ॥१६७॥
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दन ।
मयाकुपित्राहावत्सविक्रीतोयेनवस्तुवत् ॥१६८॥
हृत्वाराज्यमशेषमेसबान्धवजनमहत् ।
दैवाहिनानृशंसेनदष्टोमेतनयस्तत ॥१६९॥
अहंदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ।
निरीक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकृतोऽधुना ॥२००॥
एवमुक्त्वात्तमादायबालकंबाष्पगद्गद ।
परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ॥१॥
अयमपुरुषव्याघ्र स्वरेणैवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसंशय ॥२॥
तथास्यनासिकातुङ्गाअग्रतोऽधोमुखगता ।
दन्ताश्चमुकुलप्रख्या ख्यातकीर्त्तेर्महात्मन ॥३॥
इमश्मानमागत कस्मादद्यपत्तनरेश्वर ।
अपहायपुत्रशोकसापश्यत्पतिंतपतिम् ॥४॥

अब किसी की जाँघ से लगी धूल से मेरा उत्तरीय और शरीर मैला होगा ? ॥ १६७ ॥ हा, तुम मेरे अंग-प्रत्यंग उत्पन्न होकर मन और हृदय के लिए आनन्द देने वाले थे, जो भी मैंने तुम्हें साधारण वस्तु के समान बेच दिया

॥ १९८ ॥ हा देव खरी खुट नाम से मेरा राज्य, साधन तथा सर्वस्व हरण करके अन्त में तुम्हें भी डस लिया ॥ १९९ ॥ दैव रूपी सर्प द्वारा इस पुत्र का मुखारविन्द देखते हुए मैं भी उसके भीषण विष से अधा होरहा हूँ ॥ २०० ॥ राजा से सद्गद कण्ठ से इस प्रकार विलाप करते हुए बालक को अपने गोद में उठाया और तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर गयी ॥ २०१ ॥ रानी बोली—स्वर से प्रतीत होता है कि यही वह पुरुष सिंह महाराज हरिश्चन्द्र है, इसमें संशय नहीं है ॥ २०२ ॥ इनकी ऊँची नासिका अग्रभाग में उन्हीं के समान अधोमुख हुई है, इनकी बाहु-शक्ति भी उन्हीं के समान कैसी जैसी है ॥ २०३ ॥ परन्तु, यह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशान में क्यों है, यह कहती हुई रानी मूर्च्छित पड़े हुए अपने स्वामी को देखने लगी ॥ २०४ ॥

प्रहृष्टाविस्मिताद्दीना नृपं पुत्राधिपीडिता ।
वीक्षन्तीसातनोऽप्यङ्कं दण्डजुगुप्सितम् ॥५॥
श्वपाकाहमनोमोहजनायतलोचना ।
प्राप्यचेतश्चनकै सगद्गदमभाषत ॥६॥
धिक्त्वाद्वैवात्यकरुणनिर्मर्यादजुगुप्सितम् ।
येनायममरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ॥७॥
राज्यनाशमुहृत्त्यागभार्यातनयविक्रयम् ।
प्रापयित्वापिनोमुक्तश्चण्डालोऽहंहतोनृप ॥ ८ ॥
हाराजञ्जातसन्तापामित्थमाक्रन्दशीलिताम् ।
उत्थाप्यनाङ्कपर्यङ्कमारोहनिधिमुच्यते ॥ ९ ॥
नाङ्कपश्यामितेऽङ्कंच शृङ्गारमथवापुन ।
चामरव्यजनंचापिकोऽयंविविधंविधिः ॥ २१० ॥

उस दुर्बलाङ्गी स्त्री ने विस्मय पूर्वक पीड़ा से इधर-उधर देखते हुए राजा के उस चाण्डाल दण्ड को देखा ॥ २०५ ॥ मैं चाण्डाल की पत्नी हूँ ऐसा कहती हुई रानी मोहित होकर सद्गद कण्ठ से बोली ॥ २०६ ॥ अरे, मर्यादा-हीन, निन्दित, नृशंस दैव ! तुझे धिक्कार है, जो तूने मेरे देव-तुल्य स्वामी को चाण्डाल बनाया है ॥ २०७ ॥ तू राज्य से भ्रष्ट करके, बन्धुओं से वियोग करा कर तथा पत्नी-पुत्र को बिकवा कर भी शान्त न हुआ और अब चाण्डालत्व

प्राप्त करा दिया ॥ २०८ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार सताप युक्त हुई इस पृथ्वी पर पड़ी हूँ, आज आप वहाँ से उठा कर अपने बैठने को क्यों नहीं कहते ॥ २०९ ॥ आज आपका छत्र और शृंगार दिखाई क्यों नहीं देता ? वह चमर, वह पंखा कहाँ है ? दव की कैसी विडम्बना है ? ॥ २१० ॥

यस्याग्रे व्रजत पूर्वं राजानोभृत्यतागता ।
स्वोत्तरीयैर्कुर्वन्तीरजस्कमहीतलम् ॥११॥
सोयंकपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ।
मृतनिर्मल्यसूत्रान्तर्गूढकेशेशुदारुणे ॥१२॥
वसानिष्यन्दसंशुष्यमहीपुटकमण्डिते ।
भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंक्षुभीषणे ॥१३॥
गृध्रगोमायुनार्त्त नष्टक्षुद्रविहंगमे ।
चिताधूमायतिस्वानीलीकृतदिगन्तरे ॥१४॥
कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टनिशाचरे ।
चरत्यमेध्येराजेन्द्र श्मशानेदुःखपीडित ॥१५॥
एवमुक्त्वासमाश्लिष्यकण्ठराज्ञोनृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधाराविललापार्त्तयागिरा ॥१६॥

जिन राजा हरिश्चन्द्र के चलते समय राजा लोग मार्ग की धूल अपने दुपट्टे से झाड़ते थे, वही आज असह्य दुःख से दुःखित हुए इस अपवित्र श्मशान में एकाकी घूमते हैं ॥ २११ ॥ जहाँ मृतकों के कपालों के साथ घड़े चारों दिशाओं में पड़े हैं तथा मृतकों के निर्माल्य सूत्र में बहुत-से बाल लगे रहने के कारण जो बुरा दिखाई दे रहा है ॥ २१२ ॥ मृत-देह से टपकती वसा और शुष्क काष्ठ से चारों दिशाएँ भर रही हैं और जो भस्म, अंगार और अधजली हड्डी और मज्जा के कारण अत्यन्त भयंकर हो गया है ॥ २१३ ॥ गृध्र तथा गोमायु के शब्द से छोटे-छोटे पक्षी जहाँ से भागते हैं तथा जहाँ चिता के धूम्र से दिशा-विदिशा नील वर्ण की होगई है ॥ २१४ ॥ और मांस भक्षण से प्रसन्न हुए राक्षस इधर-उधर घूमते हैं, उसी स्थान में वह महाराज संतप्त हुए एकाकी फिरते हैं ॥ २१५ ॥ इस प्रकार कहती हुई रानी शैव्या राजा के कंठ से लिपट कर विलाप करने लगी ॥ २१६ ॥

राजन्स्वप्नोऽथतथ्यवायदेतन्मन्यतेभवान्।
तत्कथ्यतामहाभागमनोवैमुह्यतेमम ॥१७॥
यद्वै तदेवंधर्मज्ञानास्तिधर्मसहायता ।
तथैवविप्रदेवादिपूजनेपालनेभुव ॥१८॥
नास्तिधर्मं कुत सत्यमार्जवंचानृशंसता ।
यत्रत्वधर्मपरम स्वराज्यादवरोपित ॥१९॥
इतितस्यावचः श्रुत्वानिश्वस्योष्णसगदग्दम् ।
कथयामासतन्वंग्यायथाप्राप्तश्चपाकताम् ॥२०॥
रुदित्वासापिसुचिरनि श्वस्योष्णचदुःखिता ।
स्वपुत्रमरणभीरुर्धैर्याद्वृत्त न्यवेदयत् ॥२१॥
श्रुत्वाराजातदावाक्यनिपपातमहीतलं ।
मृतस्यपुत्रस्यतदाजिह्वयालेलिहन्मुखम् ॥२२॥
यमस्यभिक्षायाचाव कृपणौपुत्रगद्धिनौ ।
तस्माच्छीघ्र व्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगत ॥२३॥
प्रियेनरोचयेदीर्घकालक्लेशमुपासितुम् ।
नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम् ॥२४॥

रानी बोली—हे राजन् ! मैं जो देख रही हूँ वह स्वप्न है अथवा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो वह बताइये, क्योंकि मैं तो मोहवश विचारशक्ति को खो चुकी हूँ ॥ २१७ ॥ यदि यह सत्य है तो धर्म सहायक नहीं हुआ तथा देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन भी निष्फल हुआ तथा पृथिवी का पालन भी व्यर्थ ही रहा ॥ २१८ ॥ इसलिए धर्म नहीं, सत्य नहीं, सरलता और सदयता भी नहीं, आपका तो धर्म ही परम बल है, फिर भी राज्य से भ्रष्ट होगये ॥ २१९ ॥ रानी शैव्या की बात सुन कर उष्ण श्वास छोड़ते हुए राजा ने चाण्डालत्व प्राप्ति का यथावत् वर्णन किया ॥ २२० ॥ उनका वृत्तान्त सुन कर रानी भी बहुत समय तक रोती रही और उसने मृत्यु का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥ २२१ ॥ रानी की बात सुन कर राजा पृथिवी पर गिर पड़े और अपने मृतक पुत्र के मुख को चाटने लगे ॥ २२२ ॥ राजा ने कहा—हम उस पुत्रलोभी यमराज से भिक्षा माँगें, हमारा पुत्र जहाँ गया है, हम भी अब वहीं

चल ॥ २२३ ॥ हे प्रिये ! मैं अब अधिक क्लेश नहीं सहना चाहता, परन्तु मैं कैसा मंद भाग्य हूं कि मेरा आत्मा भी मेरे वश में नहीं है ॥ २२४ ॥

चण्डालेनाननुज्ञात प्रवेक्ष्येज्वलनं यदि ।
चाण्डालदासतायास्त्वेपुनरप्यन्यजन्मनि ॥२२५॥
नरकेचपतिष्यामिकीटक कृमिभोजन ।
वैतरण्यामहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥२२६॥
असिपत्रवनेप्राप्यछेदप्राप्यस्यासिदारुणम् ।
तापप्राप्स्यामिदाप्राप्यमहारौरवरौरवौ ॥२२७॥
मरनस्यैकु खजलऔपार प्राणवियोजनम् ।
एकोऽपिबालकोयोयमासीद्वंशकर सुत ॥२२८॥
सोऽपिदैवाम्बुवेगेलमग्न सोऽपिबलीयसा ।
कथप्राणान्विसु चामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गत ॥२२९॥
अथवानार्तिनाकिलष्टोनर पापमवेक्षते ।
तिर्यक्त्वेनास्तितद्दुःखनासिपत्रवनेतथा ॥२३०॥
वैतरण्याकुतस्तादृग्यादृशपुत्रविप्लवे ।
सोऽहसुतशरीरेणदीप्यनानेहुताशने ॥२३१॥
निपतिष्यामितन्दह्निक्षन्तव्यकुकृतमम ।
अनुज्ञाताचगच्छत्व विप्रवेशमशुचिस्मिते ॥२३२॥

यदि मैं चाण्डाल की आज्ञा के बिना अग्नि-प्रवेश करूँगा तो मुझे पुनर्जन्म में भी चाण्डाल का ही दास होना होगा ॥ २२५ ॥ अथवा कृमि भक्षक कीट होकर नरक में पड़ना होगा अथवा वैतरणी, पवि, वसा, रुधिर आदि से युक्त नरक की यातना भोगनी होगी ॥ २२६ ॥ अथवा असिपत्र वन को प्राप्त होकर दारुण छेदन यातना भोगूँगा या रौरव अथवा महारौरव में दुःसह ताप में पड़ूँगा ॥ २२७ ॥ दुःख रूपी सागर में डूबने वाले के लिए पार भूमि प्राण त्याग ही है अहो, मेरा जो एक बालक वंश की वृद्धि वाला था ॥ २२८ ॥ वह भी दैव रूपी जल में डूब गया, इस असीम दुर्गति रूप भोग के होते हुए भी पराधीन होने के कारण प्राण भी कैसे त्याग सकता हूँ ॥ २२९ ॥ अथवा आर्त्त पुरुष को पाप का क्या देखना ? जो असह्य दुःख पुत्र में है, वैसा तिर्यग्

पोनि, अभिप्राय वन ।। २३० ।। अथवा वैसा भी नहीं है, इसलिए पुत्रदेह के साथ मैं भी प्रज्वलित अग्नि में जा जाऊँगा, हे सुभ्रू ! मेरे द्वारा हुए अन्याय आचरण को क्षमा करो और मेरी आज्ञा से उसी ब्राह्मण के गृह जाओ ।। २३१ ।। ।। २३२ ।।

ममवाक्यंचतन्वङ्गिनिबोधाहुतमानसा ।
यदिदत्तं यदिहुतंगुरवोयदितोषिता ।।२३३।।
परत्रयङ्गमोभूयात्पुत्रेणसहचत्वया ।
इहलोकेकुलस्त्वेनङ्गविष्यतिममेङ्गितम् ।।२३४।।
त्वयासहममश्रेयोगमनेपुत्रमार्गणे ।
यन्मयाहसताकिंचिद्रूक्षंवाप्यनुचिस्मिते ।।२३५।।
अश्लीलमुक्तं तत्सर्वंक्षन्तव्यममयाचत: ।
राजपत्नीतिगर्वेणलाघवंयन्नयेस्तेद्विज ।
सर्वयत्नेनतेतोष्य स्वामीवंदेवतंयथा ।।२३६।।
अहमप्यत्रराजर्षेदीप्यमानेहुताशने ।
दु खभारंसहाद्यैवंसहयास्यामिवैत्वया ।।२३७।।
सहस्वर्गंचनरकंसहैवावाहिभुञ्जहे ।
श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ।।२३८।।

मेरे कथन को आदर पूर्वक सुनो यदि मैंने दान, हवन अथवा गुरुजनों को सतुष्टि की है ।। २३३ ।। तो मैं इस पुत्र और तुम्हारे साथ पुनर्जन्म में भेंट करूँगा, अब, इसलोक मेरा यह अभिप्राय सिद्ध होना सभव नहीं है ।। २३४ ।। अथवा तुम्हें भी मेरे साथ पुत्र के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, यदि हास्य के रूप में इस निर्जन स्थान में ।। २३५ ।। कुछ अनुचित बातें निकल गयी हो तो उसे क्षमा करना, उस ब्राह्मण का राजपत्नी होने के अहं में निरादर मत करना उसको स्वामी अथवा देवता के समान सतुष्ट रखना ।। २३६ ।। रानी बोली—हे राजर्षि ! मैं भी अब इस दु ख भार को सहन करने में समर्थ नहीं हूँ, इसलिए इस प्रज्वलित अग्नि में आपके साथ ही प्रवेश करूँगी ।। २३७ ।। वहाँ मैं, पुत्र और आप हम तीनों ही एक स्थान में रह कर स्वर्ग या नरक का भोग करेंगे, रानी की बात सुन कर राजा ने कहा—

हे पतिव्रते ! ऐसा ही करना ।। २३८ ।।

तत्र कृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयस्वकम् ।
भार्ययासहितश्चासौबद्धाजलिपुटस्तदा ।।२३९।।
चिन्तयन्परमात्मानमीशनारायणहरिम् ।
हृत्कोटरगुहासीनंवासुदेवसुरेश्वरम् ।
अनादिनिधनंब्रह्मकृष्णपीताम्बरंशुभम् ।।२४०।।
तस्यचिन्तयमानस्यसर्वे देवा सवासवा ।
धर्मप्रमुखत कृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विता ।।२४१।।
आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजन्शृणुप्रभो ।
अयंपितामह साक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ।।२४२।।
साध्याश्चविश्वेमरुतोलोकपाला सचारणा ।
नागा सिद्धा सगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाश्विनौ ।।२४३।।
एतेचान्येचबहवोविश्वामित्रस्तथैवच ।
विश्वत्रयेणयोमित्रंकर्त्तुंनाशकत्पुरा ।।२४४ ।।
विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्ट चाहर्तुमिच्छति ।
आरुरोहतत प्रासोधर्मं शक्रोऽथगाधिज ।।२४५।।

पक्षियो ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र ने चिता बना कर अपने पुत्र को उस पर रखा और पत्नी के सहित हाथ जोड कर जैसे ही ।। २३९ ।। परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्ण, पीताम्बरधारी, शुभदायक, हृदय मे वास करने वाले, अनादि निधन, नारायण, हरि का चिन्तन किया ।। २४० ।। वैसे ही धर्म को आगे करके इन्द्रादि देवगण शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ।। २४१ ।। वे सभी देवता कहने लगे—हे राजन् ! हम साक्षात् ब्रह्मा है, यह साक्षात् धर्म है ।। २४२ ।। यह साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, सब लोकपाल नागगण, सिद्धगण, गधर्वो सहित रुद्रगण तथा दोनो अश्विनीकुमार ।। २४३ ।। अथवा अन्यान्य सभी देवता अपने-अपने वाहन सहित उपस्थित है और जो त्रैलोक्य के साथ मित्रता नही कर सकते वह विश्वामित्र भी आये है ।। २४४ ।। यह सभी आपके साथ मित्रता करने को आये है, धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीनो राजा के पास आये ।। २४५ ।।

मा राजन्साहसक्कार्षीरधर्मोऽहृत्वामुपागत ।
तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषित ॥२४६॥
हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्त शक्रोस्मितेऽन्तिकम् ।
त्वयासभार्यपुत्रेणजिताल्लोका सनातना ॥२४७॥
आरोहत्रिदिवं राजन्भार्यापुत्रसमन्वित ।
सुदुष्प्रापमरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभि ॥२४८॥
ततोऽमृतमयवर्षमपमृत्युविनाशनम् ।
इन्द्र प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगत प्रभु ॥२४९॥
पुष्पवर्षंचसुमहद्ववदुन्दुभिनि स्वनम् ।
तत्रस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसकुले ॥२५०॥
समुत्तस्थौतत पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मन ।
सुकुमारतनु सुस्थ प्रसन्नेन्द्रियमानस ॥२५१॥
ततोराजाहरिश्चन्द्र परिष्वज्यसुतक्षणात् ।
सभार्य्य सुश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वित ॥२५२॥

धर्म बोला—राजन् ! अब इस साहसिक कार्य से निवृत्त होइये, मैं धर्म हूँ, मुझे आपने तितिक्षा, दम, सत्य इत्यादि गुणों से सन्तुष्ट किया है इसलिए स्वयं यहाँ उपस्थित हूँ ॥ २४६ ॥ इन्द्र बोले—हे महाभाग ! मैं इन्द्र हूँ आपने पत्नी पुत्र के सहित सभी सनातन लोकों को जीता है ॥ २४७ ॥ इसलिए आप अन्य मनुष्यों को दुर्लभ स्वर्ग में पत्नी और पुत्र के सहित चलो ॥ २४८ ॥ पक्षियों ने कहा—इसके पश्चात् इन्द्र चिता स्थान में गये और वहाँ उन्होंने अपमृत्यु का क्षय करने वाले अमृत की वर्षा की ॥ २४९ ॥ तथा उस सभा में देवतलोग ने पुष्प वृष्टि की और दुंदुभी बजने लगी ॥ २५० ॥ फिर उस महात्मा राजा का कोमल अंग वाला पुत्र रोहिताश्व भी स्वस्थ होकर प्रसन्न मन से उठ बैठा ॥ २५१ ॥ उस समय राजा ने क्षणभर को पुत्र का आलिंगन किया तथा दिव्य वस्त्र और माला धारण कर पत्नी सहित सुशोभित हुए ॥ २५२ ॥

स्वस्थ सम्पूर्णहृदयोमुदापरमयायुत ।
बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषत ॥२५३॥

सभार्यस्त्वसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् ।
समारोहमहाभागनिजानाकर्मणाफलै ।२५४।।
देवराजाननुज्ञात स्वामिनाश्वपचेनवै ।
अगत्वानिच्छतितस्यनारोक्ष्येऽहमुरालयम् ।।२५५।।
नदैत्यादिकलेपःमदगस्यात्मभाययां ।
आत्माश्वपाकतानीतोदर्शितश्चचापलम् ।।२५६।।
प्रार्थ्यतेयत्परस्थानमसद्भिर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानपुण्यकृतानृणाम् ।।२५७।।
देवराजनमस्तुभ्यकाक्यचैतन्निबोधमे ।
प्रसादसुमुखयस्वाब्रवीमिप्रश्रयान्वित ।।२५८।।
सचलोकश्चसमस्तः कोसलानगरेजना ।
तिष्ठन्तितानपोहाद्यकथयास्यामहंदिवम् ।।२५९।।

तथा पत्नी प्रकार स्वस्थ और आनन्दित हुए, तब इन्द्र ने उससे कहा ।। २५३ ।। हे महाभाग ! आप पत्नी पुत्र सहित परम सद्गति पायेंगे इसलिए अपने कर्मफल के द्वारा स्वर्ग में निवास कीजिए ।। २५४ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—मैं अपने स्वामी चाण्डाल की अनुमति के बिना स्वर्ग में नहीं आ सकता ।। २५५ ।। धर्म ने कहा—राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेश को जानकर मैंने ही चाण्डाल का रूप धारण किया था ।। २५६ ।। इन्द्र कहा—जिस परम स्थान में पहुँचने के लिए पृथिवी के सब मनुष्य प्रार्थना करते हैं, तुम उस स्थान को प्राप्त करो ।। २५७ ।। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरपते ! आपको नमस्कार है, मैं आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ, उसे सुनिये ।। २५८ ।। नगर के सभी मनुष्य मेरे शोक में पड़े हैं, मैं उन्हें छोड़कर स्वर्ग में कैसे जाऊँ ।। २५९ ।।

ब्रह्महत्यागुरोर्घातीगोवधः स्त्रीवधस्तथा ।
तुल्यमेभिर्महापापभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ।।२६०।।
भजन्तंभक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतं सुखम् ।
नेहनामुत्रपश्यामितस्मात्त्यक्तंदिवंव्रज ।।२६१।।
यदिवेसहिता स्वर्गमयायान्तिसुरेश्वर ।

ततोऽहमपियास्यामि नरकंवापितैः सह ॥२६२॥
बहुभिःपुण्यपापानितेषांभिन्नानिवैपृथक् ।
कथंसंभातभोग्यत्वंमृषे स्वर्गमवाप्स्यसि ॥२६३॥
शक्रभुक्तेनृपोराज्यप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ।
यजतेचमहायज्ञं कर्मपौर्त्तं करोतिच ॥२६४॥
तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वंमनुष्ठितम् ।
उपकर्तृ ष्वसन्त्यक्ष्येतानहंस्वर्गलिप्सया ॥२६५॥
तस्माद्यन्ममदेवेशकिंचिदस्तिसुचेष्टितम् ।
दत्तमिष्टंमथोजप्तंसामान्यंतैस्तदस्तुन ॥२६६॥
बहुकालोपभोग्यंहिफलंयन्ममकर्मणः ।
तदस्तुदिनमप्येकंतैः समत्वंप्रसादतः ॥२६७॥

ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या अथवा स्त्री हत्या का जो पाप होता है, वही पाप भक्त का त्याग करने में है ॥ २६० ॥ अपने भक्तों का त्याग करने पर लोक-परलोक में कोई सुख नहीं है, अब आप स्वर्ग को गमन करें ॥ २६१ ॥ हे देवेश्वर ! मेरे साथ वह भी स्वर्ग में जाय तो मैं भी वहाँ जाऊँगा, अन्यथा उनके साथ नरक में ही निवास करूँगा ॥ २६२ ॥ इन्द्र बोले—उन प्रजाजनों के द्वारा विभिन्न प्रकार के पाप-पुण्य हुए हैं, तो वे आपके साथ स्वर्ग में कैसे जा सकते हैं ॥ २६३ ॥ हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरेश्वर ! कुटुम्बियों के प्रभाव से ही राजा राज्य भोगता और दानादी, कुए आदि बनवाता है ॥ २६४ ॥ मैंने भी जो धर्म कार्य किये हैं, वह उनके सहयोग से किये हैं, इसलिए सामान्य स्वर्ग के लोभ में उन उपकार करने वालों का त्याग नहीं करूँगा ॥ २६५ ॥ इसलिए मैंने जो कुछ भी जप, दान, पुण्य किया है, वह उनके सहित सब में समान हो ॥ २६५ ॥ मेरे पुण्य फल का जो भोग बहुत समय तक भोगने योग्य हो, वह उनके साथ चाहे एक दिन को ही भोग सकूँ, ऐसा कीजिये ॥ २६७ ॥

एवमित्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वर ।
प्रसन्नश्चेलाधर्मज्ञंविश्वामित्रञ्चराजर्षिम् ॥२६८॥
गत्वाशुनगरंसर्वेचातुर्वर्ण्यसमायुतम् ।

हरिश्चन्द्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिप ॥२६६॥
आगच्छतुजना शीघ्र स्वर्गलोकसुदुर्लभम् ।
धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तसर्वैर्युष्माभिरेवतु ॥२७०॥
विमानकोटिसम्बद्ध स्वर्गलोकान्महीतलम् ।
गत्वायोध्याजनप्राहृदिवमारुह्यतामिति ॥२७१॥
तदेन्द्रस्यवच श्रुत्वाप्रीत्यातस्यचभूपते ।
आनीयरोहिताश्व वविश्वामित्रोमहातप ॥२७२॥
अयोध्याख्येपुरे रम्येसोऽभ्यषिचन्नृपात्मजम् ।
देवैश्चमुनिभि सिद्धै रभिषिच्यनराधिप ॥२७३॥
राज्ञासहृतदासत्रेहृष्टपुष्टसुहृज्जना ।
सपुत्रभृत्यदारास्तेदिवमारुरुहुर्जना ॥२७४॥

पक्षियो ने कहा—'ऐसा ही होगा' कह कर इन्द्र, धर्म और विश्वामित्रजी ॥ २६८ ॥ सभी उस नगर में रहे और सब प्रजाजनों को राजा हरिश्चन्द्र के सहित एकत्र किया, तब इन्द्र बोले ॥ २६९ ॥ हे मनुष्यो ! तुमने धर्म के प्रसाद से अत्यन्त कठिनता से प्राप्य स्वर्गलोक को प्राप्त किया है, इसलिए वहीं चलो ॥ २७० ॥ इसके पश्चात् स्वर्ग से करोड़ो विमान वहाँ आये और अयोध्यावासियों से कहा गया कि स्वर्ग में जाने के लिए इन विमानों पर शीघ्र चढ़ो ॥ २७१ ॥ फिर विश्वामित्र राजा को प्रसन्न करने के निमित्त इन्द्र के वचन से रोहिताश्व को वहाँ लाये ॥ २७२ ॥ और उसे अयोध्यानगरी के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया, उस समय सब अयोध्या बन्धु बान्धव, सिद्ध, मुनि और देवगणों के समक्ष अभिषेक कर भार्या, पुत्र, सेवक आदि से मिलकर सभी स्वर्ग को चले ॥ २७३ ॥ ॥ २७४ ॥

पदेपदेविमानात्ते विमानमगमन्नरा ।
तदासभूतहर्षोसौहरिश्चन्द्रश्चपार्थिव ॥२७५॥
सम्प्राप्यभूतिमतुलाविमानै समहीपति ।
आसाचक्रे पुराकारेवप्रप्राकारसवृते ॥२७६॥
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्यश्लोकतत्त्वोज्ञनाजगौ ।
दैत्याचार्योमहाभाग सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥२७७॥

हरिश्चन्द्रसमोराजानाभूतोनभविष्यति ।
यस्त्वैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानव ॥२७८॥
तेनवेदा पुराणानिसर्वेमन्त्रा सुसग्रहा ।
घुष्टा स्यु पुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे ॥२७९॥
देवागारेकुरुक्षेत्रेवाराणस्यांविशेषत ।
विषुवद्ग्रहणेचैवयत्फलंजपतोलभेत् ॥२८०॥

मार्ग मे वे एक से दूसरे विमान मे चढ रहे थे, उस समय राजा हरिश्चन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए ॥ २७५ ॥ तब उन्हे विमान मे चढने की महान् विभूति का अनुभव हुआ और वे वलयाकार परकोटे से सयुक्त स्थित रहे ॥ २७६ ॥ उस समय सर्व शास्त्रो के तत्त्व ज्ञाता दैत्यो के आचार्य शुक्राचार्यजी ने राजा के इस ऐश्वर्य को देख कर प्रशस्ति गान किया ॥ २७७ ॥ वे बोले— राजा हरिश्चन्द्र के समान विश्व मे न कोई हुआ न भविष्य मे होगा, क्योकि वे तितिक्षा और दान के फल से अपने नगर निवासियो को भी स्वर्ग मे ले गये, इन राजा हरिश्चन्द्र की कथा को भक्ति सहित जो कोई श्रवण करेगा ॥ २७८ ॥ वह वेद, पुराण तथा सभी मत्रो के फल को पायेगा, जो कोई पुष्कर, प्रयाग, सिधु सागर ॥ २७९ ॥ देव मदिर, कुरुक्षेत्र और वाराणसी मे पाठ करेगा उसे विशेष फल मिलेगा, तथा जो फल विषुवती और ग्रहण मे जप करने से होता है ॥ २८० ॥

तत्फलद्विगुणंचैवसयतात्माश्रृणोतिय ।
श्रुत्वातुपूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञद्विजोत्तमम् ॥२८१॥
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्चतथैमान्नैनजैमिने ।
येनैवयत्कृतपुण्यतच्छ्रवणमयोदितुम् ॥२८२॥
अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलमहत् ।
यदागतोहरिश्चन्द्र पुरीचेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥२८३॥
एतत्ते सर्वमाख्यातहरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।
य श्रृणोतिदु खार्त्तससुखमहदाप्नुयात् ॥२८४॥
स्वर्गार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गपुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ।
भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्या राज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ॥२८५॥

अत परकथाशेष श्रूयतामुनिसत्तम ।
विपाकोराजसूयस्यपृथिवीक्षयकारणम् ।
तद्विपाकनिमित्त चयुद्धमाडिबकमहत् ।।२८६।।

उससे द्विगुण फल इसे इन्द्रिय के सयम पूर्वक सुनने से होता है, इस कथा को सुन कर पुराण ज्ञाता ब्राह्मण को सतुष्ट करे ।। २८१ ।। उसे गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र तथा अन्न प्रदान करने से जो पुण्य होता है, वह अवर्णनीय है ।। २८२ ।। तितिक्षा और दान का महान् फल होता है, उसी के प्रभाव से राजा हरिश्चन्द्र को इन्द्रत्व की प्राप्ति हुई और वे अपने नगर निवासियों सहित स्वर्ग को प्राप्त हुए ।। २८३ ।। पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! आपसे हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा गया, दु खो से आर्त्त मनुष्यों को इसके श्रवण से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है ।। २८४ ।। इससे स्वर्गाकाक्षी को स्वर्ग, पुत्रेच्छु को पुत्र, पत्नी की कामना वाले को पत्नी तथा राज्य की इच्छा वाले को राज्य की प्राप्ति होती है ।। २८५ ।। हे मुनिश्रेष्ठ ! अब तुम्हारे प्रति पृथिवी के क्षय का कारण, राजसूय यज्ञ का विपाक तथा उस विपाक से महत् आडि-बक युद्ध स्वरूप शेष कथा को कहता हूँ, श्रवण करो ।। २८६ ।।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यान नाम अष्टमोऽध्याय ।। ८ ।।

९--आडिबकयुद्ध

राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रेगतेचत्रिदशालयम् ।
निश्चक्रामसहातेजाजलत्रासात्पुरोहित ।।१।।
वसिष्ठोद्वादशाब्दान्तेगङ्गाप्लुपितोमुनि ।
शुश्रावत्वसमस्तन्तुविश्वामित्रविचेष्टितम् ।।२।।
हरिश्चन्द्रस्यनाशञ्चराज्ञश्चोदारकर्मण ।
चण्डालसप्रयोगञ्चभार्यातनयविक्रयम् ।।३।।
सश्रुत्वासुमहाभाग प्रीतिमानवनीपतौ ।
चकारकोपतेजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ।।४।।
ममपुत्रशततेनविश्वामित्रेणघातितम् ।

श्रुत्वानराधिपमिमंस्वराज्यादवरोपितम् ।
महात्मानमहाभागदेवब्राह्मणपूजकम् ॥६॥
यस्मात्ससत्यवाक्छान्त शत्रावपिविमत्सर ।
अनागाश्चैवधर्मात्माअप्रमत्तोमदाश्रय ॥७॥
सपत्नीभृत्यपुत्रस्तुप्रापितोऽन्त्यादशानृपः ।
सराज्याच्च्यावितोऽनेनबहुशश्चविलोकृत ॥८॥
तस्माद् दुरात्माब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपक ।
मच्छापोपहतोमूढ सबकत्वामवाप्स्यति ॥९॥

पक्षियो ने कहा—जब राजा हरिश्चन्द्र राज्य से मुक्त होकर स्वर्ग को गये, उसके पश्चात् राजा के पुरोहित महातेज वाले वसिष्ठ जी जलसे बाहर निकले ॥ १ ॥ वसिष्ठजी बारह वर्ष जलवास करके निकले थे, उन्होने बाहर निकल कर विश्वामित्र का वृत्तान्त सुना ॥ २ ॥ उदारकर्मा हरिश्चन्द्र जिस प्रकार राज्य से भ्रष्ट हुए और उन्हे चाण्डालत्व की प्राप्ति हुई तथा उनके पुत्र का विक्रय हुआ ॥ ३ ॥ यह सब वृत्तान्त सुन कर वसिष्ठजी ने विश्वामित्र पर अत्यन्त क्रोध किया, क्योकि वह राजा से बडे प्रसन्न थे ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी ने कहा-इतना क्रोध उस विश्वामित्र के हाथ से अपने सौ पुत्रो के मरने पर भी मुझे नही हुआ था, जितना कि देव-ब्राह्मणो का पूजन करने वाले राजा के राज्य से भ्रष्ट होने का वृत्तान्त सुन कर हुआ है ॥ ५ ॥ मेरे आश्रित सत्यवादी, निर्वैर निरपराधी, अप्रमत्त और धर्मात्मा राजा को ॥ ७ ॥ भार्या, पुत्र तथा सेवको के सहित दुर्दशा को पहुँचाया, अपने राज्य से च्युत करके भाँति भाँति के दुःख दिये है ॥ ८ ॥ इसलिए वह ब्रह्मद्वेषी, दुरात्मा, मूर्ख एव याज्ञियो के यज्ञ को नष्ट करने वाला विश्वामित्र मेरे शाप से अन्त को प्राप्त हो कर तिर्यग् योनि को प्राप्त हो ॥ ९ ॥

श्रुत्वाशापमहातेजाविश्वामित्रोऽपिकौशिक ।
त्वमप्याडिभंवचेतितस्मैशापमयच्छत ॥१०॥
अन्योन्यशापात्तौप्राप्तौतिर्यक्त्वपरमच्युती ।
वसिष्ठ समहाराजाविश्वामित्रश्चकौशिक ॥११॥
अन्यजातिसमायोगगतावप्यमितौजसौ ।

युयुधातेऽतिसरम्भौमहाबलपराक्रमौ ॥१२॥
योजनानासहस्रं द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रित ।
षण्णवत्यधिकब्रह्मसहस्रत्रितयबक ॥१३॥
तौतुपक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ ।
प्रहारस्तौभयतीव्र प्रजानाचक्रतुस्तदा ॥१४॥

पक्षियों ने कहा—विश्वामित्रजी ने भी शाप की बात सुन कर वसिष्ठजी को शाप दिया-तुझे चील की योनि प्राप्त हो ॥१०॥ वसिष्ठ एवं विश्वामित्र दोनों ही अत्यन्त तेजस्वी थे, इसलिए पारस्परिक शाप के वश दोनों ही खग-योनि को प्राप्त हुए ॥ ११ ॥ वे दोनों अत्यन्त तेजस्वी महान् बली थे, अत अत्यन्त क्रोध पूर्वक परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! आडि रूपी वसिष्ठ दो हजार योजन ऊँचा और बगुला रूपी विश्वामित्र तीन हजार छियानवे योजन ऊँचा उड़ा ॥ १३ ॥ उन दोनों अत्यन्त पराक्रमी पक्षियों के परस्पर प्रहारों को देख कर प्रजा को अत्यन्त भय प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥

विधूयपक्षाणिबकोरक्तोद्वृत्ताक्षिराहृतत् ।
आडिसोऽप्युन्नतग्रीवोबकपक्षूचरमताडयत् ॥१५॥
ततो पक्षानिलापास्ता प्रपेतुर्गिरयोभुवि ।
गिरिप्रपाताभिहतावकम्पेचवसुन्धरा ॥१६॥
क्ष्माकम्पमानाजलधीनुद्वृत्ताम्बूश्चकारच ।
ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी ॥१७॥
केचिद्गिरिनिपातेनकेचिदब्धिवारिणा ।
केचिन्महीसचलनात्प्रययु प्राणिन क्षयम् ॥१८॥
इतिसर्वपरित्रस्तहाहाभूतमचेतनम् ।
जगदासीत्सुसंघातपर्यंस्तक्षितिमण्डलम् ॥१९॥
हावत्सहाकातशिशोप्रयाह्य षोऽस्मिसस्थित ।
हाप्रियेकातशैलोऽयपतत्याशुपलायताम् ॥२०॥
इत्याकुलीकृतेलोकेसत्रासविमुखेतदा ।
सुरै परिवृत सर्वेराजगामपितामह ॥२१॥

बगुले ने रक्तवर्ण वाले नेत्रों से सभी फैलाए हुए पंखों को चला कर

चील को आहत किया, तभी चील ने कट उठा कर अपने पर से बगुले पर आघात किया ।। १५ ।। उनके पक्षों की हवा से अनेक पर्वत टूट कर गिरने लगे, जिससे पृथिवी भी कंपायमान हो उठी ।। १६ ।। पृथिवी के काँपने से समुद्र का जल उछलने लगा तथा पृथिवी पार्श्व की ओर झुक गई ।। १७ ।। उस समय भूमण्डल के सभी जीव कोई पर्वत के गिरने से, कोई समुद्र की तरंगों से नष्ट होने लगे ।। १८ ।। इस प्रकार त्रास को प्राप्त हुआ विश्व हा हाकार करता हुआ भ्रान्त हो उठा और पृथिवी में विपरीतता होने पर ।। १९ ।। सभी मनुष्य व्याकुल चित्त से स्वजनों को पुकारते हुए 'भागो, भागो' कहने लगे ।। १२० ।। भय से इस प्रकार चिल्लाते हुए कोई कहीं, कोई कहीं गये, तब पितामह ब्रह्माजी स्वयं ही सब देवताओं के सहित वहाँ आये ।। ११ ।।

प्रस्थुवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्धं वाविरमत्वेतल्लोका स्वास्थ्यंव्रजन्तुच ।।२२।।
श्रुण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतु ।।२३।।
ततः पितामहोदेवस्तद्दृष्ट्वालोकसक्षयम् ।
तयोश्चहितमन्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ।।२४।।
तास्तौपूर्वदेहस्थौप्राहदेवः प्रजापतिः ।
व्युदस्तेतामसेभावेवसिष्ठकौशिकर्षभौ ।।२५।।
जहितंवत्सवसिष्ठत्वत्वंचकौशिकसत्तम ।
तामसभावमाश्रित्यईहयुद्धं चिकीर्षितम् ।।२६।।
राजसूयविघातोयहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ।
युवयोर्विग्रहञ्चायंपृथिवीक्षयकारकः ।।२७।।
नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यति ।
स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः ।।२८।।

और कंपित हुए दोनों पक्षियों से बोले कि तुम्हारा युद्ध समाप्त हो और भूमण्डल के सभी जीव स्वस्थ हों ।। २२ ।। ब्रह्माजी की यह बात सुन कर भी दोनों पक्षी युद्ध करने से किसी प्रकार न रुके ।। २३ ।। तब ब्रह्माजी ने

प्रजा का संहार देख कर, उसके हितार्थ दोनों का क्रोधत्व हर लिया ।। २४ ।। जब उन्हें पूर्व देह की प्राप्ति हुई तब उनका तमोगुण मिटा, यह देख कर ब्रह्मा-जी ने उन दोनों से कहा ।। २५ ।। हे वसिष्ठ ! हे विश्वामित्र ! तुम तमोगुण के अवलम्बन से जो युद्ध करते थे, उसे छोड़ो ।। २६ ।। पृथिवी को नष्ट करने वाले जिस युद्ध को तुम कर रहे थे वह राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ करने का फल है ।। २७ ।। इन विश्वामित्र ने राजा का कोई अपराध नहीं किया, इसके विपरीत उनको स्वर्ग प्राप्त करा कर उपकार ही किया है ।। २८ ।।

तमोविध्वंसकर्त्तारौकामक्रोधवशंगतौ ।
परित्यजतमद्रव्यौब्राह्म हिंप्रबुरबलम् ।।२९।।
एवमुक्तौततस्तेनलज्जितौतावुभावपि ।
क्षमयामासतुप्रीत्यापरिष्वज्यपरस्परम् ।।३०।।
ततः सुरैर्वन्द्यमानौब्रह्मालोकंनिजग्मतुः ।
वसिष्ठोऽप्यात्मन स्थानकौशिकोऽपिस्वमाश्रमम् ।।३१।।
एतदाडिबकयुद्धं हरिश्चन्द्रकथातथा ।
कथयिष्यन्तियेमर्त्या सम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये ।।३२।।
तेषांपापापनोदंतुश्रुत्वैवकरिष्यति ।
नचैवविघ्नकार्याणिभविष्यन्तिकदाचन ।।३३।।

तुम काम, क्रोध के वश में पड कर तप में विघ्न कर रहे हो, इसलिए इन दोनों का त्याग करो, ब्रह्मत्व से बढ कर अन्य कोई बल नहीं है, तुम्हारा कल्याण हो ।। २९ ।। ब्रह्माजी की बात सुन कर दोनों अत्यन्त लज्जित हुए और परस्पर क्षमा माँगते हुए आलिंगन करने लगे ।। ३० ।। फिर देवताओं से पूजित हुए ब्रह्माजी अपने लोक को गये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने भी अपने-अपने स्थान को गमन किया ।। ३१ ।। जो व्यक्ति आडिबक युद्ध और हरिश्चन्द्र की कथा कहेगा अथवा श्रवण करेगा ।। ३२ ।। उसके सभी पाप नष्ट होंगे और इसे सुन कर कार्यारम्भ करेगा तो उसके कार्य में कभी विघ्न उपस्थित न होगा ।। ३३ ।।

१०—मृत्युदशा वर्णन

सशयद्विजशार्दूला ब्रूतमममपृच्छत ।
आविर्भावतिरोभावौभूतानायत्रसस्थितौ ॥१॥
कथलब्जायतेजन्तुकथवासविवर्द्धते ।
कथदोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडित ॥२॥
निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथवावृद्धिमृच्छति ।
उत्क्रान्तिकालेचकथञ्चिद्भावेनवियुज्यते ॥३॥
कृतस्तोमृतस्तथाश्नातिशुभेसुकृतदुष्कृते ।
कथतेचतथातस्यफलसम्पादयन्त्युत ॥४॥
कथनजीर्यतेतत्रपिण्डीकृतइवाशये ।
स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरुण्यपि ॥५॥
भक्ष्याणितत्रनोजन्तुर्जीर्य्यतेकथमल्पक ।
कथभोक्तासर्वस्यकर्मणसुकृतस्यवै ॥६॥
एतन्मेब्रूतसकलसन्देहोक्तिविवर्जितम् ।
तदेतत्परमगुह्य यत्रमुह्यन्तिजन्तव ॥७॥

जैमिनि बोले—हे द्विजशार्दूल ! जिसमे प्राणियो का जन्म-मरण सघटित है, उस विषयक मेरे सदेह को दूर करिये ॥ १ ॥ जीव की उत्पत्ति और वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वह पीडा को सहन करता हुआ गर्भ मे किस प्रकार रहता है ? ॥ २ ॥ फिर गर्भ से निकल कर वृद्धि को प्राप्त होता, मृत्यु के समय उसका प्राण कैसे निकल जाता है ? ॥ ३ ॥ काल के गाल मे जाकर जीव पुण्य पाप का कैसे भोगता है और वह पुण्य अपने-अपने फल का सपादन किस प्रकार करते है ॥ ४ ॥ जठराशय मे जाकर कठिनता से पाक वस्तु भी पच जाती है, तो साधारण पिण्डी बना हुआ जीव स्त्री के जठर मे क्यो नही पच जाता ? ॥ ५ ॥ जठराग्नि मे पच कर जीव नष्ट क्यो होता है तथा सुकृत से फल को किस प्रकार भोगता है ॥ ६ ॥ जिस प्रकार मेरा सदेह दूर हो सके, उस प्रकार मुझे बताइये, इस गूढ रहस्य मे प्राणी मोहित है ॥ ७ ॥

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिदेशित ।

दुर्भाव्य सर्वभूतानाभावाभावसमाश्रित ॥८॥
तच्छृणुष्वमहाभागयथाप्राहपितु पुरा ।
पुत्र परमधर्मात्मासुमतिर्नामनामत ॥९॥
ब्राह्मणोभार्गव कश्चित्सुतमाहमहामति ।
कृतोपनयनंशान्तसुमतिंजडरूपिणम् ॥१०॥
वेदानधीत्यसुमतेयथानुक्रममादित ।
गुरुशुश्रूषणेव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजन ॥११॥
ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञानुत्तमान् ।
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेद्वावनतत ॥१२॥
वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रह ।
एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥१३॥

पक्षियो ने कहा—आपने प्राणियो के भावाभाव वाला जो प्रश्न किया है, वह अत्यन्त गूढ है ८ ॥ पुराकाल मे अपने पिता के प्रति सुमति नामक एक धर्मात्मा पुत्र ने जो कहा था, वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते है, ध्यान से सुनो ॥ ९ ॥ एक समय भार्गव वश के किसी महामति नामक ब्राह्मण ने अपने जड भाव युक्त पुत्र सुमति से कहा ॥ १० ॥ हे सुमते ! गुरु की सेवा मे रह कर भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करता हुआ प्रथम वेदाध्ययन कर ॥११ ॥ फिर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ इच्छित पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वन को प्राप्त हो ॥ १२ ॥ वन मे वास करके सन्यासी होकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति होने पर शोच नही रहता ॥ १३ ॥

इत्येवमुक्तोबहुशोजडत्वान्नाहकिञ्चन ।
पितापितंसुबहुश प्राहप्रीत्यापुन पुन ॥१४॥
इतिपित्रासुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् ।
सचोद्यमानोबहुश प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥१५॥
तातैतद्बहुशोभ्यस्तयत्वयाद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानिशास्त्राणिशिल्पानिविविधानिच ॥१६॥
जन्मनामयुतसाग्रमस्मृतिपथगतम् ।
उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदै किमेप्रयोजनम् ।

निर्वेदा पत्तितोपाज्चक्षयवृद्धयुदयेरता ॥१७॥
शत्रुमित्रकलत्राणावियोगा सङ्गमास्तथा ।
मातरोविविधाहृष्टा पितरोविविधास्तथा ॥१८॥
अनुभूतानिसौख्यानिदुःखानिचसहस्रश ।
बान्धवाश्चहृव प्राप्ता पितरश्चपृथग्विधा ॥१९॥
विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणातथाकोष्टेमयोषितम् ।
पीडाश्चसुमृशप्राप्तारोगाणाश्चसहस्रश ॥२०॥
गर्भदुःखान्यनेकानिबालस्वैयौवनेतथा ।
वृद्धतायातथाप्तानितानिसर्वाणिसस्मरे ॥२१॥

पक्षियो ने कहा—इस प्रकार पिता द्वारा बहुत-सी बातें कहने पर भी इना प्राप्त पुत्र ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु स्नेह के वशीभूत हुए पिता ले बारबार कहने लगे ॥ १४ ॥ पिता के प्रलोभन युक्त वचनो को बारबार न कर सुमति कुछ हंसा और उसने पिता से कहा ॥ १५ ॥ आप इस समय स विषय का उपदेश मुझे दे रहे हैं, उसका अनेक बार अभ्यास कर चुका इसके अतिरिक्त अनेको शास्त्र एव शिल्प शास्त्र का भी अभ्यास कर चुका ॥ १६ ॥ कुछ अधिक दस हजार वर्ष की बात मुझे याद है, मै अनेक बार ब पा चुका हूँ, अनेक बार सतुष्ट हुआ हूँ, अनेक बार क्षीणता और वृद्धि प्राप्त हो चुका हूँ, अब मुझे ज्ञान उपलब्ध है तो वेदाध्ययन से क्या लाभ ? ॥ १७ ॥ अनेक बार मेरा शत्रु, मित्र, कलत्र सहित सयोग और वियोग चुका है, मैंने अपने अनेक माता-पिता देखे है, ॥ १८ ॥ सहस्रो प्रकार के ख-दुःख का मुझे अनुभव है, बांधव और पिता तभी अनेक प्रकार से देख ता हूँ ॥ १९ ॥ मैने अनेक बार मल मूत्र युक्त नारी-जठर मे निवास किया तथा हजारो बार रोगो की यत्रणा प्राप्त की है ॥ २० ॥ गर्भ की यत्रणा, ल्य काल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था मे जितनी बार जो दुःख प्राप्त किया, सब मुझे याद है ॥ २१ ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशाशूद्राणाश्चापियोनिषु ।
पुनश्चपशुकीटानामृगाणामथ पक्षिणाम् ॥२२॥

समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ॥२३॥
भृत्यतादासतांचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वंचदरिद्रत्वंतथागत ॥२४॥
हतमयाहतश्चान्यैर्हतंमेयातितंतथा ।
दत्तमन्यैरन्येभ्योमयादत्तमनेकश ॥२५॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेनच ।
तुष्टोऽसकृत्तथादैन्यमश्रुधौतानगोगत ॥२६॥
एवंसंसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातातसङ्कटे ।
ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तमोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥२७॥
विज्ञातंयत्समस्तंऽयमृग्यजुःसामसंज्ञित ।
क्रियाकलापोविगुणोनसम्यक्प्रतिभातिमे ॥२८॥

मैं बहुत बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न हो चुका हूँ ॥ २२ ॥ जैसे आपके यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ, वैसे ही अनेकों बार राज सेवकों अथवा वीरों के यहाँ उत्पन्न हो चुका हूँ ॥ २३ ॥ मैं अनेक बार सेवक एवं भृत्य हुआ हूँ, अनेक बार स्वामी तथा प्रधान हुआ हूँ और अनेक बार दरिद्रता भोग चुका हूँ ॥ २४ ॥ मैंने बहुत से मनुष्यों को मारा और बहुतों ने मुझे भी मारा है, मैंने अनेक बार दान दिया तथा अनेक बार दान ग्रहण किया है ॥ २५ ॥ पिता, माता, भ्राता, सुहृद, भार्या आदि में अनेक बार सन्तुष्ट हुआ और अनेक बार दीन दशा को प्राप्त होकर अश्रु बहाता रहा ॥ २६ ॥ इस प्रकार इस सङ्कट से परिपूर्ण संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते-करते मुझे मोक्ष के देने वाले ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है ॥ २७ ॥ इस प्रकार ज्ञान मिलने से ऋक्, यजु, साम नामक सम्पूर्ण क्रिया कलाप का मुझे भले प्रकार ज्ञान है ॥ २८ ॥

तस्मादुत्पन्नबोधस्यवेदैः किमेप्रयोजनम् ।
गुरुविज्ञानतृप्तस्यनिरीहस्यसदात्मन ॥२९॥
षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्चयत् ।
गुणैश्चवर्जितंब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरंपदम् ॥३०॥
रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा ।

विज्ञाततत्तृमृगग्राहिसंघपाशशतावृता ॥३१॥
तस्माद्यास्याम्यहंतातत्यक्त्वेमांदुःखसन्ततिम् ।
त्रयीधर्मंमधर्मंञ्चयत्किंचिपापफलसन्निभम् ॥३२॥
तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षंविस्मयगद्गदम् ।
पिताप्राहमहाभाग स्वसुतंहृष्टमानस ॥३३॥
किमेतद्वदसेवत्सकुतस्तेज्ञानसम्भव ।
केनतेजडतापूर्वंमिदानीञ्चप्रबुद्धता ॥३४॥
किन्नुशापविकारोऽयमुतदेवकृतस्तव ।
यत्तेज्ञानतिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥३५॥

इसलिए जब मुझे ज्ञान प्राप्त ही है और मैं गुरु विज्ञान से तृप्त तथा चेष्टा हीन और सदात्मा हूँ तो वेदज्ञान से मेरा क्या प्रयोजन है ? ॥ २९ ॥ मैं सुख, दुःख, हर्ष, रस तथा निर्गुण ब्रह्म पद को मैं प्राप्त हूँ ॥ ३० ॥ तथा रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध अमर्ष और वृद्धावस्था द्वारा नितांत व्याकुल और सैकड़ों बन्धनों से व्याप्त रहा हूँ ॥ ३१ ॥ अतः इस दुःख रूपी प्रवाह का त्याग करके मुझे जाना है, त्रयी विद्या का धर्म अधर्म जैसा लगता है, मैं इसे छोड़ कर ब्रह्मपद पाऊँगा ॥ ३२ ॥ पक्षियों ने कहा—पुत्र के उस वचन को सुन कर प्रसन्न चित्त हुए पिता ने हर्ष विस्मय से युक्त गद्गद वचन कहे ॥ ३३ ॥ पिता ने कहा—हे पुत्र ! तुम यह क्या कहते हो ? तुम्हें ऐसा ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? तुम तो जड स्वभाव वाले थे, अब ऐसी ज्ञान-बुद्धि किस प्रकार उत्पन्न हो गई ? ॥ ३४ ॥ तुम्हारा जो छिपा हुआ ज्ञान अब प्रकट हुआ है, वह क्या किसी मुनि या देवता के शाप से अप्रकट था ? ॥ ३५ ॥

शृणुतातयथावृत्तं ममेदंसुखदुःखदम् ।
यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परन्तुयत् ॥३६॥
अहमासंपुरविप्रोन्यन्यस्तात्मापरमात्मनि ।
आत्मविद्याविचारेषुपरानिष्ठामुपागत ॥३७॥
सततंयोगयुक्तस्यसततंभ्यासशीलिनः ।
सत्संयोगात्स्वभावाद्वाविचारविधिशोधनात् ॥३८॥
तस्मिन्नेवपराप्रीतिर्ममासीद्युंजतः सदा ।

आचार्यतां चसम्प्राप्त शिष्यसन्देहहृत्तम ॥३९॥
तत कालेनमहताऐकान्तिकमुपागत ।
अज्ञानात्कृष्टसद्भावोविप्रत्वस्यप्रमादत ॥४०॥
उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ।
यावदब्रह्मगतश्चैवजन्मनास्मृतिमागतम् ॥४१॥

पुत्र बोला—मैं अपने सुख दुःख को देने वाले सभी वृत्तान्तों को कहता हूँ, उन्हें सुनो ॥ ३६ ॥ मैं पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण था, उस समय ब्रह्म में आत्मा को लीन करके मैंने आत्मविद्या प्राप्त की थी ॥ ३७ ॥ सदैव योगरत रहने के कारण अभ्यास, सत्सङ्ग, सत्स्वभाव, विचार एवं विधियों का उद्धार ॥ ३८ ॥ तथा निरन्तर ब्रह्म में रत रहने के कारण मैं उस जन्म में अत्यन्त प्रसन्न था तथा शिष्यों के सन्देहों का निवारण करने वाला आचार्य था ॥ ३९ ॥ कुछ समय व्यतीत होने पर एकान्त में रहने लगा, फिर अज्ञान वश प्रमादी होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥ ४० ॥ फिर भी मरण पर्यन्त मेरी स्मृति नष्ट नहीं हुई, इसलिए जन्म समय से जितने वर्ष व्यतीत हुए उन सभी का मुझे स्मरण है ॥ ४१ ॥

पूर्वाभ्यासेनतेनैवसोऽहतातजितेन्द्रिय ।
यतिष्यामितथाकर्तुनमविष्येयथापुन ॥४२॥
ज्ञानवानफलह्येतज्ज्ञातिस्मरणमम ।
नह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयीधर्माश्रितैर्नरै ॥४३॥
सोऽहपूर्वाश्रमादेवनिश्चयंधर्ममुपाश्रित ।
एकान्तित्वमुपागम्ययतिष्यास्यात्ममोक्षणे ॥४४॥
तद्ब्रूहित्वमहाभागयत्तेसाध्यिकहृदि ।
एतावतापितेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥४५॥
पिताप्राहतत पुत्रश्रद्दधत्तस्यतद्वच ।
भवतायद्यपृष्टा ससारग्रहणाश्रयम् ॥४६॥
शृणुतातयथातत्त्वमनुभूतमयाऽसकृत् ।
ससारचक्रमजरस्थितिर्यस्यनविद्यते ॥४७॥
सोऽहददामितेसर्वतदैवानुज्ञयापित ।

उत्क्रान्तिकालादारभ्ययथानान्योददिष्यति ॥४८॥

पूर्वाभ्यास के कारण मैं जितेन्द्रिय होकर अब पुनः उसी प्रकार का यत्न करूँगा ॥ ४५ ॥ जिसने ज्ञान और दान के फलस्वरूप मुझे सब जन्मों का वृत्तान्त याद है, परन्तु त्रयी धर्म के आश्रय वालों को जन्म जन्मान्तर वृत्त याद नहीं रह सकता ॥ ४३ ॥ पूर्व जन्म में अर्जित निष्ठा धर्म से ही मैं आत्म मोक्ष में यत्न करने वाला हुआ हूँ ॥ ४४ ॥ इसलिए आपके हृदय में जो संशय है, उसे कहिये, मैं एक उपाय से ही उस विषय में आपको प्रीतिमान् करके उऋण हो जाऊँगा ॥ ४५ ॥ पक्षियों ने कहा कि—पिता ने यह बातें सुन कर, जो प्रश्न आपने किया है, वही श्रद्धा सहित अपने पुत्र से किया ॥ ४६ ॥ पुत्र बोला—इसका जो वारम्वार मुझे अनुभव हुआ है, वह यथावत् कहता हूँ, इस संसार चक्र की स्थिति कहीं भी नहीं है ॥ ४७ ॥ हे पिता ! आपकी आज्ञा से वह सब वृत्तान्त कहता हूँ, जिसका वर्णन करने में अन्य कोई भी समर्थ नहीं होगा ॥ ४८ ॥

ऊष्माप्रकुपितः कायेतीव्रवायुसमीरितः ।
भिनत्तिसर्मस्थानानिदीप्यमानोनिरिन्धनः ॥४९॥
उदानोनामपवनस्ततश्चोर्ध्वप्रवर्त्तते ।
भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥५०॥
ततोयेनाम्बुदानानिकृतान्यन्नरसास्तथा ।
दत्ता सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते ॥५१॥
अन्नानियेनदत्तानिश्रद्धापूतेनचेतसा ।
सोऽपितृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेनवैतदा ॥५२॥
येनानृतानिनोक्तानिप्रीतिभेदः कृतोनच ।
आस्तिक्यबुद्धानश्चसुखंमृत्युमृच्छति ॥५३॥
देवब्राह्मणपूजायांयेरतानोनसूयवः ।
शुक्लावदान्याह्रीमन्तस्तेनराःसुखमृत्यवः ॥५४॥
योनकामान्नसरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् ।
यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखमृत्युश्चछति ॥५५॥
अवारिदायिनोदाहंसुधान्नान्नदायिनः ।

प्राप्नुवन्तिनरा कालेतस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥५६॥

देह-स्थित पित्त कुपित होकर बिना ईंधन के ही तीव्र वायु के चलने से दीप्त होकर सब मर्म स्थान को भेदता है ॥ ४९ ॥ और देह का उदान वायु उस पर वर्तमान होकर सब जलीय भक्ष्य वस्तु की अधोगति को रोकता है, उस समय प्राणी का आत्मा वियुक्त होता है ॥ ५० ॥ जिसने जल, अन्न, रस का दान किया है, वही उस मरण रूप आपत्काल मे प्रसन्न रहता है ॥ ५१ ॥ जो पवित्र मन और श्रद्धा पूर्वक अन्नदान करते है, वह उस समय बिना अन्न के भी तृप्त रहते है ॥ ५२ ॥ जो पुरुष कभी मिथ्या भाषण नही करते, किसी की प्रीति मे मन मुटाव नही कराते तथा जो आस्तिक एव श्रद्धालु है, उनकी ही सुख पूर्वक मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ जो देव ब्राह्मण का पूजन करते है, असूया रहित शुद्ध चित्त वाले एव श्रेष्ठ वचन कहने वाले तथा लज्जावान् है, वे सुख से प्राण त्यागते है ॥ ५४ ॥ जो काम, क्रोध, द्वेष से धर्म का त्याग नही करते, सत्य वचन कहते है तथा जो सौम्य स्वरूप है, उनका प्राण त्याग सुख पूर्वक होता है ॥ ५५ ॥ जो प्यासे को जल और क्षुधार्त को अन्न नही देते वह मरण काल मे भूख प्यास से पीडित होते है ॥ ५६ ॥

शीतज्वरन्तिश्रनदास्तापचन्दनदायिन ।
प्राणघ्नीवेदनाकष्टावेचानुद्वेगकारिण ॥५७॥
मोहाज्ञानप्रदातार प्राप्नुवन्तिमहद्भयम् ।
वेदनाभिरुदग्राभि प्रपीड्यन्तेऽधमानरा ॥५८॥
कूटसाक्षीमृषावादीयश्चासदनुशास्तिवै ।
तेमोहमृत्यव सर्वेतथान्मेवेदनिन्दका ॥५९॥
विभीषणा पूतिगन्धा कूटमुद्गरपाणय ।
आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा ॥६०॥
प्राप्तेषुद्दक्पथतेषुजायतेतस्यवेपथु ।
क्रन्दत्यविरतसोऽथभ्रातृमातृसुतानथ ॥६१॥
सास्यवाग्स्फुटातातएकवर्णाविभाव्यते ।
दृष्टिश्चभ्राम्यतेयासाच्छ्वासाच्छ्वस्यत्यथाननम् ॥६२॥

ऊर्ध्वश्वासान्वित सोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वित ।
तत सवेदनाविश्लिष्टच्छरीरविमु चति ॥६३॥

काष्ठ का दान करने वालो को मरण काल मे शीत तथा चन्दन-दान करने वालो को ताप नही "मताता तथा प्राणियो को भयभीत करने वालो को उस समय अत्यन्त यन्त्रणा भोगनी होती है ॥ ५७ ॥ जो मोह और अज्ञान की शिक्षा देते है, उन अधमो को अत्यन्त भय तथा घोर पीडा की प्राप्ति होती है ॥ ५८ ॥ मिथ्या साक्षी देने वाले, मृषावादी, वेदनिन्दक तथा कुशास्त्रको की अज्ञान मे मृत्यु होती है ॥ ५९ ॥ तथा उनके मरण काल मे अत्यन्त घृणित वेश वाले भयङ्कर यमदूत मुद्गर हाथ मे लिये हुए आते है ॥ ६० ॥ जैसे ही उन्हे यमदूत दिखाई पडते है, वैसे ही वे कपित शरीर से भ्राता माता और पुत्र को पुकारते हुए रुदन करते है ॥ ६१ ॥ उस समय उनकी वाक् सभलने मे नही आती, वर्ण विकृत होता है और दृष्टि घूमने लगती है, वास और उच्छवास से मुख भी सूख जाता है ॥ ६२ ॥ फिर ऊर्ध्वश्वास चलती है, नेत्र की दृष्टि नष्ट होती है और वेदना से ग्रसित होकर प्राण छूट जाते है ॥ ६३ ॥

वाग्व्यग्रसारीतद्रूपदेहमाल्यत्रपद्यते ।
तत्कर्मजयातनार्थनमातृपितृसम्भवम् ।
तत्प्रमाणवयोवस्थासस्थानै प्राग्भवयथा ॥६४॥
ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणै ।
दण्डप्रहारस्तभ्रान्तकर्षतेदक्षिणादिशम् ॥६५॥
कुशकण्टकवल्मीकशकुपाषाणकर्कशै ।
तथाप्रदीप्तज्वलनेक्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६॥
प्रदीप्तादित्यतप्तेनदह्यमानेनदशुभि ।
कृष्यतेयमदूतैश्चशिवासत्रासभीषणै ॥६७॥
विकुष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाण शिवाशतै ।
प्रयातिदारुणेमार्गेपापकर्मायमक्षयम् ॥६८॥
छलोपानत्प्रदातारोयेचवस्त्रप्रदानरा ।
तेयान्तिमनुजामार्गतंसुखेनतथान्नदा. ॥६९॥

विमानैः सोज्ज्वलैर्यान्तिभूमिदानप्रदानराः ।
एवक्लेशाननुभवन्नवशः पापपीडितः ।
नीयतेद्वादशाहेनधर्मराजपुरंनरः ॥७०॥

फिर वायु के आगे होकर कर्म फल रूप यन्त्रणा का भोग करने के लिये बिना माता पिता के उत्पन्न होने वाले अन्य शरीर को धारण करते है, वह शरीर पहिले के समान वय, अवस्था और सस्थान वाला होता है ॥ ६४ ॥ फिर यमदूत उन्हे दारुण पाश मे बाँध, दण्ड प्रहार करते हुए दक्षिण की ओर खीचते है ॥ ६५ ॥ कुश, काँटे, बल्मीक, शकु तथा पत्थरो से भी कठोर शस्त्र एव कही प्रज्वलित अग्नि से व्याप्त, कही सैकडो गर्त से युक्त ॥ ६६ ॥ कही सूर्य की अत्यन्त उष्णता से जलते हुए, कही सैकडो गीदडो के शब्द से व्याप्त तथा यमदूतो से खीचे जाते हुए ॥ ६७ ॥ इस प्रकार उस प्राणी को सैकडो गीदड खाते है, ऐसे मार्ग से पापी पुरुषो को यमलोक मे जाना होता है ॥ ६८ ॥ जिन्होने छत्री, जूता, वस्त्र, अन्न दिया है, वे उस मार्ग मे सुख से जाते है ॥ ६९ ॥ जो भूमिदान करते है, वे शुभ विमान मे बैठ कर वहाँ पहुँचते है, पापी मनुष्य क्लेशो को पाते हुए बारहवें दिन धर्मराज के पुर मे पहुँचते है ॥ ७० ॥

कलेवरेदह्यमानेमहान्तदाहमृच्छति ।
ताड्यमानेतथैवार्तिछिद्यमानेचदारुणाम् ॥७१॥
क्लिद्यमानेचिरतरञ्जन्तुर्दुःखमवाप्नुते ।
स्वेनकर्मविपाकेनदेहान्तरगतोऽपिसन् ॥७२॥
तन्नयद्वान्धवास्तोयप्रयच्छन्तितिलैः सह ।
यच्चपिण्डप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदश्नुते ॥७३॥
तैलाभ्यङ्गोबान्धवानामङ्गसंवाहनञ्चयत् ।
तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाऽन्नन्तिस्वबान्धवा ॥७४॥
भूमौस्वपद्भिर्नित्यन्तक्लेशमाप्नोतिबान्धवैः ।
दानददद्भिश्चतथाजन्तुराप्याय्यतेमृत ॥७५॥
नीयमान स्वकगेहद्वादशाहंसपश्यति ।
उपभुङ्क्तेतथादत्त तोयपिण्डादिकंभुवि ॥७६॥

द्वादशाहात्सरघोरमावासभीषणाकृतिम् ।
याम्यपथ्यत्यथोजन्तु धृष्यमाण पुरतत ॥७८॥

शरीर के जलने पर भीषण जलन तथा ताडित या छेदित होने पर घोर वेदना भोगनी होती है ॥ ७१ ॥ यह शरीर जब जल मे भीगता है, तब देहान्तर के आश्रय में भी कर्म फल से सदा दुःख का अनुभव होता है ॥ ७२ ॥ उसके निमित्त उसके बांधव जिस तिल जौ को जल सहित देते है, उस समय वह उसी का भोजन करता है ॥ ७३ ॥ बांधवो को तेल या उबटन लगाना इसलिए वर्जित है कि मृतक के लिए भोजन मे वही वस्तु मिलती है ॥ ७४ ॥ बांधवो के धरती मे सोने से उसका क्लेश मिटता है और दान करने से उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है ॥ ७५ ॥ बारहवे दिन उसको फिर उसी घर मे जाना होता है और वहाँ उसके निमित्त जो जल पिण्डादि दिया जाता है, उसका वह भोजन करता है ॥ ७६ ॥ बारहवां दिन बीतने पर पुनः यमदूतो द्वारा खींचा जाकर अत्यन्त भीषण आकार वाले लौहमय यमपुर को जाता है ॥ ७७ ॥

गतमात्रोऽतिरक्ताक्ष भिन्नाञ्जनचयप्रभम् ।
मृत्युकालान्तकादीनामध्येपश्यतिवैयमम् ॥७८॥
दष्टाकरालवमनभ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ।
विरूपैर्भीषणैर्वक्त्रैर्वृतव्याधिशतै प्रभुम् ॥७९॥
दडासक्त महाबाहु पाशहस्तसुभैरवम् ।
तन्निर्दिष्टाततोयातिगतिजन्तु शुभाशुभाम् ॥८०॥
रौरवेकूटसाक्षीसुयातियश्चानृतीनर ।
ब्रह्मघ्नोहत्यथयादष्टोगोघ्नश्चपितृघातक ॥८१॥
क्षेत्रदारापहारीचसीमानिक्षेपहारक ।
गुरुपत्यभिगामीचकन्यागामीतथैवच ॥८२॥
तस्यस्वरूप मतोरौरवस्यनिशामय ।
योजनानासहस्रे द्वे रौरवोहिप्रमाणत ।
जानुमात्रप्रमाणश्चतत श्वभ्रसुदुस्तर ॥८३॥
तलाङ्गारचयोपेतकृतचत्वरणीसमम् ।

जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापितांङ्गारभूमिना ॥८४॥

वहाँ पहुँच कर मृत्यु, काल, अन्तक आदि पार्षदों के सहित यमराज के दर्शन करता है ॥ ७८ ॥ वह यमराज अत्यन्त विकराल वदन, भीषणाकार, विरूप तथा वक्र आकृति की असंख्य व्याधियों से घिरे हुए है ॥ ७९ ॥ वह दण्ड और पाश धारण किये हुए अत्यन्त भयङ्कर आकार वाले है, उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ अथवा निम्न गति को प्राणी प्राप्त करते है ॥ ८० ॥ मिथ्यावादी तथा मिथ्या साक्षी देने वालों को रौरव नरक में डाला जाता है, ब्रह्म—हत्यारे, गौ हत्यारे तथा पिता की हत्या करने वाले ॥ ८१ ॥ क्षेत्र, सीमा, धरोहर या स्त्री का हरण करने वाले, गुरु—पत्नी या कन्या से समागम करने वाले भी उसी रौरव नरक को प्राप्त होते है ॥ ८२ ॥ अब उस रौरव नरक का स्वरूप बताता हूँ, उसे सुनो—वह दो सहस्र योजन लम्बा है, उसमें जल के बराबर गहरा गर्त है ॥ ८३ ॥ उस गर्त में मिट्टी जैसे अंगार भरे है, उन अंगारों के ताप से प्राणी सदा जलता रहता है ॥ ८४ ॥

तन्मध्येपापकर्माणविमुचन्तियमानुगा ।
सदह्यमानस्तीव्रेणवह्निनातलधावति ॥८५॥
पदेपदेचपादोऽस्यशीर्यतेजीर्यतेपुन ।
अहोरात्रेणोद्धरणंपादन्यासंचगच्छति ॥८६॥
एवंसहस्रमुत्तीर्णोयोजनानांविमुच्यते ।
ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ् निरयमृच्छति ॥८७॥
तत सर्वेषुनिस्तीर्णं पापी तिर्यक्त्वमश्नुते ।
कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु ॥८८॥
गत्वागजङ्गमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैवच ।
अन्यासुचैवपापासुदु खदासुचयोनिषु ॥८९॥
मानुष्यप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा ।
चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते ॥९०॥

पापी मनुष्यों को यमदूत उसमें फेंकते है, वे उस तीव्र अग्नि में दाह को प्राप्त हुए इधर-उधर भागते है ॥ ८५ ॥ इस प्रकार पग पग पर उसके पाँव अग्नि से जल कर फटते और नष्ट होते है, दिन-रात्रि में केवल एक बार

ही पैर रखने और उठाने का सामर्थ्य उसमे होता है ।। ८६ ।। इस प्रकार पैर रखने पर हजार योजन चलने पर वहाँ से मुक्त होकर उसी जैसे अन्य नरक को प्राप्त होता है ।। ८७ ।। इस प्रकार सब नरकों को भोग कर तिर्यक् योनि मे जन्म लेता है, फिर क्रमश कृमि, कीट, पतग, श्वापद, और मच्छर होता है ।। ८८ ।। फिर गौ, अश्व, गज, वृक्ष, लता आदि अनेक पाप-योनियों को प्राप्त होता हुआ ।। ८९ ।। मनुष्य जन्म ग्रहण करता है उसमे भी कुबडा, कुत्सित, बौना, चाण्डाल, पुल्कस आदि निंदनीय योनियो मे उत्पन्न होता है ।। ९० ।।

अवशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वित ।
ततश्चारोहणीजातिशूद्रवैश्यनृपादिकाम् ।।९१।।
विप्रदेवेन्द्रताञ्चापिकदाचिदवरोहणीम् ।
एवन्तुपापकर्म्माणोनरकेषुपतन्त्यध ।।९२।।
यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदत शृणु ।
तेयमेनविनिर्दिष्टायान्तिपुण्यागतिनरा ।।९३।।
प्रगीतगन्धर्वगणै प्रनृत्ताप्सरसागणै ।
हारनूपुरमाद्युर्यशोभितात्युत्तमानिच ।।९४।।
प्रयान्त्याशुविमानानिनानादिव्यसगुज्ज्वला ।
तस्माच्चप्रच्युतारोज्ञामन्येषाचमहात्मनाम् ।।९५।।
जायन्तेचकुलेतत्रसद्वृत्तपरिपालका ।
भोगान्सप्राप्नुवन्त्यग्र्यान्ततोयान्त्यूर्ध्वमन्यथा ।।९६।।
अवरोहणीञ्चसम्प्राप्यपूर्ववद्यान्तिमानवा ।
एतत्ते सर्वमाख्यातयथाजन्तुर्विपद्यते ।
अत शृणुष्वविप्रर्षेयथागर्भ प्रपद्यते ।।९७।।

फिर शेष रहे पुण्य से मनुष्य योनि मे क्रमश शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ।। ९१ ।। ब्राह्मण होता हुआ सुरपति तक हो सकता है और (पाप चरण करे तो) अवरोहिणी गति से क्रम पूर्वक उन्ही योनियो मे गिरता है ।। ९२ ।। अब उस गति को कहता हूँ, जिसे पुण्यवान् मनुष्य पाते है । वह भी यमराज के द्वारा निर्दिष्ट गति को प्राप्त करते है ।। ९३ ।। उनके गमन काल मे उनके

चारों ओर गंधर्व गान करते और अप्सराएँ नृत्य करती है तथा हार, नूपुर, माधुर्य आदि से युक्त अति श्रेष्ठ ।। ६४ ।। विमान उनके पास आते है और वे दिव्य मालादि धारण पूर्वक उसमे चढ कर जाते है, फिर पुण्य शेष होने पर विमान से पतित होकर महात्मा ।। ६५ ।। यदि राजवंश में उत्पन्न होकर सदाचार का पालन करते और अनेक प्रकार के सुख भोग कर क्रमश ऊर्ध्व गति को पाते है ।। ६६ ।। यदि अक्षरोहिणी दशा को प्राप्त होते है तो प्रथम पूर्वोक्त सब भोग करते है, हे तात ! जीवो की जिस प्रकार मृत्यु होती है, वह कह दिया, अब गर्भ धारण का प्रकार सुनिये ।। ६७ ।।

११--गर्भस्थित वर्णन

निषेकमानवस्त्रीणाबीजप्रोक्त रजस्यथ ।
विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ।।१।।
तेनाभिभूततत्स्थैर्ययातिबीजद्वयचलत् ।
कललत्वंबुबुदत्वंततत प्रेशित्वमेवच ।।२।।
पेश्यास्तथायथाबीजादकुरादिसमुद्भव ।
अङ्गानाच्चतथोत्पत्ति पचानामनुभागश ।।३।।
उपाङ्गान्यगुलीनेत्रनासास्यश्रवणानिच ।
प्ररोहयान्तिचाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम् ।।४।।
त्वक्चिरोमाणिजायन्तेकेशाश्चैवतत परम् ।
समसमृद्धिमायातितेनैवोद्भवकोशक ।।५।।
नारिकेलफलयद्वत्सकोशवृद्धिमृच्छति ।
तद्वत्प्रयात्यसौवृद्धिसकोशोऽभोमुख स्थित ।।६।।

पुत्र ने कहा—स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य मिश्रण काल मे स्वर्ग या नरक से छूटते ही मनुष्य उसका अवलम्बन करता है ।। १ ।। तथा उससे अभिभूत होकर दोनो बीज स्थिर होकर बुलबुले के लम्बे या गोल आकार को प्राप्त होते है ।। २ ।। उस अण्डाकार मे स्थित सूक्ष्म बीज को अकुर कहते है, उस अकुर के विभाग से पाँचो अग उत्पन्न होते है ।। ३ ।। फिर सभी उपाङ्ग उत्पन्न होकर उनसे अकुर और उससे नखादि उत्पन्न होते हैं ।। ४ ।। फिर

त्वचा पर रोमावली और केशो की उत्पत्ति होती है, और फिर सब अङ्ग और उपाङ्गकोशो की समान भाव से वृद्धि होती है ॥ ५ ॥ अर्थात् जैसे नारियल का फल कोष सहित वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही गर्भ कोष सहित नीचे की ओर मस्तक किये बढता है ॥ ६ ॥

तलेतुजानुपार्श्वाभ्यांकरौन्यस्यसवर्द्धते ।
अङ्गुष्ठौचोपरिन्यस्तौजान्वोरग्रेतथाङ्गुली ॥७॥
जानुपृष्ठे तथानेत्रेजानुमध्येचनासिका ।
स्फिचोपार्ष्णिद्वयस्थेचबाहुजङ्घेनहि स्थिते ॥८॥
एववृद्धिक्रमाद्याति जन्तु स्त्रीगर्भसंस्थित ।
अन्यसत्वोदरेजन्तोर्यथारूपतथास्थिति ॥९॥
काठिन्यमग्निनायातिभुक्तपीतेनजीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयीस्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥१०॥
नाडीचाप्यायनीनामनाभ्यातस्यनिबध्यते ।
स्त्रीणातथान्त्रबुधिरेसातिबद्धोपजायते ॥११॥
क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणागर्भोदरेयथा ।
तैराप्यायितदेहोऽसौजन्तुर्वृद्धिमुपैतिवै ॥१२॥
स्मृतिर्लब्धप्रभाल्पस्यबह्वंच ससारभूमय ।
ततोनिर्वेदमायातिपीड्यमानइतस्तत ॥१३॥

जब निम्न मुख किये प्राणी गर्भ कोष मे रहता है, तब जानु और पार्श्व सहित दोनो हाथ नीचे के भाग मे रहते है, दोनो अगूठे जानु पर तथा सब अँगुलियाँ जानु के अगले भाग मे फैली रहती है ॥ ७ ॥ दोनो चक्षु जानु के पीछे और नासिका जानु के मध्य मे रहती है, दोनो कुल्हे पार्ष्णि पर तथा बाहु और जघा बाहरी भाग मे रहती है ॥ ८ ॥ गर्भ मे प्राणी इस प्रकार बढता है, अन्यान्य जीवो मे अपनी-अपनी आकृति के अनुसार वहाँ रहता हुआ बढता है ॥ ९ ॥ उदर की अग्नि से कठिन होता जाता है और खाये-पिये पदार्थ द्वारा जीवन धारण होता है, पाप या पुण्य की अधिकता के भेद से गर्भ वास भी विभिन्न प्रकार का है ॥ १० ॥ उसकी नाभि मे निबद्ध आप्यायनी नामक नाडी स्त्री की आँत से लगी रहती है ॥ ११ ॥ उसी के

छिद्र से सब खाये-पिये हुए पदार्थ उसके देह में जाकर देह को तृप्त करते हुए बढ़ाते हैं ।। १२ ।। उस समय उसे संसार के अनेक जन्म याद आते हैं और तब वह अत्यन्त दुःखित होता है ।। १३ ।।

पुनर्नैवकरिष्यामिमुक्तमात्रइहोदरात् ।
तथातथायतिष्यामिगर्भनाप्स्याम्यहंयथा ।।१४।।
इतिचिन्तयतेस्मृत्वाजन्मदुःखशतानिवै ।
यानिपूर्वानुभूतानिदैवभूतानियानिवै ।।१५।।
तत कालक्रमाज्जन्तु परिवर्तत्यधोमुख ।
नवमेदशमेवापिमासिसञ्जायतेतत ।।१६।।
निष्क्राम्यमाणोवातेनप्राजापत्येनपीड्यते ।
निष्क्राम्यतेचविलपन्महादुःखनिपीडित ।।१७।।
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामिसह्याप्रतिपद्यते ।
प्राप्नोतिचेतनाचासौवायुस्पर्शसमन्वित ।।१८।।
ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी ।
तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ।।१९।।
भ्रष्टज्ञानोबालभावंततोजन्तुप्रपद्यते ।
तत कौमारकावस्थायौवनवृद्धतामपि ।।२०।।
पुन स्मरणतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानव ।
तत संसारचक्रे स्मिन्भ्राम्यतेघटियन्त्रवत् ।।२१।।

दैव प्रदत्त शत-शत जन्म के दुःखों को याद कर वह सोचता है कि उदर से निकल कर फिर कभी ऐसे कार्य न करूँगा, जिससे फिर कभी गर्भ में रहने का दुःख न भोगना पड़े ।। १४–१५ ।। फिर उस अधोमुखी जीव का जन्म नौवें या दशवें महीने में होता है ।। १६ ।। उस समय प्राजापत्य वायु से अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त हुआ, दुःख से पीड़ित तथा विलाप करता हुआ बाहर निकलता है ।। १७ ।। उदर से निकलते ही उसे मूर्च्छा होती और वायु के स्पर्श से चेत होता है ।। १८ ।। फिर मोहिनी माया उसे मोहित कर देती है, जिससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है ।। १९ ।। ज्ञान के नष्ट होने पर बाल्य, कौमार, युवा, और वृद्धावस्था आदि दशाओं को उसे क्रमशः प्राप्ति

होती है ।। २० ।। फिर मर कर उसी रूप मे जन्म लेता है, इस प्रकार ससार चक्र मे वह घटी यन्त्र की भाँति निरन्तर घूमता रहता है ।। २१ ।।

कदाचित्स्वर्गमाप्नोतिकदाचित्तिरयनर ।
निरयंचैवस्वर्गंचकदाचिच्चमृतोश्नुते ।।२२।।
कदाचिदत्रैवपुनर्जाति स्वकर्मसोश्नुते ।
कदाचिद्भुक्तकर्माचमृत स्वल्पेनगच्छति ।।२३।।
कदाचिदल्पैश्चतताजायतेत्रशुभाशुभै ।
स्वर्लोकेनरकेवापिभुक्तप्रायोद्विजोत्तम ।।२४।।
नरकेषुमहद्दु खमेतच्चस्वर्गवासिन. ।
दृश्यन्तेतातमोदन्तेपात्यमानाश्चनारका ।।२५।।
स्वर्गेपिदु खमतुलयदा रोहणकालत ।
प्रभृत्यहंगतिस्यामीत्येतन्मनसिवर्तते ।।२६।।
नरकाश्चैवसप्रेक्ष्यमहद्दु खमवाप्यते ।
एतागतिमहंगतेत्यहर्निशमनिर्वृत ।।२७।।
गर्भवासेमहाद्दुखजायमानस्ययोनित ।
जातस्यबालभावेचवृद्धत्वेदु खमेवच ।।२८।।

कभी स्वर्ग, कभी नरक तथा कभी दोनों स्थानो मे जाता रहता है ।। २२ ।। कभी पुन इसी स्थान मे जन्म धारण पूर्वक कर्म फल भोगता और कभी सब कर्मों का भोग कर लेने पर अल्प काल मे ही प्राण छोड देता है ।। २३ ।। कभी साधारण से शुभ या अशुभ कर्म से स्वल्प काल को स्वर्ग या नरक मे पहुंचता है ।। २४ ।। स्वर्ग मे निवास करने वालो को अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद करते देख कर पापियो को बडा दु ख होता है ।। २५ ।। परन्तु स्वर्ग मे भी असीमित दु ख है, वहाँ के निवास काल मे यह भय लगा रहता है कि पुण्य के क्षीण होने पर पुन उसी मे गिरना पडेगा ।। २६ ।। उन नरक वासियो की गति देख कर सोचते है कि हम भी फिर ऐसी ही गति को पायेंगे ऐसा विचार उन्हे अत्यन्त दु ख होता रहता है ।। २७ ।। प्रथम तो गर्भ वास ही अत्यन्त दु ख पूर्ण है, फिर योनि-छिद्र द्वारा बाहर निकलना तो नितान्त ही कष्ट मय है और जन्म होने पर बाल्यावस्था और वृद्धावस्था

यह दोनो ही कष्ट देने वाली है ।। २८ ।।

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धयौवनञ्चातिदुःसहम् ।
दुःखञ्चावृद्धताचमरणेदुःखमुत्तमम् ।।२९।।
कृष्यमाणश्चयाम्यैश्चनरकेषुचपात्यते ।
पुनश्चगर्भेजन्माथमरणंनरकस्तथा ।।३०।।
एवंससारचक्रेस्मिञ्जन्तवोघटियन्त्रवत् ।
भ्राम्यन्तेप्राक्तनैर्बद्धावध्यन्तिचासकृत्तदा ।।३१।।
नास्तितातसुखकिञ्चिदत्रदुःखशताकुले ।
तस्मान्मोक्षाययतताकथसेव्यामयात्रयी ।।३२।।

काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि से परिपूर्ण युवावस्था तो अत्यन्त ही दुःख मय है, उस पर भी वृद्धावस्था को तो दुःख की खान ही समझिये, उससे भी बढ़ कर मरण में तो अत्यन्त घोर दुःख है ।। २९ ।। इसके पश्चात् जब यमदूत खींच कर नरक में ढकेलते हैं, तब तो दुःखों की सीमा ही नहीं रहती, फिर भी गर्भ में रहना, जन्म लेना, मरना और पुनः नरक की प्राप्ति होती है ।। ३० ।। इस प्रकार प्राणी इस संसार चक्र में घटी यन्त्र के समान निरन्तर घूमते हुए बन्धन के दुःख को बारम्बार भोगते हैं ।। ३१ ।। असंख्य दुःखों वाले इस संसार में लेश मात्र भी सुख नहीं है, इसलिए जब मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हूँ तो त्रयीविद्या धर्म का क्यों सेवन करूँ ? मुझे तो अपरा विद्या को प्राप्त करना है ।। ३२ ।।

१२--महारौरवादिनर्क वर्णन

साधुवत्सत्वयाख्यातससारगहनंपरम् ।
ज्ञानप्रदानसभूतसमाश्रित्यमहाफलम् ।।१।।
तत्रतेनरका सर्वेयथावैरौरवास्तथा ।
वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ।।२।।
रौरवस्तेसमाख्यात प्रथमनरकोमया ।
महारौरवसञ्ज्ञंतुशृणुष्वनरकंपिते ।।३।।
अगम्यागमनेयेचयेचअभक्ष्यक्षणेरता ।

मित्रद्रोहकराञ्चैवस्वामिविश्वासघातका ॥४॥
परदाररताञ्चैवस्वदारपरिवर्जिन ।
मार्गभंगकरायेचतडागारामभेदका ॥५॥
एतेन्येचदुराचारादह्यन्तेतत्रकिंकरै ।
योजनानासहस्राणिसप्तपंचसमन्तत ।
तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशन ॥६॥
तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा ।
विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ॥७॥

पिता ने कहा—हे वत्स ! ज्ञान देने के रूप मे महा फल दायक परम ससार—रहस्य का तुमने भले प्रकार वर्णन किया है ॥ १ ॥ रौरव नरक तथा अन्यान्य नरको का जो वर्णन किया, अब उसी को विस्तार सहित कहो ॥ २ ॥ पुत्र ने कहा—हे पिताजी ! मैंने प्रथम आपको रौरव नरक का वर्णन किया था, अब महा रौरव नरक का वर्णन सुनिये ॥ ३ ॥ गमन के अयोग्य मार्ग मे जाने वाले, अभक्ष्य भोजन करने वाले, मित्र द्रोही तथा स्वामी से विश्वास घात करने वाले ॥ ४ ॥ पर स्त्री का सेवन करने वाले, अपनी पत्नी को त्यागने वाले, मार्ग, तडाग और उद्यानो को नष्ट करने वाले ॥ ५ ॥ पापियो को वहाँ ले जाकर यमदूत दग्ध करते है, उसका प्रमाण चारो ओर बारह योजन है, उसकी भूमि ताम्रमयी तथा नीचे अग्नि की ज्वाला वाली है ॥ ६ ॥ अग्नि के ताप से तप्त हुई वह ताम्र वर्ण वाली भूमि बिजली की चमक के समान सब दिशाओंको प्रकाशित करती है, उसे देखना या छूना अत्यन्त भयङ्कर है ॥ ७ ॥

तस्याद्ध कराभ्याचपद्भ्यांचैवयतानुगै ।
मुच्यतेपापकृन्मध्येयेन ह्यमान सगच्छति ॥८॥
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ।
भक्ष्यमाणास्तथागृध्रै र्दुर्गमार्गेविकृष्यते ॥९॥
दह्यमान पितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुल ।
वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ॥१०॥
एवतस्मात्सरंमोक्षोह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ।

वर्षायुतायुतं पापय कृतदुष्टबुद्धिभि ॥११॥
तथान्यस्तुतमोनामसोऽतिशीत स्वभावत ।
महारौरवतद्वीर्घस्तथातितमसावृत ॥१२॥
गोघ्नश्चभ्रूणकृतोयेनभ्रातृणाघातएवच ।
अवटेबालघातीचनीयतेशीतसकरे ॥१३॥
शीतार्त्तास्तत्रधावन्तिदरास्तमसिदारुणे ।
परस्परसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्तिच ॥१४॥

पापियो के हाथ—पाँव बाँध कर यमदूत उन्हे उसमे डालते है तब वे उसमे पडे लेटते है ॥ ८ मार्ग मे काक, बगुले, भेडिये, उलूक, बिच्छू, मच्छर और गृध्रादि द्वारा खाये जाते है ॥ ९ ॥ फिर दग्ध होते हुए 'माता, पिता, भ्राता, इत्यादि चिल्लाते हुए अत्यन्त उद्विग्न तथा अशान्त रहते है ॥ १० ॥ सदा पाप करने वाले दुष्ट बुद्धि मनुष्य हजार-हजार वर्ष मे उसका अतिक्रमण करके मुक्त हो पाते है ॥ ११ ॥ उसके पीछे ही घोर अन्धकार से आवृत तम नामक नरक है, वह महा रौरव के समान ही विशाल तथा अत्यन्त शीतल है ॥ १२ ॥ उसमे गौ—हत्यारे, भ्रातृ—हत्यारे और बालघातियो को डाला जाता है ॥ १३ ॥ इस नरक मे गिरने वाले जीव उस महान् अन्धकार मे शीत से आर्त्त होकर इधर-उधर दौडते फिरते है तथा दूसरे नारकीयो से मिल कर उन से लिपट कर वहाँ रहते है ॥ १४ ॥

दन्तास्तेषाञ्चभज्यन्तेशीतार्त्तिपरिकम्पिता ।
क्षुत्तृष्णाप्रबलातत्रतथैवान्येऽप्युपद्रवा ॥१५॥
हिमखण्डवहोवायुर्भिनत्यस्थीनिदारुण ।
मज्जासृग्गलिततस्मादश्नुवन्तिक्षुधान्विता ॥१६॥
लेलिह्यमाना भ्राम्यन्तेपरस्परसमागमे ।
एवतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवै ॥१७॥
प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसक्षय ।
निक्रान्तनइतिख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तम ॥१८॥
तस्मिन्कुलालचक्राणिभ्राम्यन्त्यविरतंपित ।
अदृष्ट दृष्टवद्भूयादश्रुतश्रुतमेवच ॥१९॥

एकाक्षरगुरु यस्तुदुराचारोनमन्यते ।
नशृणोतिगुरोर्वाक्यंशास्त्रवाक्यतथैवच ॥२०॥
एतेपापाद्दुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषैं ।
तेष्वारोप्यनिकृत्यन्तेकालसूत्रेणमानवा ॥२१॥
यमानुगागुलिस्थेनआपादतलमस्तकम् ।
नचैपाजीवितभ्रंशोजायतेद्विजसत्तम ॥२२॥

शीत से काँपते रहने के कारण उनके दाँत टूट जाते हैं तथा भूख-प्यास आदि सभी उपद्रव प्रबल हो जाते हैं ॥ १५ ॥ हिम-खण्डों को बहाने वाली दारुण वायु उनकी हड्डियों को तोड़ देती है, जिससे मज्जा और रक्त गिरता है, वे प्राणी क्षुधातुर होकर उसी का भोजन करते हैं ॥ १६ ॥ परस्पर मिल कर शरीरों को चाटते हुए घूमते हैं, इस प्रकार उन्हें अत्यन्त क्लेश रहता है ॥ १७ ॥ जब तक भले प्रकार पापों का क्षय नहीं हो जाता, तब तक तम नामक नगर में महान् क्लेशों को भोगते हैं, उसके पीछे निकृन्तन नामक एक प्रधान नरक है ॥ १८ ॥ वह कुम्भार के चाक के समान निरन्तर घूमता रहता है, उस चक्र में प्राणियों को काल सूत्र से काटा जाता है और न देखे हुए का देखे हुए के समान तथा न सुने हुए को सुने हुए के समान ही वर्णन करता है ॥ १९ ॥ जो दुराचारी मनुष्य एकाक्षर दाता गुरु को ईश्वर के समान नहीं मानता या गुरु और शास्त्र के वचन को नहीं पालता ॥ २० ॥ वे पापी मनुष्य उस चक्र पर चढ़ाये जाकर काल सूत्र से, पैरों से मस्तक तक काटे जाते हैं तो भी उनका जीवन नष्ट नहीं हो पाता ॥ २१–२२ ॥

छिन्नानितेषांशतशः खण्डान्यैवंप्रजन्तिच ।
एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः ॥२३॥
तावद्यावदशेषंतैतत्पापंक्षयगतम् ।
अप्रतिष्ठ नरकंशृणुष्वनगदतोमम ॥२४॥
यत्रस्थंवारिकंदुःखमसह्यमनुभूयते ।
स्वधर्मरतविप्राणांविघ्नंयस्तुसमाचरेत् ॥२५॥
सबद्धैर्दक्षिणैः पाशैर्नीयतेचक्रसंकरैः ।
तान्येवतत्रचक्राणिघटीयन्त्राणिचान्यतः ॥२६॥

दुःखस्यहेतुभूतानिपापकर्मकृतानृणाम् ।
चक्रेष्वारोपिता केचिद्भ्राम्यन्तेतत्रमानवा ॥२७॥
यावद्वर्षसहस्राणिनतेषास्थितिरन्तरा ।
घटीयन्त्रेषुचैवान्योबद्धस्तोयेयथाघटी ॥२८॥

फिर वह सौ-सौ टुकड़े होकर भी पूर्ववत् मिल जाते है और हजार वर्ष तक इसी प्रकार काटे और जोड़े जाते है ॥ २३ ॥ जब तक कि उनके पाप नष्ट नही हो जाते, अब अप्रतिष्ठ नामक नरक का वर्णन सुनो ॥ २४ ॥ जहाँ रह कर असह्य क्लेश होते है, जो मनुष्य स्वधर्म मे तत्पर ब्राह्मणो के समक्ष विघ्न उपस्थित करता है ॥ २५ ॥ उसे दारुण पाश मे बाँध कर चक्र सहित नरक मे डालते है, वह चक्र और घटीयन्त्र ॥ २६ ॥ पापियो के लिए दुःखो के कारण रूप होते है, कुछ प्राणी उस चक्र पर चढ़ा कर घुमाये जाते है ॥ २७ ॥ उनको उस नरक मे एक हजार वर्ष रहना होता है, कोई पापी छोटे घड़े के समान बाँधा जाकर ॥ २८ ॥

भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्त पुन पुनः ।
अन्त्रैर्मुखेविनिष्क्रान्तैर्नरैरन्यावलम्बिभि ॥२९॥
दुःखानितेप्राप्नुवन्तियान्यसङ्ख्यानिजन्तुभि ।
असिपत्रवननामनरकंशृणुचापरम् ॥३०॥
योजनानासहस्र योज्वलदग्न्यास्तृतावनि ।
ब्रह्मचारिव्रतानाञ्चतपसाविघ्नमाचरेत् ॥३१॥
असिपत्रवनयातियेसदोद्वेगकारिण ।
तप्ता सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणै ॥३२॥
प्रपतन्तिसदातत्रप्राणिनोनरकौकस ।
तन्मध्येचवनरम्यस्निग्धपत्रविभाव्यते ॥३३॥
पत्राणितत्रखड्गानाफलानिद्विजसत्तम ।
श्वानश्चतत्रसबला स्वनन्त्ययुतशोऽभित. ॥३४॥
महाबलामहाद्रंष्ट्राव्याघ्राइवभयानका. ।
ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छायमग्रत ॥३५॥
प्रयान्तिप्राणिनस्तत्रतृट्तापपरिपीडिता. ।

समान हो जाते है ।। ४६ ।। मस्तक स्नायु, मास, त्वचा, अस्थि आदि सभी द्रवी भूत होकर तैल मे मिल जाते है तब उन पापियो को दर्वी द्वारा कूटा जाकर ।। ४७ ।। महा तैल के खड्डे मे डाल कर सथा जाता है, इस प्रकार तप्त कुम्भ आदि नरको का सक्षिप्तर वर्णन आपके प्रति किया है ।। ४८ ।।

१३—गतलोक वर्णन

अहवैश्यकुलेजातोजन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ।
समतीतेगवारोधनिपानेकृतवान्पुरा ।।१।।
विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकम्भृशदारुणम् ।
सप्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम् ।।२।।
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ।
विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ।।३।।
पात्यमानस्यमेतश्रमाग्रवर्षशतगतम् ।
महातापार्त्तितप्तस्यतृष्णादाहान्वितस्यच ।।४।।
तदाह्लादकर सद्य पवन सुखशीतल ।
करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थेवैसमागत ।।५।।
अकस्मादेवभोस्तातनररत्नसमागतम् ।
तत्सम्पर्कापशेषाणानाभवद्यातनानृणाम् ।
ममचापिययास्वर्गेस्वर्गिणानिर्वृ ति परा ।।६।।
किमेतदितिजाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणै ।
दृष्टमस्माभिरासन्न नररत्नमनुत्तम् ।।७।।

पुत्र बोला—हे तात ! इस जन्म से सात जन्म पूर्व मैं वैश्य योनि मे उत्पन्न हुआ था, तब मैंने गौओ को जल पीने से रोका था ।। १ ।। उसी के फल से दारुण नरक को प्राप्त हुआ, वह नरक अग्नि की शिखाओ और लोहे के मुख वाले पक्षिगो से परिपूर्ण था ।। २ ।। यन्त्र मे फैके हुए जीवो के देह से निकले हुए रक्त के बहने से वहाँ कीचड रहता है, तथा यन्त्र मे पडे हुए उन पापियो के आर्तनाद से वह नरक गूँजता रहता था ।। ३ ।। उस नरक मे महाघम की पीडा से उत्पन्न पिपासा पूर्वक मैंने सौ से कुछ अधिक

वर्ष व्यतीत किये थे ॥ ४ ॥ तभी एक दिन करम्भ बालु का वाले घड़े के बीच से प्रसन्नता प्रद ठंडी वायु चलने लगी ॥ ५ ॥ उसके स्पर्श से मेरी तथा अन्य नरक वासियों की यन्त्रणा मिट गयी, उस समय हम सब स्वर्ग मे रहने वालो के समान परमानन्द का अनुभव करने लगे ॥ ६ ॥ हम प्रसन्नता से उत्पन्न हुए विस्मय के सहित इधर-उधर देखने लगे तभी हमे पास मे ही एक श्रेष्ठ मनुष्य हमको दिखाई दिया ॥ ७ ॥

याम्यश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोल्लसत्प्रभ ।
पुरतोदर्शयन्मार्गमितएहीतिचब्रुवन् ॥८॥
ततस्तेजन्तव सर्वेमत्वातद्दर्शनात्सुखम् ।
ऊचुः प्राजलयोभूपक्षणमात्रंस्थितोभव ॥९॥
त्वद्गात्रसंगोपवनोह्यस्माकसुखकारक ।
ततोसौनरकाभ्याशेउपविष्ट कृपान्वित ॥१०॥
पुरुष सतदादृष्ट्वायातनाशतसंकुलम् ।
नरकंप्राहतंयाम्यंकिङ्करंकृपयान्वित ॥११॥
भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिमयादुष्कृतंकृतम् ।
येनेदंयातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिन्नरकंपरम् ॥१२॥
विप्रश्चिदितिविख्यातोजनकानामहंकुले ।
जातोविदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालक ॥१३॥
चतुर्वर्ण्यंस्वधर्मेस्थंकृत्वासंरक्षितंमया ।
धर्मतोधर्मकल्पेनमनुनात्रयथापुरा ॥१४॥

उस समय वज्र के समान दण्ड हाथ मे लिये हुए एक भयङ्कर यमदूत उसे मार्ग दिखा रहा था ॥ ८ ॥ उस समय सभी प्राणी उसके दर्शन से सुखी होकर हाथ जोड़े हुए बोले कि आप क्षण भर को यहाँ रुके ॥ ९ ॥ आपके शरीर के साथ चलने वाला वायु हमे सुख दे रहा है, तब वह मनुष्य अनुग्रह पूर्वक हमारे पास ठहर गये ॥ १० ॥ फिर उसने सैकड़ो कष्टो वाले नरक को देखा और अनुग्रह भरे हृदय से यमदूतो से कहने लगा ॥ ११ ॥ उसने कहा— हे यमदूतो ! मैंने ऐसा कौन पाप किया है, जिसके कारण मुझे इस अत्यन्त भयानक नरक मे लाया गया है, यह मुझे शीघ्र बताओ ॥ १२ ॥ मैं पितृ कुल

मे पण्डित कहा जाता था,इसलिए विदेह राज्य मे श्रेष्ठ प्रजा पालक था ।। १३ ।। चारो वर्णों की मैंने धर्म पूर्वक रक्षा की थी और सभी कार्य मनु के समान ही धर्म से किया था ।। १४ ।।

यज्ञैर्मयेष्ट बहुभिर्धर्मत पालिताम्हीं ।
नोत्सृष्टश्चैवसग्रामोनातिथिर्विमुखोगत ।।१५।।
पितृदेवर्षिभृत्याश्चनचापचरितामया ।
महातापार्तितप्तस्यतृष्णादाहार्दितस्यच ।।१६।।
कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभवादिषु ।।१७।।
पर्वकालेषुपितरस्तिथिकालेषुदेवता ।
पुरुषस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनव ।।१८।।
यतस्तेविमुखायान्तिनि स्वस्यगृहमेधिन ।
तस्मादिष्टश्चपूर्तश्चधर्मोद्भावपिनश्यत ।।१९।।
पितृनिस्वासविध्वस्तसप्तजन्मार्जितधनम् ।
त्रिजन्मप्रभवदैवोनिश्वासोहन्त्यसंशयम् ।।२०।।
तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेवहितोऽभवम् ।
सोऽहकथमिमप्राप्तोनरकभृशदारुणम् ।।२१।।

मैंने अनेक यज्ञो के अनुष्ठान पूर्वक धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन किया था, मैंने युद्ध का त्याग कभी नही किया और कभी किसी अतिथि को विमुख नही किया ।। १५ ।। मैंने पितृ, देव, ऋषि अथवा सेवको को भी कभी दुःखी नही किया तथा महाताप से तप्त और प्यास से आतुर ।। १६ ।। प्राणियो की रक्षा मे सदा तत्पर रहा हूँ, परधन या परनारी की कामना मैंने कभी नही की ।। १७ ।। जैसे गौऐं गोष्ठ मे आती है, वैसे ही पर्वकाल मे पितरगण और तिथि काल मे देवगण मेरे यहाँ आते थे ।। १८ ।। जिस गृहस्थ के यहाँ से पितर या देवता विमुख होते है, जिसके यज्ञ और पूर्त का विनाश हो जाता है ।। १९ ।। पितरो के विमुख होने से सात जन्म का सचित पुण्य तथा देवताओ के विमुख होने से तीन जन्म का एकत्र हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ।। २० ।। इस कारण मैं पितरों और देवताओ के कार्य मे सदा रहता था फिर इस दारुण नरक को क्यो प्राप्त हुआ है ? ।। २१ ।।

१४—क्रमफल प्राप्ति

इत्युक्तस्तेन दूतेन भयङ्करवचोमहात्मना ।
उवाच पुरुषो याम्यो नोद्विग्नश्चित्रगुप्तवत् ॥१॥
महाराज यथात्थैतन्नैतन्मिथ्याभिधास्यति ।
किन्तु मत्तस्तु दुष्पापं वचनात्स्मारयामि तत् ॥२॥
वैदर्भीविषयापत्नी पीवरी नाम नामतः ।
ऋतुमत्यां त्वयर्तुर्वै सम्बभूव तया कृतः पुरा ॥३॥
सुशोभनाभिधे केकयाधिपे सक्ते नृतोभवाम् ।
ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तो नरकोऽयं घोरमीदृशम् ॥४॥
होमकाले यथावह्निराज्यपानमवेक्षते ।
ऋतौ प्रजापतिस्तद्वद्बीजपानमवेक्षते ॥५॥
यस्तमुल्लङ्घयेद्धर्मात्मा कामेष्वासक्तिमान्भवेत् ।
सतुल्यो भ्रूणहत्यायाः पभवाप्यनरकं पतेत् ॥६॥
एतावदेवतेपापमन्यत्किञ्चन विद्यते ।
तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ।
एतच्छ्रुत्वातुराजर्षि कृपयाजनकोऽब्रवीत् ॥७॥

पुत्र बोला—हे तात ! इस प्रकार उस पुरुष के प्रश्न करने पर यमदूत ने भयङ्कर होते हुए भी जिस तरह से उत्तर दिया, उसे तैसे सुना ॥ १ ॥ यमदूत ने कहा—हे महाराज ! आप सत्य कहते हैं, परन्तु आपसे एक सामान्य पाप बन गया था, उसे आपको स्मरण कराता हूँ ॥ २ ॥ आपकी एक पत्नी विदर्भ देश की थी, उसका नाम पीवरी था, आपने उसके ऋतुमती होने पर ऋतु को विफल किया था ॥ ३ ॥ आप उस समय केकय देश की रानी सुशोभना के प्रति अत्यन्त आसक्त थे, इसलिए ऋतु काल का व्यतिक्रमण करने से आपको इस दारुण नरक की प्राप्ति हुई है ॥ ४ ॥ जैसे होम काल में अग्नि आहुति की कामना करता है, वैसे ही प्रजापति ऋतु काल में बीज की कामना करते हैं ॥ ५ ॥ इसका उल्लङ्घन करने वाले धर्मात्मा पुरुष भी गिलहरी-भ्रूण के समान रूप पक्ष में लिप्त होकर नरक में पड़ते हैं ॥ ६ ॥ आपसे

यहाँ एक नाग पाप किया है, अन्य कोई पाप अपने नहीं किया, अब आप सभी पुरुषों का फल भोगने के लिए चलिये, यह सुन कर उस राजर्षि ने हँसा पूर्वक कहा ॥ ७ ॥

यास्यामिदेवातुच्छस्यतवज्ञानविपश्चित ।
किंचित्पृच्छामिनःप्रश्नंयथादृष्टंश्रुतंहि ॥८॥
वज्रतुण्डास्त्वमेकोनः पुनरन्यान्पृच्छसि ।
पुनःपुनश्चनेत्राणिहरंतोमेविहंगमाः ॥९॥
किंकर्मकृतवन्तश्चवयंवज्रमुखैरिव ।
हरन्त्येषांनखाग्रेणनेत्राणिपुनरेवहि ॥१०॥
करपत्रेणवाटङ्कैर्मेदःकेकेषुनिर्दयैः ।
करम्भवालुकाभूमौपच्यमानेकदुःखतः ॥११॥
अयोमुखैःक्षणंखादद्भिःपक्षिभिर्विहंगम ।
विलिप्तदेहबन्धानिरुद्धारावैर्विशेषतः ॥१२॥
अवध्यचूर्णितानेषांपीडयन्तेकिमेतत ।
किमेतेन्हि स्वनन्दोषिपुद्यन्तेऽहोनिशंतथा ॥१३॥
गताश्चान्याश्चदृश्यन्तेयातनाघोरकर्मिणाम् ।
येनकर्मविपाकेनलब्धदेहं जनोवद ॥१४॥

राजा बोले—हे नारद ! आप पुनः आ कर लेजाइयो, अब मैं आपसे परन्तु मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दो ॥ ८ ॥ हे यम राज के सेवको ! आप इन पुरुषों के नेत्रों का हरण करते हैं और इनके ये नेत्र पुनः उत्पन्न हो जाते हैं,ऐसा बारम्बार हो रहा है ॥ ९ ॥ इन्होंने ऐसा कौनसा निन्दनीय कर्म किया है, जिनसे इनके नेत्र निकाले जाने पर भी पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ १० ॥ यह करपत्र की मार से क्यों इतना दुःख भोग रहे हैं तथा तप्त बालू और लोह में भूने जा रहे हैं ॥ ११ ॥ लोहमुख पक्षियों द्वारा नोचे जाने पर इनकी देह के बन्धन टूट रहे हैं, जिनकी पीड़ा के कारण यह आर्त्तनाद कर रहे हैं ॥ १२ ॥ तथा पक्षियों की लौहमय चोंच के आघात से इनके सभी अंग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं,इन्होंने ऐसा क्या पाप किया है जिससे यह निरन्तर ऐसी यन्त्रणा प्राप्त कर रहे हैं ॥ १३ ॥ पापियों की अन्य प्रकार की पीड़ाएँ मिलते हुए भी देख

रहा हूँ, किस कर्म के कारण इन्हे इन दुःखो की प्राप्ति हो रही है, यह मुझे प्रारम्भ से अन्त तक बताओ ।। १४ ।।

यन्मापृच्छसिभूपालमापकर्मफलोदयम् ।
तत्तेऽहंसप्रवक्ष्यामिसक्षेपेणयथातथम् ।।१५।।
पुण्यापुण्येहिपुरुष पर्यायेणसमश्नुते ।
भुक्तेतच्चक्षयंयातिपापंपुण्यमथापिवा ।।१६।।
नत्वभोगादृतेपुण्यपापंवाकर्ममानव ।
परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिबोधमे ।।१७।।
दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्ष क्लेशात्क्लेशभयाद्भयम् ।
मृतेभ्य प्रमृतायान्तिदरिद्रा पापकर्मिण ।।१८।।
गतिनानाविधायान्तिजन्तव कर्मबन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गात्स्वर्गसुखात्सुखम् ।।१९।।
श्रद्दधानाश्चदान्ताश्चधनदा शुभकारिण ।
व्याघ्रऋक्षगजदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ।।२०।।
हृता पापेनगच्छन्तिपापिन किंमत परम् ।
सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशना ।।२१।।
स्तूयमाना सदायान्तिपुण्यै पुण्याटवीष्वपि ।
अनेकशतसाहस्रजन्मसचयसंचितम् ।।२२।।

यमदूतो ने कहा—हे राजन् ! पाप के फलोदय के विषय मे जो प्रश्न आपने किया है, उसका वर्णन संक्षिप्त रूप से करता हूँ ।। १५ ।। क्रमानुसार ही मनुष्यो को पाप-पुण्य भोगने होते है, उसी से उनके पाप या पुण्य का क्षय होता है ।।१६।। बिना भोगे पुण्य या पाप से कभी मनुष्य की बुद्धि नही होती है भोगने से ही वह मिटता है, उसी से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है । जो पापी हैं वे दरिद्री होते है, वे दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु को पाते हैं ।। १७–१८ कर्म के बन्धन से विभिन्न प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती है पुण्यात्माओ को उत्सव, स्वर्ग तथा सुख पर सुख मिलते रहते है ।। १९ ।। वही श्रद्धालु, शान्तचेता, दानी और सुख करने वाले होते है, तथा पापी मनुष्य व्याल, हाथी, सर्प, चोर आदि से भय युक्त स्थान मे ।। २० ।। पाप से मर

कर जाते है, उनकी अन्य गति क्या हो सकती है ? तथा श्रेष्ठ वस्त्र, सुगन्धित मालाएँ, विमान और भोजन ।। २१ ।। आदि की प्राप्ति महात्मा पुरुषों को अपने पुण्य के बल से होती है, वे प्रकाशित होते हुए पवित्र स्थानों को प्राप्त होते है ।। २२ ।।

पुण्यापुण्यनृणातद्वत्सुखदुःखाङ्कुरोद्भवम् ।
यथाबीजहिभूपालपयासिसमवेक्षते ।।२३।।
पुण्यापुण्येतथाकालदेशान्यक्रमैक्षारकम् ।
स्वल्पपापकृतपु सादेशकालोपपादितम् ।।२४।।
पादन्यासकृतदुःखकण्टकोत्थप्रयच्छति ।
तत्प्रभूततरस्थूलशकुकीलकसम्भवम् ।।२५।।
दुःखयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम् ।
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ।।२६।।
तथान्योन्यमपेक्षन्तेपापानिफलसङ्गमे ।
एवमहान्तिपापानिदीर्घरोगादिका क्रिया ।।२७।।
तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रातिबन्धनादिम्लायवै ।
स्वल्पपुण्यशुभगन्धहेलयासम्प्रयच्छति ।।२८।।
स्पर्शवाप्यथवाशब्दरसरूपमथापिवा ।
चिरादगुरुतरतद्वन्महान्तमपिकालजम् ।।२९।।

अनेक शत सहस्र जन्मों के पुण्य, पाप को प्राणी सचित करते रहते है, वही उनके सुख-दुख रूप मे उत्पन्न होते है, जैसे सभी बीज जल की कामना करते हैं ।।२३।। उसी प्रकार पुण्य,पाप भी काल,देश और पात्रकी कामना करते हैं, यदि देश, काल के अनुसार किंचित् भी पाप किया हो तो ।। २४ ।। पैर रखने पर काँटा लगने जैसे दुःख का ही अनुभव होता है, परन्तु अधिक पापों का आचरण करने पर शूल या कील आदि से उत्पन्न होने वाले ।। २५ ।। शिरोरोग आदि दारुण दुःखो का भोग करना होता है; जैसे अपथ्य अन्न, शीत ताप, श्रम आदि को उत्पन्न करता है ।। २६ ।। वैसे ही सब पाप फल के उत्पन्न होने के समय मे परस्पर की अपेक्षा करते है, महापाप कर्मसे दीर्घ रोगादि विकारो की प्राप्ति होती है ।। २७ ।। शस्त्र पीडा, अग्नि का दाह अथवा

[illegible] के समूह [illegible] हुई, [illegible] क्रीड़ा के बहाने किंचित् पुण्य करने से भी [illegible] ॥ २८ ॥ मुक्तिदात्री काशी, [illegible] वाली, मीठे रस और सुन्दर रूप का [illegible] के लिए [illegible] तथा बहुत पुण्य करने पर कालक्रम से [illegible] ॥ २९ ॥

[illegible] पुण्यापुण्योद्भवानिवै ।
भुङ्क्ते [illegible] ॥३०॥
[illegible] ज्ञानकलानिच ।
[illegible] ॥३१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३५॥

इस प्रकार प्राणी पाप-पुण्य से उत्पन्न दुःख या सुख का भोग करता हुआ संसार में घूमा करता है ॥ ३० ॥ जाति, देश, काल आदि से अवरुद्ध ज्ञान-कलाओं का सम्पूर्ण फल आत्मा में विलुप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ मन, वाणी, कर्म से कोई पाप-पुण्य किये बिना उसका फल उत्पन्न नहीं हो सकता ॥ ३२ ॥ वह जो कुछ सुख-दुःख की प्राप्ति है, वह अल्प या अधिक चित्त का ही विकार है ॥ ३३ ॥ उसे उतने ही अल्प पुण्य के फल की प्राप्ति होती है ॥ ३४ ॥ जैसे भोजन किये हुए अन्न का क्षय उसके उपभोग से ही होता है, वैसे ही भोगे बिना पाप का क्षय नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

[illegible] ।
[illegible] ॥३६॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३७॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३८॥
[illegible] ।
[illegible] ॥३९॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४०॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४१॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४२॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४३॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४४॥
[illegible] ।
[illegible] ॥४५॥

यत्त्वयापृच्छसिमा राजन्यातना पापकर्मिणाम् ॥३८॥
केनकेनेतिपापेनतत्ते वक्ष्याम्यशेषत ।
दुष्टेनचक्षुषाहृष्टा परदारानराधमैः ॥३९॥
मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यचलस्पृहैः ।
वज्रतुण्डा खगास्तेषाहरन्त्येतेदिलोचने ॥४०॥
पुन पुन श्चसभूतिरक्षणोरेषामजायथ ।
यावतोऽक्षिनिमेषास्तुपापमेभिर्नृभि कृतम् ॥४१॥
तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रातिप्राप्नुवन्त्युत ।
असच्चाशास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायेश्रमत्रिता. ॥४२॥
सम्यग्दृष्टे विनाशायरिपूणामपिमानवे ।
यैः शास्त्रमन्यथाप्रोक्त यैरसद्भायुदाहृता ॥४३॥

इसलिए नरक मे रह कर जीव यातनाएं प्राप्त करके ही महापाप क्षय करते रहते हैं तथा इसी प्रकार पुण्यात्मा स्वर्गवासी भी देव के साथ रह कर पुण्य को भोगते है ॥ ३३ ॥ उन्हे सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओं के गान आदि से पुण्य फल मिलता है, तथा देवता, मनुष्य वा खग-योनि पाकर भी शुभाशुभ ॥ ३७ ॥ पुण्य और पाप से उत्पन्न सुख दुःख युक्त भोगते है, हे राजन् ! आपने प्रश्न किया कि प्राणीगण किस किस पापकर्म से ऐसी यन्त्रणा भोगते है ॥ ३८ ॥ अब मैं इन पूर्ण रूप से कहता हूं, जिन नराधम मनुष्यो ने परस्त्री को दूषित नेत्रो से देखा है ॥ ३९ ॥ अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रो से देखा है, उनके दोनो नेत्रो को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते है ॥ ४० ॥ तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते है, इन मनुष्यो ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये है ॥ ४१ ॥ उतने ही सहस्र वर्ष यह इन नेत्र पीड़ा को प्राप्त करते रहेगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञान दृष्टि का हरण करने के लिए अन्धाय पूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है ॥ ४२-४३ ॥

वेददेवद्विजातीनागुरोर्निन्दाचयैः कृता ।
हरतितेषाजिह्वाश्चजायमाना पुन पुन ॥४४॥
तावतोवत्सरान्तेवज्रतुण्डा सुदारुणा ।

मित्रभेदनयापित्रापुत्रस्यस्वजनस्यच ॥४५॥
यज्वोपाध्याययोर्मात्रासुतस्यसहचारिण ।
भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदचक्रुर्नराधमा ॥४६॥
तइमेयज्ञपाश्च तेकरपत्रेणपार्थिव ।
परोपतापकायेचयेचाह्लादनिषेधका ॥४७॥
तालवृंतानिलादित्रचन्दनोशीरहारिण ।
प्राणान्तिकददुस्तापमदृष्टानाचयेऽधमा ॥४८॥
करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिन ।
भुङ्क्ते श्राद्ध तुयोऽन्यस्यनरोन्येननिमन्त्रित ॥४९॥

जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनो की निन्दा की है, वह यह वज्रतुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते है, जीतनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हे ऐसी यत्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रो मे या पिता-पुत्र मे भेद डलवाया है ॥ ४४-४५ ॥ अथवा याज्ञिक-यजमान मे, माता-पुत्र मे या पति-पत्नी मे मन मुटाव करा दिया है ॥ ४६ ॥ वे इस कर पत्र से आहत होते है अथवा जो किसी को क्रोध दिलाने या किसी की प्रसन्नता नष्ट करते है ॥४७॥ जो ताड का पखा या खस चाचन्दन का हरण करते अथवा साधुओ को प्राणान्तिक पीडा देते है ॥ ४८ ॥ वे पापी तप्त रेत मे गिर कर पाप का फल पाते है अथवा जो एक श्राद्ध मे निमन्त्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते है उनको यह पक्षीगण व्यथित करते है ॥ ४९ ॥

दैत्रेवाप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेखगै ।
ममांणियस्तुसाधूनामसद्वाग्भिनिकृन्तति ॥५०॥
तामिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिता ।
य करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामति ॥५१॥
पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्ययेत्थनिशितै शुरै ।
मातापित्रोर्गुरूणाचयेऽवज्ञाचक्रुरुद्धता ॥५२॥
तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखा ।
देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच ॥५३॥
अभुक्तवत्सुयेऽश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ।

दुष्टास्तेपूयनिर्यासभुज सूचीमुखास्तुते।।५४।।
जायन्तेगिरिवद्धर्माणि पश्यंतेयादृशानरा ।
एकपक्त्यातुयेविप्रमथवेतरवर्णजम् ।।५५।।
विषमभोजयन्तीहविड्भुजस्तद्वमेयथा ।
एकसार्थप्रयातवेनि स्वमर्थार्थिननरम् ।।५६।।

तथा जो झूँठी बात बना कर किसी की चुगली करते है ।। ५० ।। अर्थात् देवता या पितर-कार्य मे एक का निमत्रण स्वीकार करके दूसरे का भोजन करते है ।। ५१ ।। उनकी जिह्वा इस तीक्ष्ण छुरी के द्वारा दो टूक कर दी जाती है, जो मत्त होकर माता, पिता तथा गुरुजनो का तिरस्कार करते है ।। ५२ ।। वे इस पीक मल और मूत्र से परिपूर्ण कुण्ड मे अधोमुख गिराये जाते है, देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत ।। ५३ पितरगण, अग्नि और पक्षियो को भोजन दिये बिना स्वय खा लेते है, वे सूचीमुख होकर पीव और गोद खाते है ।। ५४ ।। उनका शरीर पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण और अन्य जाति वालो को एक पक्ति मे बैठा कर ।। ५५ ।। असभान भोजन कराते है, वह इसकी विष्ठा खाते है, जो व्यापार के लिए एक साथ जाते हुए भी अपने धनहीन साथी को छोड कर स्वय भोजन कर लेते है, उन्हे यहाँ कफ का भोजन प्राप्त होता है, ।। ५६ ।।

अपास्यस्वान्नमश्नन्तितद्वमेश्लेष्मभोजिन ।
गोब्राह्मणाग्नय स्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ।।५७।।
तेषामेतेऽग्निकुण्डेषुप्रज्वलत्स्वाहिता करा ।
सूर्येन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टैस्तुकामत ।।५८।।
तेषायाम्यैर्नरैर्नैन्यस्तोवह्नि समिध्यते ।
गात्रोऽग्निर्जननीविप्रोज्येष्ठभ्रातापितास्वसा ।।५९।।
जामयोमुरवोवृद्धायैं स्पृष्टास्तुपदानृभि ।
बद्धाघ्नयस्तेनिगडैर्लोहैरग्निप्रतापितै ।।६०।।
अगाररशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिन ।
पायसकृसरशागदेवान्नानिचयानिवै ।।६१।।
भुक्तानियैरसंस्कृत्यतेषानेत्राग्निपापिनाम् ।

निपानिनानामनुदृष्टे उद्वृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ॥६२॥

जिन्होंने उच्छिष्ट, रज वर्ण, गो, ब्राह्मण या अग्नि का स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥ उनके हाथ अग्नि कुण्ड में फिर कर दग्ध होते हैं तथा उच्छिष्ट अवस्था में जिन्होंने सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रगण के दर्शन किये हैं ॥ ५८ ॥ उनके नेत्रों पर यह यमदूत अग्नि रखते हैं, जिन्होंने गौ, ब्राह्मण, माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, अग्नि ॥ ५९ ॥ वृद्ध की बहन गुरु अथवा वृद्ध ब्राह्मण का स्पर्श पैर से किया है, उनके पैर अग्नि से तपाई हुई लौह-बेड़ियों में जकड़े गये हैं ॥ ६० ॥ तथा वे ही जीव तक अंगारों के ढेर में खड़े किये गये हैं, जिन पापियों ने खीर, खिचड़ी या छाग अथवा अन्य किसी देवान्न को ॥ ६१ ॥ संस्कार किये बिना खा लिया है, उन पापात्माओं के नेत्र उखाड़ कर भूमि में डाले हुए दिखाई दे रहे हैं तथा भक्षण करने वाले यमदूतों के मुख में गिर रहे हैं ॥ ६२ ॥

सन्दंशैः पक्ष्यकृष्यन्तेनरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ।
गुरुदेवद्विजातीनांदेहानाक्रमणरावमैः ॥६३॥
निन्दानिशामितावेश्मपापानामभिनन्दताम् ।
तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनः पुनः ॥६४॥
कर्णेषूपरिगृह्यन्तेयाम्याविलपतामपि ।
यैः प्रपादेवविप्राकोदेवालयसंस्था शुभा ॥६५॥
भङ्क्त्वाविध्वंसमानीता क्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ।
तेषामेतैः शिरैः शङ्कैर्मुद्गरैर्विलपतश्च ॥६६॥
पृथक्कुर्वन्तिवैयाम्या शरीरादतिदारुणा ।
गोब्राह्मणार्कमार्गास्तुयेऽवमेहन्तिमानवा ॥६७॥
तेषामेतानिकृष्यन्तेगुदेनाक्षाणिवायसैः ।
दत्त्वाकन्यांयएकस्मैद्वितीयायप्रयच्छति ॥६८॥
सत्वेवर्णेकदाछित्त्वा क्षारतप्तायप्रयाहते ।
स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानव ॥६९॥
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिञ्चनम् ।
दुर्भिक्षेसक्षमेनापिसोऽप्येवंयमकिङ्करैः ॥७०॥
उत्कृत्यदत्तानिमुखेस्वमांसान्यश्नतेक्षुधा ।

शरणागतान्त्यस्यजतिर्वोमादुत्कोचजीविक ॥७१॥

जो गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेद की निन्दा सुन कर उनका अनुमोदन करते हैं, अग्नि वर्षक लोहे की कीलें यमदूत डालते हैं ॥ ६३-६४ ॥ उन विलाप करते हुए पापियों के कानों में डाला जाता है, जिन्होंने देवालय, ब्राह्मण का गृह अथवा सभा भवन को ॥ ६५ ॥ दग्ध अथवा क्षोभ उत्पन्न करके विध्वंस किया है, उनका चर्म नीच पक्षी के द्वारा ॥ ६६ ॥ शरीर से यमदूत अलग करते हैं तथा जो नर, ब्राह्मण और सूर्य के मार्ग में मल मूत्र का त्याग करते हैं ॥ ६७ ॥ उन पापियों को सब अंग गृद्ध द्वारा में कीए के खा लेते हैं, जो एक बार किसी का कन्या दान करके, वही कन्या किसी अन्य को देते हैं ॥ ६८ ॥ उनको इस प्रकार दुष्कर्म करके खारी नदी में प्रवाहित किया जाता है, जो अन्न मनुष्यों को भोजन न करके, अपना ही करते हैं ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्ष या अन्य संकट काल में गुरु, सेवक, बन्धक तथा बन्धु-बान्धव का त्याग करते हैं, यमदूत ॥ ७० ॥ उनके मांस को काट-काट कर उन्हीं के मुख में डालते हैं और वे क्षुधार्त्त हुए उसी को खाते हैं ॥ ७१ ॥

सोऽप्येवमयत्नपीडाभि पीड्यतेयमकिंकरैः ।
सुकृतैर्यैरयत्नेनयावज्जन्मकृतंनरः ॥७२॥
तेपिष्यन्तेऽग्निलावैर्यैर्धेनवोवेदनातुरा ॥७४॥
क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वानालवोवेदनातुरा ॥७४॥
दिवामैथुनिनः पापा परदारभुजश्चये ।
तर्थवकण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैः पट्यतेऽग्निमुखे ॥७५॥
आरोपिताविभिन्नाङ्गा प्रभूतासृक्समाविला ।
मूषायामर्पिपश्यैतान्म्रियमाणानयत्नतः ॥७६॥
पुरुषैः पुरुषव्याघ्रपरदारावमर्शिनः ।
उपाध्यायमग्नं कृत्वास्तब्धोयोऽध्यायनन्नरः ॥७७॥
गृह्णातिशिरुषमथवासोऽप्येवंशिरसाशिलाम् ।
विभर्त्तिक्लेशमवाप्नोतिजनमार्गेऽतिपीडितः ॥७८॥

जो लोभवश वेतन भोगी अथवा शरणागत का त्याग करते हैं उनको इस प्रकार की यम पीड़ा दी जाती है। जो मनुष्य अपने सब जन्मों के पुण्य

को मूल्य लेकर बेच देते हैं ॥ ७२ ॥ वे इन पापियों के समान ही पाषाण के कोल्हू में पेले जाते हैं, जो किसी की धरोहर हड़पते हैं, उनका सम्पूर्ण देह बधन में पड़ता है ॥ ७३ ॥ और उन्हें कृमि, वृश्चिक, काक, उल्लू आदि रात-दिन चाटते रहते हैं तथा उनकी जिह्वा और तालु सुधा पिपासा से शुष्क होजाते हैं ॥ ७४ ॥ जिन्होंने दिन में नारी समागम अथवा परस्त्री-गमन किया वह लोहे के तीक्ष्ण काँटों वाले शाल्मलि वृक्ष पर ॥ ७५ ॥ चढ़ाये जाकर अँग भग पूर्वक रक्तपात से व्याकुल हो रहे हैं तथा वे धौंकनी में रख कर जलाये जा रहे हैं ॥ ७६ ॥यह देखो, परस्त्री से समागम करने वालों की दशा ऐसी होती है तथा जो उपाध्यदय को नीचः आसन देकर अहंकार पूर्वक अध्ययन ॥ ७७ ॥ करते या शिल्प ग्रहण करते हैं, वह इसी प्रकार सिर पर शिला रख कर बोझ से अत्यन्त क्लेश पाते हैं ॥ ७८ ॥

क्षुत्क्षामोऽहर्निशभारपीड़ाव्यथितमस्तक ।
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणियैरुत्सृष्टानिवारिणि ॥७९॥
तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकगता ।
परस्परञ्चमांसानिभक्षयन्तिक्षुधान्विता ॥८०॥
भुक्त नातिथ्यदिक्षिनापूर्वमेभि परस्परम् ।
अपविद्धास्तुयैर्वेदाव ह्लयश्चाहिताग्निभि ॥८१॥
तइमेशैलश्रृ गाग्रात्पात्यन्तेऽध्र पुन पुन ।
पुनर्भूपतयोजीर्णयावज्जीवकियेनरा ॥८२॥
इमेकृमित्वमायन्नाभक्ष्यतेऽत्रपिपीलिकै ।
नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥८३॥
पाषाणमध्यकीटत्वनर.सततमश्नुते ।
पश्यतोभृत्यवर्गस्यमिलस्याप्यतिथेस्तथा ॥८४॥
एकोमिष्टान्नभुग्भुक्ते ज्वलदगारसंचयम् ।
वृकैर्भयकरै पृष्ठं तित्यमस्योपभुज्यते ॥८५॥

बोझ के कारण मस्तक में वेदना पाते हुए क्षुधा-पिपासा से सदा पीड़ित रहते हैं, जिन्होंने मल, मूत्र या कफ का जल में त्याग किया है ॥ ७९ ॥ वह देखो मल, मूत्र और कफ वाले दुर्गंधियुक्त नरक को प्राप्त हुए हैं तथा यह

जो क्षुधातुर होकर एक-दूसरे का मांस भक्षण कर रहे है ।। ८० ।। इन्होने आतिथ्य सत्कार पूर्वक भोजन नही किया था । जिन आहिताग्नि मनुष्यो ने वेद तथा अग्नि का निरादर किया है ।। ८१ ।। वह इस पर्वत-शिखर से बारम्बार गिराये जाते है, जिन्होने दुबारा ब्याही हुई पत्नी का स्वामित्व प्राप्त कर उसके साथ जीवन व्यतीत किया है ।। ८२ ।। वह कृमि रूप होकर चीटिंयो द्वारा खाये जारहे है, जिसने नीच पुरुष का दान ग्रहण अथवा सेवा या यजन किया है ।। ८३ ।। वह पत्थर के भीतर होने वाला कीट होता है, जो अतिथि, बधुओ और भृत्यो का तिरस्कार कर ।। ८४ ।। मिष्ठान्न का एकाकी भोजन करता है, वह यहाँ प्रज्वलित अगार भक्षण करता है तथा उसकी पीठ के मांस को मथकर भेडिये नित्य भक्षण करते है ।। ८५ ।।

पृष्ठमांसं नृपैतेनवतोलोकस्यभक्षितम् ।
अ धोऽथबधिरोमूकोभ्राम्यतेक्षुधातुर: ।।८६।।
अकृतज्ञोऽधम पु सामुपकारिषुवर्त्तते ।
अयकृतघ्नोमित्राणामपकारीसुदुर्मति: ।।८७।।
तप्तकु भेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ।
कर भवालुकालस्मात्ततोयत्रावपीडनम् ।।८८।।
असिपत्रवनतस्मात्करपत्रेणपाटनम् ।
कालसूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातना: ।।८९।।
प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नदेहिकथमेष्यति ।
श्राद्धे समतिनोविप्रा समुपेत्यपरस्परम् ।।९०।।
दुष्टाहिनि नृतफेनसवर्गिभ्य पिबतिवै ।
सुवर्णस्तेयीविप्रघ्न सुरापोगुरुतल्पग ।।९१।।
अधश्चोर्ध्वचदोषाग्नौदह्यमाना समतत ।।९२।।

जिन्होने किसी की पीठ पीछे निन्दा की, वह यहाँ अधे, वधिर और मूक होकर क्षुधार्त्त घूमते है ।। ८६ ।। इस अधम ने उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नही की अत यह दुर्बुद्धि कृतघ्न तथा मित्रो का अपकार करने वाला है ।। ८७ ।। इसीलिए तप्तकुम्भ मे डाला गया है, यह घोर विलाप करता है, इसके पश्चात् इसे पीसा जायगा, फिर तप्त वालुयन्त्र क्रीडा को भोग कर

॥ ८८ ॥ अनिष्य नरक में खड्ग की धार से ताडन होगा, फिर कालसूत्र नरक में अग-अग कर छेदन होगा इस प्रकार अनेक विधि यातना भोग कर ॥ ८९ ॥ किस प्रकार इसे मुक्ति होगा, इसे मैं नहीं जानता, इन दुष्ट ब्राह्मणो ने परस्पर श्राद्ध-भोजन किया था ॥ ९० ॥ इसलिए उन्हे सर्पो के सर्वांग से निकला हुआ विष ही खाना पडता है । इसने सुवर्ण की चोरी की है, यह ब्रह्महत्यारा है, इसने मद्य पान किया है, इसने गुरु पत्नी का अपहरण किया है ॥ ९१ ॥इसलिए यह चारो ओर से प्रज्वलित अग्नि मे दग्ध किये जाते है ॥ ९२ ॥

निष्टप्यष्टदशवाब्दसहस्रमिह पुनः ।
जायन्ते मानवा मूढ क्षयरोगादिविक्लिष्टा ॥९३॥
मृता पुनश्चतुरकूपे सर्पाश्चाता भवन्ति ते ।
व्याधिमृत्युविनिर्मुक्तास्ततश्चिह्नाणतां व्रजेत् ॥९४॥
गोऽश्वैश्चैवनरैर्यानिमनुष्येष्वभिजायते ।
तथैवपातकैरुग्रैर्नरकेषु निपात्यते ॥९५॥
नरकप्रच्युतायानियर्यग्विहितपातकैः ।
प्रयातियोनिजातानिसर्वमेतन्निगदतः शृणु ॥९६॥

यहां इस तरह वर्ष तक फिर कर, क्षय आदि रोगो से युक्त मनुष्य देह प्राप्त कर ॥ ९३ ॥ क्षय रोग करके पुन नरक को जाते है, इसी प्रकार बारम्बार जन्म-मरण को प्राप्त होते हुए कल्प के अन्त तक दुःख भोगते है सौ हत्या या इससे-दूसरे पाप उपपातक करने से तीन जन्म तक नीचे से भी नीचे नरक भोगने होते है, इसमे सदेह नही है ॥ ९५ ॥ अब यह वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार नरक से पडे हुए जीव जिन-जिस योनी मे जाते है ॥ ९६ ॥

१५—नरकस्थो द्वार वर्णन

पतितानांप्रति ब्रह्मन्नरयेभ्यो व्रजेद्विज ।
नरकं प्रतिमुक्तस्तु यमि यति याजक ॥१॥
उपपातेषु यद्यत्स्यात्कृत्वाश्रद्धवलिद्विज ।
तज्जातामनतावाचानदुष्टव्यवपिकामयेत् ॥२॥

गर्दभोजायतेजन्तु पित्रोश्चाप्यवमानक ।
मातापितरावाक्रुश्यसारिकानम्भजायते ॥३॥
भ्रातु पत्न्यवमन्ताचकपोतत्वमपद्यते ।
तावेवपीडयित्वानुकङ्कतत्वमपद्यते ॥४॥
भर्तृ पिण्डमुपाश्नन्यस्तदिष्ट नदिपिवने ।
सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृत ॥५॥
न्यासापहर्त्तानिरकाद्विमुक्तोजायतेकृमि ।
असूयकश्चनरकान्मुक्तोभवतिराक्षस ॥६॥

यमदूत ने कहा—पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित पुरुष को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि-योनि पाता है ॥ १ ॥ उपाध्याय के प्रति छल करने, उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से पतन—योनी मिलती है ॥ २ ॥ माता-पिता का अपमान करनेवाला गधा और उन्हें गाली देने वाला मैना होता है ॥३॥ भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है, उसे पीड़ित करने से कङ्क पक्षी बनता है ॥ ४ ॥ स्वामी का पिण्ड भोजन करके जो उसका अभिलषित नहीं करता वह मोह में भर कर मरणान्तर बन्दर बनता है ॥ ५ ॥ किसी की धरोहर हड़पने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त में राक्षस होता है ॥ ६ ॥

विश्वासहन्ताचनरोमीनयोनौप्रजायते ।
धान्ययवास्तिलान्माषान्कुलत्थान्तर्पयश्चरान् ॥७॥
कलायन्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ।
सस्यान्यन्यानिवाहृत्वामोहाज्जन्तुरचेतन ॥८॥
सञ्जायतेमहाबक्लोमूषिकोवश्वसन्निभ ।
परदारानिमर्शान्तु बकोलोरोऽभिजायते ॥९॥
श्वासृगालोबकोगृध्रोव्याल कङ्कस्तथाक्रमात् ।
भ्रातृभार्यां चदुर्बुद्धिर्योऽर्षयतिपापकृत् ॥१०॥
पुस्कोकिलत्वमाप्नोतिसूचापिनरकाच्च्युत ।
सखिभार्यागुरोर्भार्यांराजभार्यांचपापकृत् ॥११॥

प्रधर्षयित्वाकामात्मासूकरोजायतेनर ।
यज्ञदानविवाहानाविघ्नकर्त्ताभवेत्कृमि ॥१२॥
पुनर्दत्तातुकन्याया कृमिरेवोपजायते ।
देवतापितृविप्राणामदत्वायोऽन्नमश्नुते ॥१३॥

विश्वासघाती की मछली की योनी मिलती है तथा जो धान्य, जौ, तिल, उडद, कुलथी, सरसो, चना ॥ ७ ॥ कैथा, मूज, मूगा, गेहूँ या तीसी आदि हरण करता है वह मोह से मदमत्त होता है ॥ ८ ॥ तथा नौले जैसे दीर्घ मुख वाला मूसा होता है, परनारी से समागम करने वाला भयकर भेडिया बन जाता है ॥ ९ ॥ फिर० कृमि श्वान, भीदड, बगुला, गृध्र, सर्प या काक बनता है तथा जो भाई की पत्नी से समागम करता है ॥ १० ॥ वह नरक के दुःख भोग कर कोयल होता है, जो मित्र की पत्नी या राजा की पत्नी ॥ ११ ॥ से समागम करते है, वे शूकर होते है, यज्ञ, दान या विवाह कार्य मे विघ्न उपस्थित करने वाले कृमि होते है ॥ १२ ॥ एक बार दान की हुई कन्या किसी दूसरे को देने वाले मनुष्य भी कृमि योनि पाते है तथा जो देवता, पितर, ब्राह्मण को जिमाये बिना स्वयं भोजन करता है वह नरक यातना भोगने के पश्चात् काक होता है ॥ १३ ॥

प्रमुक्तोनरकात्सोऽपिवायस सम्प्रजायते ।
ज्येष्ठ पितृसमवापिभ्रातरंयोवमन्यते ॥१४॥
नरकात्सोपिविभ्रष्ट-कौचयोनौप्रजायते ।
शूद्रश्चब्राह्मणीगत्वाकृमियोनौप्रजायते ॥१५॥
तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्त कीटकोभवेत् ।
सूकर कृमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ॥१६॥
अकृतज्ञोऽधम पु सोविमुक्तोनरकात्तर ।
कृतघ्न कृमिक कीट पतङ्गोवृश्चिकस्तथा ॥१७॥
मत्स्यस्तुवायस कर्म पुल्कसोजायतेतत ।
अशस्त्र पुरुषहत्वानर संजायतेखर. ।
कृमि स्त्रीवधकर्त्ताचबालहताचजायते ॥१८॥
भोजनचोरयित्वातुमक्षिकाजायतेनरः ।

तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यशृणुष्वतत् ॥१६॥
हृत्वादुग्धंतुमार्जारोजायतेनरकाच्च्युत ।
तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नं हृत्वातुमूषक ॥२०॥
घृतंहृत्वातुनकुल काकोमद्गुरजांमिषम् ।
मत्स्यमांसापहृत्काक श्येनोमेषामिषापहृत् ॥२१॥

तथा ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने वाला नरक के पश्चात् क्रौंच पक्षी होता है, ब्राह्मण से गमन करने वाला क्षुद्र कृमि योनि में जन्म लेता है ॥ १४-१५ ॥ ब्राह्मण के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने पर काष्ठ के भीतर का कीड़ा, शूकर, कृमि, मल,-कृमि अथवा चाण्डाल होता है ॥ १६ ॥ जो मनुष्यों में अधम तथा कृतज्ञता रहित है, वह नरक से मुक्त होकर कृमि, कीट, पतंग, या । विच्छू ॥ १७ ॥ मत्स्य, कौआ, कूर्म अथवा डोम योनि में उत्पन्न होता है, किसी नि शस्त्र की हत्या करने पर गधे की योनि मिलती है, स्त्री या बालक, की हत्या करने वाला कृमि होता है ॥ १८ ॥ भोजन चुराने वाला मक्षिका, अन्न भोजन के विषय में जो विशेष है, उसे सुनो ॥ १९ ॥ अन्न चुराने से नरक भोगने के पश्चात् बिल्ली होता है, तिल दाना मुक्त अन्न हरण करने वाला मूषक होता है ॥ २० ॥ घृत हरण करने वाला नौला, छाग के मांस चुराने वाला काक तथा मृग का मांस चुराने वाला गिद्ध होता है ॥ २१ ॥

चिरीवाकस्त्वपहृत्तेलवणेदध्निवाकृमि ।
चोरयित्वापयश्चापिबलाकासम्प्रजायते ॥२२॥
यस्तुचोरयतेतैलंतैलपायीसजायते ।
मधुहृत्वानरोदंशोऽपूपहृत्वापिपीलिका ॥२३॥
चोरयित्वाहविष्यान्नं जायतेगृहगोधिका ।
आसवंचोरयित्वातुतित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥२४॥
अयोहृत्वातुपापात्मावायस सम्प्रजायते ।
पात्रेकास्येपिहारीत कपोतोरौप्यभाजने ॥२५॥
हृत्वातुकाञ्चनंभाडकृमियोनौप्रजायते ।
कौशेयंचोरयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ॥२६॥
कोशकारश्चकौशेयेहृतेवस्त्रेभिजायते ।

दुकूलेशाङ्गक पापोहृतेचैवांशुकेशुक ॥२७॥
ऋक्षश्चैवाविकहृत्वावस्त्रं क्षौमचजायते ।
कार्पासिकेहृतेक्रौंचोवह्नेर्हर्तातिक खर ॥२८॥

नमक चुराने वाला जलकाक, दही चुराने वाला कृमि और दूध चुराने वाला बगुला होता है ॥ २२ ॥ तेल चुराने वाला तेली, मधु चुराने वाला डाँस और घृत चुराने वाला चींटी होता है ॥ २३ ॥ हविष्यान्न की चोरी करने वाला नेवा और आसव चुराने वाला तीतर होता है ॥ २४ ॥ लोहा चुराने वाला काक, पात्र चुराने वाला हारीत तथा चाँदी का पात्र-चोर कबूतर बनता है ॥ २५ ॥ स्वर्ण पात्र का चोर कृमि बनता है, रेशम चुराने वाले को चकवे की योनि ग्रहण करनी होती है ॥ २६ ॥ कौशेय वस्त्र चुराने से कोशकार होता है, दुपट्टा चुराने वाला मोर तथा अंकुश चुराने वाला तोता होता है ॥२७॥ ऊनी और अलसी के वस्त्र चुराने वाला रीछ,कपास चुराने वाला क्रौंच तथा अग्नि चुराने वाला बगुला या गधा होता है ॥ २८ ॥

मयूरोवर्णकान्हृत्वापत्रशाकंचजायते ।
जीवञ्जीवकतायातिरक्तवस्त्रंहरन्नर ॥२९॥
छुच्छुंदरीगुडान्नान्नवासोहृत्वाशशोभवेत् ।
खज पलालहरणेकाष्ठहृद्दधुणकीटक ॥३०॥
पुष्पंपहृद्दरिद्रस्तुपगुर्यानंपहृन्नर ।
शाकहर्त्तांचहारीतस्तोयहर्त्तांचचातक ॥३१॥
भूमिहृन्नरकान्गत्वारौरवादीन्सुदारुणान् ।
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतांक्रमात् ॥३२॥
प्राप्यक्षीणाल्पपापस्तुनरोभवतिवैतत ।
वृषस्यवृषणौछित्त्वाषंडत्वंप्राप्नुयान्नर ॥३३॥
परिहृत्यतथाभूयोजन्मनामेकविंशति ।
कृमि कीट पतगोवापक्षीतोयचरोमृग ॥३४॥
गोत्वंचप्राप्यचाडालपुल्कसादिजुगुप्सितम् ।
पश्वधोब्रधिर कुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीडित ॥३५॥
मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चबाध्यते ।

अपस्मारीचभवतिशूद्रत्वचसंगच्छति ॥३६॥

मनुष्य वर्णक या शाक पत्र चुराता है, और लाल वस्त्र चुराने वाला चकवा चकवी होता है ॥ २९ ॥ श्रेष्ठ गंध द्रव्य का चोर छछुन्दर होता है, वस्त्र चोर खरगोश होता है, पराल चोर गजा और काष्ठ चोर घुन होता है ॥ ३० ॥ पुष्प चोर दरिद्री धान चोर लँगडा, शाक चोर हारीत पक्षी और जल का चोर चातक होता है ॥ ३१ भूमि हरण करने वाला रौरव आदि घोर नरकों मे भ्रमता हुआ तृण, गुल्म, लता, गल्ली तथा वृक्ष रूप मे उत्पन्न होता है ॥३२॥ इस प्रकार क्रम पूर्वक पापो के क्षीण होने पर मनुष्यो की योनी प्राप्ति हो पाती है, बैल को बधिया करने वाले को जन्मान्तर मे नपुंसक होना होता है ॥ ३३ ॥ फिर इक्कीस जन्म तक कृमि, कीट, पतग जलचर, पक्षी, मृग ॥ ३५ ॥ और गाय की योनि प्राप्त करता है, फिर चाण्डाल या डोम आदि होकर लँगडा, अन्धा, बधिर, कुष्ठी तथा क्षयी होता है ॥ ३४ ॥ तथा मुख रोग, नेत्र रोग और गुह्य रोग से सतप्त होकर मृगी रोग से आक्रान्त होता हुआ शूद्र बनता है ॥ ३६ ॥

एषएवक्रमोदृष्टोगोसुवर्णादिहारिणाम् ।
विद्यापहारिणाचैवनिष्क्रियश्च शिनागुरो ॥३७॥
जायामन्यस्यपारक्यापुरुष प्रतिपादयेत् ।
प्राप्नोतिषढतामूढोयातनाभ्य परिच्युत ॥३८॥
य करोतिनरोहोममसमिद्धे हुताशने ।
सोजीर्णघनदु.खार्तोमदाग्निरभिजायते ॥३९॥
परनिदाकृतघ्नत्वपरमर्मोपघट्टनम् ।
नैष्ठुर्यनिर्घृणत्वचपरदारोपसेवनम् ॥४०॥
परस्वहरणाशौचदेवतानाचकुत्सनम् ।
निकृत्यावचनानृ णाकार्पण्यचनृणावध्र ॥४१॥
यानिचप्रतिषिद्धानितदवृत्तिचप्रशंसताम् ।
उपलक्षणानिजानीयान्मुक्तानानरकादनु ॥४२॥

जिसने सुवर्ण आदि वस्तु चुरायी है, उसकी भी वही दशा होती है जो विद्या का हरण करता है या गुरु के धन का अपहरण करता है ॥ ३७ ॥ उसे

भी ऐसे ही उग्र दुःखों को भोगना पड़ता है तथा जो दूसरे की पत्नी लेकर किसी और को दे देता है, वह अनेक प्रकार के दुःख भोगता हुआ नपुंसक हो जाता है ॥ ३८ ॥ समाधि के बिना अग्नि में होम करने वाले को अजीर्ण और मदाग्नि सताती है ॥ ३९ ॥ परनिन्दा, कृतघ्नता, निष्ठुरता, परमर्म छेदन, परनारि का सेवन तथा लज्जाहीनता ॥ ४० ॥ परधन हरण, देवनिन्दा, अपवित्रता, कृपणता, स्पृहा, हिंसा ॥ ४१ ॥ तथा अन्यान्य निषिद्ध कर्मों का करना और उन-उन विषयों में प्रवृत्त होना, ऐसे मनुष्य के विषय में समझलो कि नरक की यातनाएँ भोगकर ही उसने जन्म लिया है ॥ ४२ ॥

दयाभूतेषुसद्वाद परलोकप्रतिक्रिया ।
सत्याभूतहिताचोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥४३॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनंसाधुसंगम ।
सत्क्रियाभ्यसनंमैत्रीचैतद्बुध्येतपंडित ॥४४॥
अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानियानिच ।
स्वर्गच्युतानालिंगानिपुरुषाणामपापिनाम् ॥४५॥
एतदुद्दिश्यतोराजन्भवत कथितमया ।
स्वकर्मफलभोक्तृणापुण्यानांपापिनांतथा ॥४६॥
तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्ट सर्वंत्वयाधुना ।
त्वयाचदृष्टोनरकस्तदेह्यन्यत्रगम्यताम् ॥४७॥
ततस्तमगत कृत्वासराजागतुमुद्यत ।
ततश्चसर्वैरुत्कृष्ट यातनास्थायिभिर्नृभि ॥४८॥
प्रसादंकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्त्तकम् ।
त्वदगसंगीपवनोमनोह्लादयतेहिन ॥४९॥
परितापचगात्रेषुपीडाबाधाचकृत्स्नश ।
अपहृतिनरव्याघ्रकृपाकुरुमहीपते ॥५०॥

सब जीवों के प्रति दया, परलोकार्थ शुभ कर्म, दूसरों के हित के लिए भाषण, वेद के लिए भाषण, वेद के दृष्टान्त का देखना ॥ ४३ ॥ गुरु, देवता सिद्ध ऋषियों का पूजन, साधुओं का संग, सत्कर्म का अभ्यास, सब के प्रति मित्रता ॥ ४४ ॥ तथा अन्यान्य सत्कर्म जिसमें हो, उसे समझे कि स्वर्ग का

का सुख भोग करने के पश्चात् उसने जन्म धारण किया है ।। ३५ ।। अपने कर्म फल को भोगने वाले पुण्यात्माओं और पापियों के सम्पूर्ण विषय को मैंने आपके प्रति कह दिया है ।। ४६ ।। आपको भी नरक देखना पड़ा है, अब आप अन्यत्र चलिये ।। ४७ ।। पुत्र बोला—जैसे ही वह महाराज यमदूत को आगे करके चलने को हुए वैसे ही नरक में पड़े सब जीव ऊँचे स्वर से क्रन्दन करने हुए बोले ।। ४८ ।। हे राजन् ! प्रसन्न हूजिये, एक मुहूर्त्त भर यहाँ ठहरिये, आपके संसर्ग वाली वायु से हमारा चित्त अत्यन्त आह्लाद पूर्ण हो रहा है ।। ४९ ।। इस वायु ने हमारे अङ्ग-अङ्ग का परिताप हर लिया है, अत हे पृथिवीपते ! हमारे ऊपर दया कीजिये ।। ५० ।।

एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांयाम्यपुरुषतत ।
पप्रच्छकथमेतेषामाह्लादोमयिवर्तिष्यति ।।५१।।
किमयाकर्मतत्पुण्यमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ।
आह्लाददायिनीव्युष्टिर्यस्येयतदुदीरय ।।५२।।
पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेनतेतनु. ।
पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतचमनोयत ।।५३।।
ततस्त्वद्गात्रससर्गपवनोह्लाददायक ।
पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधते ।।५४।।
अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यत ।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायत्रशस्त्राग्निवायसा ।।५५।।
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतव ।
मृदुत्वमागतारोजस्तेजसोपहतास्तव ।।५६।।

उनके यह वचन सुन कर राजा ने यमदूत से पूछा—मेरे यहाँ खड़े होने से यह इतने सुखी क्यों हो रहे हैं ? ।। ५१ ।। मर्त्यलोक में ऐसा कौन सा पुण्य मैंने किया है, जिससे मेरे कारण इन पर ऐसा आनन्द देने वाली वृष्टि हो रही है ? ।। ५२ ।। यमदूत ने कहा—हे राजन् ! पहिले आपने देवता,पितर, अतिथि, संयासी आदि को भोजन देकर उससे बचा हुआ अन्न खाकर अपनी उदर पूर्ति की थी,और आपका चित्त इसीमें रत था अत हर समय आपके देह के संसर्ग वाली वायु से इन पापियों की सब यातनाएँ मिट रही हैं ।।५४।। आपने

अश्वमेध आदि यज्ञ विधिवत् किये है, इसलिए सम्पूर्ण महादुःखो के कारण रूप यम के यन्त्र, अग्नि, शस्त्र, काक तथा अन्य पक्षियो ने आपके दर्शन से हत होकर कोमलता मे प्रवृत्ति की है ॥ ५५-५६ ॥

नस्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखप्राप्यतेनरै ।
यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमति ॥५७॥
यदिमत्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ।
ततोभद्रमुखाऽत्राहंस्थास्येस्थाणुरिवाचल ॥५८॥
एहिराजेन्द्रगच्छामिनिजपुण्यसमार्जिताम् ।
भुंक्ष्वभोगास्तुभुज्यन्तुयातनापापकर्मिण ॥५९॥
तस्मान्नतावद्यास्यामियावदेतेसुदुःखिता ।
मत्सन्निधानात्सुखिनोभवंतिनरकौकस ॥६०॥
धिक्तस्यजीवितंपुंस.शरणार्थिनमागतम् ।
योनार्त्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥६१॥
यज्ञदानतपासीहपरत्रचनभूतये ।
भवतितस्ययस्यार्त्तपरित्राणेनमानसम् ॥६२॥
नरस्ययस्यकठिनमनोबालातुरादिषु ।
वृद्धेषुचनतंमन्येमानुषराक्षसोहिस ॥६३॥

राजा बोले—मेरा विचार है कि जो सुख दुखियो की रक्षा मे मिलता है, वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक मे भी नही मिलता ॥ ५७ ॥ यदि मेरे यहाँ खडे रहने मात्र से इनकी यत्रणा नष्ट होरही है तो मै अचल होकर यही निवास करूँगा ॥ ५८ ॥ यमदूत ने कहा—राजन् ! आप चलिए, अपने पुण्य से सचित सब शुभ फलो को भोगिये, यह स्थान तो पापात्माओ के के दुःख भोगने के लिए ही है ॥ ५९ ॥ राजा बोले—जब तक यह घोर दुःख पायेगे, तब तक मै नही जाऊँगा, क्योकि मेरे यहाँ रहने से इन सब को सुख मिलता है ॥ ६० ॥ यदि शत्रु भी दुःख से आतुर होकर शरण मे आवे तो जो उस पर कृपा न करे उसे धिक्कार है ॥ ६१ ॥ जिसका चित्त आर्त्त पुरुष की रक्षा मे नही है, उसके यज्ञ, दान, तप सब कुछ लोक-परलोक मे सुख नही पहुँचा सकते ॥ ६२ ॥ बाल, वृद्ध, आतुर आदि के प्रति कठोर चित्त वाले मनुष्य तो राक्षस

ही है । ऐसा समझो ॥६३॥

एषामत्सन्निकर्षात्तु यद्यग्निपरितापजम् ।
तथोग्रगन्धजं वापि दुःखनरकसंभवम् ॥६४॥
क्षुत्पिपासोद्भवं दुःखं यच्चमूर्छाप्रदं महत् ।
विनाशमेतितद्भद्रमन्येस्वर्गसुखात्परम् ॥६५॥
प्राप्स्यतेयदिसुखबहुवोदुःखितेमयि ।
किंवाप्राप्तमयानस्यात्तस्मात्त्वंवदमाचिरम् ॥६६॥
एषधर्मश्चशक्रश्चत्वानेतुं समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यंतस्मात्पार्थिवगम्यताम् ॥६७॥
नयामित्वामहस्वर्गत्वयासम्यगुपासित ।
विमानमेतदारुह्यमाचिरंत्वंगम्यताम् ॥६८॥
नरकेमानवाधर्मपीड्यमाना.सहस्रश ।
त्राहीत्यमीचक्रंदतिमामतोनव्रजाम्यहम् ॥६९॥
कर्मणानरकप्राप्तिरेषापापिष्ठकर्मणाम् ।
स्वर्गस्त्वयापिगतव्योनृपपुण्येनकर्मणा ॥७०॥

यद्यपि इनके पास रह कर मुझे नरकाग्नि के भीषण ताप से उत्पन्न तीव्र गंध का दुःख झेलना पड़ेगा ॥ ३४ ॥ क्षुधा-पिपासा से उत्पन्न मूर्च्छादायक दुःख भोगना होगा, फिर भी इनकी रक्षा के विचार से मैं उस महादुःख को भी स्वर्ग सुख से बढ़ कर समझूँगा ॥ ६५ ॥ यदि मेरे दुःख पाने मात्र से दुःखी प्राणियों को सुख मिलेगा ? इसलिए हे यमदूत ! तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो ॥ ६६ ॥ यमदूतों ने कहा—राजन् ! यह इन्द्र और धर्म आपको स्वर्ग में लेजाने के निमित्त उपस्थित हुए है, आपको यहाँ से अवश्य जाना होगा, इस लिए यहाँ से चलिये ॥ ६७ ॥ धर्म ने कहा—राजन् ! आपने भले प्रकारसे मेरी उपासना की है, इसलिए मैं आपको स्वर्ग में ले जाऊँगा, अब आप देर न करें, इस विमान में शीघ्र ही बैठें ॥ ६८ ॥ राजा ने कहा—हे धर्म ! हजारों मनुष्य इस नरक में पड़े हुए आर्तनाद कर रहे हैं, इसलिए मैं इस स्थान को छोड़ कर नहीं जा सकता ॥ ६९ ॥ इन्द्र बोले—इन पापियों को स्वकर्म फल से यह नरक-यातनाएँ भोगनी पड़ रही है, आपको अपने पुण्य फल से स्वर्ग

में जाना चाहिए ।। ७० ।।

यदिजानासिधर्मत्वत्वत्तदेवशतक्रतो ।
ममयावत्प्रमाणंतुशुभंतद्वक्तुमर्हथ ।।७१।।
अब्बिन्दवोयथाभोद्यौर्यथावादिवितारकाः ।
यथावावर्षतोधारागणनासिकतायथा ।।७२।।
असंख्येयामहाराजज्ञानायोनिषुजंतव ।
तथातवापिपुण्यस्यसंख्यानैवोपपद्यते ।।७३।।
अनुकंपामिमामद्यनारकेष्वहकुर्वता ।
तदेवशतसाहस्रसंख्यानीतत्वयानृप ।।७४।।
तद्गच्छत्वनृपश्रेष्ठतद्भोक्तुममरालयम् ।
एतेतुनरकेपापक्षपयंतुस्वकर्मजम् ।।७५।।
कथस्पृहांकरिष्यंतिमत्सपर्कायमानवा ।
यदिमत्सन्निधावेषामुत्कर्षोनोपपद्यते ।।७६।।
तस्माद्यत्सुकृतंकिंचिन्ममास्तित्रिदशाधिप ।
मुच्यतांतेननरकात्पापिनोयातनागता ।।७७।।

राजा ने कहा—हे धर्म ! हे देवेन्द्र ! मेरा सचित पुण्य कितना है, यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे बताइये ।। ७१ ।। धर्म बोले—राजन् ! समुद्र में जितने जल-बिन्दु है, आकाश मे जितने तारे है, वर्षा मे जितनी जल-धारे है, तथा गगा मे जितनी बालू है, आपका उतना ही पुण्य है ।। ७२ ।। जिस प्रकार जल बिन्दु की गणना नही की जासकती उसी प्रकार आपका पुण्य भी सख्यातीत है ।।७३।। तथा अब इन नरक वासियो के प्रति दया प्रकट करने से आपका पुण्य भी शतक सहस्र गुणा अधिक होगया है ।। ७४ ।। इसलिए आप अपने पुण्य का फल भोगने को वहाँ चले और यह पापी भी नरक मे रह कर अपने पापो को नष्ट करे ।। ७५ ।। राजा बोले—यदि मेरी निकटता से इन्हे कुछ सुख न हुआ होता तो यह मेरे साथ की अभिलाषा ही क्यो करते ? ।। ७६ ।। इसलिए मेरा जो कुछ पुण्य है, उसी के द्वारा यह नरक-यातना को प्राप्त करने वाले पापी नरक से मुक्त हो ।। ७७ ।।

एवमुक्तेतरस्थानत्वयाप्राप्तमहीपते ।

एतास्तुनरकात्पश्यविमुक्तान्पापकर्मिण ॥७८॥
ततोपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपते ।
विमानचाधिरोप्यैनस्वर्लोकमनयद्धरि ॥७९॥
अहञ्चान्येचयेतत्रयातनाभ्य परिच्युता ।
स्वकर्मफलनिर्दिष्ट ततोयोन्यतरगता: ॥८०॥
एवमेतेसमाख्याातानरकाद्विजसत्तम ।
येनयेनचपापेनयायायोनिमुपैतिवै ॥८१॥
तत्तत्सर्वसमख्यातयथादृष्ट मयापुरा ।
पुरानुभवजज्ञानमवाप्यकथिततव ।
अत परमहाभागकिमन्यत्कथयामिते ॥८२॥

इन्द्र बोले-हे राजन् ! इससे आपको और भी उच्च स्थान प्राप्त हुआ, यह देखिये सब पापी नरक से मुक्त होगए ॥ ७८ ॥ पुत्र बोला--फिर उन राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी और सुरपति उन्हें विमान में चढा कर स्वर्गलोक को लेगये ॥ ७९ ॥ इधर मैंने भी अन्य नरकीयों सहित यन्त्रणा से मुक्त होकर स्वस्वकर्म के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म धारण किया ॥ ८० ॥ हे द्विजोत्तम ! इन नरकों की सब बात आपके प्रति यथार्थ रूप में कहदी और यह भी बता दिया कि किस योनि में जाना होता है ॥ ८१ ॥ जो कुछ पूर्वकाल में मैंने देखा वह सब आप से कह दिया इस सब का मैंने स्वय अनुभव किया है, इसलिए यह नितान्त सत्य है, अब और क्या कहूँ, यह मुझे आज्ञा दीजिये ॥ ८२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्र सवादे पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

१६--दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन

कथितमेत्वयावत्ससंसारस्यव्यवस्थितम् ।
स्वरूपमपिदेहस्यचटीयत्रवदव्ययम् ॥१॥
तदेवमेतदखिलममावगतमीदृशम् ।
किमयाबदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ॥२॥
यदिमद्वचनंतातश्रद्दधास्यविशंकित: ।

तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यवानप्रस्थमनाभव ॥३॥
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ।
आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रह ॥४॥
एकांतशीलोवश्यात्माभवभिक्षुरतंद्रित ।
तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जित ॥५॥
तत प्राप्स्यसितंयोगंदु खसंयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ॥६॥
तत्सयोगान्नतेयोगोभूयोभूतैर्भविष्यति ।
वत्सयोगंसमाचक्ष्वमुक्तिहेतुमतं परम् ॥७॥
येनभूतैं पुनर्भूतैर्नेदृग्दु खमवाप्नुयाम् ।
यत्रासक्तिपरस्यात्मामम संसारबंधनै ॥८॥

पिता बोले—हे वत्स ! तुमने घटी यत्र के समान निरंतर चलते हुए ससार चक्र का अतिशय स्वरूप तुमने मुझे बताया ॥ १ ॥ अब मुझे ज्ञान होगया कि सब ऐसा ही है, अब मुझे क्या करना उचित है ? ॥ २ ॥ पुत्र ने कहा—यदि आप शका रहित मन से मेरी बात माने तो गृहस्थाश्रम का त्याग कर वानप्रस्थ हो जाइये ॥ ३ ॥ विधान के अनुसार अग्नि परिग्रह त्याग, आत्मा मे आत्मा का सयोग स्थापित करके द्वन्द्व रहित और परिग्रह-रहित हो जाइये ॥ ४ ॥ एकान्त मे रह कर आत्मा को वश मे कर आलस्य त्याग करिये, इस प्रकार जब बाह्य स्पर्श से परे होंगे ॥ ५ ॥ तब आप मोक्ष-कारण, निरुपम वचनातीत, नि सग, दु ख के लिए औषधि स्वरूप इस योग को प्राप्त करेंगे ॥ ६ ॥ इस योग के सयोग से पचभूत के साथ आपकी पुनः सगति नहीं होगी, पिता बोले—अब तुम मोक्ष के कारण रूप उस योग का वर्णन करो ॥ ७ ॥ जिसके अवलम्बन से भौतिक सयोग युक्त पुनर्जन्म का दु ख मुझे फिर कभी न भोगना पडे, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है फिर भी ससार के विषयो में इसकी आसक्ति है ॥ ८ ॥

नेतियोगमयोगोपियोगमधुनावद ।
ससरादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देहिमानसम् ॥९॥
ब्रह्मज्ञानाबुशीतेनसिचमावाक्यवारिणा ।

अविद्याकृच्छ्रसर्पेणादष्ट तद्विषपीडितम् ॥१०॥
स्ववाक्यामृतदानेनमाजीवयपुनर्मृतम् ।
पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥११॥
मामोचयेशसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ।
शृणुतातयथायोगोदत्तात्रेयेणधीमता ॥१२॥
अलर्कायपुराप्रोक्त सम्यक्पृष्टेनविस्तरात् ।
दत्तात्रेयस्सुत.कस्यकथवायोगमुक्तवान् ॥१३॥
कश्चालर्कोमहाभागोयोयोगपरिपृष्टवान् ।
कौशिकोब्राह्मण कश्चित्प्रतिष्ठानेभवत्पुरे ॥१४॥
सोन्यजनकृतं पापं कुष्ठरोगातुरोभवत् ।
सततार्ध्याधितभार्यापतिदेवमिवार्चयत् ॥१५॥

इसलिए विषयो को त्यागकर आत्मा उन विषयो मे न लगे, हे वत्स ! मेरा मन और शरीर भव रूप भास्कर के ताप से तप्त है ॥ ९ ॥ तुम ब्रह्मज्ञान मय वचन रूप जल से उस ताप को ठडा करो, मुझे अविद्या रूपी कालसर्प ने दशित किया है, उसकी पीडा से मै मृतक के तुल्य हो रहा हूँ ॥ १० ॥ तुम अपने वचनामृत से मुझे पुनर्जीवित करो, मै पुत्र, भार्या, घर खेत आदि की ममता रूप बेडियो मे जकडा हुआ हूँ ॥ ११ ॥ तुम सद्भाव ज्ञान के द्वारा मुझे उससे मुक्त करो । पुत्र ने कहा—पूरा काल मे अलर्क द्वारा प्रश्न करने पर दत्तात्रेय जी ने जो योग उसे विस्तार सहित बताया था, उसे कहता हूँ, । पिता बोले—दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे, और उन्होने योग का वर्णन किस प्रकार किया था ॥ १२-१३ ॥ तथा योग का प्रश्न करने वाले अलर्क कौने थे ? पुत्र ने कहा—प्रतिष्ठान नगर मे एक कुशिक वशी ब्राह्मण रहता था ॥ १४ ॥ वह पूर्वजन्म के पाप से कुष्ठी होगया, अति कुष्ठ से आक्रान्त होने पर भी उसकी पत्नी देवता के समान उसका पूजन करती थी ॥ १५ ॥

पादाभ्यगागसवाहस्नानाच्छादनभोजनै ॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेनच ॥१६॥
रहस्येवोपचारेणप्रियसभाषणेनच ।
सततपूज्यमानोपितयातीव्रविनीतया ॥१७॥

अतितीव्रप्रकोपत्वात्तिर्भत्सयतिदारुण ।
तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यतदैवतम् ॥१८॥
ततस्तथाप्यतिबीभत्ससर्वश्रेष्ठममन्यत ।
अचक्रमणशीलोपिसकदाचिद्द्विजोत्तम ॥१९॥
प्राहभार्यानयस्वेतित्वमातस्यानिवेशनम् ।
यासावेश्यामयादृष्टाराजमार्गेगृहेसती ॥२०॥

वह तेल मलती, चरण दाबती, आच्छादन करती, भोजन कराती और और मल, मूत्र, कफ, रक्त आदि को धोती थी ॥ १६ ॥ तथा निर्जन मे प्रिय भाषण और विनीत भाव के सहित उसका आदर सहित उसका पूजन करती थी ॥ १७ ॥ परन्तु वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी था, विनीत भाव वाली पत्नी से पूजित होकर भी झिडकी देता रहता था, फिर भी वह देवता मानती थी ॥१८॥ वह उस बीभत्स स्वरूप के ब्राह्मण को सदा सर्वश्रेष्ठ मानती थी । एक समय उस ब्राह्मण मे चलने तक की शक्ति न थी तो भी ॥ १९ ॥ उस अपनी पत्नी से कहा—वह वेश्या राजमार्ग के पार्श्ववर्ती गृह मे रहती है, मैंने उसे देखा है ॥ २० ॥

तामेप्रापयधर्मज्ञेसंवमेहृदिवर्त्तते ।
दृष्टासूर्योदयेबालारात्रिश्चेयमुपागता ॥२१॥
दर्शनानन्तरसामेहृदयान्नापसर्पति ।
यदिसाचारुसर्वांगीपीनश्रोणिपयोधरा ॥२२॥
नोपगूहतितन्वंगीतन्माद्रक्ष्यतिवैमृतम् ।
वाम कामोमनुष्याणाबहुभि प्राप्यचेतस ॥२३॥
ममाशक्तिश्चगमनेसकुलप्रतिभातिमे ।
तत्तदावचनंश्रुत्वाभर्त्तुं कामातुरस्यसा ॥२४॥
तत्पत्नीव्याकुलाजातामहाभागापतिव्रता ।
गाढपरिकरंबद्ध्वाशुक्लमादायचाक्षिकम् ॥२५॥
स्कंधेभर्त्तारमारोप्यजगाममृदुगामिनी ।
निशिमेघावृतेव्योम्निचलद्विद्युल्लतेक्षते ॥२६॥
राजमार्गेप्रियभर्त्तुंश्रिकीर्षतीद्विजागना ।

पथिशूलेतदाप्रोतमचोरचोरशंकया ॥२७॥
माण्डव्यमतिदुःखार्तमधकारेचसद्विज ।
पत्नीस्कंधसमारूढश्चालयामासकौशिक ॥२८॥

तू मुझे उस वेश्या के घर ले चल, वह मेरे हृदय में निरन्तर बसी रहती है, मैंने प्रातः काल उसे देखा था, अब रात्रि का समय हो गया है ॥ २१ ॥ जब मैंने उसे देखा है तभी से वह मेरे हृदय से पृथक् नहीं हो रही है, यदि पुष्ट पयोधरा ॥ २२ ॥ बाला मुझसे न मिलेगी तू अवश्य ही मरण मृत देखेगी, क्योंकि प्रथम तो कामदेव मनुष्यों के अनुकूल ही नहीं है ॥ २३ ॥ उस पर भी अनेकों मनुष्य उसके भक्त हैं, मुझसे चलने को सामर्थ्य नहीं है, इससे और भी विषय संकट प्रतीत होरहा है, उस कामातुर पति देव की यह बात सुन कर ॥ २४ ॥ वह पतिव्रता व्याकुल होगई फिर भी उसने बहुत-सा धन लेकर ॥ २५ ॥ पति को अपने कंधे पर चढ़ाया और धीरे-धीरे चल पड़ी, एक तो अँधेरी रात, दूसरे आकाश में बादल छाये हुए थे, वह बिजली की चमक में अपने पति के प्रिय कार्य के लिए राजमार्ग में चल दी, उसी मार्ग में शूल गड़ी हुई थी जिस पर चोरों के मिथ्या अपराध में ॥ २६-२७ ॥ मुनिवर चढ़े हुए दुःख भोग रहे थे, मार्ग में अँधेरा होने से पत्नी के कन्धे पर स्थित कौशिक ब्राह्मण का भूमि से स्पर्श हुआ और पैर विचलित होगया ॥ २८ ॥

वामांगेनाथसंक्रुद्धोमाण्डव्यस्तमुवाचह ।
येनाहमेवमत्यर्थंदुःखितश्चालितोवृथा ॥२९॥
इत्थंकष्टमनुप्राप्त सपापात्मानराधम ।
सूर्योदयेऽद्यश प्राणैर्वियोक्ष्यति न संशय ॥३०॥
भास्करालोकनादेवसविनाशमवाप्स्यसि ।
तस्यभार्यातत श्रुत्वातशापमतिदारुणम् ॥३१॥
प्रोवाचव्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति ।
तत सूर्योदयाभावादभवत्सततानिशा ॥३२॥
बहून्यहः प्रमाणानिततोदेवाभयंयुः ।
नि स्वाध्यायवषट्कारस्वधास्वाहाविवर्जितम् ॥३३॥
कथनुखल्विदसर्वनगच्छेत्सक्षयजगत् ।

अहोरात्रव्यवस्थायाविनाशात्तुसंक्षय ॥३४॥
तत्संक्षयान्नत्वयनेज्ञायेतेदक्षिणोत्तरे ॥३५॥

जिससे माँडव्य मुनि ने क्रोध से कहा कि जिसने मेरा पैर विचलित करके मुझे व्यर्थ ही ॥ २९ ॥ यन्त्रणा दी है वह पापी सूर्योदय होते ही असह्य यन्त्रणा भोगता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ३० ॥ सूर्य के उदय होते ही उस का प्राण अवश्य चला जायगा, इस दारुण ने शाप को सुन कर उसकी पत्नी ने अत्यन्त व्यथित होकर कहा कि अब सूर्य ही उदय नहीं होंगे, उस पतिव्रता के इस वचन से सूर्योदय नहीं हुआ और इस प्रकार अनेक रात्रियाँ हुई देख कर देवता भी भयभीत होकर ॥ ३२ ॥ विचार करने लगे कि स्वाध्याय, वषट्कार स्वधा और स्वाहा के इस प्रकार लुप्त होने से विश्व की रक्षा कैसे होगी ? ॥ ३३ ॥ अहोरात्र की व्यवस्था टूट जाने से मास और ऋतु का विभाग न होगा, जिसके कारण उत्तरायण या दक्षिणायन ज्ञान भी न हो पावगा ॥ ३४-३५ ॥

विनाचायनविज्ञानकाल सवत्सर कुत ।
पतिव्रतायावचनान्नोदगच्छतिदिवाकर ॥३६॥
सूर्योदयविनानैवस्नानदानादिका क्रिया ।
अग्नेर्विहरणचैवक्रत्वभावश्चलक्ष्यते ॥३७॥
नकालेनविनाचेष्टिर्नचयज्ञादिका क्रिया ।
नश्यतिसर्वभूतानितमोभूते चराचरे ॥३८॥
नैवाप्यायनमस्माकविनाहोमेनजायते ।
वयमाप्यायितामर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितै ॥३९॥
वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमोमर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ।
निष्पादितास्वौषधीषुमर्त्यायज्ञैर्यजन्ति ॥४०॥
एववयंप्रयच्छाम कामान्यज्ञादिपूजिता ।
अधोहिवर्षमिवयमर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिण ॥४१॥

यह ज्ञान न होने से सवत्सर का स्थिर करना सभव न होगा, तथा अन्यान्य कालो का ज्ञान भी कैसे हो सकेगा ? अब उस पतिव्रता के वचन से सूर्योदय ही रुक गया है ॥ ३६ ॥ सूर्योदय के अभाव मे स्नानादि कार्य, हवन

तथा सम्पूर्ण यज्ञो का अभी अभाव हो ही गया है ।। ३७ ।। काल के अभाव मे इष्टि तथा यज्ञदानादि क्रिया नही हो सकती तथा अन्धकार से व्याप्त होकर सब जीव नाश को प्राप्त होरहे है ।। ३८ ।। यज्ञ के बिना हमारी तृप्ति का भी अन्य उपाय नही है, क्योंकि यज्ञ भाग देकर ही मनुष्य हमे तृप्त करते है ।। ३९ ।। हम भी अन्नादि की उपलब्धि के लिए वृष्टि करके उन पर अनुग्रह करते है, औषधियो के उत्पन्न होने पर ही उनके द्वारा यज्ञ किये जाते है ।। ४० ।। उनके पूजन से सतुष्ट होकर हम इच्छित देते है, हम नीचे की ओर जल बरसाते और वे ऊपर की ओर घृत बरसाते है ।। ४१ ।।

तोयवर्षेणहिवयहैर्विवर्षेणमानवा ।
येस्माकनप्रयच्छतिनित्यनैमित्तिकी क्रिया ।।४२।।
क्रतुभागदुरात्मान स्वयवाश्नतिलोलुपा. ।
विनाशायवयतेषातोयसूर्याग्निमारुता ।।४३।।
क्षितिचसदूषयाम पापानामपकारिणाम् ।
दुष्टतोयादिदोषेणतेषादुष्कृतकर्मणाम् ।।४४।।
उपसर्गा प्रवर्त्तन्तेमरणायसुदारुणा ।
येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुजतेशेषमात्मना ।।४५।।
तेषापुण्यतमाँल्लोकान्वितरामोमहात्मनाम् ।
तन्नास्तिसर्वमेतद्धिनश्चोपायव्यस्थितम् ।।४६।।
कथंनुदिनसग स्यादन्योन्यमवदन्सुरा ।
तेषामेवसमेतानायज्ञव्युच्छित्तिशकिनाम् ।।४७।।
देवानावचनश्रुत्वाप्राहदेव प्रजापति ।
तेज परतेजसैवतपसाचतपस्तथा ।।४८।।

हम जल वृष्टि से और मनुष्य हवि देकर परस्पर प्रसन्न होते है तथा जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमको अर्पण नही करते ।। ४२ ।। अर्थात् जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमे न देकर यज्ञ भाग को स्वय ही खा जाते है, उनके विनाशार्थ हम जल, अग्नि, सूर्य, वायु, ।। ४३ ।। और पृथिवी को दूषित कर देते हैं, जिससे उन पापियो को ।। ४४ ।। नष्ट करने वाले दारुण रोग उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो हमे तृप्त करके शेष मात्र का भोजन करते है ।। ४५ ।।

उन महात्माओं को हम पुण्यमय स्थान प्रदान करते हैं, परन्तु, इस समय तो वह सब कार्य अवरुद्ध है और उसका कोई उपाय भी दिखाई नहीं दे रहा है ॥ ४६ ॥ इस दग्ध सृष्टि की स्थिरता कैसे हो ? दिन किस प्रकार प्रकटे ? यज्ञ के नष्ट होने की शंका करते हुए देवगण परस्पर इस प्रकार कहने लगे ॥ ४७ ॥ उनके ऐसे वचनोंको सुनकर देवोत्तम प्रजापति ब्रह्माजी बोले ॥ ४८ ॥

प्रजाम्यत्यनरास्तस्माच्छृणुध्ववचनं मम ।
पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोदगच्छति दिवाकर ॥४९॥
तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानामभवत्तथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयातपस्विनीम् ॥५०॥
प्रसादयतसर्वेपत्नीभानोरुदयकाम्यया ।
तैः साप्रसादितागत्वाप्राहेष्टं ब्रियतामिति ॥५१॥
अथाचतदिनदेवाभवत्वितियथापुरा ।
पतिव्रतायामहात्म्यमहीयेतकथंत्विति ॥५२॥
समान्यतांतथासाध्वीतथाश्रेष्याम्यहंसुरा ।
यथापुनराहोरात्रंस्थानमुपजायते ॥५३॥
यथाचतस्या सपतिर्नज्ञापान्नाशमेष्यति ।
एवमुक्त्वासुरास्तस्यागत्वासामदिरंशुभा ॥५४॥
उवाचकुशलंपृष्ट्वाधर्मभर्तुस्तथात्मन ।
कच्चिन्नदंसिकल्याणिस्वभर्तुं सुखदायिनी ॥५५॥
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेह्याधिकंपतिम् ।
भर्तुं शुश्रूषणादेवमयाप्राप्तं महत्फलम् ॥५६॥

परम तेज और तप से ही तप का विनाश होता है, इसलिए मेरी बात सुनो उस पतिव्रता की महिमा से सूर्योदयन हो हो रहा है, सूर्योदय के अभाव से तुम्हारी और मनुष्यों की हानि है, यदि तुम सूर्योदय चाहते हो तो महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया को ॥ ४९-५० ॥ प्रसन्न करो । पुत्र ने कहा—तब देवताओं ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया इसके पश्चात् अनुसूया ने कहा—तुम इच्छित विषय बताओ ॥ ५१ ॥ देवताओं ने कहा—पहिले के समान

सूर्योदय होजाने अनुसूया बोली—पतिव्रता की महिमा कभी नष्ट नहीं हो सकती ।। ५२ ।। फिर भी मैं उस पतिव्रता के सम्मान पूर्वक ऐसा उपाय करूँगी, जिससे दिन निकल आवे ।। ५३ ।। और उसका पति भी शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त न हो, ऐसा कह कर अनुसूया उसके घर गई ।। ५४ ।। और उसकी यथा उसके स्वामी की कुशल पूछी—हे स्वामी को सुख देने वाली ! तुम उनका मुख देखने से प्रसन्न तो रहती हो ? ।। ५५ ।। तथा अपने स्वामी को देवताओं से भी श्रेष्ठ मानती हो, मैं भी अपने स्वामी की सेवा से ही महाफल को प्राप्त हुई हूँ ।। ५६ ।।

सर्वकामफलावाप्ति पत्यु शुश्रूषणाल्लिया ।
पञ्चर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा ।।५७।।
तथास्ववर्णधर्मेणकर्तव्योधनसचय ।
प्राप्तश्चार्थस्तथापात्रेविनियोज्योविधात ।।५८।।
सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तोभवेत्सदा ।
क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टारागद्वेषविवर्जिता ।।५९।।
कर्त्तव्याहररह श्रद्धापुरस्कारेणशक्तित ।
स्वजातिनिहितानेवलोकान्प्राप्नोतिमानव ।।६०।।
क्लेशेनमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।
स्त्रियश्चैवसमस्तस्यनरैर्दु खार्जितस्यवै ।।६१।।
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्य पतिशुश्रूषवैहि ।
नास्तिस्त्रीणापृथग्यज्ञोनश्राद्ध नाप्युपोषितम् ।।६२।।
भर्तु शश्रूषवैतालोकानिष्टाञ्जयतिहि ।
तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणप्रति ।
त्वयासति सदाकार्यायतोभर्त्तापरागति ।।६३।।

पत्नी की सम्पूर्ण कामनाएँ पति-सेवा में ही निहित है, हे साध्वि ! पाँच ऋण सर्वदा देय है ।। ५७ ।। अपने वर्ण-धर्म के अनुसार धन का सचय करके उपयुक्त पात्र को दान करे ।। ५८ ।। तथा सदैव, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण रहे और नित्य प्रति राग द्वेष से रहित शास्त्रोक्त कर्म कर्म को श्रद्धा सहित करे, ऐसा करने से सब लोकों की प्राप्ति होती है

॥ ५९-६० ॥ तथा प्राजापत्यादि पवित्र श्रम को प्राप्त होते हैं, परन्तु स्त्रियाँ पति-सेवा से ही उनके सब पुण्य में आधा भाग प्राप्त कर लेती हैं। स्त्रियों के लिये यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवास आदि का कोई पृथक् विधान नहीं ॥ ६१-६२ ॥ वह तो स्वामी की सेवा मात्र से ही सब इच्छित लोकों को प्राप्त होती है, इसलिए तुम इसी में लगी रहो, क्योंकि पत्नी की परमगति पति ही है ॥ ६३ ॥

यद्दैवेभ्योयच्चपित्रादिकेभ्य कुर्याद्भूतीभ्यर्चनसत्क्रियाश्च ।
तस्यार्द्धभंकेवलानन्यचित्तानारीभुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥६४॥
तस्यास्तद्वचनश्रुत्वाप्रतिपूज्यतदादरात् ।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीतामनसूयामिदंवचः ॥६५॥
धन्यास्म्यनुगृहीतास्मिदैवस्याप्यवलोकत ।
यन्मेप्रकृतिकल्याणिश्रद्धांवर्धयसेपुनः ॥६६॥
जानाम्येतन्नारीणाकश्चित्पतिसमागतिः ।
तत्प्रीतिश्चोपकाराय इहलोकेपरत्रच ॥६७॥
पतिप्रसादादिहचप्रेत्यचैवयशस्विनी ।
नारीसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ताहिदैवतम् ॥६८॥
सात्वब्रूहिमहाभागेप्राप्तावाममगृहम् ।
आर्यायाःकिनुकर्त्तव्यमयार्येणापिवाशुभे ॥६९॥

स्वामी द्वारा किये जाने वाले देवता, पितर, अतिथि आदि का सत्कार या सब सत्कर्म, सभी में स्त्री को पति-सेवा के कारण अर्द्धांश प्राप्त होता है ॥ ६४ ॥ पुत्र ने कहा—अनुसूया के वचन सुन कर उसने आदर सहित अनुसूया का पूजन किया और बोली ॥ ६५ ॥ आज मैं अत्यन्त अनुगृहीत और धन्य होगई हूँ क्योंकि आपने स्वामी के प्रति मेरी श्रद्धा को और भी बढ़ा दिया है, तथा देवताओं ने भी मुझ पर अनुग्रह किया है ॥ ६६ ॥ मैं जान गयी कि स्वामी के अतिरिक्त अन्य कोई गति स्त्री की नहीं है, उन्हीं की प्रसन्नता से इहलोक और परलोक बनता है ॥ ६७ ॥ पति की कृपा से ही स्त्रियाँ इहलोक-परलोक में सुख पाती हैं, क्योंकि उनका देवता पति ही है ॥ ६८ ॥ जब स्वयं ही यहाँ पधारी हैं, तब मुझे आदेश दीजिए कि मुझे या मेरे स्वामी को क्या करना उचित है ? ॥ ६९ ॥

एतेदेवाःसहेन्द्रेणमामुपागम्यदुःखिता ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणा ॥७०॥
याचतेहर्निशासंस्थायथापूर्वदिवाडिताम् ।
अहतदर्थंमायाताश्शृणुचैतद्वचोमम ॥७१॥
दिनाभावात्समस्तानामभावोयागकर्मणाम् ।
तदभावात्सुरापुष्टिनोपयातितपस्विनि ॥७२॥
अह्नश्चैवसमुच्छेदादुच्छेद सर्वकर्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्ट्याजगदुच्छेदमेष्यति ॥७३॥
तत्त्वमिच्छसिशर्वर्येणजगदुद्धर्त्तुमापद ।
प्रसीदमाध्विलोकानापूर्ववद्वर्त्ततारवि ॥७४॥
माडव्येनमहाभागेशप्तोभर्त्ताममेश्वर ।
सूर्योदयेविनाशत्वप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना ॥७५॥
यदितेरोचतेभद्रेततस्तद्वचनादहम् ।
करोमिपूर्ववद्देहभर्त्तुरवचनात्तव ॥७६॥
मयापिसर्वथास्त्रीणामाहात्म्यवरवर्णिनी ।
पतिव्रतानामाराध्यमितिसमानयामिते ॥७७॥

अनुसूया ने कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचन से दिन-रात्रि का भेद न रहने से सब सत्कर्म नष्ट होगए है, इसलिए सुरराज इन्द्र के सहित यह सम्पूर्ण देवता मेरे पास आकर ॥ ७० ॥ पहिले के समान ही दिन-रात्रि होने को कहते है, मै इसीलिए यहाँ आई हूँ ॥ ७१ ॥ दिन के न होने से यज्ञानुष्ठान भी नही हो रहा है और यज्ञ के न होने से देवताओ की तुष्टि भी नही हो सकती ॥ ७२ ॥ दिन के अभाव मे सब कर्मो का नाश हो गया तथा कर्म-नाश से अनावृष्टि होगई, इससे सम्पूर्ण विश्व का नाश सभव है ॥ ७३ ॥ यदि तुम इस विपत्ति से ससार को बचाना चाहो तो सब पर प्रसन्न होओ जिससे सूर्य पूर्ववत् उदय को प्राप्त हो सके ॥७४॥ ब्राह्मणी बोली हे महाभागे ! मुनि माण्डव्य ने क्रोध पूर्वक मेरे स्वामी को शाप दिया है कि 'सूर्योदय होते ही तेरा पति मृत्यु को प्राप्त होगा ॥ ७५ ॥ अनुसूया ने कहा—हे कल्याणि ! ऐसा होने पर मैं तुम्हारे स्वामी के शरीर को पहिले के समान

कर दूँगी ।। ७६ ।। पतिव्रता स्त्री की महिमा मेरे लिए सदैव आराधन के योग्य है, इसलिए मैं तुम्हारा सम्मान रखूंगी ।। ७७ ।।

तथेत्युक्ते तथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदचार्धरात्रेतदानिशि ।।७८।।
ततोविवस्वान्भगवान्कुल्लपद्मारुणाकृति ।
शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमण्डल ।।७९।।
समनन्तरमेवास्यमर्त्तप्राणैर्व्ययुज्यत ।
पपातचमहीपृष्ठेपतन्तंजगृहेचसा ।।८०।।
नविषादस्त्वयाभद्रेकर्तव्य पश्यमेबलम् ।
पतिशुश्रूषयावाप्ततपस किंचिरेणमे ।।८१।।
यथाभर्तृसमनान्यमपश्यपुरुषक्वचित् ।
रूपत शीलतोबुद्धवावाङ्माधुर्यादिभूषणै ।।८२।।
तेनसत्येनविप्रोयव्याधिमुक्त पुनर्युवा ।
प्राप्तोनुजीवितभार्यासहाय शरदाशतम् ।।८३।।

पुत्र बोला कि ब्राह्मणी के 'ऐसा ही हो' कहने पर अनुसूया ने अर्घ्य सहित सूर्य का आह्वान किया, उस समय तक दश रात्रियों का समय व्यतीत हो चुका था ।। ७८ ।। फिर प्रफुल्लित कमल के समान लालवर्ण वाले सूर्य जैसे ही उदयाचल मे चढे ।। ७९ ।। तभी उस ब्राह्मण का प्राणान्त होगया, इससे वह ज्यो ही पृथिवी मे गिरा त्योही ब्राह्मणी ने उसे सँभाला ।। ८० ।। अनुसूया ने कहा—हे भद्रे ! तुम विषाद न करो, मैंने पति सेवा से ही जिस तपोबल को प्राप्त किया है, वह तुम्हे अभी दिखाई पड़ेगा ।। ८१ ।। मैं यदि रूप, शील, बुद्धि, वाणी, माधुर्य आदि सद्गुणो मे अपने स्वामी के समान किसी अन्य को नही मानती ।। ८२ ।। तो मेरे उसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होकर युवावस्था को प्राप्त हो और पुनर्जीवन प्राप्त कर सौ वर्ष तक पत्नी के सहित जीवित रहे ।। ८३ ।।

यथाभर्तृसमनान्यमहंपश्यामिदैवतम् ।
तेनसत्येनविप्रोयपुनर्जीवत्वनामय ।।८४।।
कर्मणामनसावाचाभर्तुराराधनंप्रति ।

यथाममोद्यमोनित्यतथायंजीवतादद्विज ॥८५॥
ततोविप्र समुत्तस्थौव्याधिमुक्त पुनर्युवा ।
स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृंदारकइवाजर ॥८६॥
ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्दिवाद्यानिसस्वनु ।
लेभिरेचमुदंदेवाअनसूयामथाब्रुवन् ॥८७॥
वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहत्कृतम् ।
आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते ॥८८॥
त्वयायस्मात्ततोदेवावरदास्तेतपस्विनि ।
यदिदेवा प्रसन्नामेपितामहपुरोगमा ॥८९॥
वरदावरयोग्याचयद्यहंभवतामता ।
तद्यातुममपुत्रत्वंब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ॥९०॥

मैं यदि अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवता को भी नहीं मानती तो मेरे इसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होता हुआ पुनर्जीवन को प्राप्त हो ॥ ८४ ॥ यदि मन, वाणी और काया से मैंने स्वामी की नित्य आराधना की है तो यह ब्राह्मण जीवित हो ॥ ८५ ॥ पुत्र बोला—फिर वह ब्राह्मण रोग-मुक्त युवा रूप होकर अपनी प्रभा से गृह को प्रकाशित करता हुआ उठ पड़ा ॥ ८६ ॥ तब पुष्पों की वृष्टि और देव-वाद्यों की ध्वनि होने लगी और फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए देवताओं ने अनुसूया से कहा ॥ ८७ ॥ देवगण बोले—हे कल्याणि ! तुमने देवताओं के महान् कार्य का सम्पादन किया है, अब तुम सूर्योदय के कारण वर माँगो ॥ ८८ ॥ सब देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं, यह सुन कर अनुसूया ने कहा—हे देवगण ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे यह वर दीजिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र रूप में उत्पन्न हों ॥ ८९-९० ॥

योगंचप्राप्नुयामत्तृ सहिताक्लेशमुक्तये ।
एवमस्त्वितिदेवास्तांब्रह्मविष्णुशिवादय ॥९१॥
उक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम् ।
तत कालेब्रह्मतिथेद्वितीयोब्रह्मण सुत ॥९२॥
स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ।

ऋतुस्नातासुचार्वंगीलोभनीयतमाकृतिम् ॥९३॥
सकामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिन्दिताम्।
तस्याभिपश्यतस्तातुविकारोयोम्यजायत ॥९४॥
तमपोवाहपवनस्तिर्यगूर्ध्वंचवेगवान् ।
ब्रह्मारूपंचशुक्लाभंपतमानंसमंतत ॥९५॥
सोमरूपंरजोरूपंदिशस्तंजगृहुर्दश ।
ससोमोमानसोजज्ञेतस्यामत्रे प्रजापतेः ॥९६॥
पुत्र समस्ततत्वानामायुराधारएवच ।
तुष्टेनविष्णुनाजज्ञेदत्तात्रेयोमहात्मना ॥९७॥
स्वशरीरात्समुत्पन्न सत्वोद्रिक्तोद्विजोत्तम ।
दत्तात्रेयइतिख्यात सोनसूयास्तनंपपौ ॥९८॥

और मैं अपने पति के सहित क्लेश से मुक्त होने के लिए योग को प्राप्त होऊँ। पुत्र बोला—यह सुन कर ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवगण 'ऐसा ही हो' कह कर ॥ ९२ ॥उस तपस्विनी का सम्मान करके चले गये, फिर कुछ समय व्यतीत होने पर ब्रह्माजी के द्वितीय पुत्र ॥ ९३ ॥ भगवान् अत्रि ने एक दिन अपनी सर्वांग सुन्दरी पत्नी को ऋतु से निवृत्त होकर स्नान करते देख कर ॥ ९३ ॥ काम वशीभूत होने पर मानसिक सभोग से उनका तेज स्खलित होगया ॥ ९४ ॥ वायु ने उस तेज को वहन कर ऊर्ध्व और तिर्यक् भाव में प्रवाहित किया, गिरते समय उस तेज ने दशो दिशाओं का अवलम्बन किया और उन ब्रह्मारूपी सोम पुत्र रूप में अनुसूया से उत्पन्न हुए ॥ ९५-९६॥ सतुष्ट हुए भगवान् विष्णु ने सत्वगुण का अवलम्बन करके भी दत्तात्रेय के नाम से उत्पन्न होकर स्तन पान किया ॥ ९७-९८ ॥

विष्णुरेवाक्तीर्णोसौद्वितीयोत्रे सुतोभवत् ।
समाहारप्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयत ॥९९॥
हैहयेद्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ।
दृष्ट्वात्रौकुपित सद्योदग्धुकाम सहैहयम् ॥१००॥
गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वित ।
दुर्वासास्तममायुक्तोरुद्राश सोभ्यजायत ॥१०१॥

इतिपुत्रत्रयनस्याजज्ञेब्रह्मशवैष्णवम् ।
सोमोब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोभ्यजायत ॥१०२॥
दुर्वासा शंकरोजज्ञेवरदानाद्दिवौकसाम् ।
सोम स्वरश्मिभि शीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ॥१०३॥
आप्याययत्सदास्वर्गेवर्त्ततेसप्रजापति ।
दत्तात्रेय प्रजा पातिदुष्टदैत्यनिबर्हणात् ॥१०४॥
शिष्टानुग्रहकृद्योगीशेषश्चाश शवैष्णव ।
निर्दहत्यवमतारदुर्वासाभगवानज ॥१०५॥
रौद्रभावसमाश्रित्यहृङ् मनोवाग्भिरुद्धत ।
सोमत्वभगवानत्रिपुनश्चक्रे प्रजापति ॥१०६॥

वह अत्रि के द्वितीय पुत्र हुए, जो क्रोध के कारण माता के उदर से सातवें दिन ही उत्पन्न होगये थे ॥ ९९ ॥ हैहयराज के उद्धत स्वभाव से अत्रिमुनि का अपमान हुआ था, इस अपराध को देखकर हैहय को भस्म करने के प्रयोजन से ॥ १०० ॥ गर्भवास रूप क्लेश से अमर्ष युक्त हो तमोगण का आश्रय करके रुद्र के अंश से दुर्वासाजी की उत्पत्ति हुई ॥ १०२ ॥ इस प्रकार, ब्रह्मा, विष्णु और और शिव तीनो ने ही अनुसूया के पुत्र रूप मे जन्म लिया, ब्रह्मा ने चन्द्र के रूप मे, विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप मे ॥ १०२ ॥ शिवजी ने दुर्वासा के रूप मे जन्म धारण किया, वह प्रजापति चन्द्रमा अपनी शीतल किरणो से लता, औषधि, मनुष्य आदि को ॥ १०३ ॥ तृप्त करते हुए स्वर्ग मे रहते है, विष्णु के अंश रूप दत्तात्रेय दुष्टो का संहार ॥ १०४ ॥ और संतजनो के प्रति उपकार दिखाते हुए प्रजा पालन मे लगे तथा भगवान् दुर्वासा ॥ १०५ ॥ रुद्रात्मक देह से नेत्र, मन और वाणी द्वारा अपमानकर्त्ता दुष्टो को नष्ट करने लगे, फिर महर्षि अत्रि ने चन्द्रमा को सोमत्व का पद प्रदान करके प्रजापति बनाया ॥ १०६ ॥

दत्तात्रेयोपिविषयान्योगस्थोदृष्टशेहरि ।
दुर्वासा पितरत्यक्त्वामातरंचोत्तमव्रतम् ॥१०७॥
उन्मत्ताख्यसमाश्रित्यपरिबभ्रामभेदिनीम् ।
मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोप्यसंगिताम् ॥१०८॥

अभीप्समान सरसि निममज्जचिरविधु ।
तथापितमहात्मानमतीवप्रियदर्शनम् ॥१०९॥
तत्यजुर्नकुमारास्तेसरसस्तीरसश्रया ।
दिव्यैवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजतितम् ॥११०॥
तत्प्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारका ।
ततोदिव्याबरद्धरासुरूपासुनितविनीम् ॥१११॥
नारीमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनि ।
स्त्रीसनिकर्षिणह्येतेपरित्यक्ष्यतिमामिति ॥११२॥
मुनिपुत्रास्ततोयोगेस्थास्यामितिविचिंतयन् ।
तथापितेमुनिसुतात्यजतियदामुनिम् ॥११३॥

विष्णु अंश वाले दत्तात्रेयजी योग के अवलम्बन से दुर्वासा माता-पिता से पृथक् रह कर श्रेष्ठ व्रत ॥ १०७ ॥ पूर्वक उन्मत्त भाव पृथिवी में विचरण करने लगे। दत्तात्रेयजी के परम योगी होने के कारण मुनियों के पुत्र इन्हे सदा घेरे रहते थे ॥ १०८ ॥ वह उनसे बचने के लिए बहुत दिनो तक सरोवर मे निमग्न रहे, परन्तु वे अत्यन्त प्रिय लगने वाले महात्मा थे ॥ १०९ इसलिए मुनिकुमारो ने उन्हे फिर भी न छोडा और वे सरोवर के तट पर ही रहने लगे, इस प्रकार सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर भी खडे रहे ॥ ११० ॥ जब उनकी प्रीति वश मुनिकुमारो ने उन्हे न छोडा तो वे दिव्य वस्त्र धारण किये एक स्वरूपवती ॥ १११ ॥ नारी को साथ लेकर जल से निकले और सोचा कि मै स्त्री के साथ हूँ इसलिए यह अब मुझे छोड कर चले जायेंगे ॥ ११२ ॥ और मैं भी सग-रहित होकर योग-परायण हो जाऊँगा, तो भी मुनिकुमारो ने उन्हे नही छोड़ा ॥ ११३ ॥

ततः सहतयानार्यामद्यपानमथाकरोत् ।
सुरापानरततेनसभार्यतत्यजुस्तत. ॥११४॥
गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् ।
मन्यमानामहात्मानतयासहबहिष्क्रियम् ॥११५॥
नाबापदोषयोगीशोवारुणीसंपिबन्नपि ।
अंतावसायिवेश्मातर्मातरिश्वास्पृशन्निव ॥११६॥

सुरापिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित् ।
योगीश्वरश्चित्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकाक्षिभि.. ॥११७॥
तस्यचित्वथकालस्यकार्त्तवीर्योर्जुनोबली ।
कृतवीर्यंदिवंयातेमन्त्रिभिःसपुरोहितैः ॥११८॥
पौरैश्चात्माभिषेकार्थंसमाहूतोब्रवीदिदम् ।
नाहंराज्यंकरिष्यामिमन्त्रिणोनरकोत्तरम् ॥११९॥

तब वे उस स्त्री के साथ मद्य पीने लगे, सोचा कि स्त्री के सहित मद्य पीते देखकर चले जायेंगे ॥ ११४ ॥ परन्तु, फिर भी उन मुनिकुमारों ने उन्हें महात्मा जान कर नहीं छोड़ा ॥ ११५ ॥ वह योगीश्वर दत्तात्रेयजी चाण्डाल के घर रह कर मद्यपान करके भी दूषित नहीं हुए ॥ ११६ ॥ वे पत्नी सहित मद्यपान पूर्वक तप करने लगे, इस पर मुनिकुमार उनके चिन्तनीय रहे ॥ ११७ ॥ कार्तिकेय के स्वर्ग-गमन के पश्चात् पुरवासी, मन्त्री, पुरोहितादि ने मिलकर उसके पुत्र अर्जुन को राज्य पर अभिषिक्त करने लिए आमन्त्रित किया, परन्तु उसने उत्तर दिया कि हे मन्त्रिगण ! राज्य का परिणाम नरक है, इसलिए मैं राज्य नहीं करूँगा ॥ ११८–११९ ॥

यदर्थंगृह्यतेशुल्कंतदनिष्पादयन्वृथा ।
पण्यानाद्वादशभागभूपालावणिग्जन ॥१२०॥
दत्वात्मरक्षिभिर्मार्गेरक्षितोयातिदस्युत ।
गोपाश्चघृततक्रादे षड्भागंचकुर्पावला ॥१२१॥
दत्वान्यद्भूभुजेदद्युर्यदिभागततोधिकम् ।
पण्यादीनामशेषाणावणिजोगृह्णतस्तत ॥१२२॥
अग्निहोत्रंतप.सत्यंवेदानाचैवसाधनम् ।
आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टमित्यभिधीयते ॥१२३॥
वापीकूपतडागानिदेवतायतनानिच ।
अन्नप्रदानमित्युक्त पूर्त्तमित्यभिधीयते ॥१२४॥
इष्टापूर्त्तं विनाशायतद्राज्ञश्चौरकर्मिण ।
यदन्यं पाल्यतेलोकस्तद्भृत्यतरसंश्रित. ॥१२५॥
गृह्णतोबलिषड्भागंनृपतेर्नरकोध्रुवम् ।

निरूपितमिदं राज्ञ पूर्वैरक्षणवेतनम् ॥१२६॥

इस राज्य का ग्रहण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, वैश्य व्यापारी राजा को आय का बारहवाँ भाग ॥ १२० ॥ देकर चोरों के भय से बच जाते हैं, खारिया घृत या मट्ठा आदि का छटवाँ अंश तथा कृषक भी सब धान्यों का छटवाँ अंश ॥ १२१ ॥ राजा को देते हैं, यदि अन्य को दे तो वह इनकी वस्तु का अधिक भाग लेगा ॥ १२२ ॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेद-साधन, आतिथ्य, वैश्वदेव कर्म यह इष्ट कहे जाते हैं ॥ १२३ ॥ तथा कूप, बावडी, देवालय का निर्माण और अनेच्छुकों को दान करना पूर्त्त कहा जाता है ॥ १२४ ॥ अधिक कर लेने वाला राजा इष्टापूर्ति को नष्ट करने वाला कहा है, तथा दूसरों के द्वारा प्रजा का पालन कराता हुआ जो स्वयं अन्य वृत्ति करता है ॥ १२५ ॥ और षष्ठ भाग ग्रहण करता है वह राजा अवश्य ही नरक को प्राप्त होता है, पण्डितजनों ने प्रजा के रक्षणार्थ ही वेतन स्वरूप षष्ठ भाग ग्रहण करने का विधान किया है ॥ १२६ ॥

अरक्षन्चोरतश्चोरस्तद्धनृपतेर्भवेत् ।
तस्माद्यदितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम् ॥१२७॥
भुव पालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपति ।
पृथिव्यामरुजन्नद्याप्यहमेवंवर्द्धसयुत ॥१२८॥
ततोभविष्येनात्मानकरिष्येषापभागिनम् ।
तस्यतन्निश्चयज्ञात्वामत्रिमध्यस्थितोब्रवीत् ॥१२९॥
गर्गोतिममहाबुद्धिर्मुनिर्भूपवयोतिग ।
भक्त्यातुकृपयाविष्टस्ततोषयितुमर्हति ॥१३०॥
यद्यवक्तुं कामस्त्वंराज्यसम्यक्प्रशासितुम् ।
तत श्रृणुष्वमेवाक्यकुरुष्वचनृपात्मज ॥१३१॥
दत्तात्रेयमहात्मानसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ।
तमाराधयभूपालपातियोभुवनत्रयम् ॥१३२॥

यदि राजा उसे लेकर प्रजा-रक्षण न करे तो यह चोरी करता हुआ, इसलिए यदि मैं तप करके योगी होता हुआ ॥ १२७ ॥ पृथिवी का पालन करके एक मात्र नराधिप बन सकूँ तो ही मैं राज्य करना चाहता हूँ ॥ १२८ ॥

अन्यथा आत्मा को व्यर्थ ही पाप मार्ग पर नहीं चलाना चाहता, अर्जुन का यह विचार सुनकर मन्त्रियों के मध्य बैठे हुई ।। १२९ ।। वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ठ गर्ग भक्ति और कृपा के सहित राजपुत्र को प्रसन्न करते हुए बोले—हे राजपुत्र ! यदि आप भले प्रकार से राज्य शासन करना चाहते हैं तो, मेरी बात सुन कर वैसा कीजिए ।। १३१ ।। सह्याद्रि पर्वत पर निवास करने वाले त्रैलोक्य पालक दत्तात्रेयजी का आप आराधन कीजिये ।। १३२ ।।

योगयुक्त महात्मानसर्वज्ञसमदर्शिनम् ।
विष्णोरशजगद्धातुरवतीर्णधरातले ।।१३३।।
यमाराध्यसहस्राक्ष प्राप्तवान्पदमात्मन ।
हृतदुरात्मभिर्दैत्यैर्जघानचदिते सुतान् ।।१३४।।
कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रेय प्रतापवान् ।
कथवापहृतदैत्यैरिद्रत्वप्रापवासव ।।१३५।।
दैत्यानादेवतानाचयुद्धमासीत्सुदारुणम् ।
दैत्यानामीश्वरेजम्भेदेवानाचशचीपतौ ।।१३६।।
तेषातुयुध्यमानानादिव्य संवत्सरोगत ।
ततोदेवा पराभूतादैत्याविजयिनोऽभवन् ।।१३७।।
विप्रचित्तिमुखैर्दैत्यादानवैस्तेपराजिता ।
पलायनकृतोत्साहानिरुत्साहाद्विषज्जये १३८।।
बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सव ।
अमत्सरयतसहितावालखिल्यै सहर्षिभि ।।१३९।।
दत्तात्रेयमहाभागमत्रे पुत्रतपोधनम् ।
विकृताचरणभक्त्यासंतोषयितुमर्हथ ।।१४०।।

जो वे परमयोगी, परमभाग, सर्वदर्शी तथा विश्व रक्षार्थ विष्णु-अंश से पृथिवी पर अवतीर्ण हुए है ।। १३३ ।। जिनकी आराधना करके ही सहस्राक्ष इन्द्र को दैत्यों द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति हुई है ।। १३४ ।। अर्जुन ने कहा—देवताओं ने दत्तात्रेयजी की आराधना किस प्रकार की थी और इन्द्र को दैत्यों द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति कैसे हुई थी ।। १३५ ।। गर्ग बोले—किसी समय भयंकर देवासुर संग्राम हुआ था, उस समय जम्भ दैत्यों

के और रुद्र देवताओं के अधिपति थे ।। १३६ ।। युद्ध करते हुए उन्हें एक दिव्य सवत्सर व्यतीत होगया और अन्त में देवताओं की पराजय तथा दैत्यों की विजय हुई ।। १३७ तब विप्रचित्ति आदि प्रमुख दानवोंसे हराते हुए देवगण इधर उधर भागने लगे और विजय के प्रति निरुत्साहित होकर ।। १३८ ।। दैत्यों को मारने की इच्छा से बृहस्पतिजी के पास जाकर बालखिल्य ऋषियों सहित मन्त्रणा करने लगे ।। १३९ ।। बृहस्पतिजी ने कहा—हे देवगण ! अब तुम विकृत आचरण वाले अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को भक्ति पूर्वक सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करो ।। १४० ।।

सर्वोदैत्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ।
ततोहनिष्यथसुरा सहितान्दैत्यदानवान् ।।१४१।।
हतु शक्तानसदेहोदत्तात्रेयप्रसादत ।
इत्युक्तास्तेतदाजग्मुदत्तात्रेयाश्रमसुरा ।।१४२।।
ददृशुश्चमहात्मानंक्षातलक्ष्म्यासमन्वितम् ।
उद्गीयमानगन्धर्वैं सुरापानरतमुनिम् ।।१४३।।
तेतस्यगत्वाप्रणतिंचक्रु सर्वार्थसाधनीम् ।
भक्त्यातस्योपजहुश्चमद्यपस्यसुरादिकम् ।।१४४।।
तिष्ठ तमनुतिष्ठ तियातयातिदिवौकस. ।
आराधयामासुरथ स्थितास्तिष्ठ तमासने ।।१४५।।
सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेय किमिष्यते ।
मत्तोभवद्भिर्येनेयशुश्रूषाक्रियतेमम ।।१४६।।

दत्तात्रेयजी सन्तुष्ट होकर तुम्हें दैत्यों का विनाश करने वाला वर देंगे, उस समय तुम सगठित होकर दैत्यों और दानवों के सहार मे समर्थ होगे ।। १४१ ।। गर्गजी ने कहा—बृहस्पतिजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवगण दत्तात्रेयजी के आश्रम मे गये ।।१४२ ।। १४३ ।। उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीजी सहित मद्य-पान मे रत हैं तथा उनके समीप गन्धर्वगण गान कर रहे हैं ।। १४३ ।। उनके निकट जाकर देवगण सर्वार्थ सिद्ध करने वाली स्तुति करते हुए उनके लिये भक्ष्य,भोज्य तथा मालादि एकत्र करने लगे ।। १४४ ।। वह बैठते तो यह भी बैठते, वह चलते तो यह भी चलते, इस

प्रकार उनके आसन के नीचे के भाग में बैठ कर देवताओं ने उनका आराधन किया ॥ १४५ ॥ तब दत्तात्रेयजी ने उन देवताओं से कहा—तुम मेरी इस प्रकार सेवा कर रहे हो, इसलिए बताओ कि क्या चाहते हो ? ॥ १४६ ॥

दानवैर्मुनिशार्दूलजम्भाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ।
हृतत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नश ॥१४७॥
तद्धधेकुरुबुद्धित्वपरित्राणायनोनघ ।
त्वत्प्रसादादभीप्साम पुन प्राप्तु त्रिविष्टपम् ॥१४८॥
मद्यासक्तोहमुच्छिष्ठोनचैवाहृजितेन्द्रिय ।
कथमिच्छथमक्तोपिदेवा शत्रुपराभवम् ॥१४९॥
अनघस्त्वजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥१५०॥
सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिन ।
अस्यास्तुयोषित सगादहमुच्छिष्टतागत ॥१५१॥
स्त्रीसभोगोतिदु खायसातत्येनोपसेवित ।
एवमुक्तास्ततोदेवो पुनर्वचनमब्रुवन् ॥१५२॥
अनघेयमुनिश्रेष्ठजगन्मातानदुष्यति ।
यासाविद्यातवविभोसर्वज्ञस्यहृदिस्थिता ॥१५३॥
यथाशुमालासूर्यस्यद्विजचडालसगिनी ।
नदुष्यतिजगन्नाथतथेयवरवर्णिनी ॥१५४॥

देवताओं ने कहा—हे मुनिशार्दूल ! जम्भादि दानवों ने आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोकों और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को हर लिया है ॥ १४७ ॥ आप उनके सहार में मन लगा कर हमारी रक्षा करिये, आपकी कृपा से हम स्वर्ग को पुन प्राप्त करें यह हमारी इच्छा है ॥ १४८ ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे देवगण ! मैं मद्यपान रत, अजितेन्द्रिय और अपवित्र हूँ, तो मेरे द्वारा शत्रुओं के जीते जाने की आशा तुम कैसे कर रहे हो ? ॥ १४९ ॥ देवताओं ने कहा—हे प्रभो ! आपने विद्या से स्वच्छ हुए अन्त करण में ज्ञान रूपी रश्मियों को प्रविष्ट किया है, इसलिए आप पाप-रहित एव विषयों से अलिप्त है ॥ १५० ॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे देवगण ! मुझ में विद्या तो है तथा मैं

समदर्शी भी हूँ, परन्तु स्त्री-समर्ग मे अपवित्र होगया हूँ ।। १५१ ।। क्योंकि स्त्री-सम्पर्ग अत्यन्त दोष की खान है, यह सुन कर देवताओ ने पुन कहा ।। १५२ ।। देवता बोले—हे निष्पाप ! हे मुनिवर ! जो विद्या तुम्हारे सर्वज्ञ के हृदय मे स्थित है, उससे वह दोष को प्राप्त नही होती है ।। १५३ ।। जैसे सूर्य रश्मियाँ चाण्डालादि के सम्पर्ग-दोष मे दूषित नही होती, वैसे ही यह जगत्त्रोता आपके समर्ग से दूषित नही हो सकती ।। १५४ ।।

एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोब्रवीदिदम् ।
प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतामतम् ।।१५५।।
तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धायसुरसत्तमा. ।
इहानयतमद्दृष्टिगोचरमाविलम्ब्यताम् ।।१५६।।
मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणबलतेजस ।
येननाशमशेषास्तेप्रयातिममदर्शनात् ।।१५७।।
तस्यतद्वचनश्रुत्वादेवैर्दैत्यामहाबला ।
आहूयासमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम् ।।१५८।।
तैहन्यमानादैतेयैर्देवाःसर्वेभयातुरा ।
दत्तात्रेयाश्रमजग्मु समस्ता शरणार्थिन ।।१५९।।
तमेवविविशुर्दैत्या कालयतोदिवौकस ।
ददृशुस्तमहात्मानदत्तात्रेयमदालसम् ।।१६०।।
वामपार्श्वे स्थितामिष्टामशेषजगत शुभाम् ।
भार्याचास्यसुचार्वंगीलक्ष्मीमिदुनिभाननाम् ।।१६१।।

गर्गजी ने कहा—देवताओ के यह वचन सुन कर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँसते हुए कहा—यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है ।। १५५ ।। तो तुम सब युद्ध के लिए असुरो को यहाँ बुला कर मुझे दिखाओ, इसमे देर मत करो ।। १५६ ।। क्योंकि मेरे दृष्टिपात रूप अग्नि से उनका तेज, बल क्षीण हो जायगा और वे तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जायँगे ।। १५७ ।। गर्गजी ने कहा—उनके ऐसे वचन सुन कर देवताओं ने असुरो का युद्ध के लिए आह्वान किया और महाबली असुरो ने आकर क्रोध पूर्वक देवताओ पर आक्रमण किया ।। १५८ ।। तब दानवो की मार से भयभीत हुए देवता दत्तात्रेयजी के आश्रम

मे शरण पाने के लिए गये ॥ १५९ ॥ दैत्य भी देवताओं को नष्ट करने के विचार से उसी आश्रम में पहुँचे और उन्होंने वहाँ मद में मत्त हुए दत्तात्रेयजी को देखा ॥ १६० ॥तथा उनके वामपार्श्व में स्थित सम्पूर्ण इष्टों के देने वाली उनकी भार्या लक्ष्मीजी को भी उन्होंने देखा ॥ १६१ ॥

नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतीं मधुराभाषां सर्वयोषित्गुणैर्युताम् ॥१६२॥
दृष्ट्वाग्रस्तदादैत्या साभिलाषमनोभवा ।
नशेकुरुद्धतादैत्यामनसावोद्धुमातुरा ॥१६३॥
त्यक्त्वादेवान्निश्चयतातुहर्तुं कामाहतौजस ।
प्रेरितास्तेनपापेनह्यासक्तास्तेततोऽब्रुवन् ॥१६४॥
स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यमारंचेद्विदितभवेत् ।
कृतकृत्यास्तत सर्वेइतिनोभावितमन ॥१६५॥
तस्मात्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिविकायासुराद्यं ना ।
आरोप्यस्वमधिष्ठाननयामइतिनिश्चिता १६६॥
सानुरागास्ततस्तेतुमुनेरंतिकमागमन् ।
तस्यतायोषित्तसाध्वीसमुत्क्षिप्यस्मरातुरा ॥१६७॥
शिविकायसमारोप्यसहितादैत्यदानवा ।
शिर सुशिविकाकृत्वास्वस्थानाभिमुखाययु. ॥१६८॥

दैत्यगण उस नीलपद्म के समान नेत्र वाली पीनस्तनी सर्वांग सुन्दरी नारी को ॥ १६२ ॥ देख कर उसको ग्रहण करने की इच्छा करते हुए कामावेग से अधीर हो उठे ॥ १६३ ॥ तथा देवताओं को छोड़ कर उस नारी को हरण करने की इच्छा पूर्वक पाप से मोहित हुए कहने लगे ॥ १६४ ॥ यह स्त्री-रत्न त्रैलोक्य का सार है, हम इस नारी-रत्न को लेकर ही कृतकार्य होंगे ॥ १६५ ॥ इसलिए, हे दानवो ! इस विषय में चिन्ता न करो, हम इसे पालकी में बैठा कर अपने घर ले चलेंगे ॥ १६६ ॥ गर्गजी ने कहा—उन दैत्यों ने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया और दत्तात्रेयजी की पत्नी को उठा कर ॥ १६७ ॥ पालकी में चढ़ा लिया, फिर दैत्य-दानव मिलकर, पालकी को उठा कर अपने स्थान की ओर चल दिये ॥ १६८ ॥

दत्तात्रेयस्तथा देवान्विहस्येदमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्याचहृतदैत्यानामेषालक्ष्मी शिरोगता ।
सप्तस्थानान्यतिक्रम्यलयमन्यमुपेष्यति ॥१६६॥
कथयस्वजगन्नाथकेपुस्थानेष्ववस्थिता ।
पुरुषस्यफलंकिंवाप्रयच्छत्यधनंव्यति ॥१७०॥
नृणांपादस्थितालक्ष्मीर्निलयंसप्रयच्छति ।
सक्थ्नोश्चसंस्थितावस्त्र रत्ननानाविधंवसु ॥१७१॥
कलत्रदागुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ।
मनोरथान्पूरयतिपुरुषाणाहृदिस्थिता ॥१७२॥
लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतांश्रेष्ठाकण्ठस्थाकण्ठभूषणम् ।
अभीष्टबन्धुदारैश्चसमथाश्लेषप्रवासिभि ॥१७३॥
मुखस्थिताकवित्वंवचयच्छत्युद्भिसभंवा ॥१७४॥
शिरोगतासत्यजतितंतोन्ययातिसाश्रयम् ।
सेयंशिरोगतादैत्यान्परित्यजतिसाम्प्रतम् ॥१७५॥

फिर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँस कर देवताओं से कहा-हे देवगण ! तुम्हारा भाग्य फिर पलटा, सप्त स्थान से अतिक्रम करके लक्ष्मी दानवों के मस्तक पर चढ गयी है, इसलिए यह उन्हे छोड कर दूसरे के पास जायगी ॥ १६६ ॥ देवताओं ने पूछा—हे प्रभो ! लक्ष्मीजी के किस-किस स्थान पर जाने से हित अथवा अहित होता है, वह हमे बताइये ॥ १७० ॥ दत्तात्रेयजी बोले—मनुष्य के पैर मे लक्ष्मी रहे तो गृह प्रदान करती है, सक्थिनी अस्थि मे रहे तो वस्त्र और विभिन्न प्रकार के रत्न देती है, गुह्य स्थान मे रहे तो स्त्री देती है,॥१७१॥ गोद मे रहे तो पुत्र देती है तथा हृदय मे निवास करे तो सभी मनोरथों को पूर्ण करती है ॥ १७२ ॥ यदि लक्ष्मी का वास कठ मे हो तो कठ भूषण प्राप्त होता तथा प्रवासी प्रियतम, बधु या स्त्री से मिलाप होता है ॥ १७३ ॥ यदि मुख मे लक्ष्मी स्थित रहे तो श्रेष्ठ वाक्य लावण्य और कवित्व की प्राप्ति होती तथा आज्ञा सफल होती है ॥ १७४ ॥ यदि मस्तक मे स्थित हो तो उसका त्याग कर अन्य का आश्रय लेती है, आज वही लक्ष्मी इन दानवो के

शिर पर चढ गई है, इसलिए इनका परित्याग कर देगी ।। १७५ ।।

प्रगृह्यास्त्राणिवध्यन्तांतस्मादेतेसुरारय ।
नभेतव्यंमयाशत्वेतेमयानिस्तेजस कृता ।।१७६।।
परदारावमर्शाच्चदग्धपुण्याहृतौजस ।
तस्मादेतेभिहन्यंताभवद्भिःसुरविशकिते ।।१७७।।
ततस्तेविविधैरस्त्रैर्वध्यमाना सुरारय ।
शिरःसुलक्ष्म्याप्याक्रांताविनेशुरितिन श्रुतम् ।।१७८।।
लक्ष्मीश्चोत्पत्यसप्राप्तादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
स्तूयमानासुरै सेंद्रैर्दत्यनाशान्मुदान्वितै ।।१७९।।
प्रणिपत्यतलोदेवादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
जयकृष्णजगन्नाथदैत्यांतकहरप्रभो ।।१८०।।
नारायणाच्युतानंतवासुदेवाक्षयाजर ।
त्वत्प्रसादात्सुखलक्ष्मीराज्यसपज्जनार्दन ।।१८१।।
शार्ङ्गधन्वश्चक्रपाणेभक्तानांनित्यवत्सल ।
इतिस्तुत्वानाकपृष्ठ यथापूर्वगता सुरा ।।१८२।।
तथात्वमपिराजेंद्रयदिच्छसियथेप्सितम् ।
प्राप्तमैश्वर्यमतुलतूर्णमाराधयस्वतम् ।।१८३।।

हे देवगण ! अब तुम भय त्याग कर शस्त्र उठाओ और उन्हे मारो, क्यो कि वे मेरे दृष्टिपात से तेज रहित हो चुके है ।। १७६ ।। पर नारी के साथ बलात्कार से पुण्य भस्म होता है और पराक्रम की हानि होती है, इसलिए अब तुम शका रहित होकर उनका सहार कर डालो ।। १७७ ।। गर्गजी बोले— इसके पश्चात् देवगण तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रो के द्वारा असुरो का सहार करने लगे, इस प्रकार लक्ष्मी को सिर पर चढाने से असुरो का नाश हो गया, ऐसा सुना गया है ।। १७८ ।। फिर लक्ष्मीजी उनके मस्तक से उतर कर दत्तात्रेयजी के ही पास आगई और दैत्यो के नष्ट होने से प्रसन्नता को प्राप्त हुए सब देवता उनकी स्तुति करने लगे ।। १७९ ।। फिर दत्तात्रेयजी को प्रणाम पूर्वक हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यो के नाशक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जय हो ।। १८० ।। हे नारायण, हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे

अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके ही प्रसाद से हमें सुख, लक्ष्मी और राज्य सम्पदा की प्राप्ति हुई है ॥ १८१ ॥ हे शार्ङ्ग धनुर्धारी ! हे चक्रपाणि ! आप सदैव भक्तों पर कृपा करते हैं, इस प्रकार स्तुति करके देवगण जहाँ से आये थे वहीं लौट गये ॥ १८२ ॥ इसलिए हे राजेन्द्र ! यदि तुम्हें अतुल ऐश्वर्य की कामना है तो उन दत्तात्रेयजी की शीघ्र ही आराधना करो ॥ १८३ ॥

१६—दत्तात्रेय उपाख्यान

इत्यृषेर्वचनश्रुत्वाकार्त्तवीर्योनरेश्वर ।
दत्तात्रेयाश्रमंगत्वातभक्त्याभ्यर्चयत् ॥१॥
पादसंवाहनाद्यैश्चअर्घ्यपुष्पहिरण्येनच ।
स्रक्चंदनादिरिगधान्नफलाद्यानयनेनेच ॥२॥
तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेनच ।
परितुष्टोमुनिर्भूपतमुवाचतथैवसः ॥३॥
यथैवोक्ता पुरादेवास्त्वयभोज्यादिकुत्सनम् ।
स्त्रीचेयममपार्श्वस्थेत्येतद्भोगानुकुत्सित ॥४॥
सदैवाहनमामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि ।
अशक्तमुपकारायशक्तमाराधयस्वभो ॥५॥
तेनैवमुक्तोमुनिनास्मृत्वागर्गवचश्चतत् ॥६॥
प्रत्युवाचप्रणम्यैनंकार्त्तवीर्यस्ततोऽर्जुन ।
देवस्त्वंहिपुराणोय स्वामायासमुपाश्रित ॥७॥

पुत्र बोला—राजा कार्त्तवीर्य ने गर्गजी की बात सुन कर दत्तात्रेयजी के आश्रम में जाकर भक्ति भाव पूर्वक उनका पूजन किया ॥ १ ॥ चरण संवाहन करके अर्घ्य, पुष्प, माला, सुगंधि, जल, फल तथा चन्दनादि उनके निमित्त प्रस्तुत किया ॥ २ ॥ इसी प्रकार अन्नादि लाते और उनका उच्छिष्ट स्वयं भोजन करते, यह देख कर सन्तुष्ट हुए मुनि उनसे उसी प्रकार बोले ॥ ३ ॥ जैसे पहिले देवताओं के प्रति अपने निन्दित कर्म कहे थे । ऋषि ने कहा—मेरे पास जो यह स्त्री है, मैं इसमें सदैव आसक्त रहता हूँ ॥ ४ ॥ हे

राजन् ! इस प्रकार सदा निन्दित कर्म करता रहने वाला मैं उपकार में असमर्थ हूँ तो मेरी सेवा से तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसलिए समर्थ का ही आराधन करो ॥ ५ ॥ पुत्र बोला—यह सुनकर तथा गर्ग मुनि के वचनों को याद कर के ॥ ६ ॥ कार्त्तवीर्य ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया और कहा—हे प्रभो ! आप मुझे इस प्रकार मोहित क्यों करते हैं ? आप अपनी माया से मुक्त हैं ॥ ७ ॥

अनघस्त्वतथैवेयं देवीसर्वमयारणि ।
इत्युक्त प्रीतिमान्देवोभूयस्त्वप्रत्युवाचह ॥८॥
कार्त्तवीर्यमहावीर्यवशीकृतमहीतलम् ।
वरवृणीष्वगुह्य मेत्ववानामयदीरितम् ॥९॥
तेनतुष्टि पराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ।
येचमापूजयिष्यन्तिगन्धमाल्यादिभिर्नरा ॥१०॥
लक्ष्म्यासमेतगीतैश्चब्राह्मणानातथार्च्चनै ॥११॥
वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशखादिभिस्तथा ।
तेषामहपरापुष्टिपुत्रदारधनादिकीम् ॥१२॥
प्रदास्यामयवधृतश्चहनिष्यामयवमन्यताम् ।
सत्ववरयभद्र मेवरयमनसेच्छसि ॥१३॥
प्रसादसुमुखस्तेहगुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ।
यदिदेवप्रसन्नस्त्वतन्मयश्छिद्धिमुत्तमाम् ॥१४॥
यथाप्रजापालयेयनचाधर्ममवाप्नुयाम् ।
परानुस्मरणज्ञानमप्रतिद्ध द्वतारणे ॥१५॥

इसलिए आप निष्पाप है यह देवी सम्पूर्ण विश्व की अरणि के समान होने से पाप रहित है, राजा के इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर कहा—हे भूमंडल को वश में करने वाले कार्त्तवीर्यार्जुन ! वर माँगो, तुमने मेरे गुप्त नाम का उच्चारण किया है ॥ ९ ॥ इससे मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ तथा जो गंधमाला आदि के द्वारा मेरी पूजा करते हैं ॥ १० ॥ तथा सब प्रकार संतुष्ट करते हुए पूजा के बाद ॥ ११ ॥ वीणा, वेणु, शंखादि बजाते हैं, उनको मैं स्त्री, पुत्र और धनादि के प्रदान द्वारा परम संतोष देता

हूँ ॥ १२ ॥ तथा जो अवधूत कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं, उनका हनन करता हूँ, इसलिए तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो, तुम्हारा मंगल हो ॥ १३ ॥ तुमने मेरे गुप्त नामों का कीर्तन किया है, इसलिए मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ ! अर्जुन बोला—यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझे ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि दीजिये ॥ १४ ॥ जिससे मैं सहज ही सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता हुआ पाप-भोगी न बनूँ और शत्रुओं के अनुसरण में मुझे ज्ञान प्राप्त हो तथा रणक्षेत्र में कोई भी मेरा सामना न कर सके ॥ १५ ॥

सहस्रमाप्तुमिच्छामिबाहूनांलघुतागुणम् ।
असंगागतयं सर्तुशैलाकाशाम्बुभूमिषु ॥१६॥
पातालेषुचसर्वेषुवधश्चाप्यग्निकान्नरात् ।
तथामार्गप्रवृत्तस्यसतुसन्मार्गदेशिका ॥१७॥
सर्तुमेतिथयं श्लाघ्यांवित्तं वान्यत्तथाक्षयम् ।
अनष्टद्रव्यतांराष्ट्रे ममानुस्मरणेनच ॥१८॥
त्वयिभक्तिश्चदेवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ।
यएतेकीर्तिता सर्वेतान्वत्ससमवाप्स्यसि ॥१९॥
मत्प्रसादात्प्रभवितांचक्रवर्तित्वमैश्वरम् ।
प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायसोऽर्जुन ॥२०॥

मैं लघुतत्व गुण से युक्त सहस्रबाहु हो जाऊँ, जल, थल, पर्वत, आकाश आदि सब स्थानों में निर्बाध गति तथा श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ से मृत्यु की अभिलाषा है, मैं उन्मार्ग में प्रवृत्त व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखाने की इच्छा करता हूँ ॥१६-१७ ॥ अक्षय धन-दान एवं आतिथ्य लाभ करूँ, मेरा नाम उच्चारण करने वाला धन हीन न रहे ॥ १८ ॥ आपके पदपद्मों में सदा मेरी भक्ति रहे, दत्तात्रेयजी ने कहा—हे वत्स ! तुम्हारा कहा हुआ सभी होगा ॥ १९ ॥ मेरे प्रसाद से तुम चक्रवर्ती नरेश होगे । पुत्र बोला—फिर अर्जुन ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया ॥ २० ॥

आनीयप्रकृती सम्यगभिषेकमगृह्णत ।
आगताश्चापिगन्धर्वास्तथैवाप्सरसांगणा ॥२१॥
ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्या पर्वतास्तथा ।

गंगाद्या सरित सर्वा समुद्रारत्नसंभवा ॥२२॥
प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षादेवार्ववासवादय. ।
वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागता ॥२३॥
तार्क्ष्याद्या पक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा ।
सभारा समृता सर्वेदत्तात्रेयप्रसादत ॥२४॥
अथासज्वाल्यतैर्वह्निदेवैर्ब्रह्मादिभि सह ।
नारायणेनाभिषिक्तोदत्तात्रेयस्वरूपिणा ॥२५॥
समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिषेचित ।
अघोषयामासतदास्थितोराज्येसहैहय ॥२६॥
दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वित ।
अद्यप्रभृतिय शस्त्र मामृतेन्योगृहीष्यति ॥२७॥
हनव्य समवादस्यु परहिंसारतोपिवा ।
इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चिदायुधभृन्नर ॥२८॥

सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अभिषेक कराया, उस समय गंधर्व और अप्सराएँ ॥ २१ ॥ वसिष्ठादि ऋषि, सुमेरु आदि पर्वत, गंगादि सब नदी और जल से परिपूर्ण सभी समुद्र ॥ २२ ॥ प्लक्षादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुक्यादि सब नाग ॥ २३ ॥ गरुडादि पक्षी, नगर और नगरवासी तथा सभी लोक दत्तात्रेयजी के प्रसाद से सम्पूर्ण सामग्री सजाये हुए, अभिषेकार्थ वहाँ उपस्थित हुए ॥ २४ ॥ ब्रह्मादि देवताओं ने अग्नि को प्रज्वलित किया तथा दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण ने अभिषेक किया ॥ २५ ॥ फिर समुद्र और ऋषियों ने अभिषेक किया और 'हैहय राज्य में स्थित हो गये' ऐसी घोषणा सर्वत्र की गई ॥ २६ ॥ दत्तात्रेयजी के प्रसाद से अतुलित ऐश्वर्य को प्राप्त हुए महाबली हैहय ने राज्य में प्रतिष्ठित होकर आज्ञा दी कि अब से मेरे अतिरिक्त जो कोई भी अस्त्र धारण करेगा ॥ २७ ॥ वह हिंसक या दस्यु मेरे द्वारा मारा जायगा । ऐसी राजाज्ञा सुनकर कोई भी मनुष्य अस्त्र धारी न रहा ॥ २८ ॥

तमृतेपुरुषव्याघ्र बभूवोरुपराक्रमम् ।
सएवग्रामपालोभूत्पशुपालसएवच ॥२९॥

क्षेत्रपाल सएवासीद्द्वितीयोनचरक्षिता ।
तपस्विनापालयितासार्थपालश्चसोभवत् ॥३०॥
दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौनिमज्जताम् ।
अन्यासूचैव नगनामापत्सुपरवीरहा ॥३१॥
सएवसस्मृत.सद्य समुद्धर्त्तामवन्नृणाम् ।
अनष्टद्रव्यतावासीत्तस्मिञ्छासतिपार्थिवे ॥३२॥
तेनेष्ट बहुभिर्यज्ञै समाप्तवरदक्षिणै ।
तपश्चतप्तं सुमहत्सग्रामेवातिचेष्टितम् ॥३३॥
तस्यर्द्धिमहिमानचदृष्ट्वाप्राहागिरामुनि ।
ननूनकार्त्तवीर्यस्यगतियास्यतिपार्थिवा ॥३४॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वसिग्रामेचातिचेष्टितै ।
दत्तात्रेयाद्दिनेयस्मिन्सप्राप्तैर्द्धिनरेश्वर ॥३५॥

सम्पूर्ण पृथिवी के एक कार्त्तवीर्यार्जुन ही राजा हुए, उस समय वही ग्राम-पालक एव पशु-पालक थे ॥ २९ ॥ वही क्षेत्र, ब्राह्मण और तपस्वियो के रक्षक तथा अर्थ पालक हुए ॥ ३० ॥ वही राजा चोर, सर्प, अग्नि, शत्रु, भयङ्कर समुद्र या विभिन्न विपत्तियो मे पडे मनुष्यो की रक्षा करने वाले हुए ॥ ३१ ॥ उनके नाम के उच्चारण मात्र से सब की विपत्ति दूर होने लगी और उनके शासन काल मे कोई धन हीन न रहा ॥ ३२ ॥ उन्होने अनेक प्रकार के दक्षिणामय यज्ञ पूर्ण किये तथा वे महान् तप का आचरण करने वाले और युद्ध मे अजेय हुए ॥ ३३ ॥ उनकी ऐसी समृद्धि देख कर अगिरा मुनि ने कहा था कि 'इनके समान कोई दूसरा राजा नही हुआ ॥ ३४ ॥ तथा यज्ञ, दान, तप या युद्ध प्रसङ्ग मे कोई इनके समान नही होगा, वे जब दत्तात्रेयजी से अतुलित ऐश्वर्यवान् हुए है ॥ ३५ ॥

तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागेदत्तात्रेयस्यसोकरोत् ।
तथैवचप्रजा सर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ॥३६॥
तस्यर्द्धिपरमाहृष्ट्वायागचक्रु समाधिना ।
इत्येतत्तस्यमाहात्म्यदत्तात्रेयस्यधीमत ॥३७॥
विष्णोश्चराचरगुरोरमतस्यमहात्मन ।

प्रादुर्भावे पुराणेषुकथ्यतेशाङ्र्गधन्वन ॥३८॥
अनन्तस्याप्रमेयस्यशङ्खचक्रगदाभृत ।
एतस्यपरमरूपंयश्चिन्तयतिमानव ॥३९॥
समुक्तोसर्वसंसारात्समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ।
सदैववैष्णवानाचक्त्याहसुलभोस्मिभो ॥४०॥
पत्रपुष्पफलेनाहंपूजितोमोक्षदोस्मिवै ।
इत्येवयस्यवैवाचस्तत्कथनाश्रयेज्जन ॥४१॥
अधर्मस्यविनाशायधर्माधारार्थमेवच ।
अनादिनिधनोदेव करोतिस्थितिपालनम् ॥४२॥
तथैवजन्मचाख्यातमालर्कस्यमहात्मन ।
यथाक्रमयोग कथितोदत्तात्रेयेणतस्यवै ।
पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मन ॥४३॥

उसी दिन उन्होंने दत्तात्रेय का यज्ञ किया, प्रजा ने भी अपने राजा को ॥ ३६ ॥ परम ऋद्धि को देख कर उसी दिन यज्ञ किया, यह उन दत्तात्रेय-यज्ञ का माहात्म्य है ॥ ३७ ॥ उन चराचर के गुरु, अनन्त, शार्ङ्गधर, शंख, चक्र, गदा धारी दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण की उत्पत्ति सब पुराणों में विभिन्न प्रकार से कही गयी है, नारायण के इस रूप का जो मनुष्य चिन्तन करते हैं ॥ ३८ ॥ वे सुखी होते हुए तुरन्त संसार रूपी पाश से मुक्त हो जाते हैं; उनकी प्रतिज्ञा है कि हे "वैष्णवो ! भक्ति के द्वारा मैं तुम्हारे लिए सदैव सुलभ हूँ, मैं पत्र, पुष्प, फल के द्वारा पूजित होकर मोक्ष देता हूँ" ऐसे भगवान् की शरण में मनुष्य क्यों न जाँय ॥ ४०-४१ ॥ वह अनादि देवता धर्माचरण और अधर्म-विनाश के लिए स्थिति और पालनादि करते हैं ॥ ४२ ॥ हे पिताजी ! अब आप से अलर्क ब्राह्मण का वृत्तान्त कहता हूँ, वे महात्मा अलर्क संसार प्रसिद्ध राजर्षि और पितृ भक्त थे ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे दत्तात्रेयोपाख्यान नाम सप्तदशोऽध्याय ॥१७॥

१८—कुवलयाश्व उपाख्यान

प्राग्बभूवमहावीर्य शत्रुजिन्नामपार्थिव ।

तुतोषयस्ययज्ञेषुसोमावाप्त्यापुरदर ॥१॥
तस्यात्मजोमहावीर्योबभूवारिविदारण ।
नाम्नाऋतुध्वजख्यात सर्वलक्षणसयुत. ॥२॥
बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनासम ।
ससमानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितै ॥३॥
नृपपुत्रोनृपसुतैर्नित्यमास्तेसभावृत ।
कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चय ॥४॥
कदाचित्काव्यसलापगीतनाटकसभवै ।
तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्त्रविनयेषुच ॥५॥
योग्ययोनियुद्धनागाश्वस्यदनाभ्यासतत्पर: ।
रेमेनृपेद्रपुत्रोसौनरेद्रतनयैर्वृतै ॥६॥

पुत्र बोला—हे पिताजी ! पुरातकाल में शत्रुजित् नामक एक महाबली राजा थे, उनके यज्ञ मे सोम पान करके इन्द्र अत्यन्त सन्तुष्ट हुए ॥ १ ॥ उनके ऋतुध्वज नामक एक अत्यन्त पराक्रमी तथा विख्यात पुत्र हुआ ॥ २ ॥ वह बुद्धि मे बृहस्पति के तुल्य, विक्रम मे सुरपति के और रूप मे अश्विनी कुमारो के समान थे, वह जिन राज कुमारो से मिलते, वे भी आयु, सत्व, बल, चेष्टा मे उस राजकुमार से कम न थे, वह कभी शास्त्र ज्ञान से उत्पन्न विवेक पूर्वक अवस्थान करते थे ॥ ३-४ ॥ कभी काव्यचर्चा, कभी सगीत, कभी नाट्यादि से प्रसन्न होते, कभी पाशा-क्रीडा, कभी शस्त्रास्त्र, कभी विनय भाव ॥ ५ ॥ कभी योग्य पुरुषो से मल्लयुद्ध, कभी गज, अश्व, रथादि की सवारी करते हुए राजपुत्रो से क्रीडा करते ॥ ६ ॥

यथैवह्यहिदिवातद्वद्रात्रावपिमुदायुत ।
तेषातुक्रीडतास्तत्रद्विजभूपविशासुता. ॥७॥
समानवयस प्रीत्यारतुमायात्यनेकश ।
कस्यचित्त्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ॥८॥
कुमारावागतौनागौपुत्रावश्वतरस्यतु ।
ब्रह्मपतिच्छलौतरुणौप्रियदर्शनौ ॥९॥
तौतैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजात्मजै ।

विनोदैर्विविधैस्तत्रतस्थतु प्रीतिसयुतौ ॥१०॥
सर्वेचतेनृपसुतास्तेचब्रह्मविप्रासुता ।
नागराजात्मजौतौचस्नानसवाहनादिकासु ॥११॥
वस्त्रगंधान्नसयुक्ताचक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ।
अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ॥१२॥
आजग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपते ।
सचताभ्यानृपसुत परनिर्वाणमाप्तवान् ॥१३॥
विनोदैर्विविधैर्हास्यसलापादिभिरेवच ।
विनाताभ्यानबुभुजेनसस्नौनपौमधु ॥१४॥

जैसे आनन्द से दिन व्यतीत होता, वैसे ही रात्रि भी व्यतीत होती थी, जहाँ वह खेलते थे, वह सैकडो राज पुत्र, ब्राह्मण या वैश्यो के बालक ॥ ७ ॥ आ आकर खेलने लगे, इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर पृथिवी मे नागलोक मे ॥ ८ ॥ नागराज अश्वतर के दो पुत्र ब्राह्मण के वेश मे आये, वे दोनो ही युवा तथा प्रिय दर्शन थे ॥ ९ ॥ वह भी उन राजपुत्रो और ब्राह्मण पुत्रो के साथ विभिन्न प्रकार के विनोद करते हुए प्रीति पूर्वक वहाँ रहने लगे ॥ १० ॥ वह राजपुत्र, ब्रह्मपुत्र, वैश्य पुत्र और दोनो नागपुत्र सभी एक साथ स्नान, विमान पर चढना ॥ ११ ॥ वस्त्र धारण गन्धानुलेपन और भोगानुसार भोजन करने लगे, इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से प्रसन्न हुए दोनो नाग पुत्र वहाँ नित्य प्रति आने जाने लगे ॥ १२-१३ ॥ उनके विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद, हास्य-सलापादि से सुखी हुए वे उनके बिना भोजन, स्नान आदि भी नही करते थे, ॥ १४ ॥

नरेमेचनजग्राहुशास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ।
रसातलेचतौरात्रिविनातेनमहात्मना ॥१५॥
नि श्वासपरमौनीत्वाजग्मतुस्तदिनेदिने ।
मर्त्यलोकेपराप्रीतिर्भवतो केनपुत्रकौ ॥१६॥
सहेतिचप्रलपितौतावुभौनागदारकौ ।
दृष्ट्योरत्रपातालेबहूनिदिवसानिमे ॥१७॥
दिवारजन्यामेवोभौपश्यामिप्रियदर्शनौ ।

इतिपित्रास्वयपृष्टौप्रणिपत्यकृताञ्जली ॥१८॥
प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेसुतौ ।
पुत्रौ शत्रुजितस्तातनाम्नाख्यातऋतध्वज. ॥१९॥
रूपानावर्जवोपेत शूरोमानीप्रियंवद ।
अनावृतकथोवाग्मीविद्वान्मैत्रोगुणाकर । २०॥

तथा क्रीडा और गुण वृद्धि के लिए शस्त्र भी नहीं उठाते थे, तथा वे नागपुत्र भी उस राजपुत्र के बिना रात्रिकाल ॥ १५ ॥ रसातल में दीर्घ श्वास लेते हुए व्यतीत करते और दिन में उनके पास आते, कुछ काल इस प्रकार व्यतीत होने पर एक दिन नागराज वासुकि ने अपने दोनों पुत्रों से पूछा—हे पुत्रो ! मर्त्यलोक के प्रति तुम्हारी ऐसी प्रीति क्यों हुई है ? बहुत दिनों से तुम्हें मैं दिन के समय पाताल लोक में नहीं देखता ॥ १६-१७ ॥ रात्रि होने पर ही तुम दिखायी देते हो, इसका क्या कारण है, इस प्रकार पूछने पर उन दोनों ने अपने पिता से प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए कहा—हे तात ! मर्त्यलोक में राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतुध्वज हैं ॥ १८-१९ ॥ वह स्वरूप वाले, सरल चित्त शूर, प्रियभाषी, यशस्वी, विद्वान्, मित्रता के योग्य तथा गुणों की खान है ॥ २० ॥

मान्यमानयिताश्रीमान्ह्रीमान्विनयभूषण. ।
तस्योपचारसप्रीतिसभोगापहृतमन ॥२१॥
नागलोकेऽन्यलोकेवानरतिंविदतेपिता ।
तद्वियोगेननौतातनिशापातालशीतला ॥२२॥
परितापावतत्सङ्गश्चाह्लादायरविंदिवा ।
पुत्र पुण्यवतोधन्य सयस्यैवभवद्विध ॥२३॥
परोक्षस्यापिगुणिधि क्रियतेगुणकीर्तनम् ।
सतिशास्त्रविदोऽशीलासतिमूर्खा सुशीलिन ॥२४॥
शास्त्रशीलेसममन्येयस्मिन्नन्यतरत्तुतम् ।
यस्यमित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्चपराक्रमम् ॥२५॥
कथयतिसदासत्सुपुत्रवास्तेनवैपिता ।
तस्योपकारिण कञ्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ॥२६॥

किंचिन्निष्पादितवत्सौपरितोषायचेतस ।
सधन्योजीवितंतस्यतस्यजन्मसुजन्मन ॥२७॥
यस्यार्थिनोनविमुखामित्रार्थेनचदुर्बल ।
मद्गृहेयत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् ॥२८॥
यद्वान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशंकया ।
धिक्तस्यजीवितपुंसोमित्राणामपकारिण ॥२९॥

वह मानी, बुद्धिमान्, लज्जावाला तथा विनय से युक्त है उनकी प्रीति में हमारा मन आकर्षित होकर ॥ २१ ॥ नागलोक, पृथिवी अथवा किसी भी अन्य स्थान में प्रसन्न नहीं रहता । पाताल की शीतल रात्रि भी उनके वियोग में ॥ २२ ॥ हमारे लिए ताप जनित होती है और उनके संग में सूर्य के ताप से तप्त दिन भी हमको हर्ष जनक होता है । पिता ने कहा—वह पुण्यवान् पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम्हारे जैसे गुणवान् भी ॥ २३ ॥ पीछे से जिनका गुणगान करते है, अनेक शास्त्र ज्ञानी भी बुरे स्वभाव वाले तथा अनेक मूर्ख भी सुशील होते है ॥ २४ ॥ मेरे विचार में वह राजपुत्र धन्य है क्योंकि जिसकी मित्रता का गुण मित्र द्वारा और पराक्रम शत्रु द्वारा प्रकट होता है ॥ २५ ॥ उसी पुत्र के द्वारा पिता पुत्रवान् कहा जाता है, तुमने उस उपकार करने वाले के लिये कुछ विचार भी किया है ?॥ २६ ॥ हे पुत्र ! उन मित्र की संतुष्टि के लिये तुमने कुछ कार्य किया है ? इस जगत् में वही धन्य है और उसी का जन्म सफल है ॥ २७ ॥ जो कामना वालों को विमुख नहीं करता और मित्र के प्रति भी दुर्बल नहीं है, इसलिए मेरे गृह में स्वर्ण, रत्न, वाहन, आसन इत्यादि ॥ २८ ॥ जो कुछ भी है, उसे उनकी प्रसन्नता के लिए दे सकते हो क्योंकि मित्रों का अपकार करने वालों को धिक्कार है ॥ २९ ॥

प्रतिरूपमकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ।
उपकारसुहृद्वर्गेष्वपकारेशत्रुषु ॥३०॥
नृमेधोवर्धतिप्राज्ञास्तस्येच्छतिसदोन्नतिम् ।
कितस्यकृतकृत्यस्यकर्तुशक्येतकेनचित् ॥३१॥
यस्यसर्वार्थिनोमेहेसर्वकामैः सदार्चिता ।
यानिरत्नानितद्दद्देहेपातालेतानिन कुत ॥३२॥

वाहनासनयानानिभूषणान्यवराणिच ।
विज्ञानयच्चतत्रास्तितदन्यत्रनविद्यते ।।३३।।
प्राज्ञानामप्यसौतातसर्वसंदेहहृत्तम ।
एकंतस्यास्तिकर्त्तव्यमसाध्यंतन्नोमतम् ।।३४।।
हिरण्यगर्भंगोविंदशर्वादीनावराहते ।
तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ।।३५।।

उपकारी मित्र के प्रति उपकार न करके जो जीवित रहते है, उनका जीवन भी असफल है, जो पुरुष बन्धुवर्ग के उपकार और शत्रु वर्ग के अपकार रूप जल को सींचते है, उन्ही की उन्नति का साधन देवता करते है, पुत्र ने कहा—वह स्वय ही कृतकृत्य है, उनका क्या उपकार कर सकते है ? ।। ३०-३१ ।। जिनसे याचक इच्छित पदार्थ द्वारा सदा पूजित होते है उनका उपकार करने की सामर्थ्य हममे नही है, क्योकि उनके यहाँ जो रत्न हैं, वह पाताल मे भी उपलब्ध नही है ।। ३२ ।। उनके जैसे वाहन, आसन, यान, आभूषण, वसन हमारे यहाँ नही है और उनके जैसा विज्ञान और कही भी नही हो सकता ।। ३३ ।। वह पंडितो का भी सदेह दूर करने मे समर्थ है, हाँ, उनका एक कार्य है, परन्तु वह हमारे द्वारा साध्य नही हो सकता ।। ३४ ।। हिरण्य गर्भ भगवान् गोविन्द तथा शिवादि के अतिरिक्त वह किसी के द्वारा सिद्ध नही हो सकता, पिता ने कहा—उनके उस श्रेष्ठ कार्य को मैं सुनना चाहता हूँ ।। ३५ ।।

असाध्यमथवासाध्यंकिंचासाध्यंविपश्चिताम् ।
देवत्वममरेशत्वंतत्पूज्यत्वंमानवा ।।३६।।
प्रयातिवांछितंचान्यद्दृढयेव्यवसायिन ।
नाविज्ञातंनचागम्यंनाप्राप्यंदिविचेहवा ।।३७।।
उद्यतानांसतुष्याणांयतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ।
योजनानांसहस्राणियातिगच्छन्पिपीलिक ।।३८।।
अगच्छन्वैनतेयोपिपदमेकंनगच्छति ।
क्वभूतलंक्वचखेचर्योस्थानंयत्प्राप्तवान्ध्रुव ।।३९।।
उत्तानपादनृपते पुत्रसद्भूमिगोचर. ।

तत्कथ्यतामहाभागौकार्यवान्येनपुत्रकौ ॥४०॥
सभूपालसुत.साधुर्येनाभृण्यत्वमेतवाम् ।
तेनाख्यातमिदंतातपूर्ववृत्त महात्मना ॥४१॥

वह कार्य साध्य हो या असाध्य, दृढतर उद्योगी पुरुष देवत्व अथवा इन्द्रत्व के पूज्य भाव को भी प्राप्त कर सकते हैं ॥ ३६ ॥ दृढ पुरुष ही मनोवाञ्छित पा सकते हैं स्वर्ग से भी अविज्ञात, अगम्य और अवाप्य कोई वस्तु नहीं है ॥ ३७ ॥ मन, आत्मा और इन्द्रिय को वश में करने वाले पुरुष मनोरथ को प्राप्त कर लेते हैं। देखो चींटी कितनी छोटी होती है, किन्तु अधिक उद्योग वाली होने के कारण चलते-चलते सहस्र योजन तक जा सकती है ॥ ३८ ॥ पक्षिराज गरुड उद्योग न कर के एक पग भी नहीं जा सकते, जो उद्योग नहीं करते उनके लिए कुछ भी शक्य नहीं, उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव पृथ्वी में होकर ही अत्यंत दुर्लभ स्थान को प्राप्त हो गये, कहाँ वह ध्रुव का स्थान और कहाँ वह पृथ्वी ? इसलिए जिन प्रकार उस राजपुत्र का कार्य हो सके, वह बताओ ॥ ३९-४० ॥ तथा तुम भी मित्र-ऋण से बच सको। पुत्र बोले—हे तात ! उन महात्मा राजपुत्र ने इस प्रकार बताया था ॥ ४१ ॥

कौमारकेयथावृत्तस्यवृत्त सद्वृत्तशालिन ।
तस्यशत्रुजितंतातपूर्वकश्चिद्द्विजोत्तम ॥४२॥
गालवोभ्यागमद्धीमान्मृहीत्वातुरगोत्तमम् ।
प्रत्युवाचचराजानसमुपेत्याश्रमंमम ॥४३॥
कोपिदैत्याश्रमोराजन्विध्वंसयतिपापकृत् ।
तत्तद्रूपसमास्थायसिंहोभवनचारिणाम् ॥४४॥
अन्येषांचातिकायानामहर्निशमकारणात् ।
समाधिध्यानयुक्तस्यमौनव्रतरतस्यच ॥४५॥
तथाकरोतिविघ्नानियथानेच्छामिपार्थिव ।
दग्धु कोपाग्निनासद्य समर्थस्तिवयनतु ॥४६॥
दु.खार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव ।
एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥४७॥
तत्क्लेशितेननि श्वासोनिरीक्ष्यांबरमुज्झित. ।

ततोऽवरतलात्सद्य पतितोऽतुरगम ॥४८॥

उस राजपुत्र की कुमारावस्था में जो हुआ; सो सुनो, शत्रुजित् नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ॥ ४२ ॥ एक समय गालव नामक द्विजवर ने सुन्दर अश्व लेकर आश्रम में आकर राजा से कहा ॥४३॥ कोई पाप कर्मवाला दैत्याश्रम मेरे आश्रम में आकर विघ्न करता है, वह सिंह, गज अथवा अन्य जन्तु के रूप में आकर मेरे समाधि मग्न होने या मौन व्रत रखने पर मेरा मन विचलित कर देता है, हे राजन् ! मैं स्वयं ही उसे अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर सकता हूँ ॥ ४४-४५ ॥ परन्तु, मैं ऐसा करके अपनी अधिक दिनों में दुःख पूर्वक संचित तपस्या को क्षीण नहीं करना चाहता हूँ हे राजन् ! एक दिन मैंने अत्यंत दुःखित हृदय से ॥ ४७ ॥ क्लेश युक्त होकर आकाश की ओर अपना दीर्घश्वास छोड़ा, जिससे यह अश्व उसी समय आकाश से आ गिरा ॥ ४८ ॥

वाक्चाशरीरिणीग्राहनरनाथशृणुष्वतत् ।
अश्वात सकलभूमेर्वलयतुरगोत्तम ॥४९॥
समर्थं कर्तुमर्कण्तवायप्रतिपादित ।
पातालावरतोयेषुनास्यप्रतिहतागति ॥५०॥
समस्तदिक्षुव्रजतोनसग पर्वतेषुच ।
यतोभूलयसर्वमथातोयंचरिष्यति ॥५१॥
तत कुवलोनाम्नाख्यातिलोकेषुयास्यति ।
क्लिश्नात्यहर्निशपापोयश्चत्वादानवाश्रम ॥५२॥
तमप्येनसमारुह्यद्विजश्रेष्ठहनिष्यति ।
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रश्चतध्वज ॥५३॥
प्राप्यैतदश्वरत्नचख्यातिमेतेनयास्यति ।
सोहत्वामनुसप्राप्तस्तपसोविघ्नकारिणम् ॥५४॥
तनिवारयभूपालभागभाड् नृपतिर्यत ।
तदेवदश्वरत्नतेमयाभूपनिवेदितम् ॥५५॥
पुत्रमाज्ञापयतथायथाधर्मोनलुप्यते ।
सतस्यवचनाद्राजातवैपुत्रमृतध्वजम् ॥५६॥
तदश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुकमगलम् ।

अप्रैषयत्तथेत्यागालवेनसमतदा ॥५७॥
स्वमाश्रमपदसोपितमादाययमौमुनि ॥५८॥

उस समय जो आकाशवाणी हुई उसे सुनो—हे द्विजवर ! तुम्हें जो अश्व प्राप्त हुआ है,वह बिना कहीं रुके, सूर्य के समान सर्वत्र गमन करने में समर्थ है, पाताल, आकाश अथवा जल, कहीं भी इसकी गति का अवरोध नहीं होता ॥ ४९—५० ॥ यह सब दिशाओं और पर्वतों तथा पृथ्वीतल सर्वत्र बिना रुके गमन कर सकता है, इसलिए यह तीनों लोकों में 'कुवलय' नाम से प्रसिद्ध होगा और जो दानबाधन तुम्हारे लिए दिन-रात्रि क्लेश उपस्थित करता है ॥ ५१-५२ ॥ उसे इस अश्व पर चढ़ कर शत्रुजित् राजा के पुत्र ऋतुध्वज मारेंगे ॥ ५३ ॥ तथा इस अश्वरत्न द्वारा अत्यन्त ख्याति को प्राप्त होंगे, इसीलिए मैं यहाँ आया हूँ, अब आप भी उग्र तप में विघ्न उपस्थित करने वाले को ॥ ५४ ॥ निवारण करें और मेरे द्वारा प्रदत्त इस अश्वरत्न को लेकर ॥ ५५ ॥ अपने पुत्र को ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे धर्म लुप्त न हो पावे, उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतुध्वज को ॥ ५६ ॥ मंगलाचार आदि करा कर उस अश्व पर चढ़ाया और कालव मुनि के साथ भेज दिया ॥ ५७ ॥ जिन्हें साथ लेकर मुनि भी अपने आश्रम की ओर चल दिये ॥ ५८ ॥

१९—मदालसा उपाख्यान (१)

गालवेनसमंगत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ।
कृततत्कन्यतापुत्रौविचित्रायुधयोधिना ॥१॥
सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनंदन ।
सर्वविघ्नोपशमनंचकारब्रह्मवादिनाम् ॥२॥
वीर कुवलयाश्व त्वंसतगालवाश्रमे ।
मदालेपोपपतोनाजानाद्दानवाश्रम ॥३॥
ततस्तगालवंविप्रसध्योपासनतत्परम् ।
सौकररूपमास्थायप्रधर्षयितुमागमत् ॥४॥
मुनिशिष्यैरथोत्कृष्टे शीघ्रमारुह्यतंहयम् ।

अन्वधावद्वराहंतनृपपुत्र.शरासनी ॥५॥
आजघानचबाणेनचन्द्रार्धाकारवर्चसा ।
आकृष्यबलवच्चापचारुचित्रोपशोभितम् ॥६॥
नाराचाभिहत शीघ्रमात्मत्राणपरोमृग ।
गिरिंपादपसबाधासोत्यक्रामन्महाटवीम् ॥७॥

पिता ने कहा—गालव मुनि के साथ जाकर राजकुमार ने क्या किया था, वह मुझे बताओ, यह वर्णन अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ पुत्र बोले—राजपुत्र ऋतुध्वज ने गालव मुनि के आश्रम में निवास करके ब्रह्मवादी मुनियों के सभी विघ्न नष्ट कर दिये थे ॥ २ ॥ गालव मुनि के आश्रम मे निवास करने वाले वीर कुवलयाश्व के रहने की बात को नहीं जान सका ॥ ३ ॥ इसलिए वह शूकर का रूप धारण करके सध्योपासन मे लीन गालव मुनि के शरीर से अपना शरीर रगडने लगे ॥ ४ ॥ उस समय मुनिशिष्यो ने उच्च स्वर से चीत्कार किया, तब उस अश्व पर चढकर राजपुत्र भी उस शूकर को लक्ष्य करते हुए दौडे ॥ ५ ॥ और सुन्दर धनुष को खीच कर अर्धचन्द्राकार बाण से उस पर प्रहार किया ॥ ६ ॥ उस बाण से आहत हुआ दैत्य आत्म रक्षार्थ पर्वत और महावन मे घूमने लगा ॥ ७ ॥

तमन्वधावद्वेगेनतुरगोसौमनोजव ।
चोदितोराजापुत्रेणपितुरादेशकारिणा ॥८॥
अतिक्रम्याथवेगेनयोजनानिसहस्रश ।
धरण्याविवृतेरंध्रंनिपपातलघुक्रम ॥९॥
तस्यानतरमेवाथसचाश्वीनृपते सुत ।
निपपातमहागर्तेतिमिरौघसमावृते ॥१०॥
ततोनादृश्यतमृग सतस्मिन्राजसूनुना ।
प्रकाशचसपातालमपश्यत्तत्रचाचिषा ॥११॥
ततोपश्यत्ससौवर्णप्रासादशतसकुलम् ।
पुरदरपुरप्रख्यपुरप्राकारशोभितम् ॥12॥
तत्प्रविश्यसनापश्यत्तत्रकचिन्नरपुरे ।
भ्रमताचततोदृष्टातत्रयोषित्स्वरान्विता ॥13॥

सापृष्टातेनतन्वंगीप्रस्थितावेत्तिकस्यवा ।
नोवाचकिंचित्प्रासादमारुरोहचभामिनी ॥१४॥
सोप्यश्वमेकतोबद्धानामैवानुननारवं ।
विस्मयोत्फुल्लनयनोनि शकोनृपते सुत ॥१५॥

वह वेगवान् अश्व भी राजकुमार की प्रेरणा से उसका पीछा करने लगा ॥ ८ ॥ फिर वह हजार योजन लाँघ कर पृथिवी के गर्भ में स्थित एक विशाल गर्त्त में गिर पड़ा ॥ ९ ॥ उस का पीछा करते हुए अश्वारोही राजकुमार भी उस घोर अंधकार पूर्ण गर्त में जा गिरे ॥ १० ॥ उस समय राजपुत्र को वह थूककर दिखाई न दिया और जब वह प्रकाशमय पातालमें प्रविष्ट हुए तब भी उन्हें वह दैत्य दिखाई न पड़ा ॥ ११ ॥ उस समय वहाँ उन्होंने सैकड़ों स्वर्णिम भवनों से युक्त परकोटे वाले, अमरावती के समान अत्यन्त शोभायमान एक नगरी देखी ॥ १२ ॥ उसमें प्रविष्ट होने पर उन्हें वहाँ एक भी मनुष्य दिखाई न दिया, परन्तु शीघ्रता पूर्वक इधर उधर घूमती हुई एक स्त्री को उन्होंने देखा ॥ १३ ॥ राजकुमार ने उससे पूछा—तुम किसकी भेजी हुई, किसके पास जा रही हो ? परन्तु, उस स्त्री ने कुछ उत्तर न दिया और वह वेग पूर्वक एक भवन पर चढ़ गई, राजकुमार ने भी अश्व को एक स्थान पर बाँध दिया और उस स्त्री का पीछा करने के लिए उसी भवन पर चढ़ गये ॥ १४-१५ ॥

ततोपश्यत्सुविस्तीर्णेपर्यंकेसर्वकाचने ।
निषण्णाकन्यकामेकांकामयुक्तारतिंयथा ॥१६॥
विस्पष्टेदुमुखीमुग्धां पीनश्रोणीपयोधराम् ।
बिंबाधरोष्ठीतन्वंगीनीलोत्पलविलोचनाम् ॥१७॥
रक्तांगुलनखाश्यामामृदुताम्रकराङ्घ्रिकाम् ।
करभोरु सुदशनानीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥१८॥
तांदृष्ट्वाचारुसर्वांगीमनंगागलतामिव ।
सोमन्यत्पार्थिवसुतस्तारसातलदेवताम् ॥१९॥
साचदृष्ट्वैवतंबालानीलकुंचितमूर्धजम् ।
पीनोरस्कंधबाहुतममस्तमदनशुभा ॥२०॥

उत्तस्थौचशुभाचाराचित्तक्षोभमवापसा ।
लज्जाविस्मयदैन्यानासद्यस्तन्वीवशंगता ॥२१॥
कोयदेवोथयक्षोनुगधर्वोवोरगोपिवा ।
विद्याधरोवासप्राप्त कृतपुण्यापतिर्नर ॥२२॥

वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि रति के समान साक्षात् चन्द्रमुखी परम सुन्दरी एक नारी स्वर्ण-निर्मित एक पर्यंक पर लेट रही है, वह कृशाङ्गी नीलपद्म के समान नयन वाली है ॥ १६-१७ ॥ उसके नख लाल रंग के कुछ ऊँचे, देह कोमल, नवीनावस्था, हाथ-पाओं के तलुए लाल रङ्ग के, दोनों ऊरु गज-शुण्ड के समान, सुन्दर कान्तावलि और अलके नीलवर्ण की थी ॥ १८ ॥ कामलता के समान उस सर्वांग सुन्दरी रमणी को देखकर राजपुत्र ने उसे पाताल की अधिष्ठात्री समझा ॥ १९ ॥ उस रमणी ने भी घुंघराले केश, विशाल वक्ष स्थल, पुष्ट स्कंध, और लम्बे बाहु वाले राजकुमार को देख कर सोचा कि यह रतिपति अनंग है ॥ २० ॥ तब वह अत्यन्त भाग्य शालिनी रमणी महान् क्षुभित होकर उठी और लज्जा, विस्मय तथा दीनता के वश में होकर ॥ २१ ॥ विचार करने लगी कि यह देवता, यक्ष, गंधर्व, नाग, विद्याधर अथवा कोई पुण्यवान् मनुष्य है, जो यहाँ आया है ॥ २२ ॥

एवविचित्यवहुधानि श्चस्यचमहीतले ।
उपविश्यतदाभेजेसामूर्छामिदिरेक्षणा ॥२३॥
सोपिकामशराघातमवाप्यनृपते सुत ।
तासमाश्वासयामासनभेतव्यमितिब्रुवन् ॥२४॥
साचस्त्रीयातदादृष्टापूर्वतेनमहात्मना ।
तालवृंतमुपादायपर्यवीजयदाकुला ॥२५॥
समाश्वस्तातदापृष्टातेनसामोहकारणम् ।
किंचिल्लज्जान्विताबालातस्यैसख्यैन्यवेदयत् ॥२६॥
साचास्मैकथयामासनृपपुत्रायविस्तरात् ।
मोहस्यकारणसर्वतद्दर्शनमुद्भवम् ॥२७॥
यथातयासाख्यातंतद्वृत्तान्तंचभामिनी ।
विश्वावसुरितिख्यातोदिविगंधर्वराट्प्रभो ॥२८॥

वह लालनेत्र वाली रमणी विभिन्न प्रकार से विचार करती हुई दीर्घ श्वास छोड़ कर मूर्च्छित हो गई ॥ २३ ॥ यह देख कर राजकुमार भी 'भय न करो' कहते हुए उसे समझाने लगे ॥ २४ ॥ जो स्त्री राजपुत्र ने प्रथम देखी थी, वह ताड़ का पंखा हाथ में लेकर उस रमणी की हवा करने लगी ॥ २५ ॥ फिर राजपुत्र ने उसकी मूर्च्छा का कारण पूछा तो उस लज्जावती ने उसे कुछ न बता कर अपनी सखी से सब बात कही ॥ २६ ॥ राजपुत्र द्वारा पूछे जाने पर उस सखी ने उनके देखने से मूर्च्छित होने का तथा उस रमणी का विस्तार सहित वृत्तान्त कहा ॥ २७ ॥ उसने जो कहा था सो सुनिये सखी बोली— एक विश्वावसु नामक विद्याधर गन्धराज स्वर्ग में रहते हैं ॥ २८ ॥

तस्येयमात्मजानुन्नमिनाम्यानामदालसा ।
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रदानवोऽपि विदारणः ॥२९॥
पातालकेतुर्विख्यातः पातालानन्तरस्थयः ।
तेनेयमुद्यानगताकृत्वासायातमोमयीम् ॥३०॥
अपहृत्यसमानीताबालेवदुष्टबुद्धिना ।
आगामिन्याऽथोदम्यासुश्येनेकिलासुरः ॥३१॥
सतुनार्हतिचार्वंगीमूढ़ेवेदक्षनियथा ।
अतीतेचदिनेबालाचात्मव्यापादनोद्यतम् ॥३२॥
सुरभिः प्राहनायत्वाप्राप्स्यतेदानवोऽक्षम ।
मर्त्यलोकमनुप्राप्तंयस्तेनैत्यंवधंशरैः ॥३३॥
सतेभर्तामहाभागेत्वचिरेणभविष्यति ।
अहंत्वस्या सखीनास्माकुलेनिमनस्विनी ॥३४॥

यह मदालसा नाम वाली उन्हीं की कन्या है, एक दिन यह उद्यान में क्रीड़ा रत थी, तभी वज्रकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु अपनी तामसी माया के द्वारा ॥ २९-३० ॥ इसे हरण कर लाया और आगामी नवोदशी को इसके साथ विवाह करेगा ॥ ३१ ॥ परन्तु वह इस सौंदर्यमयी के लिए योग्य पात्र नहीं है, यह कल जिस समय आत्मघात हेतु तत्पर हुई थी ॥ ३२ ॥ तभी सुरभि ने कहा कि वह दानव तुम्हें नहीं पा सकेगा, जो पुरुष मर्त्य लोक से आकर बाणों से इसे मारेगा ॥ ३३ ॥ वही तुम्हारा स्वामी होगा, मैं इसकी

कुण्डला नाम की सखी है ॥ ३४ ॥

सुतां विध्यबल मत्वीवीरपुष्करमालिन ।
हतेभर्त्रि मृत्युं नाम्नी धर्मिष्ठामनुव्रता ॥३५॥
तीर्थादितीर्थयात्रान्दापरलोकार्थमुद्यता ।
पातालकेतुर्दैत्यात्मा शूकरत्वमुपस्थित ॥३६॥
केनापि विद्धो बाणेन मुनीनां रक्षणे रणे ।
तथाहमत्रकेनापि दृष्टा विद्धेन मोहिता ॥३७॥
परपुंसैवकेनापि विद्धेनेदोदृशात्मना तु ।
कथमस्यकृतेनाथ मोहस्तत्कारणं शृणु ॥३८॥
त्वद्विधो हि पुमांस्तावत् दर्शनादेव मानद ।
देवपुत्रोपमेचारुरूपाढ्यो हि मनोहर ॥३९॥
भार्यां चान्यां हि विनायेन विद्धं सदानव ।
एतस्मात्कारणान्नोहमहमस्मिन्यमागता ॥४०॥
यावज्जीवितमस्यैवं शूकरीत्वं भविष्यति ।
त्वय्यस्यां हृदयं नित्यं भविष्यति ॥४१॥
यावज्जीवितमेतु स्वनुरक्तामन्यथावच ।
अहमस्यां प्रतीतिं स्यात्तु ह्यतोऽत्रसमागता ॥४२॥

मैं विदूरथ की सनन्दिनी पुत्री तथा वीर पुष्करमाली की भार्या हूँ, मेरे पति की मृत्यु शम्बु के द्वारा हुई थी, अब मैं तीर्थ-तीर्थ में दिव्यगति से यात्रा करती हूँ, उस दुष्टात्मा पातालकेतु ने आज शूकर का रूप धारण किया था ॥ ३५-३६ ॥ उसे किसी पुरुष ने मुनियों के रक्षणार्थ बाण से बींधा है, यह सत्य है या नहीं, इसकी खोज में यहाँ आई थी ॥ ३७ ॥ यहाँ आकर देखा कि उस अधम को किसी ने अवश्य ही मारा है, अब इसकी मूर्च्छा का भी कारण सुनो ॥ ३८ ॥ आपको देखते ही यह आपके प्रति अत्यन्त प्रीतिमती हुई है, क्योंकि आप देव पुत्र के समान मनोहर और वाणी से गुणज्ञ है ॥ ३९ ॥ परन्तु, इस दानव को किस पुरुष ने बींधा है, यह उसके अतिरिक्त अन्य किसी की पत्नी नहीं बन सकती इसीलिए यह अत्यन्त मोहित हुई है ॥ ४० ॥ क्योंकि यह आपके प्रति अनुरक्त हुई है और अन्य पुरुष इसका पति होगा, इस लिए

इनें जीवन पर्यन्त दुःख ही भोगना होगा ॥ ४४ ॥ इनकी पुत्री की वचनें कभी मिथ्या नहीं होगा, इसलिए जीवन पर्यन्त दुःख ..... न दुःखित चित्त से इसके स्वीकरण ही यहाँ आई हूँ ॥ ४५ ॥

यशोविशेषोनैवास्तिस्वयंवरेनिजदेहजो ।
यद्येषाभिमतवीरप्राप्तिमाप्नोतिशोभना ॥४३॥
ततस्त्वहंतप कुर्यांनिर्व्यलीकेनचेतसा ।
त्वंतुकोवाविमार्थंवासप्राप्तोऽसिब्रूहिमे ॥४४॥
देवोदैत्योनुगंधर्व पन्नग किंनरोपिवा ।
नह्यत्रमानुषगतिर्नेदृङ्मानुषिभवेत् ॥४५॥
तत्त्वमाख्याहिकोसित्वंयथैवाविनयस्त्वया ।
यन्मापृच्छसिधर्मज्ञे कस्त्वंकिमर्थमागतः ॥४६॥
तच्छृणुष्वानलप्रज्ञे कथयाम्याद्यसत्तम ।
राज्ञ शत्रुजितः पुत्रः पितृसप्रेषितः शुने ॥४७॥
मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रममागतः ।
कुर्वतोममरक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम् ॥४८॥
विघ्नार्थंमागतं कोपिशीकरंवपुरास्थितः ।
मयासविद्धोबाणेनचंद्रार्द्धाकारसंज्ञया ॥४९॥

क्योंकि मैं इसके और अपने देह से पृथक्त्व करी मानती यदि इसे अपनी इच्छानुसार पति मिल जाय ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ मन से तप करूँ । हे महासते ! तुम कौन हो ? यहाँ क्यों आये हो ? ॥ ४४ ॥ क्या तुम देवता, दैत्य, गंधर्व, नाग वा उरग हो ? क्योंकि मनुष्य का ही शरीर ही ऐसा नहीं होता, जिसने वह यहाँ आ सके ॥ ४५ ॥ इसलिए जैसे मैंने अपना राज वृत्तान्त सुनाया है वैसे ही तुम भी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त हमें सत्य सुनाओ । कुवलयाश्व बोले—तुमने पूछा है कि तुम कौन हो और वह क्यों आये हो ? ॥ ४६ ॥ वह सब मैं तुम्हें बताता हूँ, सुनो ! ये राजा शत्रुजित् का पुत्र है और अपने पिता की प्रेरणा से ॥ ४७ ॥ मुनियों के रक्षणार्थ गालव मुनि के आश्रम में रह कर मुनियों की रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समय एक शूकर उनके कर्म में विघ्न उपस्थित करने को वहाँ आया और मैंने उसे अर्धचन्द्र बाण से

बाँध दिया ॥ ४६ ॥

अपक्रान्तोऽविवेगेऽतसम्प्रनुगतोहयी ।
पपातसहसागर्त्तं तत्रको ऽश्वश्रमार्दितः ॥५०॥
सोऽहमश्व समारुह्यतत्रस्थेऽद्रि प्रभासत् ।
प्रकाशमानादित्यत्वात्तत्रनक्तंमया ॥५१॥
पृष्टाचनत्वमेकस्मिद्भुवस्यादत्तमुत्तरम् ।
त्वाञ्चैवानुप्रविष्टोऽस्मिन्नाभावादमुनामभूः ॥५२॥
इत्येतत्कथितमत्रभवद्भिर्वोऽद्यवदानत्र ।
यक्षोनागर्ऽ र्वः किन्नरोवा चिन्तिते ॥५३॥
समस्ता पूज्यपक्षावेदवाद्यमभवः इव ।
मनुष्योस्मिविद्धातेनत्र ।कोऽहंचित् ॥५४॥
ततः प्रहृष्टासाकन्यासभ्यंस्तमुत्तमम् ।
लज्जाजडंवीक्षमाणाकिंचिन्नोचभामिनी ॥५५॥
तत्सखीपुनरप्यनाप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ।
यथावत्कथितंतेनसुरभ्यावचनानुगम् ॥५६॥

तब वह अत्यन्त वेग से दौड़ा और सैन भी अश्वारोहण पूर्वक उसका पीछा किया, फिर वह एक विशाल गर्त्त में गिरा और मैं भी उसका पीछा करता हुआ अपने अश्व सहित उसमें गिर गया, परन्तु अपने अश्व पर चढ़ा हुआ चलता रहा और इस प्रकाशमय स्थान में आकर तुम्हें देखा ॥ ५०-५१ ॥ तुमसे पूछने पर तुमने कोई उत्तर नहीं दिया, तब मैं तुम्हारे पीछे-पीछे इस भवन में चला आया ॥ ५२ ॥ यह सब सत्य ही कहा है, मैं देव, दानव यक्षगण, गन्धर्व अथवा किन्नर में से कोई भी नहीं हूँ ॥ ५३ ॥ मैं मनुष्य हूँ देवता इत्यादि तो सभी मेरे पूज्य हैं, तुम मेरे मनुष्य होने में किसी प्रकार का सन्देह मत करो ॥५४॥ पुत्रों ने कहा-हाँ पिता, तब वह कन्या मदालसा अत्यन्त हर्षित होकर लज्जा से मौन हुई सखी की ओर देखने लगी ॥५५॥ तब सखी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मदालसा से कहा—हे सखि ! तू तुरभि के वचन में तत्पर है, इन्होंने यथार्थ वृत्तान्त कहा है, फिर वह राजकुमार से बोली ॥ ५६ ॥

वीरसत्यमसदिग्धंभवताभिहितंवचः ।
नान्यत्रहृदयह्यस्याद्दृष्ट्वास्थैर्यंप्रयास्यति ॥५७॥
चन्द्रमेवधिकाकांति समुपैतिरविप्रभा ।
भूतिर्धैर्य्यंश्रुतिर्धीरंक्षांतिरभ्येतिचोत्तमम् ॥५८॥
त्वयैवविद्धोऽसदिग्धंसपापोदानवाश्रम ।
सुरभि सागवामाताकथमिथ्यावदिष्यति ॥५९॥
तद्धन्येयंनभाग्याच्चत्वत्सम्बन्धमवेत्यवै ।
कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् ॥६०॥
परवानहमित्याहराजपुत्र सदापितुः ।
सचापितत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीतसमित्कुशः ।
मदालसायाः सप्रीत्याकुडंगागौरवेणत्र ॥६२॥
प्रज्वाल्यपावकंहुत्वासत्रवित्कृतमंगलाम् ।
वैवाहिकेविधौकन्याप्रतिपाद्यायथागतम् ॥६३॥

कुण्डला ने कहा—हे वीर ! आपने जो कुछ कहा है वह सत्य न होता तो यह आपके दर्शन मात्र से ही अपने हृदय में स्थिरता को क्यों प्राप्त होती ? ॥ ५७ ॥ क्योंकि चन्द्रमा को ही अधिक कान्ति और सूर्य को ही अधिक प्रभा प्राप्त है, ऐश्वर्य पुरुष को धन्य करता है, धृति धीर को और शान्ति श्रेष्ठ पुरुष को ही प्राप्त होती है ॥ ५८ ॥ इसलिए आपने ही इस दानवाश्रम को सिद्ध किया है, इसमें सदेह नहीं, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं बोल सकती ॥ ५९ ॥ इसलिए आपके साथ सम्बन्ध प्राप्त करके यह सखी सौभाग्यवती और धन्य हुई है, अब आप विधिवत् कर्त्तव्य का अनुष्ठान करिये ॥ ६० ॥ पुत्रों ने कहा—हे पिता ! राजपुत्र उससे बोले—मैं पराधीन हूँ, पिता की आज्ञा के बिना इस बाला से विवाह कैसे कर सकता हूँ ! इस पर कुण्डला ने कहा है, यह देवकन्या है, आप इसके साथ विवाह कीजिये, तब राजपुत्र ने स्वीकृति दी और विवाह के लिए तत्पर हुए, उस समय मदालसा ने अपने कुल गुरु तुम्बरु का स्मरण किया ॥ ६१ ॥ तभी तुम्बरु समिध और कुश लेकर वहाँ आगए ॥ ६२ ॥ और घृताहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित करके विधि पूर्वक मदालसा और राजपुत्र का विवाह सम्पन्न कराया और फिर अपने

स्थान को चले गये ॥ ६३ ॥

जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंततः ।
साचाहतासखीबालाकृतार्थास्मिवरानने ॥६४॥
सयुक्तामनुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ।
तपस्तप्स्येहमतुलंनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥६५॥
तीर्थाबुद्धौतपापाचभवित्रीनेदृशीयथा ।
तचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयोपनतंवचः ॥६६॥
गंतुकामातिजनस्त्रीस्नेहविक्लवभाषिणी ।
पुंभिरप्यमितप्रज्ञैनोपदेशोनदृष्टिभिः ॥६७॥
दातव्य किमुतस्त्रीभिरतोनोपदिशामितं ।
किंत्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥६८॥
त्वयाविश्वासितात्वास्मिस्मारयाम्यरिसूदन ।
भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥६९॥
धर्मार्थकामसंसिद्धयै भार्याभर्त्तुः सहायिनी ।
याचभार्याचभर्त्ताचपरस्परमनुव्रतौ ॥७०॥

वह अपने आश्रम में तप करने के लिए जब चले गये तब कुण्डला ने मदालसा से कहा—कि अब मैं कृतार्थ हो गई ॥ ६४ ॥ हे रूपवती ! तुझे इनके साथ मिली देखकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, अब मैं निर्विकार मन से तपस्या करूँगी ॥ ६५ ॥ अब मुझे फिर इस प्रकार न रहना पड़े, इसलिए तीर्थ जल से स्नान कर पाप-रहित होऊँगी, फिर इसने राजकुमार से नम्रता पूर्वक कहा ॥ ६६ ॥ इच्छित स्थान में जाने को तत्पर अपनी सखी के स्नेह से व्याकुल कुण्डला ने कहा—हे अत्यन्त बुद्धिमान् ! आपके समान पुरुष को ज्ञानी पुरुष भी उपदेश देने में समर्थ नहीं हैं ॥ ६७ ॥ मैं तो स्त्री हूँ, आपको उपदेश नहीं देती, फिर भी मेरा मन अपनी सखी के स्नेह में आकर्षित है ॥ ६८ ॥ हे शत्रुनाशक ! आप पर विश्वास करती हुई मैं आपको याद दिलाती हूँ कि पति को पत्नी की सदैव रक्षा करनी चाहिये ॥ ६९ ॥ पत्नी भी पति की सहायिका होती है और धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि के लिए दोनों ही परस्पर वशीभूत रहते हैं ॥ ७० ॥

तदाधर्मार्थकामानात्रयाणामपिसंगतम् ।
कथंभार्यामृतेधर्ममर्थंवापुरुष प्रभो ॥७१॥
प्राप्नोतिकामंमर्थंवातस्यात्रितयमाहितम् ।
तथैवभर्तारमृतेभार्याधर्मादिसाधने ॥७२॥
नसमर्थास्त्रिवर्गोयंदापत्यसमुपाश्रिता ।
देवतापितृभृत्यानामतिथीनाचपूजनम् ॥७३॥
नपुंसि शक्यतेकर्तुमृतेभार्यानृपात्मज ।
प्राप्तोपिचार्थोमनुजैरानीतोपिनिजगृहम् ॥७४॥
क्षयमेतिविनाभार्याकुभार्यासंग्रहेपिवा ।
कामस्तुतस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥७५॥
दंपत्यो सहधर्मेणत्रयोधर्ममवाप्नुयात् ।
पुत्राणायोनिरन्यावैनान्यतोभार्यंयाविना ।
पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ॥७६॥
पूजाभिरमरास्तद्वत्साध्वीभार्यानरोवति ।
स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्रार्धर्मकामार्थसंतति ॥७७॥

तभी धर्म, अर्थ और काम का सिद्धि संभव है, यह तीनों धर्म पत्नी मे समाहित होने से, जैसे पत्नी के बिना कभी धर्म, अर्थ ॥ ७१ ॥ प्राप्त करने मे समर्थ नही होता वैसे ही धर्मादि के साधन मे पति के बिना पत्नी भी ॥ ७२ ॥ समर्थ नही होती, क्योंकि धर्म, अर्थ और काम पति-पत्नी दोनों के ही आश्रित है। हे राजकुमार ! देवता, पितर भृत्य और अतिथियो का सत्कार ॥ ७३ ॥ न हो तो धर्माचरण नही हो सकता तथा पुरुष द्वारा अनायास उपार्जित धन भी गृह मे लाने पर ॥ ७४ ॥ यदि पत्नी न हो अथवा कुभार्या हो तो वह सब नष्ट हो जाता है, पत्नी के बिना, न होने वाला यह कार्य तो प्रत्यक्ष ही है ॥ ७५ ॥ यदि स्त्री-पुरुष दोनों ही समान धर्म को पाले तभी, अर्थ, काम मे समर्थ होते है, साध्वी पत्नी को ग्रहण करके पुत्रोत्पादन द्वारा पितरो को तथा अन्नादि से अतिथियो को ॥ ७६ ॥ और पूजन द्वारा देवताओ को प्रसन्न करने मे समर्थ होते है, स्वामी के बिना नारी के भी धर्म और काम का भले प्रकार विस्तार नही हो सकता ॥ ७७ ॥

नैवतस्मात्त्रिवर्गोयदापत्यमधिगच्छति ।
एतन्मयोक्त युवयोर्गम्यतामियथेप्सितम् ॥७८॥
वर्धत्वमनयासार्द्धं धनपुत्रसुखायुषा ।
इत्युक्त्वासपरिष्वज्यस्वसखीतनमस्यच ॥७९॥
जगामदिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मन ।
सोपिशत्रुजित पुत्रस्तामारोप्यतुरगम् ॥८०॥
निर्गतुकाम पातालाद्विज्ञातोदनुसभवै ।
ततस्तै सहसोत्कुष्ट ह्रियतेह्रियतेत्विति ॥८१॥
कन्यारत्नयदानीत दिव पातालकेतुना ।
तत परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ॥८२॥
दानवानादलप्राप्तसहायातालकेतुना ।
निष्ठतिष्ठे तिजल्पतस्तेतदादानवोत्तमा ॥८३॥
शरवर्षैस्तथाशूलैर्वर्षु र्नृपनदनम् ।
सतुशत्रुजित पुत्रस्तत्तस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥

यह त्रिवर्ग दोनो मे ही आश्रित है, यही मेरा कहना है, अब मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मे अपने इच्छित स्थान मे चली जाऊ ॥ ७८ ॥ मेरा आशीर्वाद है कि आप इससे युक्त होकर धन, पुत्र, आयु और सुख मे वृद्धि को प्राप्त हो नागपुत्रो ने कहा-इस प्रकार कहती हुई कुण्डला अपनी सखी को आलिगन और राजकुमार को नमस्कार करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगति से अपने इच्छित स्थान को गई और ऋतुध्वज ने मदालसा को अश्व पर चढा कर ॥ ८० ॥ जैसे ही पाताल से निकलना चाहा, वैसे ही दानवो को उसका पता लग गया कि 'स्वर्ग से जिस कन्या को पाताल केतु लाया था, उसे हरण किये ले जा रहा है, यह कहते हुए दानव चीत्कार करने लगे और पातालकेतु के साथ मिल कर दानव सेना परिघ, खड्ग, गदा, शूल, बाण इत्यादि ॥ ८१-८२ ॥ आयुधो को ग्रहण कर ठहरो, ठहरो, कहते हुए ॥ ८३ ॥ राजकुमार पर शस्त्र-वर्षा करने लगे ॥ ८४ ॥

चिच्छेदशरजालेनप्रहसन्निवलीलया ।
क्षणेनपातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकै ॥८५॥

छित्त्वा सञ्छस्त्रमत्यर्थमृतुध्वजशरोत्करैः ।
ततोऽस्त्रं त्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥८६॥
तेनतेदानवा सर्वेसहपातालकेतुना ।
ज्वालामालातितीव्रेणास्फुटदस्थिचयास्तदा ॥८७॥
निर्दग्धा कापिलतेज समासाद्य वसागरा ।
तत सराजपुत्रोऽथोनिहत्यासुरसत्तमान् ॥८८॥
स्त्रीरत्नेनसमलेनसमारुह्यत्वरितपुरम् ।
प्रणिपत्यचतन्सर्वसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥८९॥
पातालगमनञ्चैवकुडलायाश्चदर्शनम् ।
तद्वन्मदालसाप्राप्तिदानवैश्चापिसगरम् ॥९०॥
वधश्चतेषामस्त्रेणपुनरागमनतथा ।
इतिश्रुत्वापितातस्यचरितञ्चात्मचेतस ॥९१॥
प्रीतिमानभवच्चैनपरिष्वज्याहचात्मजम् ।
सत्पुत्रेणत्वयापुत्रतारितोहमहात्मना ॥९२॥

तब शत्रुजित् के अत्यन्त बली पुत्र ने अपने बाणो से उनके सब अस्त्र बात की बात मे काट डाले और उसके बाणो से कट-कट कर गिरे अस्त्रास्त्रो से पातालतल ॥ ८५ ॥ भर गया, तब राजकुमार ने बडे-बडे बाण चलाये और फिर त्वाष्ट्र अस्त्र लेकर दानवो पर छोडा ॥ ८६ ॥ उन ज्वाला-माला वाले भयकर अस्त्र ने सभी दानवो के सहित पातालकेतु की हड्डियाँ तोड डाली ॥ ८७ ॥ और वह तुरन्त ही, जैसे कपिल मुनि के तेज से सगरपुत्र भस्म हुए थे, उसी प्रकार भस्म हो गये, इस प्रकार दैत्य कुल का नाश करके वह राजकुमार स्त्री के सहित अश्व पर चढ कर अपने नगर मे आये और अपने पिता को प्रणाम पूर्वक सम्पूर्ण वार्त्ता सुनायी ॥ ८८-८९ ॥ पाताल मे जाना, कुण्डला का देखना, मदालसा का प्राप्त होना, दैत्यो के साथ युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्र से उनका सहार और पुन वापिस लौटना आदि सब वृत्तान्त कहा, जिसे सुन कर वह सुन्दर चित्त वाले राजा ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्र को आलिगन पूर्वक बोले कि हे सत्पुत्र ! तूने मुझे तार दिया ॥ ९२ ॥

भवेभ्योमुनयस्त्रातावेनसद्धर्मचारिणा ।
मत्पूर्वं ख्यातिमानीतनयाविस्तारितपुन ॥९३॥
पराक्रमबलादीरत्वयातद्वहुलीकृतम् ।
यदुपात्तंयश पित्राधनवीर्यमथापिवा ॥९४॥
तत्रहाप्यतेयस्तुसनरोमध्यम स्मृत ।
तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तित ॥९५॥
निष्पादयतितंप्राज्ञावदंतिनरमुत्तमम् ।
य पित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ॥९६॥
न्यूनतानयतिप्राज्ञास्तमाहु पुरुषाधमम् ।
तन्मयाब्रह्मणत्राणकृतमासीद्यथात्वया ॥९७॥
पातालगमनंचक्रेयच्चासुरविनाशनम् ।
एतदभ्यधिकंकृत्सतेनत्वंपुरुषोत्तम ॥९८॥

जिनके द्वारा मुनियो की रक्षा हुई उसी सत्पात्र द्वारा मै भी तर गया, मेरे पूर्व पुरुष जिससे विख्यात हुए और मैने भी जिसका विस्तार किया ॥ ९३ ॥ वह यश तुम्हारे द्वारा और भी वृद्धि को प्राप्त हुआ, जो यश, बल अथवा धन पिता के द्वारा उपार्जित है ॥ ९४ ॥ उसको रक्षा करने वाला पुरुष मध्यम है परन्तु जो उसे अपनी शक्ति से बढाता है ॥ ९५ ॥ उसे पण्डित-जन उत्तम पुरुष कहते है । तथा जो पिता द्वारा उपार्जित यश, बल धन को ॥ ९६ ॥ नष्ट करता है, अधम कहा जाता है, पहिले मैंने तुम्हारे समान ब्राह्मणो का रक्षण मात्र किया था ॥ ९७ ॥ तुमने पाताल मे जाकर असुरो का नाश और ब्राह्मणो की रक्षा की, इस प्रकार मुझसे अधिक कार्य किया है, इसलिए तुम उत्तम पुरुष हो ॥ ९८ ॥

तद्धन्योस्म्यथवानस्त्वमहमेवगुणाधिक ।
त्वापुत्रमीदृशप्राप्यश्लाघ्यपुण्यवतामपि ॥९९॥
नसत्पुत्रकृताप्रीतिमन्य प्राप्नोतिमानव ।
पुत्रेणनातिशयितोय प्रज्ञादानविक्रमै ॥१००॥
विक्तस्यजन्मय पित्रालोकेविज्ञायतेनर ।
यत्पुत्रात्ख्यातिमभ्येतितस्यजन्मसुजन्मन ॥१०१॥

आत्मज्ञानीयतोधन्योमध्य पितृजितामहै ।
मातृपक्षेणमाल्लाचख्यातियातिनराधम ॥१०२॥
तत्पुत्रधनवीर्यस्त्वविवर्धस्वशुभेनच ।
गन्धर्वतनयाचेयमावियुज्यतुवैत्वया ॥१०३॥
इतिपित्राबहुविद्धप्रियमुक्त्वापुन पुन ।
परिष्वज्यस्वमावासमसार्थं सविसर्जित ॥१०४॥
सलयाभार्यया सार्द्धंरेमेनत्रपितु परे ।
अन्येपुत्रतथोद्यानवनपर्वतसानुषु ॥१०५॥
श्वश्रूश्वशुरयो पादाप्रणिपत्यचसाशुभा ।
प्रात प्रातस्तनस्तेनप्रणिपत्यसुमध्यमा ॥१०६॥

हे पुत्र ! तुम धन्य हो, तुम्हारे जैसे अधिक गुण वाले पुत्र को पाकर मैं पृथ्वीवासी मे अधिक श्लाघा के योग्य हुआ हूँ ॥ ९९ ॥ जो पुरुष पुत्र के द्वारा प्रज्ञा, दान अथवा पराक्रम मे वृद्धि को प्राप्त नहीं होता, उस पुत्र से उत्पन्न प्रीति का लाभ नहीं हो सकता ॥ १०० ॥ पिता के द्वारा जो ख्याति अर्जित करे, उनके जन्म को धिक्कार है, परन्तु पुत्र के द्वारा ख्याति का अर्जन करने वाला पुरुष श्रेष्ठ जन्म वाला होता है, ॥ १०१ ॥ अपने नाम से विख्यात होने वाला पुरुष धन्य है, मातृपक्ष से ख्याति पाने वाला पुरुष नराधम होता है ॥ १०२ ॥ हे पुत्र तुम धन, दल और सुख से सदा वृद्धि को प्राप्त होओ और इस गन्धर्व कुमारी से कभी तुम्हारा वियोग न हो ॥ १०३ ॥ पिता के ऐसे वचन सुन कर राजकुमार अपनी पत्नी सहित अपने निवास स्थान को गये ॥ १०४ ॥ तथा मदालसा के साथ भवन, उद्यान, वन, पर्वत आदि मे क्रीडा करने लगे ॥ १०५ ॥ तथा वह शुभमती मदालसा भी श्वसुर के चरणो की वदना करती हुई अपने पति के साथ रहने लगी ॥ १०६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे मदालसाख्याने एकोनत्रिंशोऽध्याय ।

२०—मदालसा उपाख्यान (२)

तत कालेबहुतिथेगतेराजापुत्र सुतम् ।
हिप्रगच्छाशुविप्राणात्राणायचरमेदिनीम् ॥१॥

अश्वमेतसमारुह्यप्रातः प्रातर्दिनेदिने ।
आबाधाद्विजमुख्यानामन्वेष्टव्यासदैवहि ॥२॥
दुर्वृत्ता सप्तिशतशोदानवा पापबुद्धय ।
तेभ्योनस्याद्यथाबाधामुनीनात्वंतथाकुरु ॥३॥
सतथोक्तस्तदापित्रातथाचक्रेनृपात्मज ।
परिक्रम्यमहीकृत्स्नांववदेचरणौपितु ॥४॥
अह्न्यनिसप्राप्तेपूर्वाह्णेनृपनंदन ।
ततश्चशेषदिवसंतयारेमेसुमध्यया ॥५॥
एकादासुचरन्सोथददर्शयमुनातटे ।
पातालकेतोरनुजंतालकेतुं कृताश्रमम् ॥६॥
मायावीदानवं सोथमुनिरूपसमाश्रित ।
सप्राहराजपुत्रं तंपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥७॥

नागपुत्रों ने कहा—कुछ काल व्यतीत होने पर राजा शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतुध्वज से कहा—हे पुत्र ! तुम ब्राह्मणों के रक्षणार्थ जाकर पृथिवी में विचरण करो ॥ १ ॥ प्रतिदिन प्रातःकाल इस घोड़े पर चढ़कर श्रेष्ठ विप्रों के विघ्नों को दूर करो ॥ २ ॥ सैकड़ों पापात्मा एवं दुष्कर्मी दानव मुनियों के कार्य में विघ्न उपस्थित न कर पावें, वही यत्न करो ॥ ३ ॥ इस प्रकार राजा की आज्ञा प्राप्त कर, वह नित्य प्रति पूर्वाह्ण काल में पृथिवी में भ्रमण करके पिता के चरणों की वन्दना करते और शेष दिन में पत्नी के सहित क्रीड़ा करते ॥ ४-५ ॥ एक समय इसी प्रकार भ्रमण करते में उन्होंने पातालकेतु के छोटे भाई तालकेतु को यमुनातट स्थित आश्रम में अवस्थान करते देखा ॥ ६ ॥ वह मुनि रूप धारण करके रहता था, पुरानी शत्रुता का स्मरण करके वह राजकुमार से बोला ॥ ७ ॥

राजपुत्रब्रवीमित्वांतत्कुरुष्वयदीच्छसि ।
नचतेप्रार्थनाभंगः कार्यः सत्यप्रतिश्रव ॥८॥
यज्ञेयज्ञेनयंधर्मायंकर्त्तव्याश्चमयेष्टय. ।
चिंतयेतत्कर्त्तव्यानास्तिमेदक्षिणायत ॥९॥
ततः प्रयच्छमेवीरदक्षिणार्थेस्वभूषणम् ।

यदेतत्कठलग्नं ते रक्षचेममथाश्रमम् ॥१०॥
यावदर्तज्वलेदेव वरुणायादसांपतिम् ।
वैदिकैर्वारुणैर्मंत्रै प्रजानापुष्टिहेतुकै ॥११॥
अभिष्टूयत्वरायुक्त ममाभ्येमीतिवादिनम् ।
तप्रणम्यतत प्रादात्सतस्मैकठभूषणम् ॥१२॥
प्राहचैनभवान्यातुर्लिब्यंलोकेनचेतसा ।
स्थास्यामितावदत्रैवतवाश्रमसमीपत ॥१३॥
तवादेशान्महाभागयावदागमनंतव ।
नतेत्रकश्चिदाबाधाकरिष्यतिमयिस्थिते ॥१४॥
विश्रब्धस्त्वमुनिश्रेष्ठव्रजस्वचमनोगतम् ।
गृहदुक्तस्ततस्तेनसममज्जनहीजले ॥१५॥

हे राजकुमार ! यदि तुम चाहो तो मैं जो कहता हूँ, वह करो, क्यों कि आपने कभी किसी की प्रार्थना को अमान्य नहीं किया है ॥ ८ ॥ हे राजकुमार ! मैं यज्ञ करूँगा तथा इष्टि और अग्नि का चयन करूँगा, परन्तु मैं दक्षिणा देने में असमर्थ हूँ ॥ ९ ॥ इसलिए, सुवर्ण दान के लिए अपना यह कंठा मुझे दो और आश्रम की रक्षा करो ॥ १० ॥ मैं वैदिक वारुण मंत्र के द्वारा वरुणदेव का जल में स्तवन करके जब तक यहाँ न लौट आऊँ तब तक तुम्हें इस आश्रम की रक्षा करनी है ॥ ११ ॥ मैं शीघ्र ही आऊँगा, ऐसा कहते हुए मुनि को प्रणाम करके राजकुमार ने अपना कंठा उतार कर उन्हें दे दिया ॥ १२ ॥ और बोला—हे महात्मन् ! आप विश्वस्त होकर जाइये, आपके आने तक मैं इसी आश्रम के निकट रहूँगा ॥ १३ ॥ आप जब तक नहीं लौटते तब तक आपकी आज्ञानुसार मैं यहीं रहूँगा, मेरे रहते हुए आपके कार्य में कोई विघ्न नहीं करेगा ॥ १४ ॥ हे मुनिवर ! आप शंकारहित मन से जाकर इच्छित कर्म सम्पादन कीजिये, राजपुत्र के यह वचन सुन कर वह मायामुनि तालकेतु नदी के जल में मग्न हो गया ॥ १५ ॥

अरक्षत्सोपितस्यैवमाश्रविहितमाश्रमम् ।
मत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्चतत्पुरम् ॥१६॥
मदालसायाः प्रत्यक्षमन्येषाचैतदुक्तवान् ।

वीर कुवलयाश्वोसौममाश्रममभीषत ॥१७॥
केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वतक्षाततपस्विनाम् ।
युध्यमानोयथाशक्तिनिघ्नन्ब्रह्मद्विषोयुधि ॥१८॥
मायामाश्रित्यपापेनशूलेनवक्षसि ।
म्रियमाणेननैवेदत्त मेकण्ठभूषणम् ॥१९॥
प्रापितश्चाग्निसंस्कारंतैरेवशूद्रतापसैः ।
कृतार्तहेपाशब्दोवैतस्त साश्रुविलोचन ॥२०॥
नीत सोश्वश्चतेनैवदानवेनदुरात्मना ।
एतन्मयानृशंसेनदृष्टदुष्कृतकारिणा ॥२१॥

उसके माया से निर्मित आश्रम की राजपुत्र रक्षा करने लगे, फिर जल से निकल कर तालकेतु राजा शत्रुजित् के नगर में जाकर ॥ १६ ॥ मदालसा आदि के समक्ष बोला कि वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रम के निकट ॥ १७ ॥ तपस्वियों की रक्षा कर रहे थे, तभी उन्हें किसी दुष्ट दानव से युद्ध करना पड़ा और उन्होंने ब्रह्मद्वेष्टा शक्ति का असुर पर प्रहार किया ॥ १८ ॥ परन्तु, उस दानव के माया रूपी शूल से हृदय विदीर्ण होने के कारण मृत्यु को प्राप्त हो गए, उन्होंने यह कंठा भूषण मरते समय मुझे दिया है ॥ १९ ॥ तथा वन में शूद्र तपस्वियों ने उनका अग्नि संस्कार किया है और अश्वपूर्ण दुःखित ॥ २० ॥ अश्व उसी दानव ने ले लिया, यह सम्पूर्ण घटना उस तृणम के द्वारा होती हुई देखी है ॥ २१ ॥

यदज्ञानतरकृत्यकुरुष्वोत्तरकालिकम् ।
हृदयाश्वासनचैतद्गृह्यतांकण्ठभूषणम् ॥२२॥
नास्माकंहिसुवर्णेनकृत्यमस्तितपस्विनाम् ।
इत्युक्त्वोत्सृज्यतद्भूमौसजगामयथागतम् ॥२३॥
निपतज्जनःसोथशोकार्त्तोमूर्च्छयातुरः ।
क्षणेनचेतनाप्राप्यसर्वास्तानृपयोषित ॥२४॥
राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः ।
मदालसातुतद्दृष्ट्वातदीयकण्ठभूषणम् ॥२५॥
तत्याजसुप्रियान्प्राणाञ्श्रुत्वाविनिहतप्रियम् ।

ततः पुरे महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् ॥२६
यथैव तस्य नृपते स्वगृहे समवर्तत ।
राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ॥२७
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः ।
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ॥२८

अब जो आपको करना हो, वह करिये और उनका यह कठोर भी लीजिये, मुझ तपस्वी का स्वर्ग से क्या प्रयोजन ? ऐसा कह कर तालकेतु वहाँ से आया, वहीं चला गया ॥२२-२३॥ इसके पश्चात् वहाँ सभी मूर्च्छित होकर गिर पड़े, फिर राजा और रानी चैतन्यता लाभ करके ॥२४॥ तथा अन्य राजस्त्रियाँ भी अत्यत दुःखित होकर विलाप करने लगीं तब मदालसा ने उस कठभूषण को देखा ॥२५॥ और स्वामी की मृत्यु की बात सुन कर उसने दुःख से कातर होकर प्राण त्याग दिये, राजभवन में होने वाला कुन्दन प्रतिध्वनित होने लगा, फिर राजा शत्रुजित् अपनी पुत्रवधू को मरी हुई देख कर ॥२६-२७॥ तथा सावधान चित्त होकर सब से कहने लगे कि हम सबको रोना नहीं चाहिये ॥२८॥

सर्वेषामेव सञ्चिन्त्य सावधानामनित्यताम् ।
किन्तु शोचामि तनयं किन्तु शोचाम्यहं स्नुषाम् ॥२९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्ये शोच्यावुभावपि ।
मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ॥३०
प्राप्तो मेऽद्य सुतो मृत्युं कथं शोच्यः सधीमताम् ।
अवश्यं यानि यद्देहं तद्द्विजानां कृते यदि ॥३१
मम पुत्रेण सत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ।
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्रर्थेवमनुव्रता ॥३२
कथं तु शोच्या नारीणां भर्तुरन्यच्च दैवतम् ।
अस्माकं बान्धवानां च तथान्येषां दयावताम् ॥३३
शोच्या ह्येषा भवेदेव यदि भर्त्रा वियोगिनी ।
यातुभर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ॥३४

भर्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम् ।
ता शोच्या या वियोगिन्य सह भर्त्रा कुलाङ्गना ॥३५

सभी प्राणियों का सम्बन्ध अनित्य है, मैं पुत्र या पुत्रवधू किसका शोक करूँ ? ।।२९।। दोनों ही कृतकृत्य थे, इसमें शोक के योग्य नहीं है, क्योंकि मेरी आज्ञानुसार ही जिसने ब्राह्मणों की रक्षा में लग रह कर ।।३०।। प्राण दिया है, उस पुत्र के लिए शोक करना उचित नहीं है मेरे पुत्र ने अपने नाशवान् देह को ब्राह्मणों के लिए ।।३१।। त्याग है, तब वह अशोचनीय और कल्याणकारी है और जब सत्कुल में उत्पन्न हुई इस नारी ने भी अपने पति का अनुगमन किया है ।।३३।। तो वह भी शोचनीय नहीं हो सकती । क्योंकि स्त्री के लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है, यदि यह अपने पति की मृत्यु के अनन्तर जीवित रहती तो हम सब की शोचनीय दशा होती, इसने तो अपने पति का मरना सुनते ही प्राण छोड़ दिया है ।।३३-३४।। इसलिए पण्डितजनों के लिए यह शोचनीय नहीं है, स्वामी की मृत्यु होने पर भी जो नारी जीवन धारण करे, वह शोचनीय होती है ।।३५।।

कष्टश्चात्मा न गच्छन्ति कष्टदा स्यु कुलात्मनो ।
भर्तुर्वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ॥३६
दातार सर्वसौख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ।
लोकयो का हि भर्तारं नारी मन्येत मानुषम् ॥३७
न स शोच्यो न चैवेह नाथ तज्जननी च ।
त्यजता ब्रह्मणार्थाय प्राणान्सर्वस्मतारिता ॥३८
विप्राणा मम धर्मस्य गत सतु महामतिः ।
आनृण्यमद्य भुक्तस्य त्यागाद्धेहस्य मे सुत ॥३९
भातु सतीत्व मद्वंशवैमल्य शौर्यमात्मन ।
सग्रामे सत्यजन्प्राणान्सोविदद्द्विजरक्षणात् ॥४०
तत कुवलयाश्वस्य माता भर्तुरनन्तरम् ।
श्रुत्वा पुत्रवध तादृक्प्राह हृष्टातु त पतिम् ॥४१

न मे जनन्या स्वस्त्रा वा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरित्राणे हत पुत्र यथा मया ॥४२

जो स्वामी के सहित जाती है, वह कभी शोचनीय नहीं, जो गमन में कष्ट मान कर नहीं जाती, वह अपने कुल को कष्ट देने वाली है, कृतज्ञा होने के कारण इसने अपने स्वामी के वियोग का अनुभव नहीं किया ॥३६॥ इहलोक और परलोक दोनों में सुख देने वाले स्वामी को कौन स्त्री मनुष्य मानती है ? ॥३७॥ हमारा पुत्र, पुत्रवधू, मैं अथवा उसकी माता हम में से कोई भी शोचनीय नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणों की रक्षा में प्राण देने वाले पुत्र के कारण हम सभी का उद्धार हुआ है ॥३८॥ मेरा पुत्र अपने अर्धमुक्त शरीर को छोड़ कर ब्राह्मण के प्रति, धर्म के प्रति और मेरे प्रति भी उऋण हो गया है ॥३९॥ ब्राह्मणों की रक्षा के युद्ध में मरने से माता का सतीत्व, वंश की स्वच्छता और अपनी शूरता किसी का भी त्याग उसने नहीं किया ॥४०॥ कुवलयाश्व की माता ने पुत्र का मृत्यु समाचार सुन कर अपने स्वामी को देख विषाद रहित चित्त से बोली ॥४१॥ हे महाराज ! मुनियों की रक्षा करते-करते सन्तान का मरण सुन कर मैं जैसी सुखी हुई वैसा सुख मुझे माता-बहिन किसी के द्वारा नहीं मिल सकता ॥४२॥

शोचता ब्राह्मणानां ये निःस्वनेनातिदुःखिताः ।
म्रियतेव्याधिना क्लिष्टास्तेषां माता वृथा प्रजा ॥४३

सङ्ग्रामे युध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णा शस्त्रैर्विपद्य ते त एव भुवि मानवा ॥४४

अर्थिना मित्रवर्गस्य विद्विषाच पराङ्मुख ।
योन याति पिता तेन पुत्री माता चवीरसू ॥४५

गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्य भजते तदा ।
यदारिविजयी वास्यात्सङ्ग्रामे वाहत सुत. ॥४६

तत सराजा सस्कार पुत्रपत्नीमलभयत् ।
निर्गम्यचबहिः स्नातो ददौ पुत्रायचोदकम् ॥४७

तालकेतुश्च निर्गम्य तथैवयमुनाजलात् ।
राजपुत्रमुवाचेदं प्रणिपत्यमधुरवच् ॥४८
कृतोऽस्मि भूपाल पुत्रत्व कृतार्थोहंकृतस्त्वया ।
वाञ्छित तुकृतकार्यत्वय्या विचले स्थिते ॥४९
वारुणयज्ञकार्य च जलेशस्य महात्मन ।
तन्मया साधित सर्व यन्ममासीद भीप्सितम् ॥५०
प्रणिपत्य ततप्रागाद्राजपुत्र पुरपितु ।
समारुह्यतमेवाश्व सुपर्णानिल विक्रमम् ॥५१

जो बन्धुओं के लिए दुःख से श्वास लेते हुए या रोगाक्रान्त हुए प्राण त्याग करते है, उनकी माताओं का सतति-प्रजनन व्यर्थ ही है ॥४३॥ जो गौ-ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त युद्ध मे भय-रहित चित्त से शस्त्र से मरता है, उसे ही मनुष्य कहते है ॥४४॥ जिसके द्वारा याचक, मित्र और शत्रुगण विमुख नहीं होते, उसी से पिता पुत्रवान् होता है ॥४५॥ जब पुत्र युद्ध मे मर जाता या शत्रु पर विजय प्राप्त करके लौटता है तभी स्त्री का गर्भ-क्लेश सफल होता है ॥४६॥ नागपुत्र बोले—फिर राजा शत्रुजित् ने पुत्रवधू का सस्कार कर नगर के बाहर जाकर स्नान किया और पुत्र के निमित्त जलाञ्जलि दी ॥४७॥ उधर तालकेतु उसी प्रकार यमुना जल से निकल कर प्रणाम करता हुआ मीठे वचनो से राज-कुमार से बोला ॥४८॥ हे राजकुमार ! आपके द्वारा मै कृतार्थ हुआ क्योंकि आपने यहाँ रह कर मेरा अभिलषित कार्य किया है ॥४९॥ इस प्रकार जलपति वरुण का यज्ञ मेरी माया से सिद्ध हो गया, हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ॥५०॥ यह सुन कर राजपुत्र ने मुनि को प्रणाम किया और उस वायु वेग वाले अश्व पर चढ कर पिता के नगर को गये ॥५१॥

२१—कुवलयाश्व पातालप्रवेश

सराजपुत्र सम्प्राप्यवेगादात्मपुरन्तत ।
पित्रोर्ववन्दे दिपु पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ॥१

सदर्शनदुद्दिग्नमप्रहृष्टमुत्त पुरम् ।
पुनश्चविस्मानाकारप्रहृष्टवदनपुन ॥२
अत्यमुत्फुल्लनयनदिष्ट्याद्दिष्ट्यै तिवादिनम् ।
परिष्वजन्तसम्बोन्यमतिकौतूहलान्विनम् ॥३
सराजपुत्रोमित्रवृत्फुल्लनयनमुभम् ।
आलिलिंगतदाकालेसौहृदेनपरेणच ॥४
तत पौरास्तदालोक्यप्रदिष्ट्याद्दिष्ट्यै तिवादिन ।
चिरञ्जीवोत्कल्याणाहृतास्तेपरिपथिन ॥५
पित्रोप्रल्हादयमनस्तथास्मात्रमकटक ।
इत्येतवादिभि पौरै पुन पृष्ठैचमवृत ॥६
लक्ष्मणप्रभवानन्द प्रविवेशपितुर्गृहम् ।
पिताचतपरिष्वज्यमालाचान्येचबान्धवा ॥७
चिरञ्जीवोत्कल्याणादत्तौचासमैलदाशिष ।
प्रणिपत्यतत सोयकिमेतदितिविस्मित ॥८

नागपुत्रों ने कहा—राजकुमार ने पिता-माता के चरणों में वन्दना कर ने और मदालसा को देखने की इच्छा करके अपने नगर में जाकर देखा ॥१॥ नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न है, परन्तु उन्हें देखकर प्रसन्न और विस्मित हो रहे है ॥२॥ फिर प्रफुल्लित नेत्रों से भाग्य को सराहते हुए परस्पर आलिंगन करने लगे ॥३॥ उस राजपुत्र ने प्रफुल्लित नेत्र वाले अपने श्रेष्ठ मित्र को अत्यंत प्रीति सहित हृदय से लगाया ॥४॥ फिर नगर वासी उनके प्रति कहने लगे कि अत्यन्त भाग्यवाले और दीर्घजीवी होवें, तुम्हारे सभी शत्रु नाश को प्राप्त हो ॥५॥ हमारे तथा माता-पिता के हृदय को प्रसन्न करो, ऐसा कहते हुए उनके आगे पीछे इकट्ठे हो गये ॥६॥ राजकुमार ने उनसे घिरे हुए पिता के भवन में प्रवेश किया, तब पिता, माला तथा अन्यान्य बांधवगण ॥७॥ उन्हें आशीर्वाद देने लगे, तब राजकुमार ने उनको प्रणाम करके विस्मित चित्त से पूछा—हे तात ! यह क्या है ? ॥८॥

प्रपच्छ पितरं चाथ सोऽस्मै सर्वं तदुक्तवान् ।
सभार्यातामृताश्रुत्वा हृदयेष्टामबालसाम् ॥९
पितरौ च पुरा दृष्ट्वा लज्जाशोकविमध्यगः ।
चिंतयामास सा बाला माश्रुत्वा निधनं गतम् ॥१०
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ् मां निष्ठुरमानसम् ।
नृशंसोऽमनार्योऽहं विमुक्तामृगलोचनाम् ॥११
मत्कृते निधनं प्राप्ता यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः ।
पुनः संचिंतयामास परिसंस्तभ्यमानसम् ॥१२
मोहोद्गममपास्यैवं नि श्वस्योच्छ्वस्य चातुरः ।
मृतेति सामभिप्रेत्य त्यजामि यदि जीवितम् ॥१३
किमयोपकृतं तस्या श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् ।
यदि रोदिमि वादीनो हा प्रिये ति वदन्मुहुः ॥१४
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल ।
अथ शोकजडोदीनोऽसृजाहीनो बलान्वितः ॥१५
विपक्षस्य भविष्यामि तत परिभवास्पदम् ।
मयारिज्ञातनात्कार्यं राज्ञ पृश्रूषणापितु ॥१६

तब उन्होंने राजकुमार को सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, राजकुमार सदा लेखा का मरण—समाचार सुन कर शोक सागर मे डूब कर शोक करने लगे कि जब उस साध्वी ने मेरा मृत्यु वृत्तान्त सुन कर ॥९-१०॥ प्राण छोड दिये तो मुझ निष्ठुर को धिक्कार है, मैं नृशंस और अनार्य हूँ जो उसके बिना जीवित हूँ ॥११॥ जिसने मेरे लिये प्राण त्याग दिये, उसके बिना जीवित रहूँ तो मैं अत्यन्त निर्दय सिद्ध हूँगा, यह सोचते हुए ॥१२॥ अत्यन्त कातर हो कर दीर्घ श्वास लेते हुए सोचा कि उसने मेरे लिये प्राण त्यागे है तो मैं भी यदि उसके लिये प्राण का त्याग कर दूँ ॥१३॥ तो ? परन्तु यह स्त्रियो के लिये ही उचित है, यदि मैं 'हा प्रिये' कहता हुआ बारम्बार विलाप करूँ ॥१४॥ तो वह भी निन्दा के योग्य होगा, यदि शोक सताप मे मूर्छादि का त्याग कर दूँ ॥१५॥

तो शत्रु अपमान करेंगे, मेरा एक मात्र धर्म शत्रुओं का संहार और पिता की सेवा करना है ॥१६॥

जीवितस्यचायंशरणमत्याज्यंतत्कथमया ।
किंत्वत्रमेन्यस्कर्त्तव्यंत्यागोभोगस्ययोषित ॥१७
सत्रापिनोपकारःस्यतत्त्वथ्या किंतुसर्वथा ।
मयानृशंस्यकर्त्तव्यंनापकार्युपकारिवा ॥१८
ग्रामदर्थेत्यजत्प्राणास्तदर्थेल्पमिदंमम ।
इतिकृत्वामतिंसोथनिष्पाद्योदकदानिकम् ॥१९
क्रियाश्चानंतरंकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वज ।
यदिसामम्तन्वंगीनस्याद्भार्यामदालसा ॥२०
अस्मिञ्जन्मनिनान्यामेभवत्रीसहचारिणी ।
तामृतेमृगयावाञ्जीगंधर्वतनयामहम् ॥२१

मेरे जीवन का अवलम्ब यही है, इस लिए प्राण त्याग कदापि उचित नहीं है, यदि मैं अन्य स्त्री के गमन का त्याग करू ॥१७॥ तो भी उसका कोई उपकार न होगा, परन्तु उसका उपकार हो वा अपकार मुझे तो इसी नृशंस आचरण का पालन करना होगा ॥१८॥ जिसने मेरे लिये प्राण त्यागर है, उस के लिये यह कार्य सामान्य था। ऐसा निर्णय कर राजकुमार ने जलदानादि करके ॥१९॥ तथा सब संस्कार से निवृत्त हो कर कहा कि जब मेरी पत्नी मदालसा ही नहीं है ॥२०॥ तब इस जन्म मे कोई अन्य नारी मेरी सहधर्मिणी नहीं हो सकती, मै सत्य कहता हूँ कि मैं उस गन्धर्व की सुता के अतिरिक्त अन्य स्त्री से समागम नहीं करूँगा ॥२१॥

नभोऽन्येयोषितंकाचिदितिसत्यमयोदितम् ।
सधर्मचारिणीपत्नीतामुक्त्वागजगामिनीम् ॥२२
काचिन्नान्याकरिष्यामितेनसत्यमयोदितम् ।
एवसर्वान्परित्यज्यस्त्रीभोगास्तातसर्वदा ॥२३
क्रीडन्नास्तेसमतुल्यैर्वयस्यैः शीलसंपदा ।
एतत्तस्यपरंकार्यंतातत्तत्केनसाध्यते ॥२४

कर्तुं मत्यतदुःष्प्राप्यमश्वरैं किमुतेतरैं ।
इतिवाक्यतयो श्रुत्वाविमर्शमगमत्पिता ॥२५
विमृश्यचाहतौपुत्रौनागराट्प्रहसन्निव ।
यद्यत्क्षयमितिश्रुत्वानकरिष्यद्विमानवा ॥२६
कर्मस्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्ततः परम् ।
आरभेतनर कर्मस्वपौरुषमहापयम् ॥२७
निष्पत्तिः कर्मणादैवेपौरुषेचव्यवस्थिता ।
तस्मादहं तथायत्स्करिष्येपुत्रकार्यतत् ॥२८

मैं उस सद्धर्म का आचरण करने वाली भार्या को छोड कर किसी दूसरी नारी को स्वीकार नहीं करूँगा । नागपुत्रों ने कहा—हे तात ! सदाचार के अतिरिक्त वह सम्पूर्ण स्त्री-संग त्याग कर ॥२२-२३॥ अपने स्वभावादि में समान तथा समवयस्कों के साथ क्रीडा करते रहते हैं, उनके हित में यही एक प्रमुख कार्य है, जिसमें किसी का वश नहीं चल सकता ॥२४॥ बड़ी कि यह ईश्वर के लिये भी दुष्प्राप्य है तो मनुष्य की तो बात ही क्या है ? उनकी बात सुन कर नागराज क्षणभर विचारमग्न हो गये ॥२५॥ और फिर हँसते हुए उन्होंने अपने दोनों पुत्रों से कहा—सामर्थ्य से परे होने के कारण जो मनुष्य उद्योग नहीं करते ॥२६॥ उससे उनकी अत्यन्त हानि होती है अपने पौरुष को नष्ट न करके ही मनुष्य कार्यारम्भ करते हैं ॥२७॥ परन्तु दैव या पौरुष में ही कर्म की निष्पत्ति है, इस लिये हे पुत्रो ! जिस प्रकार यह कार्य बन सके, मैं वह कार्य करूँगा ॥२८॥

तपश्चर्यां समास्थायययौतत्साध्वतेचिराय ।
एवमुक्त्वासनागेन्द्र प्लक्षावतरणगिरे ॥२९
तीर्थहिमवतोगत्वातपस्तेपेसुदुश्चरम् ।
तुष्टावचाग्भिरिष्टाभिस्तंदेवीसरस्वतीम् ॥३०
तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुतः ।
जगद्धात्रीमहंदेवीमाराधयिषुः शुभाम् ॥३१

स्तोष्येऽहमणुमध्यस्थिरमात्रह्मयोनिगरस्वरूपिणीम् ।
सदसद्वाचियत्किंचिन्मोक्षत्रयार्थवत्पदम् ॥३३
तत्सर्वत्वय्यसंयोगयोगवद्देविसंस्थितम् ।
त्वमक्षरपरादेवियत्रमर्वप्रतिष्ठितम् ॥३३
अक्षरपरमब्रह्मजगच्चेतनक्षरात्मकम् ।
दारुण्यवस्थितोवह्निर्भौमाश्चपरमाणव ॥३४
तथात्वयिस्थितब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ।
ओंकाराक्षरमध्यानत्रयदेविस्थिराभ्यिम् ॥३५

मैं तपस्या के द्वारा इसे शीघ्र सिद्ध करने का यत्न करूँगा, ऐसा कह कर नागराज अश्वतर हिमालय के स्वर्णावतरण नामक तीर्थ में जाकर ॥३२॥ दुष्कर तप करने लगे, पश्चिमी भोजन, तीनों समय स्नान और वाणी द्वारा सरस्वती का स्तवन करते हुए अश्वतर ने कहा—मैं जगज्जननी भगवती के आराधना की इच्छा से ॥३०-३१॥ ब्रह्म स्थान सरस्वती को प्रणाम पूर्वक स्तुति करता हूँ, हे देवी ! मोक्ष अथवा अर्थ सयुक्त सत् असत् रूप जो पद है ॥३४॥ वह सभी आप में सयुक्त न होकर सयुक्त के समान ही अवस्थित रहते है, हे देवी ! आप परम अक्षर है, आप में सब प्रतिष्ठित है ॥३३॥ सभी अक्षर परमाणु के तुल्य आप में स्थित है, अक्षर रूप पर ब्रह्म और क्षरात्मक जगत् भी तुम से प्रतिष्ठित है, जैसे अग्नि के सभी परमाणु काष्ठ में रहते है वैसे ही ब्रह्म और विश्व तुम में ही विद्यमान है ॥३४-३५॥

तत्रमात्रात्रयमर्वमस्तित्वद्देविनान्यित्व ।
त्रयो लोकास्त्रयोदेवास्त्रैविद्य पावकत्रयम् ॥३६
त्रीणिज्योतीषिवर्णाश्चत्रयोधर्मादिवस्तथा ।
त्रयोगुणास्त्रय शब्दास्त्रयोदोषास्तथाक्षमा ॥३७
त्रय कालास्तथात्रस्था पितरोहृदिशादय ।
एतन्मात्रात्रयदेवित्वरूपमत्स्वति ॥३८
विभिन्नदर्शिनामाद्याब्रह्माणोहिसनातना ।
सोममस्थाहविस्तथा पाकसस्थाश्चसप्तया ॥३९

तास्त्वदुच्चारणाद्देवि विक्रियन्तेऽह्मुखादिभि ।
अनिर्दर्श्यतथाचान्यदर्द्धमात्रास्थितपरम् ॥४०

अविकार्यक्षयदिव्यपरिणामविवर्जितम् ।
तवैवचपररूपयशक्यमयेरितुम् ॥४१
नचास्त्येतन्मुखाजिह्वातालवोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोऽग्निस्त्वंब्रह्मात्वंचन्द्रार्कौज्योतिरेवच ॥४२

ओंकार, अक्षर सस्थान, स्थिर, अस्थिर अर्थात् सत् असत् तुम्ही मे विद्यमान रहते है, तीन लोक, तीन वेद, तीन विद्या, तीन अग्नि ॥३६॥ तीन ज्योति तीन वर्ग, तीन धर्म, तीन गुण, तीन शब्द, तीन दोष, तीन आश्रम ॥३७॥ तीन काल, तीन अवस्था, पितर तथा दिन-रात्रि इत्यादि जितनी भी वस्तुएँ तीन मात्रा स्वरूप है ॥३८॥ तथा पृथक्-पृथक् सम्प्रदाय वाले पुरुषो को आद्य और सनातन नवविधि व्याहृति का वेद मे निरूपण हुआ है ॥३९॥ वह सब तुम्हारे ही कीर्तन मे ब्रह्मादी सनाहित करते है । हे माता ! इसके अतिरिक्त आपका जो एक और परम रूप है, जिसे अर्द्धमात्रा कहते है ॥४०॥ वह भी इसी प्रकार विकार रहित, क्षय रहित और शेष रहित है, हे माता ! मैं इतना शक्ति युक्त नही हूँ कि आपकी इस परम रूप का निरूपण कर सकूं ॥४१॥ क्यो कि उसका मुख, जिह्वा, तालु तथा ओष्ठादि से उच्चारण सम्भव नही है, इन्द्र, सूर्य अथवा अन्य ज्योतिर्मय पदार्थ उसी के रूप है ॥४२॥

विश्वावासविश्वरूपविश्वेशपरमेश्वरम् ।
सांख्यावेदान्तवेदोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥४३
अनादिमध्यनिधनंसदसन्न सदेवतु ।
एकत्वनेकमप्येकभवभेदसमाश्रितम् ॥४४

अनाख्यषड्गुणाख्यंचषट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम् ।
नानाशक्तिमतामेकशक्तिर्वैभाविकपरम् ॥४५
सुखासुखमहत्सौख्यरूपतत्त्वविभाव्यते ।
एवदेवित्वयाव्याप्तं सकलनिष्कलजगत् ॥४६

अद्वैतावस्थितब्रह्मयच्चद्वैतेव्यवस्थितम् ।
येषांनित्यायेविनश्यन्तिचान्येयेवास्थूलायेचसूक्ष्माश्चसूक्ष्मा ।
येवाभूमौयेन्तरिक्षेन्यतोवातेषासत्यत्वत्तएदोपलब्धि ॥४७
यच्चामूर्तंयच्चमूर्तंममस्तन्यद्वाभूतेष्वेकमेकंचकिंचित् ।
यद्विद्येस्तिथमातलेखेन्यतोवातत्सम्बन्धस्त्वत्स्वरैर्व्यंजनैश्च ॥४८
एवंस्तुतातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती ।
प्रत्युवाचमहात्मानंनागमश्रेष्ठरतत ॥४९

वही विश्व स्थान, ईश्वर एवं परब्रह्म है, सांख्य, वेदान्त और तर्क शास्त्र में जिसका वर्णन हुआ तथा वेद की अनेक शाखाओं द्वारा जिसे स्थिर किया गया ॥४३॥ तथा जिसका न आदि है, न मध्य अथवा अन्त भी नहीं है, जो नित्य असत्यरूप है तथा समाधि के भेद से अनेकरूप और विभिन्न प्रकार वाला है ॥४४॥ जिसकी आत्मा गुण षटक् और वर्ग है तथा जो त्रिगुणात्मक सम्भव और शक्तिमानों की शक्ति के परम वैभव से सम्पन्न ॥४५॥ एवं सुख, असुख और महासुख रूप है, हे माता ! तुम में वह सभी लक्षित होता है, इस प्रकार सम्पूर्ण कलायुक्त एवं कलातीत विश्व तुम्हारे द्वारा व्याप्त हो रहा है ॥४६॥ तथा द्वैतावस्थित या अद्वैतावस्थित ब्रह्म भी तुम्हारे द्वारा ही व्याप्त है, जो नित्य, अनित्य, स्थूल या सूक्ष्म, पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यत्र विद्यमान है, तुमने ही उनकी प्राप्ति होती है ॥४७॥ जो मूर्त्त या अमूर्त्त है, सब प्राणियों में विद्यमान है, स्वर्ग पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा अन्य सभी स्थानों में जिनका निवास है, उन सब पदार्थों का ज्ञान तुम्हारे ही स्वर व्यञ्जन द्वारा होता है ॥४८॥ नागराज द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई सरस्वती ने उनसे कहा ॥४९॥

वरन्तेकम्बलश्रेष्ठ प्रयच्छाम्युरगाधिप ।
तदुच्यतांप्रदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥५०
साहाय्यदेक्रियेहित्वपूर्वकम्बलमेवच ।
ममस्तस्वरसम्बद्धमुभयोसम्प्रयच्छच ॥५१
सप्तस्वराग्रामरागा सप्तपन्नगसत्तम ।
गीतकानिचसप्तैवतावतावत्यश्चापिमूर्च्छना ॥५२

नानाश्रैकोनपञ्चाशत्तथाग्रामत्रयोद्भवम् ।
एतत्सर्वमवाप्स्येतामत्प्रसादेन भोगिराट् ॥५३
ज्ञास्यतेमत्प्रसादेनभुजगेन्द्रपरत्तथा ।
चतुर्विधपरतालत्रि प्रकारलयत्रयम् ॥५४
गतित्रयतथातालमयादत्त चतुर्विधम् ।
एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेन्द्रावरप्स्यत ॥५५
आख्यानर्गानमयात्त स्वरव्यञ्जनयोश्चयत् ।
तदशेषमयादत्त भवत कम्बलस्यच ॥५६

सरस्वती बोली—हे उरगाधिप ! मैं वर देने को उद्यत हूँ, इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो, माग लो, वही दूगी ॥५०॥ अश्वतर ने कहा—हे माता ! मेरे पूर्व सहायक और कम्बल और मुझे दोनो को ही श्रुतिग्राम और मूर्च्छनादि स्वर प्रदान कीजिये ॥५१॥ सरस्वती देवी ने कहा—हे पन्नग श्रेष्ठ ! तुम और कम्बल दोनो ही मेरी कृपा से श्रेष्ठ गायक हो जाओगे तथा सप्तस्वर ग्राम के षड्जग्राम, मध्यम एव मूर्च्छना ॥५२॥ तथा उनचास तान की ताल और तीन प्रकार का ग्राम है, तुम सभी प्रकार का गायन कर सकोगे ॥५३॥ हे नाग राज ! तुम चार प्रकार के अन्य पद तथा तीन तान और तीन प्रकार की लय का ज्ञान भी प्राप्त करोगे ॥५४॥ मैं तुम्हे तीन प्रकार की गति और चतुर्प्रकार वाद्य ताल भी तुम्हे देती हूँ, यह तथा इनके अतिरिक्त और समस्त ज्ञान तुम्हे मेरे प्रसाद से हो जावगा ॥५५॥ इनके अन्तर्गत आयत्त स्वर, व्यञ्जनादि जो कुछ है, वह सब विषय तुम दोनो को दिया ॥५६॥

यथानान्यस्यभूलोकेपातालेवापिपन्नग ।
प्रश्नोतारोभवतोचसर्वस्याद्यभविष्यत ॥५७
पातालेदेवलोकेचभूर्लोकेचैवपन्नगौ ।
इत्युक्त्वासानदादेवीसर्वज्ञिह्वासरस्वती ॥५८
जगामादर्शनमद्योनागस्यैकमलेक्षणा ।
तयोश्चतद्यथोवृत्तभ्रातो सर्वप्रजायत ॥५९

विज्ञानमुभयोरस्तु यदनालम्बरादिकम् ।
तत्र कैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥६०
गीतेन सम्भितगीतवीणयसमन्वितौ ।
आराधयिष्यदेवमनङ्गं हरहरम् ॥६१
प्रचक्रतु वरयन्तसुभोमहृदाङ्कितौ ।
प्राचीनिशायामभ्याह्ने मध्ययोश्चाप्तित्परौ ॥६२
तत कालेनमहतास्तूयमानोऽपव्रज ।
तुतोषगीतकैस्तोत्रैराहसगृह्यतावर ॥६३

तुम स्वर्गलोक, पृथिवी और पाताल में समस्त विषय में अनुपम प्रवीणता रहोगे ॥५७॥ त्रैलोक्य में तुम्हारे समान अन्य नहीं होगा, जब ब्रह्मा—एना कह कर भगवती सम्बन्धी ॥५८॥ तत्काल अन्तर्धान हो गई और उनकी कृपा से यह दोनो भाई सभी विषय के ज्ञाता होगए ॥५९॥ पद, ताल लया स्वरादि में उनको अनुपम सिद्धि हुई, तब वह कैलास में स्थित ईश्वर ॥६०॥ अनगहारी शिव की तन्त्रीलय युक्त गान स्वर से गायन पूर्वक आराधना प्रारम्भ की ॥६१॥ वह वाणी और इन्द्रियों को सयम में करके प्रात, मध्याह्न एव सायं त्रिकाल में शिवजी की उपासना में तत्पर हुए ॥६२॥ तब देव देव शङ्कर बहुत काल से प्रसन्न हुए और उन दोनो से बोले कि 'वर मागें लो' ॥६३॥

ततःप्रणम्याश्वतर कवलेनसमतदा ।
विज्ञापयत्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् ॥६४
यदितौभगवन्प्रीतोदेवदेवत्रिलोचन ।
ततोयथाभिलषितवरमेनप्रयच्छनौ ॥६५
मृताकुवलयाश्वस्यगतीदेवमदालसा ।
तेनैवत्वयसासद्योदुहितृत्वप्रयातुमे ॥६६
जातिस्मरायथापूर्वतद्वत्क्षातिसमन्विता ।
योगिनीयोगमाताचजायतावचनात्तव ॥६७
यथोक्त पन्नगश्रेष्ठसर्वमेतद्भविष्यति ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धश्रृणुवेदभुजगम ॥६८

श्राद्धावसानेप्राश्नीथामध्यपिण्डमात्मना ।
कामन्त्रेमामनुध्यायःकुरुत्वपितृपूजनम् ॥६६
तत्क्षणादेवसासुभूर्भवतोमध्यमात्फणात् ।
समुत्पत्स्यतिकल्याणीतवारूपायथामृता ॥७०

तब कम्बल सहित अश्वतर ने प्रणाम कर पार्वती-पति भगवान् शङ्कर से निवेदन किया ॥६४॥ हे प्रभो ! आप सर्व शक्ति सम्पन्न हैं, यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो हमें वह इच्छित वर दीजिये ॥६५॥ कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा ने प्राण त्याग किया है, वह जिस अवस्था से मरण को प्राप्त हुई है, उसी अवस्था में मेरी कन्या के रूप में उत्पन्न हो ॥६६॥ वह पूर्ववत् कान्तिमती तथा जातिस्मरा होकर मेरे गृह में जन्म धारण करे ॥६७॥ शिवजी बोले—हे पन्नगोत्तम ! तुम्हारा कहा हुआ मेरी कृपा से अवश्य होगा, अब जो कहता हूँ उसे सुनो ॥६८॥ श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर पवित्र एवं सावधान मन से तुम स्वयं मध्यम पिण्ड का भोजन करना तथा मेरा ध्यान करके पितरों का का यजन करना ॥६९॥ मध्यम पिण्ड का भक्षण करने से मदालसा ने जिस अवस्था में प्राण त्यागा है, उसी अवस्था में तुम्हारे मध्य फण से उत्पन्न हो जायगी ॥७०॥

स्वयमेवोपभुञ्जस्वयत सर्वंभविष्यति ।
उत्पत्स्यतेततःसातुसत्यवंमध्यमात्फणात् ॥७१
एतच्छ्रुत्वाततस्तौनुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ।
रसातलमनुप्राप्तौपरितोषसमन्वितौ ॥७२
तथाचकृतवाञ्छ्राद्ध सनागं कबलानुज ।
पिङ्गचमध्यमतद्वच्चथावदुपभुक्तवान् ॥७३
उपभुक्ते तत पिङ्गेतस्यसातनुमध्यमा ।
जज्ञेनि श्वसत सद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ॥७४
तत्रापिकथयामासकस्यचित्सभुजगम ।
अ तर्गृहेतासुदतीस्त्रीभिर्गु प्तामधारयत् ॥७५

नौचानुदिनमागत्यपुत्रौ नागपते मुखम् ।
ऋतुध्वजेनसहितौचिक्रीडातेमनोविव ॥७६
एकदातुसतौग्राहसमागोश्वतरीमुदा ।
तन्मध्यापूर्वमुक्तनूक्रियतेकिमुतत्तथा ॥७७
मराजपुत्रोयुवयोरुपकारीममाप्तिकम् ।
किमुनार्तायसेदत्सायुपकारायमानद ॥७८

तुम ऐसी कामना करके पितरों का तर्पण करो, जिससे वह जिस अवस्था में मृत हुई उसी अवस्था के त्याग के समय तुम्हारे मध्यम फण से निकलेगी ॥७१॥ यह सुनकर दोनों भाई शिवजी को प्रणाम करके पाताल में गये ॥७२॥ फिर अश्वतर ने उसी प्रकार पितर श्राद्ध करते हुए मध्यम पिण्ड का भोजन किया ॥७३॥ अन्त में अपने इच्छित का ध्यान करके श्वास छोड़ा तभी उनके मध्यम फण से मदालसा अपने उसी रूप में उत्पन्न होगई ॥७४॥ अश्वतर ने यह बात किसी को न बताई और मदालसा को स्त्रियों के साथ छिपा कर घर में रखा ॥७५॥ उधर उनके दोनों पुत्र देवकुमारों के सामने ऋतुध्वज के पास आकर नित्य प्रति आनन्द पूर्वक खेलने लगे ॥७६॥ एक दिन नागराज ने उन दोनों से कहा—पूर्व में मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, तुम उसे क्यों नहीं करते ? ७७-७८॥

एवमुक्तौपुनस्तेनपुत्रौस्नेहवतातुतौ ।
गत्वातस्यपुरस्थूरेमातेतेनधीमता ॥७९
ततःकुवलयाश्वश्चतत्कृत्वाकिंचित्कथान्तरम् ।
अब्रूताप्रणिपातेनस्वगृह्यागमनप्रति ॥८०
तावाहनृपपुत्रौसौनन्विदंभवतोगृहम् ।
धनदाहनवस्त्रादियन्मदीयंतदेवताम् ॥८१
यस्यवावाञ्छितंदातुं धनरत्नमथापिवा ।
तद्दीयतांद्विजसुतौयदिवाप्रणयोमयि ॥८२
एतावताहदैवेनवञ्चितोस्मिदुरात्मना ।
यद्भ्रातृभ्रातृभार्यात्वंमदीयेकियतागृहे ॥८३

यद्विवामेप्रियकार्यमनुग्राह्योस्मिधायदि ।
तद्धनेमम्गेहेचममसर्वमनुकल्प्यताम् ८४।

स्नेहहीन वितारा ऐसा कहा जाने पर उनके दोनों पुत्र ऋतध्वज के नगर में जाकर उनके साथ खेलने लगे ॥७६॥ फिर उन्होंने प्रीति पूर्वक कुवलयाश्व को अपने गृह चलने का अनुरोध किया ॥८०॥ राजकुमार बोला—मेरा गृह, धन, वस्त्र, यान आदि जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ॥८१॥ यदि मेरे प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हुई है और मुझे जो धन, रत्न देना चाहते हो, वह दो ॥८२॥ यदि तुम मेरे घर को अपना नहीं मानते तो मैं दैव द्वारा वंचित हुआ ही समझिये ॥८३॥ मेरा प्रिय करने की इच्छा करते हो और मुझे अपना कृपापात्र मानते हो तो मेरे गृह और धन में अपनत्व रखो ॥८४॥

युवयोर्यन्मदीयतन्मामकयुवयो स्वयम् ।
एतत्सर्वंविजानीयसखाप्राणोवहिश्चरः ॥८५
पुनर्नैवविभिन्नार्थवक्तव्यद्विजसत्तमौ ।
मत्प्रसादपरौप्रीत्याद्यापितौहृदयेनमे ॥८६
तत स्नेहार्द्रवदनौतावुभौनागनदनौ ।
ऊचतुर्नृपते पुत्रकिंचित्प्रणयकोपितम् ॥८७
ऋतुध्वज नसदेहोयथैवाहमवांदिदम् ।
तथैवचास्मन्मनसिनात्रचित्य मतोन्यथा ॥८८
चित्त्वावयो क्षमपित्राप्रोक्तमेतन्महात्मना ।
द्रष्टु कुवलयाश्वतमिच्छामीतिपुन पुन ॥८९
तत कुवलयाश्वोथसमुत्थायवरासनात् ।
यथाहतातेतिवदन्प्रणाममकरोद्भुवि ॥९०
धन्याहमति पुण्योहकोन्योस्तिसदृशोमया ।
यत्तातोमाममिद्रष्टु करोतिप्रणमनः ॥९१
तदुत्तिष्ठतगच्छामितातांज्ञाक्षणमप्यहम् ।
नातिक्रा तुमिहेच्छामिपद्भ्यातस्यवशोप्यहम् ॥९२

तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा है वह तुम्हारा, मेरी इस दृढ़ बात को

यथार्थ समझो, क्योंकि तुम मेरे बाह्य प्राण स्वरूप हो ॥८५॥ अतएव हे विप्रो! ऐसी भेद स्थापित करने वाली बात न कहना, मैं तुम्हें शपथ देता हूं कि तुम प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होओ ॥८६॥ तब दोनों नागपुत्रों ने स्नेहमिश्र मुख से प्रीतिपूर्वक कुछ रोष व्यक्त करते हुए कहा ॥८७॥ हे राजकुमार! जो तुमने कहा है, वही हम सोचते हैं, इसमें कुछ भेद मत समझो ॥८८॥ परन्तु हमारे पिता ने तुम्हें देखने की बारम्बार इच्छा प्रकट की है ॥८९॥ तब कुवलयाश्व श्रेष्ठ आसन से 'स्वयं पिताजी ने इच्छा की हैं' यह कहते हुए उठकर प्रणाम किया ॥९०॥ और कहा—अवश्य ही मैं धन्य एवं पुण्यवान् हूं, क्योंकि मुझे देखने के लिए स्वयं पिताजी उत्सुक हुए है ॥९१॥ इसलिए, चलो, क्षणमात्र को भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन मैं नहीं कर सकता, मैं उनके चरण स्पर्श पूर्वक तथा शपथ से कहता हूं ॥९२॥

एवमुक्त्वाबयौसोथसहिताभ्यानृपात्मज. ।
प्राप्तश्चगौतमीपुण्यानिर्गम्यनगराद्बहि ॥९३
तन्मध्येनययुस्तेवैनागेंद्रनृपनंदना ।
मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोर्गृहम् ॥९४
ततश्चाकृष्यपातालताभ्यांनीतोनृपात्मजः ।
पातालेदृष्टवांश्चोभौसपन्नगकुमारकौ ॥९५
फणामणिकृतोद्द्योतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।
विलोक्यतौसुरूपाणौविस्मयोत्फुल्ललोचन ॥९६
विहस्यचाब्रवीत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ ।
कथयामासतुस्तौतुपितरंपन्नगेश्वरम् ॥९७
ज्ञातमश्वतरनागमाननीयदिवौकसाम् ।
रमणीयततोपश्यत्पातालंनृपात्मज ॥९८

यह कहकर ऋतध्वज उनके साथ चले और नगर के बाहर जल से परिपूर्ण गोमती नदी पर पहुंचे ॥९३॥ उसके मध्य से तीनों चलने लगे, राजकुमार ने समझा कि गोमती के पार ही उनका घर है ॥९४॥ परन्तु उन्होंने राजकुमार को खींचा और पाताल में लेगये, वहाँ पहुँच कर, राजकुमार ने

देखा कि दोनो नागपुत्रो ने अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया है ॥९५॥ फणो मे स्थित मणि के प्रकाश से उनका हृदय और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित होगया, राजकुमार ने उनके स्वरूप को देखकर विस्मय से विस्फारित नेत्रो द्वारा ॥९६॥ हँसते हुए साधुवाद दिया, फिर देवताओ द्वारा भी स्तुत ऋतुध्वज अश्वतर से राजकुमार के आगमन का वृत्तान्त कहा गया। राजकुमार ने देखा कि पाताल का वह नगर अत्यन्त रमणीक है ॥९७-९८॥

कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ।
तथैवनागकन्याभि क्रीड तीभिरितस्तत ॥९९
चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिर्गगनयथा ।
गीतशब्दैस्तथान्यत्रवीणावेणुस्वरानुगै ॥१००
मृदगपणवातोद्यहारिवेश्मशताकुलम् ।
वीक्षमाण सपातालयथौशत्रुजित सुतः ॥१०१
सहताभ्यामभीष्टाभ्यापन्नगाभ्यामरिदम ।
तत प्रविश्यतेसर्वेनागराजनिवेशनम् ॥१०२
ददृशुस्तमहात्मानमुरगाधिपतिस्थितम् ।
दिव्यमाल्यावरधरमणिकुण्डलभूषणम् ॥१०३
स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ।
केयूरिणमहाभागमासनेसर्वकाचने ॥१०४
मणिविद्रुमवैडूर्यजालान्तरीतरूपके ।
सताभ्यादर्शितस्तस्यतातोस्माकमसाविति ॥१०५

बाल, युवा, वृद्ध सब जाति के सर्प सुशोभित है और उनके चारो ओर नागकन्याएँ क्रीडा करती घूम रही है ॥९९॥ उनके हार और कुण्डल अत्यन्त सुन्दर है, उनके सामीप्य से तारावलि से विभूषित आकाश के समान पाताल की नगरी सुशोभित हो रही है, कही सङ्गीत की ध्वनि, कही वंशी और कही वीणाएँ बज रही है ॥१००॥ मृदङ्ग, पणव एव आतोद्य के शब्द से प्रतिध्वनित सैकडो रमणीक घर सुशोभित है, उस नगरी को देखते हुए राजकुमार अपने समवयस्क मित्रो के साथ चल रहे थे, फिर उन्होने नागराज के स्थान मे प्रवेश

करके ॥१०१-१०२॥ उन्हे वहाँ निवास करते देखा, उनका दिव्य बिछौना, दिव्य माला तथा दिव्य मणिमय कुण्डल शोभायमान हैं ॥१०३॥ स्वच्छ मनोरम हार से अत्यन्त सुशोभित, हाथो मे केयूर धारण किये हुए वह स्वर्ग सिंहासन पर बैठे हैं ॥१०४॥ मणि, मूँगा, वैडूर्य आदि के कारण उनका प्राकृत स्वरूप ढक गया है, सखाओ ने राजकुमार से कहा कि हमारे पिता यही है ॥१०५॥

वीर कुवलयाश्वोयपित्रेचासौनिवेदित. ।
ततोननामचरणौनागेंद्रस्यऋतुध्वज. ॥१०६
समुत्थाप्यबलाद्गाढमनाग परिषस्वजे ।
मूर्ध्निचैवमुपाघ्रायचिरजीवेत्युवाचह ॥१०७
निहतामित्रवर्गश्चपित्रो शुश्रूषाकुरु ।
वत्सधन्यस्यकथ्यतेपरोक्षस्यापितेगुणा ॥१०८
भवतोममपुत्राभ्यामाभ्यायेमेनिवेदिता ।
तदेनैरेवचर्द्धामनोवाक्कायचेष्टितैः ॥१०९
जीवितगुणिन श्लाघ्यजीवन्नपिमृतोऽगुणी ।
गुणवान्निर्वृतिपित्रो शत्रूणाहृदयेज्वरम् ॥११०
करोत्यात्महितकुर्वन्विश्वासक्षमहाजने ।
देवता पितरोविप्रामित्रार्थिविभवादय ॥१११
बाधवाश्चतयेच्छतिजीवितगुणिनश्चिरम् ।
परवादनिवृत्तानादुर्गतेषुदयावताम् ॥११२

फिर पिता से कहा कि यही वीर कुवलयाश्व हैं, तब ऋतुध्वज ने नागराज के चरणो मे प्रणाम किया ॥१०६॥ नागराज ने राजकुमार का आलिंगन कर शिर सूँघते हुए कहा—चिरजीव होओ ॥१०७॥ तथा शत्रुकुल का विनाश करते हुए माता-पिता की सेवा करो । तुम धन्य हो, मेरे पुत्र तुम्हारे पीछे भी तुम्हारे अलौकिक गुण ॥१०८॥ सदा करते है, इससे भी तुम्हारा मन, वाणी, शरीर और चेष्टा की सदृशता मे वृद्धि होगी ॥१०९॥ गुणवान् पुरुष ही प्रशंसा के योग्य है, जो गुणहीन है, वह जीवित रहकर भी मरे हुए के समान है, क्योंकि गुणवान् पुरुष माता-पिता को शान्ति देते और शत्रुकुल को सन्ताप

करते हैं ॥११०॥ महाजनों के विश्वास को प्राप्त करके अपना कल्याण साधन करते हैं; देव, पितर, ब्राह्मण, मित्र, प्रार्थी एवं विभव इत्यादि ॥१११॥ एक बहुजन गुणवान् के ही दीर्घजीवी होने की कामना करते हैं, गुणवान् व्यक्ति बुरे कर्म करने वालों को निवृत्त करते और दुःखियों के प्रति दया प्रदर्शित करते हैं ॥११२॥

गुणिनासफलजन्मसश्रितानाविपद्गतैः ।
एवमुक्त्वासतवीरपुत्राविदनथाब्रवीत् ॥११३
पूजाकुवलयाश्वस्यकर्तुकामोभुजगम. ।
स्नानादिकक्रमकृत्वासर्वमेवयथाक्रमम् ॥११४
मधुपानादिसभोगमाहारचयथेप्सितम् ।
तत कुवलयाश्वेनहृदयोत्सवभूतया ॥११५
कथयास्वल्पककालस्थास्थामोहृष्टचेतस ।
अनुमेनेचतमौनीवच शत्रुजित सुत ॥११६
तथाचकारचपति पन्नगानामुदारधी ॥११७
समेत्यतैरात्मजभूपनदनैर्महोरगाणामधिप ससत्यवाक् ।
मुदायुतौन्नानिमधूनिचात्मवान्यथोपजोषबुभुजेसभोगभाक् ॥११८

दुःखियों के आश्रयदाता होने से ही उनका जन्म सफल है, ऐसा कहकर राजकुमार का पूजन करने लगे तथा अपने दोनों पुत्रों से बोले कि हम सब एकत्र होकर स्नानादि से निवृत्त होकर ॥११३॥ इच्छानुसार मधु-पान एवं आहार भक्षण कर कुवलयाश्व सहित उत्सव पूर्वक ॥११४॥ प्रसन्न मन से रहेंगे, इस पर कुवलयाश्व ने मौन रहकर ही उनकी बात का अनुमोदन किया ॥११५॥ फिर उदार चेता नागराज ने उसके अनुरूप कार्यारम्भ किया ॥११७॥ सत्य-भाषी नागराज अश्वतर के दोनों पुत्र राजकुमार के साथ प्रसन्न चित्त से अश्व-मधु का सेवन करने लगे ॥११८॥

२२—कुवलयाश्व को पुनः मदालसा प्राप्त

कृताहारमहात्मानमधिपपवनाशिनाम् ।
उपासाचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयस्तथा ॥१
कथाभिरनुरूपाभि प्रहृष्टात्माभुजगम ।
प्रीतिसजनयामासपुत्रसख्युरुवाचह ॥२
तवभद्रसुखब्रू हिगेहमभ्यागतस्यत् ।
कर्तव्यमुत्मृजाशकापितरीवसुनेमयि ॥३
हिरण्यवासुवर्णादावस्त्रवाहनमासनम् ·
यद्वाभिमनमत्यर्थदुर्लभतद्दृगुप्यमाप्नु ॥४
भवत्प्रसादाद्भगवन्मुवर्णादिगृहेमम ।
पितुरस्तिममाद्यापिनकिंचित्कार्यमीदृशं ॥५
तातेवर्षसहस्रायु वासतीमावसु धराम् ।
तर्यवत्वयिपातालनमेयाक्त्रोन्मुखमन ॥६
तेसुभाग्या सुपुण्याश्चयेषापितरिजीवति ।
तृणकोटिसमवित्ततारुण्यवित्तकोटिषु ॥७

जड बोला—फिर नागराज अश्वतर के भोजन कर लेने पर उनके दोनो पुत्र और राजकुमार उनकी उपासना मे लगे ॥१॥ तब नागपति अश्वतर ने अनुरूप वचनो से राजकुमार को प्रसन्न करते हुए कहा—हे भद्र ! ॥२॥ तुम मेरे गृह आये हो जैसे शङ्कारहित होकर पुत्र अपने पिता से बाते करता है, वैसे ही तुम भी करो, मुझे बताओ कि मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? ॥३॥ इस बात को स्वच्छन्द होकर कहो, स्वर्ण, रजत, वस्त्र, वाहन अथवा जो कुछ इच्छित हो, वह यदि दुर्लभ भी हो तो मुझसे माँग लो ॥४॥ कुवलयाश्व बोला—हे भगवन् ! आपकी कृपा से मेरे पिता के गृह मे स्वर्णादि सब वस्तुएँ है, मुझे अभी तक ऐसे किसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत नही हुई ॥५॥ मेरे पिता सहस्र वर्ष हुए, जब इस पृथिवी पर शासन करते थे और आप भी पातल मे निवास करते थे, तब कभी भी मेरा मन प्रार्थना मे प्रवृत्त नही हुआ ॥६॥ जिनके पिता जीवित है, वह पुरुष धन्य है इसलिए युवावस्था मे

करोड़ मल्यक धन को भी जो तिनके के समान मानते है, वह परम पुण्यवान् महापुरुष है ॥७॥

मित्राग्नितुल्यशिष्टानितद्वद्दृष्टनामयम् ।
जनेवाध्रितेवित्तयौवनकिंतुनास्तिमे ॥८
असत्यर्थेनृणायाच्ञाप्रवृत्तजायतेमन. ।
सत्यशेषेकथायाच्ञाममजिह्वाकरिष्यति ॥९

यैर्नचित्यधनकिंचिन्ममगेहेस्तिनास्तिवा ।
पितृबाहृतरुच्छायासश्रिता सुखिनोहिते ॥१०
येतुबाल्यात्प्रभृत्येवविनापित्राकुटुंबिन ।
तेसुखास्वादविभ्रंशान्मन्येधातैवबचिताः ॥११

तद्वयंतत्प्रसादेनधनरत्नादिसंचयम् ।
पितृभक्ताःप्रयच्छाम कामतोनित्यमर्थिनाम् ॥१२
तत्सर्वंमिहसप्राप्तंयदघ्रियुगलतव ।
मच्चूडामणि नाघृष्टयच्चागस्पर्शमाप्तवान् ॥१३

इत्येवप्रश्रितवाक्यमुक्त पन्नगसत्तमं ।
प्राहराजसुतप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ॥१४

मेरे मित्र उचित शिष्टाचार से युक्त हैं, मेरा देह युवा एवं रोग रहित है, तो मेरे पास क्या नहीं है ॥८॥ मेरा पिता विलक्षण धन से सम्पन्न हैं, जिनके पास धन नहीं, वही याचना मे प्रवृत्त होते है, मेरे यहाँ प्रचुर धन होने से मेरी जिह्वा याचना क्यो करे ? ॥९॥ घर मे धन हो या न हो, जो पिता रूपी वृक्ष की भुजलताओं के आश्रित हैं, उन्हे कोई चिन्ता नहीं होती, क्योंकि यथार्थ रूप सुखी वही है ॥१०॥ परतु, जो बाल्यकाल से ही पितृहीन होकर परिवार के भरण पोषण मे व्यस्त होते हैं, उन्हें विधाता ने सुख से वंचित कर दिया है ॥११॥ आपकी कृपा से मैं अपने पिता के द्वारा प्रदत्त असंख्य धन-रत्नादि को याचकों को देता हूं ॥१२॥ फिर जब अपनी चूड़ामणि के द्वारा आपके चरणारविन्दों का स्पर्श किया है और आपका सग लाभ हुआ तो मुझे नि.सदेह सम्पूर्ण लाभ

होगये है ॥१३॥ ऐसे वचन सुन कर नागराज अपने पुत्रों के हित मे तत्पर उस राजकुमार से बोले ॥१४॥

यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोवाप्तु नतेमनः ।
यदन्यन्मनस प्रीत्यैन्न हितत्तेददाम्यहम् ॥१५
भगवस्त्वत्प्रसादेनप्रार्थितस्यगृहेमम ।
सर्वमस्तिविशेषेणसप्राप्तं तवदर्शनात् ॥१६
कृतकृत्योस्मिचैतेनसफलजीवितमम ।
यदंगसङ्गेषमितस्तवदेवस्यभानुपः ॥१७
ममोत्तमाङ्गेत्वत्पादरजमायदिहास्पदम् ।
कृततेनैवनप्राप्त किमयापन्नगेश्वर ॥१८
यदित्ववश्यदातव्योवरोमेमनसेप्सितः ।
तत्पुण्यकर्मसस्कारोहृदयान्माव्यपैतुमे ॥१९
सुवर्णमणिरत्नादिवाहनगृहभासनम् ।
स्त्रियोन्नपानपुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम् ॥२०
एतेचविविधाभोगागीतवाद्यादिकचयत् ।
सर्वमेतन्ममप्राप्तफलपुण्यवनस्पतेः ॥२१
तस्मान्नरेणतन्मूलसेकेयत्न कृतात्मना ।
कर्त्तव्य पुण्यसक्तानानकिंचिद्भुवि दुर्लभम् ॥२२

स्वर्ण रत्नादि की कामना न होते हुए भी जिससे तुम्हारे अन्तर की प्रीति का सचार हो सके, वह विषय मुझसे कहो, उसे मैं प्रदान करूँगा ॥१५॥ कुवलयाश्व बोले—भगवान् ! मेरे गृह मे आपकी कृपा से सम्पूर्ण प्रार्थनीय वस्तुएँ विद्यमान है, तथा आपका दर्शन लाभ करने से समस्त वस्तुएँ ही मुझे मिल गयी हैं ॥१६॥ आप देवता के अग-सग का लाभ करके मैं अपने को धन्य मानता हू, इससे मेरा जीवन धारण करना भी सफल हुआ है ॥१७॥ हे नागेश्वर ! आपके चरणरज ने मेरे मस्तक पर निवास किया है, इससे मुझे क्या नही प्राप्त हुआ ? ॥१८॥ तो भी यदि आप मुझे इच्छित वर देना चाहते है तो यही दीजिये कि मेरे हृदय से कभी पुण्यकर्म के सस्कार न निकले ॥१९॥ स्वर्ण,

मणि, रत्न, वाहन, घर, आसन, स्त्री, पुत्र, अन्न, रस, माला, अनुलेपन ॥२०॥ तथा गायन वादन आदि सब वस्तुएँ पुरुष का ही फल हैं ॥२१॥ इसलिए कृत चित्त होकर उसी की जड़ सींचनी चाहिये, पुरुष में आसक्त मनुष्यों के लिए पृथिवी में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥२२॥

एवमेवमविष्यत्तिप्राज्ञतवधर्मांश्रितामति ।
सत्यंचैतत्फलंसर्वंधर्मस्योक्तं यथात्वया ॥२३
तथाप्यवश्यमद्गेहमागतेनत्वयाधुना ।
ग्राह्यं यन्मानुषेलोकेदुष्प्रापंभवतोमतम् ॥२४
तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सतदानृपनंदन ।
मुखावलोकनचक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयो ॥२५
ततस्तौप्रणिपत्योभौराजपुत्रस्ययन्मतम् ।
तत्पितुःसकलंवीरौकथयामासतुस्फुटम् ॥२६
तातस्यपत्नीदयिताश्रुत्वेमंविनिपातितम् ।
अत्यजद्दयिताप्राणान्विग्रलब्धादुरात्मना ॥२७
केनापिकृतवैरेणदानवेनकुबुद्धिना ।
गंधर्वराजस्यसुतानाम्नाख्यातामदालसा ॥२८

अश्वतर बोले—ऐसा ही होगा, तुम्हारा मन सदा पुण्य कार्यों में रहेगा, तुम्हारा सब कथन सत्य है, धर्म का एक मात्र फल यही है ॥२३॥ फिर भी जब तुम मेरे गृह पर आये हो तो मर्त्यलोक में जो तुम्हें दुष्प्राप्य हो, वह अवश्य लेना चाहिये ॥२४॥ जड़ बोला—नागराज का वचन सुन कर राजकुमार ने उनके पुत्रों के मुख की ओर देखा ॥२५॥ तब उन दोनों ने अपने पिता को प्रणाम करके राजकुमार की कामना को स्पष्ट रूप से कहा ॥२६॥ दोनों पुत्र बोले—इनकी प्रियतमाने किसी दुरात्मा दानव द्वारा छल पूर्वक इनकी मृत्यु का समाचार पाकर प्राण त्याग किया है ॥२७॥ उस दानव ने शत्रुताबश ही ऐसा किया था, इनकी पत्नी का नाम मदालसा था, वह गंधर्वराज की पुत्री थी ॥२८॥

कृतज्ञोर्यंततस्तातप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ।
नान्याभार्यांभवित्रीमेवर्जयित्वामदालसाम् ॥२९

द्रष्टुताचारुसर्वांगीमयवीरोऋतध्वज ।
तातवाद्यनियन्त्र्यं तन्क्रियतेतत्कृतभवेत् ॥३०
भूतैर्वियोगिनोयोगस्ताद्दृग्रैवताद्दृशः ।
कथमेतद्विनास्वप्नमायावाजत्ररोदिताम् ॥३१
प्रणिपत्यस्थभुजगेन्द्रपुत्र शत्रुजितस्तत ।
प्रत्यूवाचमहात्मानप्रेमलज्जासमन्वित ॥३२
मायामयीमध्यधुनाममतातोमदालसाम् ।
यदिदर्शयतेमन्येपरकृतमनुग्रहम् ॥३३
तस्मात्पश्येहवत्सत्वंमायाचेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्योभवान्गेहेबालोप्यभ्यागतोगुरु ॥३४
आनयामासनागेंद्रोगृहेगुप्तामदालसाम् ।
दर्शयामासचतदाराजपुत्रायतानुभाम् ॥३५

मदालसा के मरने पर, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए इन्होंने प्रतिज्ञा की है कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी नारी को पत्नी नहीं बनाऊँगा ॥२९॥ यह उस सर्वांग सुन्दरी के दर्शन को अत्यंत लालायित है, यदि ऐसा हो सके तो इनका यथार्थ उपकार हो सकता है ॥३०॥ अश्वतर बोले—पंचभूतात्मक देह का वियोग होने पर पूर्ववत् संयोग आसुरी माया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से संभव नहीं है ॥३१॥ यह सुन कर ऋतध्वज ने नागराज को प्रणाम किया और लज्जा सहित कहा ॥३२॥ हे तात ! यदि आप उस मदालसा को माया पूर्वक ही मुझे दिखा सकें तो मैं उसे परम अनुग्रह ही समझूँगा ॥३३॥ अश्वतर ने कहा—हे वत्स ! यदि तुम माया देखना चाहते हो तो अनुग्रह के पात्र होने के कारण देखो, यद्यपि तुम बालक होकर यहाँ आये हो, फिर भी अतिथि होने के कारण गुरु के समान सम्मान के योग्य हो ॥३४॥ नागराज ने यह कह कर घर में छिपी हुई मदालसा को वहाँ बुलाकर राजकुमार को दिखाया ॥३५॥

तेपासमोहनाथंनिजजल्पचतत स्फुटम् ।
सेयनवेतितेभार्यारोजपुत्रमदालसा ॥३६

सदृष्ट्वातांतदातन्वीतत्क्षणाद्विगतत्रप ।
प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन् ॥३७
निवारयामासचतनाग सोश्वतरस्त्वरन् ।
मायेय पुत्रमास्प्राक्षी प्रागेवकथितंतव ॥३८
अ तद्धानमुपैत्याशुमायासस्पर्शनादिभि ।
तत पपातमेदिन्यासतमूर्च्छापरिप्लुत: ॥३९
हाप्रियेतिवदन्सोथचिंतयामासभामिनीम् ।
मोहोममायनोवेतिनालप्रत्ययवानहम् ॥४०
अहोममेत्यहंचेतिबलप्रत्ययमोर्महत् ।
येनाहपातनोरीणाविनाशस्त्र निपातितः ॥४१
ममेतिदर्शितानेनमिथ्यामायेतिविस्फुटम् ।
वाय्वब्बुतेजसांभूमेराकाशस्यचचेष्टया ॥४२

तथा सब को मोहित करने के लिए मधोच्चार पूर्वक मदालसा को दिखाते हुए राजकुमार से कहा—हे वत्स ! तुम्हारी भार्या मदालसा यही है, इसे तुम देखो ॥३६॥ उसे देखते ही राजकुमार लज्जा त्याग कर 'प्रिये' कहते हुए तत्काल उसके सामने पहुचे ॥३७॥ अश्वतर ने उन्हे निषेध करते हुए कहा—हे वत्स ! यह माया है, इसे स्पर्श मत करना, यह मैं पहिले ही कह चुका हूं ॥३८॥ स्पर्शादि से माया तत्काल नष्ट हो जाती है, ऐसा सुन कर ऋतध्वज मूर्च्छित होकर पृथिवी मे गिर पडे ॥३९॥ फिर हा प्रिये ! कहते हुए बोले—क्या मुझे मोह हो गया है अथवा कुछ और बात है, यह बात समझ मे नही आती है ॥४०॥ परतु मुझे बल पूर्वक निश्चय है कि यह मेरी ही है, जिससे मुझे बिना शस्त्र मारा है ॥४१॥ वह मिथ्या माया ही मुझे दिखाई है, अथवा यह वायु, जल, तेज या आकाश की कोई चेष्टा है ? ॥४२॥

तत कुवलयाश्व समाश्वास्यभुजगम ।
कथयामासतत्सर्वमृतसजीवनादिकम् ॥४३
तत प्रहृष्ट प्रतिलभ्यकातांप्रणम्यनागनिजमाजगाम ।
सस्तूयमान स्वपुरतमश्वमारुह्यससैन्यमभ्युपेतम् ॥४४

भृगुणाऽभ्युक्तिपूर्वयोनैरतर्येणमानव ।
वेदपाठफलतेनप्राप्त वैभुविदुर्लभम् ॥४५
सप्राप्नोतिसुखनित्यसर्वकामसमन्वित ।
लोकेचदुर्लभतस्यनास्तिकिञ्चिन्नतीवहि ॥४६

जड बोले—फिर नागराज अश्वतर ने कुवलयाश्व को समझा बुझा कर जिस प्रकार मदालसा को प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ॥४३॥ तब कुवलयाश्वको अपनी भार्या की प्राप्ति से अत्यत आनन्द हुआ और उन्होंने अपने अश्व को स्मरण किया याद करते ही वह अश्व वहाँ आ गया और राजकुमार ने नागराज को प्रणाम कर भार्या सहित घोडे पर बैठ कर अपने नगर को प्रस्थान किया ॥४४॥ जो मनुष्य इस कथा को भक्ति भाव पूर्वक सुनते है, वे वेदपाठ के फल को प्राप्त होते है, यह उपाख्यान पृथिवी मे अत्यन्त दुर्लभ है, इसमे सदेह नही है ॥४५॥ सब कामनाओ की प्राप्ति एव नित्य सुख की प्राप्ति होती है, लोक मे उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नही होता ॥४६॥

२३—मदालसा का पुत्र--उल्लायन

आगम्यस्वपुरसोथपित्रो सर्वमशेषत ।
कथयामासतन्वगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ॥१
ननामसापिचरणौश्वश्रू श्वशुरयो शुभा ।
स्वजनचयथापूर्ववदनाश्लेषणादिभि ॥२
पूजयामासतन्वगीयथान्यायथाक्रय ।
ततोमहोत्सवोजज्ञे पौराणातत्रबभुरे ॥३
ऋतध्वजश्चसुचिरतयारेमेसुमध्यया ।
निर्झरेषुचशैलानानिम्नगापुलिनेषुच ॥४
काननेषुचरम्येषुवनेषुपवनेषुच ।
पुण्यक्षयाच्छमानासापिकामोपभोगत. ॥५

सहतेनातिकालासुरेभेरम्यासुभूमिषु ।
तत कालेनमहताशत्रुजित्सनराधिप ॥६
सम्यक्प्रशास्यवसुधाकालधर्ममुपेयिवान् ।
तत पौरामहात्मानपुत्रतस्यऋतध्वजम् ॥७
अभ्यषिचतराजानमुदाराचारचेष्टितम् ।
सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥८

पुत्र बोला—अपने नगर में पहुँच कर ऋतध्वज ने मृतक मदालसा को जिस प्रकार पुन प्राप्त किया वह सब वृत्तान्त अपने माता-पिता से कहा ॥१॥ कल्याणी मदालसा ने भी अपने सास-श्वसुर के चरणों में प्रणाम पूर्वक ॥२॥ सभी स्वजनों की यथा योग्य वदना, पूजन आदि किया और फिर नगरी में पुरवासियों ने महोत्सव मनाया ॥३॥ तथा राजकुमार ऋतध्वज ने मदालसा के साथ पर्वत, झरने नदी, पुलिन ॥४॥ वन, उपवन आदि में बहुत समय विहार किया, मदालसा भी कामोपभोग द्वारा वासना सहित ॥५॥ सुन्दर कान्ति युक्त ऋतध्वज के साथ विविध मनोहर स्थानों में विहार करने लगी, इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया तब राजा शत्रुजित् ॥६॥ काल धर्म के वशीभूत हो गए और नगर निवासियों ने उनके पुत्र ॥७॥ उदार आचरण वाले ऋतध्वज को राज्य पर बैठाया और वे भी भले प्रकार से प्रजा-पालन में तत्पर हुए ॥८॥

मदालसायां सजज्ञे पुत्र प्रथमजस्तत ।
तस्यचक्रेपितानामविक्रान्तइतिधीमत ॥९
तुतुषुस्तेनवैभृत्याजहासचमदालसा ।
सावैमदालसापुत्रबालमुत्तानशायिनम् ॥१०
उल्लापनच्छलेनाहरुदमानमविस्वरम् ।
शुद्धोसिरेतातनतेस्तिनामकृताचसेकल्पनयाधुनैव ॥११
पचात्मकदेहमिदनतेस्तिनैवास्यत्वरोदिपिकस्यहेतो ।
नवाभवाम्रोदितिवैस्वजन्माशुद्धोयमासाद्यमहीसमूहम् ॥१२
विकल्प्यमानौविविधैर्गुणाश्चभौता सकलेद्रियेषु ।
भूतानिभूतैं परिदुर्बलानिवृद्धिसमायातियथेहपु स. ॥१३

अन्नाबुपानादिभिरेवकल्पयन्तेस्तिवृद्धिर्नचतेस्तिहानि ।
त्वक्चर्मकेशीयमसोनिजेम्मिस्तस्मिन्स्वदेहेमृदलामाबुद्धेथा ॥१४

इसके पश्चात् मदालसा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम 'विक्रान्त' रखा गया ॥९॥ पुत्र होने के कारण भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्न हुए, मदालसा हँसने लगी, उन पुत्र के पाँव पसार कर सोने पर ॥१०॥ अथवा अस्फुट स्वर से रोने पर मदालसा उससे कहती है—हे पुत्र ! तुम नाम विहीन का नाम करण कल्पना से ही हुआ है ॥११॥ तुम इस शरीर को पञ्चभूतात्मक समझो, क्योंकि जैसे यह शरीर तुम्हारा नहीं है, वैसे ही तुम भी इसके नहीं हो, फिर क्यों रोते हो ? यह शब्द भी स्वयं ही प्रकट होता है ॥१२॥ विभिन्न भौतिक गुण अथवा अगुण तुम्हारी इन्द्रियों में है, जैसे अत्यन्त दुर्बल भूतगण भूत की सहायता से ही अन्न जलादि के दान से बढ़ते हैं ॥१३॥ उसके समान तुम्हारी वृद्धि अथवा क्षय नहीं है, यह शरीर तो केवल आच्छादन है, यह तो क्षीण हो जायगा, इसलिए तुम इसके मोह में मत पड़ना ॥१४॥

शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढे कञ्चुकस्तेपिनद्ध ।
तातेतिकिंचित्तनयेतिकिंचिदवेतिकिंचिद्वयितेतिकिंचित् ॥१५
ममेतिकिंचिन्ममेतिकिंचिद्धौतासवद्धुधामालपेथा ।
दुःखानिदुःखापगमायभागान्सुखायजानातिविमूढचेता ॥१६
तान्येवदुःखानिपुनः सुखानिजानातिविद्वानविमूढचेता ।
हासोस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलंयत्कलुषंवसाया ॥१७
कुचादिपीनंपिशितंघनंतत्स्थानंतेकिंनरकोनयोषित् ।
यानाक्षितोयानगतश्चदेहोदेहेपिचान्यपुरुषोनिविष्ट ॥१८
ममत्वमुत्सृज्यनितथायथास्वेदेहेतिमात्रविमूढतेथा ॥१९
त्यजधर्ममधर्मंचउभेसत्यानृतेत्यज ।
उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्त्यज ॥२०

शुभाशुभ कर्म से ही इसका आच्छादन हुआ समझो, पिता, पुत्र, माता, स्त्री अथवा अन्य आत्मीयजन ॥१५॥ अपना कुछ नहीं है, इनका अधिक मान न करना मूढ चेता पुरुष ही दुःख को दुःखनाश का तथा भोगों को सुख का कारण

मानते है ॥१६॥ अविद्या से ही अन्धे हो मोह मे पडे है, वह दुःख को सुख ही मानते है, स्त्री हँसती है तो हड्डी दिखाई पडती है और उसके नेत्रो मे वसा की कलुषता प्रतीत होती है ॥१७॥ उसके स्तनादि भी मांसपिण्ड मात्र है, उनका गुह्य स्थान भी वैसा ही है, तब क्या स्त्री साक्षात् नरक का ही स्वरूप नही है ? पृथिवी मे वात, पात मे शरीर और शरीर मे अन्य पुरुष का निवास है ॥१८॥ जैसी ममता शरीर के प्रति है, वैसी पृथिवी के प्रति भी नही है, यही मूर्खता है, क्योकि शरीर पृथिवी का ही सूक्ष्म अश है ॥१९॥ धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य का त्याग करो, इसे त्यागने के पश्चात् जिससे त्याग किया जाय, उसे भी त्याग दो ॥२०॥

वर्धमानसुतस्यातु राजपत्न्योदिनेदिने ।
तमुल्लापादिनोबोधमनवद्यिर्मलात्मकम् ॥२१
यथायथावलत्लेभेयथालेभेमतिपिते. ।
तथातथात्मबोधञ्चसोवापन्मातृभाषितैः ॥२२
इत्थतयासतनयोजन्मप्रभृतिबोधितः ।
चकाम्नमतिप्राज्ञोगार्हस्थ्यप्रतिनिर्मम ॥२३
द्वितीयोस्या सुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता ।
सुबाहुरयमित्युक्ते साजहासमदालसा ॥२४
तमप्येवयथापूर्वबालमुल्लादवादिनी ।
प्राहबाल्यात्सचप्रापतथाबोधमहामतिः ॥२५
तृतीयस्तनयञ्जान्तन्तराजायाश्रुमर्दनम् ।
यदाहन्तेनसासुभ्रूर्जहासातिचिरंपुनः ॥२६
तथैवसोपितन्वग्याबालस्वादेवबोधित ।
क्रियाश्चकारनिष्कामानकिंचित्फलकारणम् ॥२७
चतुर्थस्यसुतस्याथचिकीर्षुर्नामभूपतिः ।
ददर्शतांशुभाचारामीषद्धासामदालसाम् ॥२८

जड दौला—इस प्रकार यह राजपुत्र दिनो-दिन बढने लगा, रानी मदालसा भी पुत्र को खिलाने के मिस उस स्वच्छ आत्मा वाले पुत्र को ज्ञान ॥२१॥

देने में लगी, क्रम-क्रम करके पुत्र जैसे पिता के द्वारा बल वृद्धि को पाने लगा वैसे ही माता के उपदेश द्वारा आत्मज्ञान भी प्राप्त करने लगा ॥२२॥ जन्म से ही माता से आत्मज्ञान विषयक उपदेश को पाकर ममता दूर हो गई और गृहस्थ धर्म के प्रति राजकुमार निस्पृह हो गये ॥२३॥ कुछ कालोपरान्त मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम पिता ने 'सुबाहु' रखा, मदालसा उस समय भी हँसी ॥२४॥ वह उसे भी उसी प्रकार आत्मबोध देने लगी, इससे उसका मन भी ज्ञान प्राप्त करके विरक्त हो गया ॥२५॥ फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजा ने उसका नाम शत्रुमर्दन रखा, उसे सुन कर मदालसा बहुत देर तक हँसती रही ॥२६॥ वह इसे भी पहिले के समान आत्मज्ञान देने लगी, जिससे यह भी काम-रहित हो गया ॥२७॥ फिर चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नामकरण करने के लिये राजा ने मदालसा की ओर देखा तो वह हँस पड़ी ॥२८॥

तामाहराजाहससीकिंचित्कौतूहलान्वित ।
क्रियमाणेऽसकृन्नाम्निकथ्यतांहास्यकारणम् ॥२९
विक्रान्तश्चसुबाहुश्चयथान्य शत्रुमर्दन ।
शोभनानीतिनामानितानिमन्येकृतानिवै ॥३०
योग्यानिक्षत्रवध्रूनांशौर्यादीपयुतानिच ।
असत्येतानिवैभद्रे यदितेमनसिस्थितम् ॥३१
तदस्यक्रियतांनामचतुर्थस्यसुतस्यमे ।
मयाज्ञाभवत कार्यमिहाराजयथात्थमाम् ॥३२
तन्नानामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते ।
अलर्कइतिधर्मज्ञःख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥३३
कनीयानेषपुत्रोमतिमाञ्श्चभविष्यति ।
तच्छ त्वानामपुत्रस्यकृतमात्रामहीपति ॥३४
अलर्कइत्यसम्बद्ध प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।
भवत्यायदिदनाममत्पुत्रस्यकृतशुभे ॥३५

किमीदृशमसम्बद्धमर्थं कोऽस्यसदालसे ।
कल्पनेयमहाराजकृतामाख्याबहारिकी ॥३६

यह देख कर राजा ने पूछा—कि जब-जब पुत्र होने के पश्चात् नाम-करण के लिये उद्यत हुआ, तब-तब ही तुम हँस पड़ती हो, इसका क्या कारण है ? ॥२९॥ मैंने इन पुत्रों के नाम विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन रखे, यह मेरे विचार से युक्ति सङ्गत ही है, ॥३०॥ क्यों कि क्षत्रियों का नाम शौर्य और वर्य से युक्त होना ही ठीक है, फिर भी तुम्हारे विचार में यह तीनों नाम अयुक्त हों तो ॥३१॥ इस चौथे पुत्र का नाम तुम ही रखो, मदालसा ने कहा— हे महा-राज ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है ॥३२॥ इस लिये मैं आपकी आज्ञानुसार नामकरण करती हूँ, यह पुत्र भूमण्डल में 'अलर्क' नाम से प्रसिद्ध होगा ॥३३॥ आपका यह सबसे छोटा पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान् होगा । परन्तु इस असम्बद्ध नाम को सुन कर ॥३४॥राजा ने हँसते हुए कहा—तुमने जो पुत्र का नाम रखा है ॥३५॥ वह असम्बद्ध है, इस नाम का क्या अर्थ है ? मदालसा ने कहा—हे राजन् ! नामकरण तो केवल लोकाचार और नितान्त कल्पना है ॥३६॥

स्वस्कृतानामधानाम्नाशृणुभूपनिरर्थताम् ।
वदन्तिपुरुषा प्राज्ञाव्यापिनपुरुषसत ॥३७
क्रान्तिश्चगतिरुद्दिष्टादेशाहे शातरन्तुया ।
सर्वगोनप्रयातीहव्यापीदेहेश्वरोयत ॥३८
ततोविक्रान्तसज्ञेय मतामसनिरर्थिका ।
सुबाहुरितियासज्ञाकृतातस्यसुतस्यते ॥३९
निरर्थासाप्यमूर्त्तस्यपुरुषस्यमहीपते ।
पुत्रस्ययस्कृतनामतृतीयस्यारिमर्दन ॥४०
मन्येतन्नाप्यसम्बद्धशृणुवाप्यत्रकारणम् ।
एकएवशरीरेऽस्मिन्वर्षपुरुषोयदा ॥४१
तदास्यराजन्क शत्रु कोवामित्रमिहेष्यते ।
भूतैर्भूतानिमर्द्यन्तेऽमूर्त्तोमर्द्यते कथम् ।४२

नाम रखना है ऐसा समझ कर एक नाम रख लिया, जैसे आपने भी जिन नामों को रखा है, उनका भी कोई अर्थ नहीं है, क्यों कि पण्डितजन आत्मा को सर्वव्याप्त कहते है ॥३७॥ एक देशके अन्य देश में जाने को क्रान्ति कहते है, आत्मा सर्वगत एवं सर्वव्यापी होने से शरीर का ईश्वर है, उसकी गति सम्भव नहीं ॥३८॥ इसीलिये मे विक्रान्त नाम का कोई अर्थ नहीं समझती । हे राजन्! आत्मा तो स्वरूप रहित है, फिर दूसरे पुत्र के सुबाहु नाम का भी ॥३९॥ कोई अर्थ नहीं है और तृतीय पुत्र का अरिमर्दन नाम भी ॥४०॥ मैं निरर्थक ही समझती हूँ, क्यों कि एक आत्मा ही सब शरीरो मे विद्यमान रहता है ॥४१॥ उसका शत्रु मित्र कोई नहीं हो सकता, भूत के द्वारा ही भूत का मर्दन होता है, परन्तु आकार हीन का मर्दन कैसे हो सकता है ? ॥४२॥

क्रोधादीनापृथग्भावात्कल्पनेयनिरर्थिका ।
यदिसव्यवहारार्थमसन्नामप्रकल्प्यते ॥४३
नाम्निकस्मादलर्कास्येनैरर्थ्यंभवतोमतम् ।
एवमुक्तास्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः ॥४४
तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितातथ्यवादिनीम् ।
तत्रापिसासुतसुभ्रूर्यंबापूर्वंसुतास्तथा ॥४५
प्राहावबोधजननंतामुवाचसपार्थिव ।
करोषिकिमिदमूढेममाभावायसन्ततेः ॥४६
दुष्टाबबोधदानेनयथापूर्वंसुतेषुमे ।
यदितेमत्प्रियकार्यमनुग्राह्यं वचोमम ॥४७
तदेन तनय मार्गेप्रवर्त्त सन्नियोजय ।
कर्ममार्गं समुच्छेदनैवदेविगमिष्यति ॥४८
पितृपिंडनिवृत्तिश्चनैवसाध्विभविष्यति ।
पितरोदेवलोकस्थास्तथातिर्यक्त्वमागता ॥४९
तद्वन्ममनुष्यतायातामृतवर्गेषुयेस्थिताः ।
सपुण्यानसनुष्याश्चक्षुत्क्षामास्तृट्परिप्लुतान् ॥५०

क्रोध इत्यादि भाव भी आत्मा से पृथक् ही है, सब प्रकार निर्दोष आत्मा शत्रु का मर्दन नहीं कर सकता, यदि लोकाचार वश ही निरर्थक नाम की कल्पना की जाती है ॥४३॥ तो मेरे द्वारा रखा गया अलर्क नाम किस प्रकार अर्थहीन है ? रानी के ऐसे वचन कहने पर महा बुद्धिमान् राजा ने ॥४४॥ उस सत्यभाषिणी से कहा—तुम्हारा कथन सत्य है, तब मदालसा ने चौथे पुत्र को भी उन तीनों पुत्रों के समान ही ॥४४॥ आत्मज्ञान देने लगी । इस प्रकार राजा ने कहा—तुम यह क्या कर रही हो ? क्या मेरी सन्तान को भावहीन करना चाहती हो ? ॥४६॥ जैसे आत्मज्ञान देकर उन तीनों पुत्रों का अमंगल किया है, क्या वैसा ही इसे करोगी ? यदि तुम मेरा प्रिय करना कर्त्तव्य मानती हो और मेरे वचन का पालन करना उचित समझती हो ॥४७॥ तो इस पुत्र को प्रवृत्ति मार्ग में प्रेरित करो, क्यों कि कर्म में प्रवृत्त करने से कर्म मार्ग का नाश नहीं हो सकता ॥४८॥ ऐसा करने से पिण्ड के लुप्त होने की आशंका नहीं रहेगी, क्यों कि शुभा शुभ कर्म से स्वर्ग प्राप्ति या तिर्यग् योनि को प्राप्त पितरगण ॥४९॥ नरत्व प्राप्त अथवा अन्य योनियों में संक्रमण करते हुए क्षुधा पिपासा से अत्यन्त व्याकुल क्षीण होते हैं ॥५०॥

पिण्डोदकप्रदानेनतर कर्मण्यवस्थित ।
सदाप्यायतेसुभ्रू स्तद्वद्देवातिथीनपि ॥५१॥
देवैर्मनुष्यैं पितृभि प्रेतैर्भूतैं सगुह्यकैः ।
वयोभि कृमिभि कीटैर्नरएवोपजीव्यते ॥५२
तस्मात्त्वमिमेपुत्रयत्कार्यक्षत्रयोनिभिः ।
ऐहिकामुष्मिकायालन्तत्कर्मप्रतिपादय ॥५३
तेनैवमुक्तासासाध्वीवरनारीमदालसा ।
अलर्कनामतनय प्रोवाचोल्लापवादिनी ॥५४
पुत्रवर्द्ध स्वमेभर्त्तुर्मनोनन्दयकर्मभि ।
ऐहिकामुष्मिकफलन्तत्सम्यक्परिपालय ।
मित्राणामुपकारायदुर्हृदांनाशनायच ॥५५

धन्योऽसिरेयोवसुधामशत्रुरेकश्चिरंपालयितासिपुत्र ।
तत्पालनादिद्रसमोपभोग्यधर्म्मफलंप्राप्स्यसिचामरत्वम् ॥५६

उस समय कर्म मार्ग के अवलम्बन से पिण्डोदक द्वारा उनका और उन्हीं के समान देवताओं और अतिथियों का पूजन करते हैं ॥५१॥ क्यों कि देवता, मनुष्य, पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीटादि सभी मनुष्यों के आश्रय में जीवन निर्वाह करते हैं ॥५२॥ इसलिये हे तत्वज्ञी ! क्षत्रियोचित कर्त्तव्य और इहलोक परलोक के फल लाभ के लिये जो उचित है, वही शिक्षा इसे दो ॥५३॥ पति की बात सुन कर मदालसा ने उस पुत्र को खिलाने के मिस कहा ॥५४॥हे पुत्र ! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ, मित्रों के उपकार और शत्रुओं के संहार कर्म द्वारा मेरे स्वामी के हृदय को आनन्दित करो ॥५५॥ हे पुत्र ! तुम धन्य हो, क्यों कि तुम शत्रु रहित होकर दीर्घ काल तक वसुन्धरा का पालन करोगे, जिससे सभी लोकों में सुख का संचार होगा और इस प्रकार परम धर्म संचय करके अमरत्व को प्राप्त होगे ॥५६॥

धरामरान्पर्वसुतर्पयेथा समीहितम्बन्धुपुरंधयेथा ।
हितंपरन्मैहृदिचिंतयेथामन परस्त्रीषुनिवर्तयेथा ॥५७
मदासुरारिहृदिचिंतयेथास्तद्धानतोत्र पडरींश्चयेथा ।
मायाप्रबोधेननिवारयेथाह्यनित्यतामेवविचिंतयेथा ॥५८
अर्थागमावक्षिनिपाञ्जयेथायत्नोर्ज्जनायार्थमपिव्ययेथा ।
परापवादश्रवणाद्विभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथा ॥५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधान्जस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणयवसश्रिताश्च ।
स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारीस्तोषयितासिवीर ।'६०
बालोमनोनन्दयबान्धवानागुरोस्तथाज्ञाकरणे कुमार ।
स्त्रीणायुवासत्कुलभूषणानादृष्ट्वावनेवत्सवनेचरणाम् ॥६१
राज्यंकुर्वन्सुमुदानन्दयेथा साधून्रक्षस्तातयजेंर्यजेथा ।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्येगोविप्रार्थेवत्समृत्युं भजेथा ॥६२

तुम प्रत्येक पर्व दिन में ब्राह्मणों की तृप्ति करो, बन्धुजनों का इच्छित करो और परहित साधन की इच्छा करते हुए, पर नारी में मन मत लगाओ

॥५७॥ सदा भगवान् का ध्यान करते हुए कामादि छै शत्रुओं को वश में करो, ज्ञान के द्वारा माया को दूर करो और विश्व की अनित्यता का सदा ध्यान रखो ॥५८॥ अर्थ प्राप्त करते हुए पाँच वस्तुओं को जीतो और यश के लिये व्यय करो, पर निन्दा से डरो, लोगों को उत्पत्ति सागर से उबारो ॥५९॥ विभिन्न यज्ञानुष्ठानों से देवताओं को, निरन्तर दान से विप्रों को और आश्रितों को प्रसन्न करो, विभिन्न भोगों से स्त्रियों और युद्ध से शत्रुओं को सन्तुष्ट करो ॥६०॥ बाल्यकाल में बांधवों का, कौमारावस्था में आज्ञा पालन द्वारा माता-पिता का, युवावस्था में स्त्री का और वृद्धावस्था में वनवास पूर्वक वनचरों का उपकार करो ॥६१॥ हे वत्स ! तुम राज्य में प्रतिष्ठित हो कर गुरुजनों को आनन्दित करोगे, यज्ञानुष्ठान, गौ, ब्राह्मण और साधुजन की रक्षा के लिये युद्ध में शत्रुओं को जीत कर परलोक गमन करोगे ॥६२॥

२४–राजधर्म कथन

एवमुल्लाल्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने ।
ववृधेवयसाबालोबुद्धयाचालर्कसन्निभ ॥१
सकौमारकमासाद्यचक्रेतत्रैवसुतस्तदा ।
कृतोपनयन प्राज्ञ-पणिपत्याहमातरम् ॥२॥
मगायदम्बकर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकायवै ।
सुखायवदतत्सर्वंप्रश्नयावनतस्यमे ॥३
ममार्थचैवधर्मार्थिप्रजानाचैवयद्धितम् ।
श्रेयसेयच्चतत्सर्वंप्रजारक्षनमादितः ॥४
वत्सराज्याभिषिक्तेनप्रजारक्षनमादित ।
कर्त्तव्यमविरोधेनस्वधर्मश्रमहीभृताम् ॥५
व्यसनानिपरित्यज्यसत्यमूलहराणिवै ।
आत्मारिपुभ्य.सरक्ष्योबहिर्मत्रविनिर्गमात् ॥६

दुष्टादुष्टाश्वजानीयादमात्यानरिदोषत ।
अष्टधानाशमाप्नोतिस्वचक्रात्स्यन्दनाद्यथा ॥७

तथाराजाप्यमन्दिग्धबहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ।
चरैश्चारास्तथाशत्रौरन्वेष्टव्या प्रयत्नत ॥८

पुत्र बोला—माता मदालसा इस प्रकार पुत्र को नित्य प्रति उपदेश देने लगी और वह बालक बुद्धि तथा अवस्था में वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥१॥ कौमारावस्था प्राप्त होने पर अलर्क का यज्ञोपवीत हुआ तब उसने प्रणाम पूर्वक अपनी माता से कहा ॥२॥ हे माता ! इहलोक और परलोक के सुख के लिये मुझे जिस प्रकार का कर्म करना चाहिये उसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥३॥ धर्म, अर्थ प्रजाहित, प्रजापालन से मोक्ष की प्राप्ति आदि का यथा योग्य वर्णन करो मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! राज्याभिषेक होने पर धर्मानुसार प्रजा को सुखी करना ही राजा का प्रथम कर्त्तव्य है ॥४-५॥ सत्य सहित, व्यसनों का त्याग करके, अपना मन्त्र बाहर न जाय इस प्रकार शत्रुओं का तिरस्कार करने के कार्य में प्रवृत्त रह कर शत्रुओं से अपनी रक्षा करो ॥६॥ शत्रुओं के मिलने से अमात्यगण की दुष्टता या स्वामिभक्ति को जाने तथा श्रेष्ठ पहिये वाले रथ से गिरने से जैसे आठ प्रकार का आघात होता है ॥७॥ वैसे ही मन्त्रणा के फूटने पर राजा को प्राप्त होता है, राजा को इसका ज्ञान अवश्य करना चाहिये कि शत्रुओं ने किसी प्रकार अमात्यवर्ग को अपनी ओर तो नहीं मिलारखा है ॥८॥

विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्रामात्यबन्धुषु ।
कार्ययोगादमित्रेषुविश्वसीतनराधिप ॥९
स्थानवृद्धिक्षयज्ञानपाड्गुण्यविदितात्मना ।
भवितव्यनरेन्द्रेणनकामवशप्रवर्तिना ॥१०

प्रागात्ममन्त्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ।
ज्ञयाश्चानन्तरपौराविरुध्येततततोरिभि ॥११
यस्त्वेतानविजित्यैववैरिणोविजिगीषते ।
सोजितात्माजितामात्य शत्रुवर्गेणबाध्यते ॥१२

तस्मात्कामादयः पूर्वंजेया पुत्रमहीभृता ।
तज्जयेहिजयोराज्ञोराजानस्यजितंजित ॥१३
कामं क्रोधञ्चलोभञ्चमदोमानस्तथैवच ।
हर्षञ्चशत्रवोह्येतेनाशायकुमहीभृताम् ॥१४

मित्र, अमात्य या बन्धु किसी का भी विश्वास करना राजा को उचित नहीं, किन्तु समयान्तर देखकर शत्रु का भी विश्वास किया जा सकता है ॥१३॥ राजा काम के वशीभूत न हो, स्थान वृद्धि और क्षय को सदा जाने तथा संधि, विग्रह आदि छ गुणों में बुद्धि से काम ले ॥१०॥ प्रथम स्वयं को, फिर अमात्यों को, भृत्यों को और प्रजाओं को वश में करले तब शत्रुओं से विग्रह करे ॥११॥ जो पहिले आत्मा पर विजय प्राप्त किये बिना ही शत्रु को जीतने की इच्छा करे, वह राजा अमात्यगणों द्वारा वश में कर लिया जाता है और शत्रुओं से पराजित होता है ॥१२॥ हे वत्स ! इसीलिए सर्व प्रथम कामादि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, उन्हें जीतने से सभी पर विजय मिलती है, जो राजा कामादि के वशीभूत होता है, वह नष्ट हो जाता है ॥१३॥ काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष यही शत्रु राजा के नाश के कारण है ॥१४॥

कामप्रसक्तमात्मानंस्मृत्वापाद्रु निपातितम् ।
निवर्त्तयेत्ततःक्रोधादनुह्लादहतात्मजम् ॥१५
हतमैलतथालोभान्मदाद्वै नहिजैहैतम् ।
मानादनायुष पुत्रहृतहुर्पात्पुरंजयम् ॥१६
एभिर्जितैर्जितसर्वंमरुत्तेनमहात्मना ।
स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्दोषाञ्चमहीपति ॥१७
काककोकिलभृंगानांवकव्यालशिखंडिनाम् ।
हंसकुक्कुटलोहानांशिक्षेतचरितंनृप ॥१८
कौशिकस्याक्रियाकुर्याद्विपक्षेमनुजेश्वर ।
चेष्टांपिपीलिकानांचकालेभूप प्रदर्शयेत् ॥१९
ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगानांबीजचेष्टांचशाल्मले ।
चंद्रसूर्यस्वरूपंचनीत्यर्थंपृथिवीक्षिता ॥२०

बधकीपशरभ्रूलिकागुर्विणीम्लनात् ।
एवमाख्याचभेदेनप्रदानेनचपार्थिव ॥२१

काम के वशीभूत होकर ही राजा पाण्डु नाश को प्राप्त हुए, क्रोध के वश में होने से अनुह्लाद को पुत्र धन से वंचित रह जाना पड़ा ॥१५॥ लोभ के वशीभूत हुए ऐल नष्ट होगए, मद के वश में पड़ कर वेन ब्राह्मणों द्वारा नष्ट हुए,अभिमान के कारण अनायु का पुत्र हुए हुआ और हर्ष के कारण पुरञ्जय का मरण हुआ ॥१६॥ परन्तु राजा मनुष्य ने इन सभी शत्रुओं को जीत कर अखिल विश्व को वश में कर लिया, इन सब बातों के स्मरण पूर्वक सभी दोषों का परित्याग करना चाहिए ॥१७॥ काक, कोकिल, भौंरा, मृग, बछड़ा, मोर, हंस, कुक्कुट और लोहे से शिक्षा लेनी चाहिए ॥१८॥ शत्रु के प्रति उलूक जैसा कोई आडम्बर न करके शत्रुओं को नष्ट करे, क्योंकि शत्रुओं के प्रति भी उचित व्यवहार करना चाहिये, पिपीलिका के समान अवसर समय सञ्चय करे ॥१९॥ राजा को अग्नि की चिंगारी और छोटी बीज के समान व्यापक होने वाला होना चाहिए, वह सूर्य और चन्द्रमा के समान राजनीति के प्रयोग पूर्वक पृथिवी को देखने वाला हो ॥२०॥ व्यभिचारिणी, कमल, आरम्भ, चूल्हिका, गुर्विणीभ्रमण तथा गोपाङ्गना इन सबसे राजा शिक्षा ग्रहण करे ॥२१॥

दण्डेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थंपृथिवीक्षिता ।
प्रज्ञानृपेणवादेयास्तथाचण्डालयोषितः ॥२२
शक्रार्कयमसोमानामतद्वायोर्महीपतिः ।
रूपाणिपञ्चकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ॥२३
यथेन्द्रश्चतुरोमासान्वार्योधिरगवभूतलम् ।
आप्याययेत्तथालोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥२४
मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ।
सूक्ष्मैर्गुणैस्तथाभ्युपायेनतथाकुलकादिनानृप ॥२५
यथायमःप्रियद्वेष्यौप्राप्तेकालेनियच्छति ।
तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टेसमोभवेत् ॥२६

पूर्णेदुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनर ।
एवयत्नप्रजा सर्वानिवृ तास्तच्छशिव्रतम् ॥२७
मारुत सर्वभूतेषुनिगूढश्चरतेयथा ।
एवचरेन्नृपश्चारै पौरामात्यारिवधुषु ॥२८

नीति पूर्वक दण्ड से पृथिवी का पालन करे, चारुदान स्त्री से बुद्धि प्राप्त करे, क्योंकि वह किसी प्रकार के व्यवहार से विमुख नहीं होती ॥२२॥ इन्द्र, सूर्य, यम चन्द्रमा और वायु के अनुरूप आचरण करके पृथिवी का पालन करे ॥२३॥ जैसे इन्द्र चार मास वृष्टि करके पृथिवी के प्राणियों को तृप्त करते है, वैसे ही राजा दानादि के द्वारा सबको प्रसन्न करे ॥२४॥ जैसे किरणों के द्वारा सूर्य आठ मास जल का शोषण करते है, वैसे ही सूक्ष्म रीति से राजा कर आदि ले ॥२५॥ जिस प्रकार यम काल आने पर प्रिय अथवा द्वेषी सभी को समान रूप से ग्रहण करते है वैसे ही राजा भी समदर्शी हो ॥२६॥ पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जैसे सब जीव प्रसन्न होते है, वैसे ही राजा के आचरण से प्रजा प्रसन्न रहे ऐसा प्रयत्न करे, जिस प्रकार वायु सब भूतों मे गुप्त रहकर विचरण करता है, वैसे ही गुप्त रीति से राजा भी अमात्य, बांधव और प्रजाजन के चरित्रादि पर दृष्टि रखे ॥२८॥

नलोभार्थैर्नकामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्यमानसम् ।
पदार्थैःक्रुष्यतेधर्मात्सराजास्वर्गमृच्छति ॥२९
उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् ।
य करोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ॥३०
वर्णाश्रमानसीदतियस्यराष्ट्रे तथाश्रमा ।
राज्ञस्तस्यसुखतातपरत्रेहचशाश्वतम् ॥३१
एतद्राज्ञ परकृत्यंतथैतद्वृद्धिकारणम् ।
स्वधर्मस्थापननृणाचाल्यतेनकुबुद्धिभिः ॥३२
पालनेनैवभूतानाकृतकृत्योमहीपतिः ।
सम्यक्पालयिताभागधर्मस्याप्नोतिवैयतः ॥३३

एवमाचरतोराजाचातुर्वर्ण्यस्यरक्षणम् ।
ससुखीविहरत्येषशक्रस्यैतिसलोकताम् ॥३४

जिस राजा का मन लोभ, अर्थ, काम अथवा अन्य किसी भी कारण से आकृष्ट नहीं होता, उसी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥२९॥ मूढ, कुमार्गी, धर्म से विचलित व्यक्तियों को स्वधर्म पर लाने वाला राजा अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त होता है ॥३०॥ हे पुत्र ! जिसके राज्य में वर्णाश्रम धर्म नाश को प्राप्त नहीं होते, वह राजा इहलोक-परलोक दोनों में निरन्तर सुख भोगता है ॥३१॥ राजा का कर्त्तव्य है कि वह बुद्धिमानों के परामर्श से सदा कार्य करे और सभी को अपने-अपने धर्म में लगाये रखे, इसी में राजा की सिद्धि होती है ॥३२॥ जिस प्रकार प्रजा के भले प्रकार पालन करने से राजा कृतकृत्य होता है, वैसे ही उसको धर्मशक्ति की भी प्राप्ति होती है ॥३३॥ इस प्रकार जो राजा चारों वर्णों की रक्षा में नियम पूर्वक लगा रहता है, वह इहलोक में अत्यन्त सुख पूर्वक विहार करता हुआ अन्त में इन्द्र के सालोक्य को प्राप्त होता है ॥३४॥

२५—वर्णाश्रम धर्म कीर्तन

तन्मातुर्वचनश्रुत्वासोलर्कोमातरंपुन ।
पप्रच्छवर्णधर्माश्चधर्मान्येचाश्रमेषुच ॥१
कथितोयमहाभागेराज्यतन्त्रश्रितस्त्वया ।
मत्तधर्मोहमिच्छामिश्रोतु वर्णाश्रमात्मकम् ॥२
दानमध्ययनंयज्ञोब्राह्मणस्यत्रिधोदित ।
धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्तिधर्मस्तस्यापदविना ॥३
याजनाध्यापनेशुद्धस्तथापुत्रप्रतिग्रह ।
एतत्सम्यक्समाख्यातत्रितयंचास्यजीविका ॥४
दानमध्ययनंयज्ञा क्षत्रियस्याप्यत्रिधा ।
धर्मप्रोक्त क्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ॥५

दानमध्ययनंयज्ञोवैश्यस्यापित्रयंवद ।
वाणिज्यंपशुपाल्यंचकृषिश्चैवास्यजीविका ॥६
दानंयज्ञोथशूद्रस्यपाद्विजातीनांत्रियामया ।
व्याख्यात शूद्रधर्मोपिजीविकाकारुकर्मजा ॥७
तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणक्रयविक्रये ।
वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ता श्रूयतामाश्रमाश्रया ॥८

पुत्र ने कहा—अलर्क जननी के इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रम धर्म का विषय पूँछने लगा ॥१॥ अलर्क ने कहा—हे महाभाग ! तुमने राज धर्म का तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्ण धर्म और आश्रम धर्म सुनने की इच्छा करता हू ॥२॥ मदालसा बोली, हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मण के धर्म है इनके अतिरिक्त चौथा धर्म और कुछ नही है अन्य धर्म उसके पक्ष मे आपत्ति मे है ॥३॥ शुद्धता पूर्वक यज्ञ कराना, अध्यापन और पवित्र भाव से प्रतिग्रह, यह तीन कर्म ही ब्राह्मणो की जीविका के साधन है ॥४॥ दान, यज्ञ और अध्ययन, यह तीन कर्म क्षत्रियो के कर्त्तव्य रूप है तथा पृथिवी पालन और अस्त्राभ्यास उनकी जीविका के साधन है ॥५॥ दान,अध्ययन और यज्ञ यह तीन धर्म वैश्यो के है तथा पशु-पालन, वाणिज्य और खेती यह उनकी जीविका के साधन है ॥६॥ शूद्र के कर्म दान, यज्ञ और तीनो जाति की सेवा करना, यह तीन है, तथा कारु कर्म ॥७॥ ब्राह्मण-सेवा, पशु-पालन और क्रय-विक्रय उनकी जीविका के साधन है, यह वर्णों का धर्म मैंने कहा है, अब आश्रम धर्म श्रवण करो ॥८॥

स्ववर्णधर्मात्सिद्धिनर प्राप्नोतिनच्युतः ।
प्रयातिनरकंप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥९
यावत्तुनोपनयनं क्रियतेद्विजजन्मनः ।
कामचेष्टोक्तिभक्षस्तुतावद्भवतिपुत्रक ॥१०
कृतोपनयन सम्यग्ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे ।
वसेततश्चधर्मोस्यंकथ्यतेतन्निबोधमे ॥११

स्वाध्यायोऽग्निशुश्रूषास्नानभिक्षाटनस्तथा ।
गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वदा ॥१२
गुरो कर्मणि-नोद्योग सम्यक्प्रीत्युपपादकः ।
तेनाहूत पठेच्चैवतत्परोनान्यमानस ॥१३
एकद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोवरादत्त्वादक्षिणागुरवेतन ॥१४

अपने-अपने धर्म का पालन करने से ही सब सिद्धियों की प्राप्ति सम्भव है, दूसरी जाति वाले के धर्म पर चलने से स्वधर्म की हानि होती है और नरक की प्राप्ति होती है ॥९॥ हे व्रत ! द्विजातियों का जब तक उपनयन संस्कार न हो, तभी तक वे स्वेच्छा से व्यवहार, आहार और आलापादि में प्रवृत्त हो सकते हैं ॥१०॥ उपनयन संस्कार के सम्पन्न होने के पश्चात् ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरु के पास रहें, इस समय जिस धर्म का आचरण करना चाहिये, उसे सुनो ॥११॥ स्वाध्याय, अग्नि शुश्रूषा, स्नान, भिक्षाटन करके पहिले गुरु को भोजन करावे फिर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे ॥१२॥ गुरु के कार्य में सदैव तत्पर रहना तथा इनके सन्तोष और आदेश के अनुसार कार्य करना तथा अनन्य चित से अध्ययन करना ब्रह्मचारी का परम कर्तव्य है ॥१३॥ गुरु के मुख से एक, दो अथवा चारों वेदों को पढ़कर उनकी चरण-वन्दना करे और आज्ञा लेकर दक्षिणा दे ॥१४॥

गार्हस्थ्याश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमंवापिचतुर्थंवेच्छयात्मन ॥१६
तथैववाकुरुगेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतंविना ॥१७
शुश्रूषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंवसेत् ।
उपावृत्तस्ततस्तस्मादृगृहस्थाश्रमंकाम्यया ॥१७
ततोऽनुरूपांकुलजातुल्यभार्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यंगागृहस्थाश्रमकारणात् ॥१८

स्वकर्मणाधनलब्ध्वा पितृदेवातिथीस्तथा ।
सम्यक्संप्रीणयेद्भुक्त्वापोषयेच्चाश्रितास्तथा ॥१९
भृत्यात्मजाज्ञामयोयद्दीनांधपतितानपि ।
यथाशक्त्यन्नदानेनबयासिपवावस्तथा ॥२०
एषधर्मोगृहस्थस्यऋतावभिगमस्तथा ।
पञ्चयज्ञविधानंतुयथाशक्तिनहापयेत् ॥२१

इसके पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहे तो विवाहादि कार्य करे, अन्यथा अपनी इच्छा के अनुसार वानप्रस्थ या चतुर्थाश्रम में प्रवेश करे ॥१५॥ अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरु के घर पर ही रहे, गुरु न हो तो उनके पुत्र अथवा शिष्य के पास निवास करे ॥१६॥ सदा सेवा-परायण रहे तथा अभिमान को पास न आने दे, इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, अथवा गुरु के घर से निकल कर गृहस्थाश्रम की इच्छा करे तो ॥१७॥ अपने अनुरूप कन्या देख-कर उसका पाणिग्रहण करे, वह कन्या समान गोत्र की, रोगी और विकलांगी न हो ॥१८॥ अपने विहित कर्म द्वारा न्याय पूर्वक धन का उपार्जन करे और भक्ति पूर्वक पितर, देवता और अतिथि को तृप्त करने का प्रयत्न करे तथा आश्रितों का भले प्रकार पालन करे ॥१९॥ भृत्य, पुत्र, दीन, अन्धा, पतित आदि को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नादि देकर उनका सदा पोषण करना चाहिये ॥२०॥ स्त्री सहगमन केवल ऋतुकाल में ही करे, शक्ति के अनुसार पञ्च यज्ञ करे, यह गृहस्थ का धर्म है ॥२१॥

पितृदेवा तिथिज्ञातिभुक्तशेषस्वयं नर ।
भुंजीतचसमभृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥२२
एषतूद्देशतः प्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ।
वानप्रस्थस्यधर्मंतेकथयाम्यवधार्यताम् ॥२३
अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचात्मनः ।
वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मन शुद्धिकारणात् ॥२४
तत्रारण्योपभोगैश्चतपोभिश्चात्मकर्षणम् ।
भूमौशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रिया ॥२५

पितृदेवा तिथिज्ञातिभुक्तशेषस्वयं नर ।
भुंजीतचसमभृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥२२
एषतूद्देशतः प्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ।
वानप्रस्थस्यधर्मंतेकथयाम्यवधार्यताम् ॥२३
अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचात्मनः ।
वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मन शुद्धिकारणात् ॥२४
तत्रारण्योपभोगैश्चतपोभिश्चात्मकर्षणम् ।
भूमौशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रिया ॥२५

होमस्त्रिषवणस्नानजटावल्कलधारणम् ।
मौनादिकरणं चैवनन्यस्नेहनिषेवणम् ॥२६
इत्येषपापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारक ।
वानप्रस्थाश्रमस्तमाद्भिक्षोस्तुचरमोपर ॥२७
चतुर्थीयस्यस्वरूपतुश्रूयतामाश्रमस्यमत् ।
यश्चधर्मोस्यधर्मज्ञै प्रोक्तस्तातमहात्मभि ॥२८

यथा सामर्थ्य पितरो, देवताओ, अतिथियो और जाति वालो को भोजन कराने के पश्चात् भृत्यो के सहित स्वय उस बचे हुए अन्न का भोजन करे ।२२। यह गृहस्थाश्रम धर्म सक्षिप्त रूप मैंने कहा है, अब वानप्रस्थ धर्म को कहती हू, उसे सावधान चित्त से श्रवण करो ॥२३॥ बुद्धिमान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह धन सन्तानादि की सम्पन्नता और अपने शरीर की अवनति को देखकर आत्म शुद्धि के लिये वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करे ॥२४॥ वहाँ फल, मूलादि का आहार करे और तपस्या का आचरण करके आत्मोत्कर्ष का सम्पादन करे, पृथिवी मे शयन, ब्रह्मचर्य-पालन तथा पितर, देवता और अतिथि की सेवा, ॥२५॥ हवन त्रिकाल सध्या मे स्नान, जटा-वल्कल का धारण, मौन, योगाभ्यास तथा स्नेह सेवन पूर्वक रहे ॥२६॥ इस प्रकार पाप के शोधन और आत्मा के उत्कर्ष के लिये वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करे, इस आश्रम के पश्चात् भिक्षु नाम का एक अन्य चरम आश्रम है ॥२७॥ हे पुत्र ! इस चतुर्थाश्रम का जो स्वरूप धर्मज्ञाता महात्मा पुरुषो द्वारा निरूपित किया है, उसे कहती हूँ, श्रवण करो ॥२८॥

सर्वसगपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपता ।
जितेन्द्रियत्वमावासेनैकस्मिन्वसतिश्चिरम् ॥२९
अनारभस्तथाहारेभिक्षान्नमेकालिकम् ।
आत्मज्ञानावबोधश्चतथात्मावलोकनम् ॥३०
चतुर्थेत्वाश्रमेधर्मोमयायतेनिवेदित ।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणामथो शृणु ॥३१
सत्यशौचमहिसाच अनसूयातथाक्षमा ।
आनृशस्यमकार्पण्यसतोषश्चाष्टमोगुण. ॥३२

एतेसक्षेपत प्रोक्ताधर्मावर्णाश्रमेषुच ।
एतेषुनित्यधर्मेषु नित्यतिष्ठेत्समततत ॥३३
सयातिब्रह्मलोकेहियावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
यश्चोल्लङ्घ्यस्वकंधर्मस्वयंवर्णाश्रमसंज्ञितम् ॥३४
नरोन्यथाप्रवर्त्तेतसदण्ड्योभूभृतोभवेत् ।
येचस्वधर्मंसत्यागात्पापंकुर्वंतिमानवा ॥३५
उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तंप्रयात्यघ ।
तस्माद्राज्ञाप्रयत्नेनसर्ववर्णा स्वधर्मत ॥३६
प्रवर्त्यन्तेन्यथादण्ड्या स्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ॥३७

सर्व संग का त्याग करे, क्रोध–रहित, इन्द्रिय संयम, ब्रह्मचर्य आदि के पालन पूर्वक भ्रमणशील रहे, बहुत दिनों तक एक स्थान में न रहे ॥२९॥ कर्म का विसर्जन, भिक्षा में प्राप्त अन्न का केवल एकबार भोजन, आत्मज्ञान की कामना और आत्म दर्शन यह सब चतुर्थाश्रमी को करना चाहिये ॥३०॥ चतुर्थाश्रम के जो धर्मानुष्ठान कर्त्तव्य है, वह तुमसे कह दिया, अब अन्यान्य वर्णाश्रमों के साधारण धर्म को तुमसे कहती हू, उसे सुनो ॥३१॥ सत्य, शौच, अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशंस्य,अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सभी वर्णाश्रमों का साधारण धर्म माना गया है ॥३२॥ इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म का मैंने तुमसे संक्षिप्त वर्णन किया है, सभी को अपने–अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना कर्त्तव्य है ॥३३॥ अपने धर्म में दृढ रहने वाला मनुष्य तब तक ब्रह्मलोक में निवास करता है, जब तक कि चौदह इन्द्रों का पतन नहीं होजाता और जो अपने वर्णाश्रम धर्म का उल्लघन करके ॥३४॥ अन्य के धर्म को ग्रहण करता है, वह राज–दण्ड का भागी होता है अथवा जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग कर पाप–कर्म करता है ॥३५॥ उसे यदि राजा दण्ड नहीं देता तो वह राजा अपने इष्टापूर्त्त को नष्ट करता है, इसलिये राजा का कर्त्तव्य है कि वह सभी वर्णों को अपने–अपने धर्म में स्थित करे ॥३६॥ और जो इसके विरुद्ध आचरण करे उसे दण्ड देकर अपने कर्म में लगावे ॥३७॥

२६—गार्हस्थ्यधर्म-निरूपण

यत्कार्यपुरुषेरोहगार्हस्थ्यमनुवर्त्तता ।
बन्धश्चस्यादकरणेक्रियायाश्चस्यवोच्छिति ॥१
उपकारायबन्नृणांवत्सवर्ज्यगृहेसताम् ।
यथाचक्रियतेतन्मेयश्चायत्पृच्छतोवद ॥२
वत्सगार्हस्थ्यमास्थायनर सर्वमिदजगत् ।
पुष्णातिततस्तेलोकाश्चसजयत्यभिवाछितान् ॥३
पितरोमुनयोदेवाभूतानिमनुजास्तथा ।
कृमिकीटपतगाश्चवयांसिपशवोऽसुरा ॥४
गृहस्थमुपजीवंतिततस्तृप्तिप्रयांतिच ।
मुक्त्वास्यंनिरीक्षंतेऽपिनोदास्यंतीतिचं ॥५
सर्वस्याधारभूतेयवत्सधेनुस्वयीमयी ।
यस्याप्रतिष्ठितं विश्वंविश्वहेतुश्चयामता ॥६

अलर्क ने कहा—गृहस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष अपने जिस कर्त्तव्य को न करके बन्धन और कर्त्तव्य को करके मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१॥ और जो मनुष्यों के उपकार का कारण तथा वर्जन के योग्य कर्त्तव्य है, वह सभी जानने को मैं उत्कंठित हूँ, मुझे विस्तार सहित वह सब विषय बताओ ॥२॥ महालसा ने कहा—हे पुत्र ! गृहस्थाश्रम में स्थित मनुष्य सभी प्राणियों का पालन करता है और उसी पुण्य के बल से उसे इच्छित लोकों की प्राप्ति होती है ॥३॥ पितर, ऋषि, देवता, भूत, मनुष्य, कृमि, कीट, पतङ्ग, पक्षी, पशु, असुर वह सभी गृहस्थाश्रम से ही अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, इसी आश्रम से उनकी तृप्ति होती है, क्योंकि वे सब अन्न के लिये गृहस्थ के मुख को ताकते रहते हैं ॥४-५॥ हे पुत्र ! वेदमयी धेनु के रूप में गृहस्थ ही सबका आश्रय स्थान है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड इसी धेनु में प्रतिष्ठित है, क्योंकि यही धेनु ब्रह्माण्ड की कारण रूपा है ॥६॥

ऋक्पृष्ठासौयजुर्मध्यासावक्त्रशिरोधरा ।
इष्टापूर्तविषाणाचसाधुसूक्ततनूरुहा ॥७
शान्तिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ।
आजीव्यमानाजगतासाश्रयानापचीयते ॥८
स्वाहाकार स्वधाकारोवषट्कारश्चपुत्रक ।
हुतकारस्तथैवान्यस्तस्या स्तनचतुष्टयम् ॥९
स्वाहाकारस्तनंदेवा पितरश्चस्वधामयम् ।
मुनयश्चवषट्कारदेवभूतसुरेतरा ॥१०
हुतकारमनुष्याश्चपिवतिसततस्तनम् ।
एवमाप्याययत्येषादेवादीनखिलास्त्रयी ॥११
एतद्वत्सचतुष्कतुनरस्तनचतुष्टये ।
ननियुञ्ज्याद्यथाकालतेनस्युस्तेविमानिता ॥१२
देवादीनखिलान्येषुसतर्पयतिमानव ।
तेषामुच्छेदकर्त्तायं पुरुषोत्यतपापकृत् ॥१३

इस धेनु की पीठ ऋग्वेद, मध्य यजुर्वेद, मुख सामवेद और ग्रीवा इष्टापूर्त है, साधु सूक्त रोम ॥७॥ शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र तथा वर्णाश्रम ही प्रतिष्ठा है, यह धेनु कभी क्षीण नहीं होती, सम्पूर्ण विश्व को आश्रय रूप होकर जीवन धारण करती हुई भी यह धेनु कभी क्षय को प्राप्त नहीं होती ॥८॥ इस धेनु के स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार, और हुतकार यह चार स्तन है ॥९॥ इन चार स्तनो मे देवता स्वाहाकार, पितर स्वधाकार, मुनि वषट्कार और इनसे इतर ॥१०॥ मनुष्यगण हुन्तकार रूप स्तन को पीते है, इस प्रकार हे वत्स ! यह धेनु ही सब की तृप्ति को सम्पादित करने वाली है ॥११॥ इन चार स्तनों को वह चार योनि वाले पान करते है जो यथा समय नियुक्त न हो तो इस धेनु की अवमानता होती है ॥१२॥ जिसके द्वारा मनुष्य-गण सब देवता इत्यादि की तृप्ति करने मे समर्थ होते है, उसके नष्ट करने मे प्रयत्नशील व्यक्ति महापापी होता है ॥१३॥

सप्तमस्वधतामिस्रे तमिस्रे चनिमज्जति ।
यस्त्वेतामानवोधेनु स्ववत्सैरमरादिभि. ॥१४
प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोपपद्यते ।
तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥१५
भूतानिचानुदिवसंपोष्याणिस्वतनुर्यथा ।
तस्मात्स्नात शुचिर्भूत्वादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥१६
प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहित ।
सुमनोगधधूपैश्चदेवानभ्यर्च्यमानत्र ॥१७
ततोग्नेस्तर्पणकुर्याद्दद्याच्चबलिमित्यथ ।
ब्रह्मणेगृहमध्येतुविश्वे देवेभ्यएवच ॥१८
धन्वतरिसमुद्दिश्यप्रागुदीच्याबलिक्षिपेत् ।
प्राच्याशक्राययाम्यायायमायबलिमाहरेत् ॥१९
प्रतीच्यावरुणायाथसोमायोत्तरतोबलिम् ।
दद्याद्धात्रविधात्रेचबलिद्वारेगृहस्यच ॥२०
अर्यम्णेथबहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमंतत ।
नक्त चरेभ्योभूतेभ्योबलि प्राकाशतोहरेत् ॥२१

तथा उसे अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक नरको की प्राप्ति होती है, इस धेनु के वत्सो को जो मनुष्य यथा समय ॥१४॥ उपर्युक्त प्रकार से स्तन पान करता है, वह देवलोकको जाता है, इसलिये अपनी यथाशक्ति देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य ॥१५॥ तथा भूतो का पोषण करना चाहिये, इसलिये स्नान से पवित्र होकर सावधान चित्त से देवता, पितर, ऋषि ॥१६॥ और प्रजापति का उदकदान पूर्वक तर्पण करे तथा चन्दन, गध और धूपादि के द्वारा देवार्चन करे ॥१७॥ फिर अग्नि तर्पण करके बलि प्रदान करे, घर मे ब्रह्म और विश्वे-देवा को ॥१८॥ तथा धन्वन्तरि को पूर्व और उत्तर दिशा मे बलि दे, इन्द्र को पूर्व मे, यम को दक्षिण मे ॥१९॥ वरुण को पश्चिम मे और सोम को उत्तर मे बलि देनी चाहिये तथा गृहद्वार मे धाता और विधाता को बलि दे ॥२०॥ अर्यमा

को घर की बाहरी भाग में सब ओर से बलि दे तथा निशाचर और भूतों के लिये आकाश मार्ग में बलि दे ॥२१॥

पितृणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुख स्थित ।
गृहस्थस्तत्परोभूत्वासुसमाहितमानस ॥२२
ततस्तोयमुपादायतेषामाचमनायवै ।
स्थानेषुनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवता ॥२३
एवगृहबलिकृत्वागृहेगृहपतिःशुचि ।
आप्ययनायभूतानांकुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥२४
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चाविपेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्सायप्रातरुदाहृतम् ॥२५
आचम्यचतत.कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ।
मुहूर्तस्याष्टमभागमुदीक्ष्योह्यातिथिर्भवेत् ॥२६
अतिथितत्रसप्राप्तमन्नाद्येनोदकेनच ।
सपूजयेद्यथाशक्तिमधपुष्पादिभिस्तथा ॥२७

पितरों के निमित्त बलि प्रदान करने के लिए गृहस्थ को दक्षिण की ओर मुख करके बैठना चाहिये, फिर सावधानी से एकाग्र चित्त होकर ॥२२॥ आचमन के लिये जल लेकर उस-उस स्थान में उस-उस देवता के निमित्त जल दे ॥२३॥ गृहस्वामी इस प्रकार से बलि दे और पवित्र भाव से भूतों की तृप्ति के लिये आदर पूर्वक उत्सर्ग कार्य को सम्पन्न करे ॥२४॥ श्वान, श्वपच और पक्षी के लिए भूमि में बलि दे, यही वैश्वदेव बलि कही गई है, यह बलि प्रातः काल और सायंकाल देने का विधान है ॥२५॥ इस प्रकार गृहस्थ वैश्वदेव बलि देकर आचमन करे और फिर द्वार को देखे तथा मुहूर्त्त के आठवें भाग तक अतिथि की प्रतीक्षा करे ॥२६॥ अतिथि के आगमन पर यथाशक्ति अन्न, जल, गंध पुष्पादि से उसका सत्कार करे ॥२७॥

नमित्रमतिथिंकुर्याच्चैकग्रामनिवासिनम् ।
अज्ञातिकुलनामानतत्कालसमुपस्थितम् ॥२८

बुभुक्षुर्भागतश्रान्तयाचमानमकिंचनम् ।
ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्य शक्तितो बुधैः ॥२९
नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायंचापिपंडितः ।
शोभनंशोभनाकारंतमन्येतप्रजापतिम् ॥३०
अनित्यहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थाद्दृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥३१
तस्यादत्त्वातुयोभुंक्ते स्वयंकिल्बिषभुङ्नरः ।
सपापकेवलंभुंक्ते पुरीषंचान्धजन्मनि ॥३२
अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ।
सदत्त्वादुष्कृतंतस्मैपुण्यमादायगच्छति ॥३३
अप्यबुशाकदानेनयज्ञाप्यश्रांतिसस्वयम् ।
पूजयेतनरःशक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ॥३४
कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ।
पितॄनुद्दिश्यविप्राञ्चभोजयेद्वाप्रमेववा ॥३५

अपने मित्र अथवा ग्राम में रहने वाले को अतिथि न माने, जो पुरुष उसी समय आया हुआ हो और जिसका कुल, गोत्र, नाम इत्यादि ज्ञात न हो ॥२८॥ और यथार्थ रूप से भोजन की इच्छा से आया हो, जिसके पास कुछ भी न हो, श्रम से थका हुआ हो, ऐसा ही ब्राह्मण अतिथि कहा गया है, ऐसे ही अतिथि का यथाशक्ति पूजन करे ॥२९॥ बुद्धिमान् गृहस्थ उस अतिथि का गोत्र, वेद, स्वाध्याय आदि किसी भी विषय का प्रश्न न करे, वह सुन्दर या कुरूप जैसा भी हो, उसे साक्षात् प्रजापति स्वरूप ही समझे ॥३०॥ नित्य न रहने वाले को ही अतिथि की तृप्ति न करने पर गृहस्थ मनुष्य के ऋण से नहीं छूटता ॥३१॥ इसलिये जो गृहस्थ अतिथि को भोजन कराये बिना, स्वयं ही भोजन कर लेता है वह पाप का भोगने वाला होता है, उसे अन्य जन्म में भोजन के निमित्त विष्ठा की प्राप्ति होती है ॥३२॥ जिसके गृहस्थ के घर से जो अतिथि विमुख लौटता है वह उस गृहस्थ के पुण्य को लेकर अपने पाप को उसे दे जाता है ॥३३॥

पूजन करे ॥३४॥ नित्य प्रति अन्न जल आदि के द्वारा पितरों के निमित्त श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥३५॥

अन्तस्थाग्र तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ।
भिक्षाचर्याचितादद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ॥३६

ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्र ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्र चतुर्गुणप्राहुर्हुतकारद्विजोत्तमा. ॥३७
भोजनहृतकारवाग्र भिक्षामथापिवा ।
अदत्त्वातुनभोक्तव्ययथाविभवमात्मन ॥३८

पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बधू स्तथार्थिन ।
विकलान्बालवृद्धाश्चभोजयेच्चातुरास्तथा ॥३९
याच्ञतेश्नुत्परीतात्मायच्चान्योन्नमकिंचन: ।
कुटु बिनाभोजनीय स्वसमविभवेसति ॥४०

श्रीमतज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ।
सीदतायत्कृततेनतत्पापससमश्नुते ॥४१
सायचैषविधिःकार्य पूर्वोक्त तत्रचातिथिम् ।
पूजयेच्चयथाशक्तिद्यनासनभोजनैः ॥४२

अन्न का अग्रभाग तोड़ कर ब्राह्मण को दे तथा परिव्राजक और ब्रह्मचारी के याचक होने पर उन्हें भीख दे ॥३६॥ एक ग्रास को भिक्षा कहते है, चार ग्रास को अग्र और चार चतुष्टय अर्थात् सोलह ग्रास को हन्तकार कहा गया है ॥३७॥ यथा वैभव हन्तकार अथवा अग्र और वह भी न बने तो भिक्षा अवश्य दे, इसके बिना कभी भोजन न करे ॥३८॥ अतिथि का सत्कार करने के पश्चात् जाति बधु, याचक, विकल, बालक, वृद्ध और आतुर इनको भोजन करावे ॥३९॥ अन्य कोई अकिंचन व्यक्ति भूखा हो तो उसके द्वारा याचना करने पर उसे भी भोजन दे अथवा जो कुछ बन पड़े वही प्रदान करे ॥४०॥ धनवान् होते हुए भी जिसकी जाति दु खित हो तो उस जाति का मनुष्य विवश होकर जो पाप करता है, उसका पापाश उस धनवान् को प्राप्त होता है ॥४१॥ सध्या समय मे भी

इसी विधि को करे और सायंकाल मे आने वाले अतिथि को यथाशक्ति आसन, शय्या और भोजनादि द्वारा उसे सतुष्ट करे ॥४२॥

एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यभारमास्थितम् ।
स्कन्धेविधातादेवाश्चपितरश्चमहर्षय ॥४३
श्रेयोभिवर्षिण सर्वेभवत्यतिथिबाधवा ॥
पशुपक्षिमृगास्तृप्तायेचान्येसूक्ष्मकीटका ॥४४
गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायत ।
ता श्रृणुष्वमहाभागगृहस्थाश्रममस्थिता ॥४५
देवान्पितॄ श्चातिथीश्चतद्वत्सपूज्यबाधवान् ।
जामयश्चगुरू श्चैवगृहस्थोविभवेसति ॥४६
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्कुर्यात्सायंतथादिने ॥४७

हे पुत्र ! इस प्रकार गृहस्थ अपने कधे पर रखे हुए गार्हस्थ्य रूपी भार को वहन करके विधाता, देवता, पितर, महर्षि ॥४३॥ अतिथि, बाधव, पशु, पक्षी, कीटादि सभी को प्रसन्न करके अपना कल्याण-साधन करते है ॥४४॥ हे महाभाग उस विषय मे महर्षि अत्रि ने जो कथा गायी है, उस गृहस्थाश्रम वाली कथा को सुनो ॥४५॥ यदि धन हो तो देवता, पितर, अतिथि, बधु, जाति और गुरु का पूजन करके श्वान, श्वपच और पक्षियो के लिये पृथिवी मे अन्न प्रदान करे, इस वैश्वदेव नामक बलि कर्म को पूर्वाह्न और सायंकाल मे करे ॥४६-४७॥

२७---सदाचार वर्णन

एवपुत्रगृहस्थेनदेवता.पितरस्तथा ।
सपूज्यहव्यकव्याभ्यामन्ने नातिथिबाधवा: ॥१
भूतानिभृत्याविकला पशुपक्षिपिपीलिका. ।
भिक्षवोयाचमानास्तुयेचान्येवसतागृहे ॥२

सदाचारवतातातसाधुनागृहमेधिना ।
पापभु क्तेसमुल्लङ्घ्यनित्यनैमित्तिकी क्रिया ॥३
सदाचारमहंश्रोतुमिच्छामिकुलनन्दिनि ॥४
यत्कुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानव ॥५
गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ॥६
यज्ञदानतपासीहपुरुषस्यनभूतये ।
भवतिय सदाचारसमुल्लङ्घ्यप्रवर्त्तते ॥७

मदालसा ने कहा—हे पुत्र ! गृहस्थ को सदाचार परायण हो कर हव्य, कव्य और अन्नदान करते हुए पितर, देवता, अतिथि और बान्धवों का पूजन करने वाला होना चाहिए ॥१॥ इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक या पर, अपर जो कोई भी जैसी प्रार्थना करे ॥२॥ उन-उन का वैसे ही सत्कार करे, गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिकी क्रिया का उल्लंघन करे तो उसे पाप-भागी होना पड़ता है ॥३॥ अलर्क बोला—हे माता ! तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक आदि पुरुषोचित कर्म-विधय का यथा प्रकार वर्णन किया ॥४॥ जिसके अनुष्ठान से मनुष्य इहलोक और परलोक दोनों में सुखी होता है, उसी सदाचार को सुनने की मेरी इच्छा हुई है ॥५॥ मदालसा ने कहा—गृहस्थ को सदैव ही सदाचार का पालन करना चाहिये, आचारहीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़ कर संसार मार्ग में प्रवृत्त होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमंगलजनक होते हैं ॥६-७॥

दुराचारोहिपुरुषोनेहायुर्विन्दतेमहत् ।
कार्योयत्नःसदाचारोआचारोहंत्यलक्षणम् ॥८
तस्यस्वरूपवक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ।
समाहितमना श्रुत्वातथैवपरिपालय ॥९
त्रिवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योगृहमेधिना ।
तत्सिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ॥१०

पादेनार्थस्यपारक्यंकुर्यात्सञ्चयमात्मवान् ।
अर्धेनचात्मभरणनित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥११
पादचात्मार्थमायस्यमूलभूतविवर्द्धयेत् ।
एवमाचरत पुत्रअर्थ साफल्यमृच्छति ॥१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्म कार्योविपश्चिता ।
परत्रार्थंतथाचान्य काम्योऽत्रैवफलप्रद ॥१३

दुराचार मे प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवी कदापि नही हो सकता, इस लिये सदाचार मे ही प्रवृत्त होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ट हो जाते है ॥८॥ अब मैं उस सदाचार के स्वरूप को कहती हू तुम उसे एकाग्र चित्त से सुनो और तदनुरूप कार्य करो ॥९॥ गृहस्थ को त्रिवर्ग साधन मे प्रवृत्त होना चाहिये, त्रिवर्ग के सिद्ध होवे पर उसे इहलोक और परलोक दोनो की सिद्धि होती है ॥१०॥ गृहस्थ को उपार्जन किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये सञ्चित करना चाहिये, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे ॥११ और शेष भाग को मूल धन के रूप मे वृद्धि करे, इस प्रकार के आचरण से ही सफलता है ॥१२॥ धन के उपार्जन मे जैसा आचरण करे, वैसा पाप को नष्ट करने के लिये धन सञ्चय करने मे करे,धर्म काम्य और निष्काम भाव से दो प्रकार का है—काम्य इहलोक मे फल-प्रकाश करता है और निष्काम परलोक मे फल देता है ॥१३॥

प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधाकामोनिगदितस्त्रिवर्गस्यविरोधत ॥१४
परस्परानुबधांश्चसवनेतान्विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुबधाश्चधर्मादीस्तान्छृणुष्वमे ॥१५
धर्मोधर्मानुबधार्थोधर्मोनात्मार्थ बाधक ।
उभाभ्याचद्विधाकामस्तेनतौचद्विधापुन ॥१६
ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येतधर्मार्थौचानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ॥१७

उत्थायावश्यकंकृत्वाकृतशौच समाहित. ।
समुत्थायततश्चाचम्यप्राङ्मुखोनियत:शुचि ॥१८
पूर्वासन्ध्यासनक्षत्रापश्चिमासदिवाकराम् ।
उपासीतयथान्यायंनैनाज्ह्यादनापदि ॥१९

असत्प्रलापमनृतंवाक्पारुष्यंचवर्जयेत् ।
असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवांचपुत्रक ॥२०
सायंप्रातस्तथाहोमकुर्वीतनियतात्मवान् ।
नोदयास्तमयेबिम्बमुदीक्षेतविवस्वतः ॥२१

विघ्न तथा व्यय के होने से काम्य और निष्काम दोनों धर्मों को करे, त्रिवर्ग भेद से काम्य भी दो प्रकार का है ॥१४॥ धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग परस्पर बँधे हुए है, वैसे ही इन्हे परस्पर बधन-रहित भी समझे, अब मैं इनके अनुबन्धादि का वर्णन करती हूँ ॥१५॥ धर्म तथा धर्म के अनुबन्ध के लिये वह धर्म आत्मा को बाधा नहीं पहुचाता, जैसे काम दो प्रकार का है, वैसे ही काम के द्वारा धर्म और अर्थ को भी दो भागो मे विभक्त समझो ॥१६॥ ब्राह्ममुहूर्त मे उठ कर गृहस्थ को धर्म, अर्थ, कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ का चिन्तन करना चाहिये ॥१७॥ फिर शय्या से उठ कर आचमन करे और नियत तथा पवित्र भाव से पूर्वाभिमुख बैठे ॥१८॥ और नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही सध्या करे, इसी प्रकार सायकालीन सध्या भी सूर्य के स्थित रहते मे ही करे, आपत्तिकाल को छोड कर नित्य सध्योपासन विधि सहित करना चाहिये ॥१९॥ असत्, मिथ्या और कठोर वचनों का त्याग करे तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा का भी परित्याग कर दे ॥२०॥ नियतात्मा हो कर प्रात सायं हवन करे, सूर्य के उदय और अस्तकाल मे सूर्य बिम्ब को न देखे ॥२१॥

केशप्रसाधनादर्शदर्शनदतधावनम् ।
पूर्वाह्णएवकुर्वीतदेवतानाचतर्पणम् ॥२२
ग्रामावसथतीर्थानांक्षेत्राणांचैववर्त्मनि ।
नमूत्रमनुतिष्ठेतनकृष्टेनचगोव्रजे ॥२३

नग्नापरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनःकृतं ।
उदक्यादर्शनस्पर्शोवर्ज्यसम्भाषणंतथा ॥२४
नाप्सुमूत्रपुरीषंवानिष्ठीवनसमाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिका ॥२५
तुषागारास्थिचूर्णानिरजोवस्त्राणिकानिचित् ।
नाधितिष्ठेत्तथाप्राज्ञा पथिपत्राणिवाभुवि ॥२६
पितृदेवमनुष्याणांभूतानांचतथार्चनम् ।
कृत्वाविभवतः पश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ॥२७
उदङ्मुख प्राङ्मुखोवास्वाचांतोवाग्यत शुचि ।
भुञ्जीतान्न चतच्चित्तोह्यन्तर्जानु सदानर ॥२८

केशविन्यास, दन्तधावन, दर्पण में सम्मुख दर्शन और देव दर्पण कार्य पूर्वाह्न में करे ॥२२॥ ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, मार्ग जुता खेत गौओं के स्थान में मल मूत्र का त्याग न करे ॥२३॥ पर नारी को नगी न देखे, अपने मल को भी न देखे, ऋतुमती स्त्री का देखना, स्पर्श करना या उससे वार्त्तालाप करना अनुचित है ॥२४॥ जल में मल-मूत्र का त्याग और मैथुन कर्म न करे, मल-मूत्र बाल, भस्म, कपाल तुष, अगार, अस्थि, रजी, वस्त्रादि मार्ग की मिट्टी के ऊपर कभी न बैठे ॥२५-२६॥ अपने वित्तानुसार सर्व प्रथम पितर, देवता, मनुष्य, भूत आदि का पूजन कर फिर स्वय भोजन करे ॥२७॥ आचमन के अन्त मे वाणी सयम, पवित्रता और अन्तर्जानु से पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर एकाग्र चित्त से भोजन करे ॥२८॥

उपघातमृतेदोषनान्नस्योदीरयेद्बुध ।
प्रत्यक्षलवणवर्जमन्नमत्युष्णमेवच ॥२९
नगच्छन्नवतिष्ठन्वविण्मूत्रोत्सर्गमाचरेत् ।
कुर्वीतनैवन्याचामेत्किंचिदपिभक्षयेत् ॥३०
उच्छिष्टोनालपेत्किंचित्स्वाध्यायंचविवर्जयेत् ।
गात्राण्यृगतथाचाग्निस्वमूर्धानंचनस्पृशेत् ॥३१

नचपश्येद्रविनेन्दु ननक्षत्राणिकामत ।
भिन्नासनंतथाशय्याभाजनञ्चविवर्जयेत् ॥३२
गुरूणामासनदेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ।
अनुकूलंतथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥३३
तथानुगनकुर्यात्प्रतिकूलंनसलपेत् ।
नैकवस्त्रश्चभुञ्जीतननकुर्याद्देवतार्चनम् ॥३४
नागर्हयेद्विजान्नाग्नौमेहत्कुर्वीतबुद्धिमान् ।
नस्नायीतनरोनग्नोनशयीतकदाचन ॥३५

किसी प्रकार का अनिष्ट या उत्तेजन करने वाले व्यक्ति के दोषों को न खोले, अधिक नमक या अत्यन्त गरम अन्न का भोजन न करे ॥३६॥ चलते हुए या बैठे हुए मल-मूत्र का त्याग न करे, आचमन करके फिर किंचित् भी अन्न न खाय ॥३०॥ उच्छिष्ट देह से किसी से बात न करे तथा इस अवस्था में वेदाध्ययन न करे, तथा गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तक का स्पर्श न करे ॥३१॥ उच्छिष्ट देह से सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र का दर्शन भी स्वेच्छा से न करे, टूटे आसन, टूटी शय्या और टूटे पात्र को त्याग दे ॥३२॥ गुरु को देख कर उठ कर खड़े होने इत्यादि से सत्कार पूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्त्तालाप करे ॥३३॥ उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे, एक ही वस्त्र से भोजन और देव पूजन न करे ॥३४॥ द्विजाति की निन्दा न करे अग्नि में मूत्रादि न छोड़े, नग्न हो कर स्नान अथवा शयन न करे ॥३५॥

नपाणिभ्यामुभाभ्याचकण्डूयेतशिरस्तथा ।
नचाभीक्ष्णंशिरःस्नानकार्यंनिष्कारणंनरैः ॥३६
शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गमिन्द्विन्दिपिस्पृशेत् ।
अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥३७
ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नमेहेतकदाचन ।
उदङ्मुखोदिवारात्रावुत्सर्गंदक्षिणामुखः ॥३८

आबाधासुयकथाकामकुर्यान्मूत्रपुरीषयो ।
दुष्कृतनगुरोर्यात्क्रुद्ध चैनप्रसादयेत् ॥३९
परीवादनश्चरणुयादन्येषामपिकुर्वताम् ।
पन्थादेयोब्राह्मणानाराज्ञोदुःखातुरस्यच ॥४०
विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययतीयस ।
मूकान्धबधिराणाचमत्तस्योन्मत्तकस्यच ॥४१
पुश्चल्याकृतवैरस्यबालस्यपतितस्यच ।
देवालयचैत्यतरुतथैवचचतुष्पथम् ॥४२
विद्याधिकगुरु चैववृध कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत् ॥४३

दोनो हाथो से मस्तक न खुजावे, अकारण स्नान तथा सदैव शिर से स्नान न करे ॥३६॥ शिर से स्नान करने के अन्त मे किसी अङ्ग मे तेल न लगावे, अनध्याय के दिनो मे वेदाध्ययन को न करे ॥३७॥ गौ, ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सामने मल-मूत्र का त्याग न करे, दिन मे उत्तर की ओर मुख कर के तथा रात्रि मे दक्षिण की ओर मुख करके ॥३८॥ निर्विघ्न स्नान मल मूत्र का त्याग करे, गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हे प्रसन्न करे ॥३९॥ यदि कोई अन्य उनकी मिथ्या निन्दा करे तो उसे न सुने, ब्राह्मण, राजा, दुःख से आतुर ॥४०॥ अपने से विद्वान्, गर्भिणी नारी, भयातुर, मूढक, गूगा, अन्धा, बहिरा, मत्त, उन्मत्त ॥४१॥ पुश्चली, बैरी, बालक और पतित इनको मार्ग दे, देवालय, चैत्य, चौराहा ॥४२॥ अपने से अधिक विद्या वाला, गुरु, देवता तथा बुद्धिमान् की परिक्रमा करे, किसी के पहिने हुए जूता, वस्त्र और माला आदि को धारण न करे ॥४३॥

उपवीतमलकारकरकचैववर्जयेत् ।
प्रशस्तानिचकर्माणिकुर्वाणःदीर्घजीवित' ॥४४
चतुर्दश्यांतथाष्टम्यापञ्चदश्याचपर्वसु ।
तैलाभ्यङ्ग तथाभोगयोषितश्चविवर्जयेत् ॥४५

नक्षितपादजङ्घश्चप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ।
नत्वापिविक्षिपेत्पादौपादपादेननाक्रमेत् ॥४६
मर्माभिघातमाक्रोशंशून्यचविवर्जयेत् ।
दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानिनकुर्वीतविचक्षणः ॥४७
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा ।
न्यूनाङ्गाश्चाधिकाङ्गाश्चनोपहासेन दूषयेत् ।
परस्यदण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थंपुत्रशिष्ययो ॥४८
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञपादेनाक्रम्यचासनम् ॥४९

दूसरे का पहिना हुआ जनेऊ, विभूषण और कमण्डलु ग्रहण न करे, जो प्रशस्त कर्म करता है, वही दीर्घजीवी होता है ॥४४॥ चौदश, पड़स, अष्टमी और पर्व दिवस मे तेल न मले तथा स्त्री सङ्ग भी न करे ॥४५॥ पैर या जाँघ फैला कर न बैठे, पैर पर पैर मारना और लात मारना भी अनुचित है ॥४६॥ किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे, चुगली न करे, दभ, अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड दे ॥४७॥ मूर्ख, उन्मत्त, दुःखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकाङ्ग को हँसी उडाकर न छेडे, दूसरे के प्रति दड का प्रयोग न करे, परन्तु पुत्र या शिष्य को उपदेश देने के लिए आवश्यक हो तो दड का प्रयोग करे ॥४८॥ पाँवो से आक्रमण करता हुआ आसन पर न बैठे, केवल उदर पूर्ति के लिये भोजन करे ॥४९॥

सायप्रातश्चभोक्तव्यकृत्वाचातिथिपूजनम् ।
उदङ्मुख प्राङ्मुखोवावाग्यतोदन्तधावनम् ॥५०
कुर्वीतसततवत्सवर्जयेद्वर्ज्यंबीरुधः ।
नोदक्शिरा स्वपेज्जातुनचप्रत्यक्शिरानरः ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थायशयीतायपुरन्दरम् ।
नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि ॥५२
उपरागेपरस्नानमृतेदिनमुदाहृतम् ।
अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभिः ५३

नचापिधूनयेत्केशान्वाससीनचधूनयेत् ।
नानुलेपनमादद्यादस्नात कर्हिचिद्बुध ॥५४
नचापिरक्तवासा स्याच्चिरासितधरोऽपिवा ।
नचकुर्याद्विपर्यासवाससोनापिभूषणे ॥५५

प्रात साय अतिथि का पूजन करके स्वय भोजन करे तथा वाणी को रोककर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर दातुन करे ॥५०॥ वर्जित काष्ठादि का दातुन मे प्रयोग न करे,उत्तर अथवा पश्चिम को शिर करके न सोवे ॥५१॥ दक्षिण या पूर्व की ओर शिर करके सोवे, दुर्गन्धित जल अथवा रात्रि के समय स्नान न करे ॥५२॥ रात्रि स्नान ग्रहण काल मे ही करे, स्नान के पश्चात् वस्त्र या हाथ से शरीर का मार्जन न करे ॥५३॥ गीले केश या गीले वस्त्र को न फटकारे, बिना स्नान किये चन्दनादि धारण न करे ॥५४॥ लाल, काले या चित्रित वस्त्र न पहिने, उत्तरीय वस्त्र या भूषण आदि को विपरीत क्रम से न पहिने ॥५५॥

वर्ज्यचाविदशावस्त्रमत्यन्तोपहतचयत् ।
केशकीटावपन्नचक्षुण्याभिरवेक्षितम् ॥५६
अवलीढावपन्नचसारोद्धरणादूषितम् ॥५७
नभक्षयीतसततप्रत्यक्षलवणानिज ।
वर्ज्यचिरोषितपुत्रभक्तपर्युषितचयत् ॥५८
पिष्टशाकेक्षुपयसाविकारानृपनदन्न ॥५९
उदयास्तमनेभानो वायनचविवर्जयेत् ।
नास्नातोनैवसविष्टोनचैवान्यमनानर ॥६०
नचैवचायनेनोर्व्यामुपविष्टोनशब्दवत् ।
नचैकवस्त्रोनवदन्प्रेक्षतामप्रदायच ॥६१
भु जीतपुरुषस्नातःसायप्रातर्यथाविधि ।
परदारानगन्तव्या पुरुषेणविपश्चिता ॥६२
इष्टापूर्त्तायुषाहन्त्रीपरदारगतिर्नृणाम् ।
नहीदृशमनायुष्यलोकेकिंचनविद्यते ॥६३

यादृशपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शनम् ।
देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ॥६४

दग्धशून्य, जीर्ण एवं छिन्न वस्त्रों का सर्वथा त्याग करे, बाल या कीड़े से युक्त, श्वान द्वारा देखा हुआ ॥५६॥ अथवा चाटा हुआ या क्षार निकाला हुआ दूषित अन्न ॥५७॥ तथा प्रत्यक्ष रूप से ननक कभी न खाय, बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा बासी अन्न का भी भोजन न करे ॥५८॥ हे पुत्र ! पिट्ठी, शाक, ईख और दूध के विकार को त्याग दे ॥५९॥ सूर्योदय या सूर्यास्त के समय न सोवे अथवा दूसरी ओर मन लगा कर भी शयन न करे ॥६०॥ शय्या में या मृत्तिका में 'हा' कहकर न बैठे, उत्तरीय उतार कर एक वस्त्र से भोजन न करे, बात करते हुए भी भोजन न करे, जो सामने बैठा हो उसे खिलावे बिना स्वय न खाय ॥६१॥ प्रात सायं विधि सहित स्नान करके ही भोजन करे, परनारी गमन कभी न करे ॥६२॥ क्योंकि परनारी गमन से इहपुर्त्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता है, इस लोक में इस पाप के समान अन्य कोई पाप नहीं है, देव-पूजन, अग्नि कार्य और गुरुजनों को प्रणाम सदा कर्त्तव्य है ॥६३-६४॥

कुर्वीतसम्यगाचम्यतद्वदन्नभुजिक्रियाम् ।
अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥६५
आचामेत्पुत्रपुण्याभि प्राङ्मुखोऽप्युदङ्मुख ।
अन्तर्जलादावन्नथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ॥६६
कृतशौचावशिष्टाङ्गवर्जयेत्पञ्चवैमृद ।
प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहित: ॥६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेन्निश्चतुर्वापिवेदप ।
परिमृज्यद्विरास्यान्तखानिमूर्धानमेवच ॥६८
सम्यगाचम्यतोयेनक्रियाकुर्वीतवैशुचि ।
देवतानामृषीणाचपितृणाचैवतत्वत ॥६९
समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततनर ।
श्रुत्वानिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुध ॥७०

भले प्रकार आचमन करके अन्न भोजन कार्य को सम्पूर्ण करे। फेन-

रहित, गन्ध-रहित, स्वच्छ और पवित्र जल लेकर ॥६५॥ पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर आचमन करे, जल के भीतर की, निवास गृह की, बाँबी की चूहे के बिल की ॥६६॥ तथा शौच क्रिया से बची हुई मिट्टी को न ले, एक मन से हाथ-पाँव धोकर शौच करे ॥६७॥ दोनों जानु समेट कर बैठे तीन-चार बार जलपान सहित आचमन करे, दो बार मुख के इधर-उधर तथा मुख में, दो बार मस्तक और इन्द्रिय द्वार को मांजते हुए ॥६८॥ भले प्रकार आचमन करके क्रिया का अनुष्ठान करे तथा सदैव एकाग्र मन से देव, ऋषि और पितरों का ॥६९॥ कार्य करे, हिचकी या खखार के पश्चात् आचमन करना चाहिये और वस्त्र पहिनने के पश्चात् भी आचमन करना उचित है ॥७०॥

क्षुतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ।
कुर्यादाचमनस्पर्शंगोपृष्टस्यार्कदर्शनम् ॥७१
कुर्वीतालम्बनञ्चापिदक्षिणश्रवणस्यवै ।
यथाविभवतोह्येतत्पूर्वाभावेतत परम् ॥७२
अविद्यमानेपूर्वोक्तेउत्तरप्राहिरिष्यते ।
नकुर्याद्दन्तसंघर्षनात्मनोदेहताडनम् ॥७३
स्वप्नाध्यापनभोज्यानिस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ।
सन्ध्यायामैथुनञ्चापितथाप्रस्थानमेवच ॥७४
पूर्वाह्णे तातदेवानामनुष्याणाञ्चमध्यमे ।
भक्तञ्चातथापरोह्णे चकुर्वीतपितृपूजनम् ॥७५
शिरः स्नातश्चकुर्वीतदैवपैत्र्यमथापिवा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्म चकारयेत् ॥७६
व्यङ्गांविवर्जयेत्कन्यामकुलाञ्चापिरोगिणीम् ।
विकृतापिंगलाचैववाचालासर्वदूषिताम् ॥७७

छींक, वमन, निष्ठीवन अथवा किसी वस्तु के चाटने पर भी आचमन करे, गोपृष्ट का अवलोकन या सूर्य का दर्शन ॥७१॥ अथवा अपने दक्षिण श्रोत्र का स्पर्श करे । इनमें क्रमशः पहिले के अभाव में दूसरे को करे ॥७२॥ क्योंकि पहिले का अभाव होने पर दूसरे का ग्रहण ही श्रेष्ठ कहा है दाँत से दाँत को न

स्त्रियों तथा अपने शरीर का ताड़न न करे ॥७३॥ प्रातः सन्ध्या या सायं सन्ध्या के समय शयन, अध्ययन और भोजन न करे, सन्ध्याकाल में मैथुन अथवा प्रस्थान का निषेध है ॥७४॥ पूर्वाह्ण में देवताओं का, मध्याह्न में मनुष्यों का एवं अपराह्ण में पितरों का पूजन करे ॥७५॥ शिर से स्नान करके पितरों या देवताओं के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर और कर्म न करावे ॥७६॥ रोगिणी, विकलांगी, पिंगल वर्ण वाली, बादाल अथवा दूषित कन्या चाहे सद्वंश में ही उत्पन्न क्यों न हुई हो, उसे ग्रहण न करे ॥७७॥

अव्यंगांगीं सौम्यनाम्नीं सर्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत्कन्यामृक्षे यामोत्तरे सदा ॥७८
उद्वहेत्पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा ।
रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्ष्यां दिवा चस्वप्नमैथुने ॥७९
परोपतापककर्मजन्तुपीडाञ्चवर्जयेत् ।
उदक्या सर्ववर्णानामृतुर्ज्ञेयश्चतुष्टयम् ॥८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीं निशिवर्जयेत् ।
तत्र षष्ठ्याञ्जेद्भोग्यामायुष्मान्पुत्रक ॥८१
पर्वाणिवर्जयेच्चित्यमृतुकालेपियोषित ।
तस्माच्चित्यनरोगश्छेच्छेषयुग्मासुपुत्रक ॥८२
युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीनिशिशेतसदानर ॥८३

कल्याण के इच्छुक पुरुष को सर्वांग पूर्ण, सुघर नासिका एवं सब सुलक्षणों से युक्त कन्या से विवाह करना चाहिये ॥७८॥ पिता या माता की सात अथवा पाँच पीढ़ी छोड़कर ही परस्पर विवाह करे पुरुष का कर्त्तव्य है कि स्त्री की रक्षा करे और ईर्ष्या का त्याग करे, दिन में शयन या मैथुन न करे ॥७९॥ दूसरों को संताप देने वाले या प्राणियों को क्लेशप्रद कार्यों को न करे, सभी वर्णों को ऋतुमयी स्त्री का चार दिन सङ्ग-त्याग करना चाहिये ॥८०॥ जो पुरुष कन्या का जन्म नहीं चाहता, वह पाँचवीं रात छोड़कर छठवीं रात में स्त्री-संग करे, क्योंकि इसके लिये युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गयी है ॥८१॥

ऋतुकाल के दिन, चौदश, अमावश, अष्टमी अथवा सक्रांति काल मे नारी-समागम न करे ॥८२॥ युग्म रात्रि के सगम से पुत्र और अयुग्म रात्रि के समागम से कन्या की उत्पत्ति होती है, इसलिये पुत्रेच्छुको को युग्म रात्रि मे सङ्ग करना चाहिये ॥८३॥

विधर्मिणोऽह्निपूर्वस्मिन्सध्याकालेचसद्गका. ।
क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीसभोगेचपुत्रक ॥८४
स्नायीतचैलवान्प्राज्ञ कटभूमिमुपेत्यच ।
देववेदद्विजातीनासाधुसभ्यमहात्मनाम् ॥८५
गुरो पतिव्रतानाचतथायज्वितपस्विनाम् ।
परीवादनकुर्वीतपरिहासचपुत्रक ॥८६
कुर्वतामविनीताना नश्रोतव्यकथचन ।
देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रिया कुर्वीतचैवुध ॥८७
स्वाध्यायचापिकुर्वीतयथाशक्त्याह्यतन्द्रित ।
नोत्कृष्टशय्यासनयोर्नापकृष्टस्यचारुहेत् ॥८८
नचामङ्गल्यवेष स्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् ।
धवलाम्बरसवीतःसितपुष्पविभूषितः ॥८९
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्चनाविनीतैश्चपण्डित ।
गच्छेन्मैत्रीनचाशीलैर्नचक्रौर्यादिदूषितैः ॥९०
नचाति व्ययशीलैश्चनलुब्धैर्नापिवैरिभि ।
नानृतकैस्तथाक्रूरै सहासीतकदाचन ।
नबन्धकीभिर्नन्यूनैर्नन्धकीपतिभिस्तथा ॥९१
साद्धं नबलिभि कुर्यान्नचन्यूनैर्ननिन्दितै ।
नसर्वशङ्किभिर्नित्यनचदैवपरैर्नरै ॥९२

पूर्वाह्न मे नारी-सग से विधर्मी और सायकाल मे सग करने से नपुसक पुत्र की उत्पत्ति होती है, और कर्म, वमन और स्त्री-सग के पश्चात् ॥८४॥ तथा श्मशान भूमि मे जाने पर वस्त्र सहित स्नान करे। देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्यनिष्ठ महात्मा ॥८५॥ गुरुजन, पतिव्रता, यज्ञ और तप परायण पुरुष इनकी

[सो न लड़ावे ॥८६॥ यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उधर ध्यान न दे, देवता, पितर और अतिथि का पूजन सदा करे ॥८७॥ सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने से श्रेष्ठ या निम्न मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे ॥८८॥ अमङ्गल वेश न धारे, अमङ्गल वचन न कहे, श्वेत वस्त्र और हित पुष्प धारण करे ॥८९॥ उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, विनय-रहित, घोर-कर्म से दूषित ॥९०॥ अपरिमित व्यय करने वाला, लुब्ध, शत्रु, व्यभिचारिणी का पति ॥९१॥ नीचाशय, निन्दित, सदा शंका युक्त, इनके साथ कभी मैत्रता न करे ॥९२॥

कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रीसदाचारावलम्बिभि ।
प्राज्ञैरपिशुनैर्दक्षैः कर्मण्युद्योगभागिभि ॥९३
वेदविद्याव्रतस्नातैः सहास्तीतसदाबुधः ।
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ।
ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्चगृहागतान् ॥९४
यथादिभवत पुत्रद्विजान्सवत्सरोषितान् ।
अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ॥९५
तिष्ठेच्चशासनेतेषांश्रेयस्कामोद्विजोत्तम. ।
नचैतान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापितैः सदा ॥९६
सम्यग्गृहार्चनंकृत्वायथास्थानमनुक्रमात् ।
सपूजयेत्ततोवह्निंदद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥९७

सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान्, उद्योगी को मित्र बनावे ॥९३॥ वेदज्ञान से युक्त, विद्वान्, व्रत परायण और स्नातक का सङ्ग करे, सुहृद, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वशुर तथा ऋत्विक् यह छैओ अर्घ्य देने के लिए उपर्युक्त पात्र हैं,जब यह घर पर आवे तो इनका पूजन करे ॥९४॥ हे पुत्र ! उपर्युक्त छः जनों के आगमन पर, यदि वे सवत्सर के व्यतीत होने पर आवे तो मधुपर्क से उनका पूजन करे ॥९५॥ यदि कल्याण चाहे तो उनकी आज्ञा का पालन करे और उनके द्वारा क्रोध व्यक्त करने पर भी उनसे विवाद

न करे ॥९६॥ भले प्रकार गृह पूजन करके अग्नि का पूजन करे और आहुति दे ॥९७॥

प्रथमामब्रह्मणेदद्यात्प्रजानामपतयेततः ।
तृतीयाचैवगुह्येभ्य कश्यपायतथापराम् ॥९८
ततोऽनुमतयेदत्त्वादद्याद्गृहबलिंततः ।
पूर्वंख्यातोमयावास्तेनित्यकर्मक्रियाविधि. ॥९९
वैश्वदेवतन कुर्याद्बलयस्तत्रमेशृणु ।
यथास्थानविभागतुदेवानुद्दिश्यवैपृथक् ॥१००
पर्जन्याङ्कचाधरित्र्येचदद्याच्चमणिकेत्रयम् ।
ततोधानुविधातृभ्यदद्याद्द्वारेगृहस्यतु ।
वायवेचप्रतिदिगदिग्भ्य प्राच्यादिक्रमात् ॥१०१
ब्रह्मणेचान्तरिक्षायसूर्यायचयथाक्रमम् ।
विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योविश्वभूतेभ्य एवच ॥१०२
उपसेभूतपतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः ।
स्वधानमइतीत्युक्त्वापितृभ्यश्चापिदक्षिणे ॥१०३
कृत्वापसव्यवायव्या यक्ष्मंतत्तेतिभाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन्वैतोयदद्याद्यथाविधि ॥१०४
ततोऽग्रे समुदुधृत्यहृत्कारोपकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायब्राह्मणायोपपादयेत् ॥१०५

प्रथम आहुति ब्रह्माजी के निमित्त दूसरी आहुति प्रजापति को, तीसरी गुह्यकगण को और चौथी आहुति कश्यप को दे ॥९८॥ फिर पांचवीं आहुति अनुमति के उद्देश्य से दे और फिर जिस नित्य कर्म का वर्णन तुमसे किया जा चुकाहै,उसी के अनुसार गृहबलि प्रदान करे॥९९॥ फिर वैश्वदेव बलि प्रदान करे उसका नियम यह है कि स्थान विभाग के अनुसार देवताओं के लिए पृथक्-पृथक् बलि प्रदान करे ॥१००॥ फिर पर्जन्य, अग्नि और पृथिवी को तीन बलि तथा वायु को भी बलि दे तथा पूर्वादि के क्रम से प्रत्येक दिशा में बलि दे ॥१०१॥ फिर उत्तर दिशा में ब्रह्मा, अन्तरिक्ष में सूर्य, विश्वेदेवा और विश्वभूतगण ॥१०२॥

उषा और भूतपति के निमित्त बलि देकर स्वधा नम उच्चारण करके दक्षिण दिशा मे पितरो के लिए बलि दे ॥१०३॥ फिर अन्नावशेष की कामना करे और अपसव्य होकर वायुकोण मे 'यज्ञैतत्ता' इत्यादि मन्त्र पढ कर जलाधार से जल लेकर विधिवत् जल दे ॥१०४॥ फिर अन्न के अग्र भाग को तोडे और हुन्तकार की कल्पना कर ब्राह्मण को दे ॥१०५॥

कुर्यात्कर्माणितीर्थेनस्वेनेस्वेनयथाविधि ।
देवादीनातथाकुर्यद्ब्राह्मणाचमनक्रियाम् ॥१०६
अगुष्ठोत्तरतोरेखापाणेर्यादक्षिणस्यतु ।
एतद्ब्राह्ममितिख्यातंतीर्थमाचमनायवै ॥१०७
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तर्पैत्र तीर्थमुदाहृतम् ।
पितृणातेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ॥१०८
अङ्गुल्यग्रे तथादैवतेनदिव्यक्रियाविधि ।
तीर्थकनिष्ठिकामूलेकायतेनप्रजापते ॥१०९
एवमेभि सदातीर्थैर्देवानापितृभि.सह ।
सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित् ॥११०
ब्राह्मणाचमनशस्तपित्र्यपैत्रेणसर्वदा ।
देवतीर्थेनदेवानाप्राजापत्यनिजेनच ॥१११
नान्दीमुखानाकुर्वीतप्राङ्मपिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापते ॥११२

फिर स्वीय तीर्थ योग मे विधान के अनुसार कर्म करे और देवतादि के निमित्त ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करे ॥१०६॥ दक्षिण हाथ के अगुष्ठ की उत्तर दिशा मे जो रेखा है, वही ब्राह्मतीर्थ है, इसी तीर्थ के द्वारा आचमन का विधान है ॥१०७॥ तर्जनी और अगूठा का मध्य स्थल पितृतीर्थ है, नान्दीमुख के अतिरिक्त अन्यान्य सब क्रियाओ मे पितरो के निमित्त इसी पितृतीर्थ से जलादि दे ॥१०८॥ अँगुली के अग्र भाग मे देवतीर्थ है, उसी के द्वारा देवक्रिया की विधि का समापन करे, कनिष्ठा के मूल मे काय नामक तीर्थ है, उसके द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिये ॥१०९॥ इस प्रकार इन सब तीर्थों द्वारा

सदैव देवता और पितरों की क्रिया करे, अन्य तीर्थ के द्वारा कभी न करे ॥११०॥ ब्रह्मतीर्थ द्वारा ही आचमन करने का विधान है, पितृतीर्थ द्वारा पितृ-कार्य, देवतीर्थ द्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिये ॥१११॥ जिस प्रकार कायतीर्थ अर्थात् प्राजापत्य तीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करने का विधान है, उसी प्रकार कायतीर्थ द्वारा ही नान्दीमुख पिण्डोदक कर्म करना चाहिये ॥११२॥

युगपज्जलमग्निंच विभृयान्नविचक्षणः ।
गुरुदेवान्प्रतिस्थानंचपादौप्रसारयेत् ॥११३
नाचक्षीतधयन्तीगाजलनाञ्जलिनापिबेत् ।
शौचकालेषुसर्वेषुगुरुष्वल्पेष्वपुन ॥११४
नविलम्बेतशौचार्थंनमुञ्चेनानलंधमेत् ।
तत्रपुत्रनवस्तव्ययत्रनास्तित्रतुष्टयम् ॥११५
ऋणप्रदातावैद्यश्चश्रोत्रिय सजलानदी ।
जितामित्रोनृपोयत्रबलवान्धर्मतत्परः ॥११६
तत्रनित्यंवसेत्प्राज्ञ कुत कुनृपत सुखम् ।
यत्राप्रवृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवतीमही ॥११७
पौरा सुसयतायत्रसततन्यायवर्त्तिन ।
यत्रामत्सरिणोलोकास्तत्रवास सुखोदय ॥११८
यस्मिन्कृपीबलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोगिन ।
यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षण. ॥११९
तत्रपुत्रनदस्तव्ययत्रैतत्त्रितयसदा ।
जिगीषुःपूर्ववैरञ्चजनश्चमततोत्सव ॥१२०
वसेन्नित्यसुशीलेषुसहवासिषुपण्डित ।
इत्येतत्कथितपुत्रमयातेहितकाम्यया ॥१२१

एक साथ ही जल और अग्नि का धारण करना अनुचित है, गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है ॥११३॥ बछड़े को दूध पिलाने में लगी हुई गौ को न बुलावे और अञ्जलि से जल न पीवे, अधिक अथवा न्यून

॥११४॥ सब प्रकार की शौच क्रिया शीघ्रता से करे तथा मुख की फूँक से अग्नि को प्रज्वलित न करे तथा जहाँ यह चार वस्तुएँ न हों, वहाँ न रहे ॥११५॥ ऋण देने वाला, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जल वाली नदी। जिस स्थान पर शत्रु विजेता बली एवं धर्मज्ञ राजा रहता हो ॥११६॥ उस स्थान में सदा रहे, क्योंकि कुराजा के राज्य में सुख नहीं हो सकता। जिस देश का राजा दुर्धर्ष है तथा जहाँ की भूमि धान्य से परिपूर्ण है ॥११७॥ जहाँ के पुरवासी नियमों का पालन करते और न्याय मार्ग पर चलते हैं, जहाँ के मनुष्यों में मात्सर्य नहीं है, वहाँ निवास करने से सुख का उदय होता है ॥११८॥ जहाँ के किसान अति भोग वाले नहीं हैं, और जहाँ असंख्यासंख्य औषधियाँ उत्पन्न होती हैं उसी स्थान में निवास करना चाहिये ॥११९॥ जहाँ जिगीषा युक्त, पूर्व शत्रु और उत्सवोन्मत्त मनुष्य रहते हों वहाँ कभी न रहे ॥१२०॥ सुशील मनुष्यों का निवास हो वहाँ रहना चाहिये, यह सब मैंने तुम्हारे हित के लिए ही कहा है ॥१२१॥

२८--अलर्क को शासन युक्त अंगूठी की प्राप्ति

एवमुनिर्दिष्ट सन्मात्रासम्प्राप्ययौवनम् ।
ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१
पुत्राश्चोत्पादयामासयज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ।
पितुश्चसर्वकालेषुचकाराज्ञानुपालनम् ॥२
तत कालेमहतासम्प्राप्यचरमवय ।
चक्रेऽभिषेकपुत्रस्यतत्स्वराज्येऋतध्वज ॥३
भार्ययासहधर्मात्मामायियासुस्तपसेवनम् ।
अवतीर्णोमहीरक्षोमहाभागोमहीपतिः ॥४
मदालसाचतनयंप्राहेदंपरिचमवचः ।
कामोपभोगससर्गंप्रहाणायसुतस्यवै ॥५

यदादुःखमसह्यन्तेप्रियबन्धुवियोगजम् ।
शत्रुबाधोद्भवंवापिवित्तनाशात्समुद्भवम् ॥६
भवेत्तत्कुर्वतोराज्यगृहधर्मावलम्बन ।
दुःखायतनभूतोहिममत्वालम्बतेगृही ॥७
तदास्मात्पुत्रनिष्कृष्यमदत्तादगुलीयकात् ।
वाच्यलेशासनपट्टं सूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥८
इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णंसागुलीयकम् ।
आशिषश्चापिधायोग्या पुरुषस्यगृहेसत ॥९
तत कुवलयाश्वोऽसौसाऽपदेवीमदालसा ।
पुत्रायदत्त्वाराज्यंतपसेकाननंययौ ॥१०

जड ने कहा—माता के इस प्रकार उपदेश देने पर ऋतध्वज के पुत्र ने युवावस्था प्राप्त होने पर विधि पूर्वक विवाह किया और पुत्रोत्पादन और विविध यज्ञो का अनुष्ठान करते हुए पिता की आज्ञा के अनुवर्ती हुए ॥१-२॥ फिर बहुत काल व्यतीत होने पर धर्मात्मा राजा ऋतध्वज ने पत्नी सहित वन मे जाने की इच्छा से पुत्र को राज्यपद मे अभिषिक्त किया ॥३ ४॥ तब पुत्र को भोगादि से निवृत्त करने के विचार से मदालसा ने इस प्रकार कहा—जब तुम्हारे समक्ष किसी प्रिय अथवा बन्धु का वियोग, शत्रुबाधा या धननाश का दु ख उपस्थित हो ॥५-६॥ क्यो कि गृहस्थ सदा ममता परायण है अत स्वाभाविक रूप से ही आपद् काल आवे तो मेरे द्वारा प्रदत्त इस अगुलीय से पत्र बाहर निकाल कर मध्यस्थ सूक्ष्म अक्षरो मे लिखे शासन का पाठ करना ॥७-८॥ जड बोला—इस प्रकार कहती हुई मदालसा ने अपनी स्वर्ण की अगूठी देते हुए, अपने पुत्र को गृहस्थोचित आशीर्वाद दिया ॥९॥ फिर अपने पुत्र को राज्य देकर कुवलयाश्व तप करने के लिये मदालसा के सहित वन मे गये ॥१०

२६--अलर्क को आत्म विवेक

सोऽप्यलर्कोयथान्यायंपुत्रवत्मुदिता प्रजा ।
पालयामासधर्मात्मास्वेस्वेकर्मण्यवस्थिता ॥१
दुष्टेषुदण्डशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ।
कुर्वन्परामुदंलेभेइयाजचसमहामखैं ॥२
अजायन्तसुताश्चास्यमहाबलपराक्रमाः ।
धर्मात्मानोमहात्मानोविमार्गपरिपन्थिनः ॥३
चकारसोऽर्थं धर्मेणधर्ममर्थेनचापुन ।
तयोश्चैवाविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥४
एवंवर्षसहस्राणितस्यपालयतोमहीम् ।
धर्मार्थिकामसक्तस्यजग्मुरेकमहर्यथा ॥५
वैराग्यनास्यसजज्ञे भुञ्जतोविषयान्प्रियान् ।
नचाप्यलमभूत्तस्यधर्मार्थोपार्जनप्रति ॥६
तंतथाभोगससर्वंप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ।
सुबाहुर्नामिनुश्चावभ्रातातस्यवनेचर ॥७

ब्रह्म बोला—धर्मात्मा अलर्क ने न्याय पूर्वक प्रजा का पुत्र के समान पालन किया, इस प्रकार आनन्द को प्राप्त होते हुए वे अपने नियत कार्यानुष्ठान मे लगे ॥१॥ उन्होने दुष्टो को दण्ड और शिष्ट पुरुषो की रक्षा करते हुए अत्यत आनन्द पूर्वक अनेक यज्ञ किये ॥२॥ समयानुसार उनके अनेक पुत्र हुए, वे सब बली, पराक्रमी, धर्मज्ञ, महात्मा और कुमार्ग के नाशक थे ॥३॥ आत्मवान् हुए अलर्क धर्म से अर्थ और अर्थ से धर्म की रक्षा तथा धर्म और अर्थ के द्वारा विषयो का उपभोग करने लगे ॥४॥ इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग मे प्रवृत्त होकर पृथिवी का पालन करते हुए बहुत वर्ष, एकदिन के समान ही व्यतीत हो गये ॥५॥ प्रिय विषयो का भोग करके भी उनके चित्तमे वैराग्य और धर्म,अर्थ के उपार्जन मे उदासीनता उत्पन्न न हुई ॥६॥अलर्क का एक भाई सुबाहु

पहिले से ही वनवास करता था, उसने अलर्क के विषय भोग में लगे रहने की वार्त्ता सुनी ॥७॥

तम्बुबोधयिषु सोऽथचिरध्यात्वामहामति ।
तद्वैरिसश्रयन्तस्यश्रेयोऽमन्यतभूपते. ॥८
तत सकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ।
स्वराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुश शरणकृती ॥९
सोऽपिचक्रे बलोद्योगमलर्कप्रतिपार्थिव ।
दूतचप्रेषयामास राज्यमस्मैप्रदीयताम् ॥१०
सोऽपिनैच्छत्तदादातुमाज्ञापूर्वस्वधर्मवित् ।
प्रत्युवाचचतदूतमलर्क काशिभूभृत ॥११
मामेवाभ्येत्यहार्दैनयाचतारा ज्यमग्रज ।
नाक्रान्त्यासप्रदास्यामिभयेनाल्पामपिक्षितिम् ॥१२
सुबाहुरपिनोयाञ्चाचकारमतिमास्तदा ।
नधर्म क्षत्रियस्येतिवाञ्चावीर्यधनोहिस ॥१३
तत समस्तसैन्येनकाशीश परिवारित ।
आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्यमहीपतेः ॥१४

अपने भाई को तत्त्वज्ञान हो सके इसके लिए उस महामति ने बहुत समय तक विचार किया और अन्त में शत्रु के आश्रय में जाना ही उचित समझा ॥८॥ फिर चतुर सुबाहु राज्य लाभ की इच्छा करके काशी नरेश की शरण में अनेक बार गया ॥९॥ काशी नरेश ने भी अलर्क की प्रतिकूलता के लिये उनके पास दूत द्वारा संदेश भेजा कि सुबाहु को राज्य दे दो ॥१०॥ क्षात्रधर्मज्ञाता अलर्क ने इसे स्वीकार न करके दूत को उत्तर दिया ॥११॥ मेरे बड़े भाई मेरे पास आकर कहें, आक्रमण से डर कर तो मैं एक कण मात्र पृथिवी भी नहीं दे सकता ॥१२॥ महामति सुबाहु ने उनसे विनती नहीं की, क्यों कि क्षत्रियों का एक मात्र धर्म बल ही है ॥१३॥ तब काशी नरेश ने सेना से सुसज्जित हो कर राजा अलर्क के राज्य पर आक्रमण किया ॥१४॥

यतस्तदन्तरश्लेषमभ्येत्यतदनन्तरम् ।
तेषामन्यतमंभूत्वै समाक्रम्यानयद्वशम् ॥१५
अपीडयच्चसामतास्तस्यराष्ट्रेपरोधनै ।
तथादुर्गातपालाश्चचक्रेत्राटविकान्वशे ॥१६
काश्चिच्चोपप्रदानेनकाश्चिद्भेदेनपार्थिवान् ।
सान्त्वेनान्यान्वशनिन्येनिभृतास्तस्यचेऽभवन् ॥१७
ततः सोऽल्पबलोराजापरचक्रावपीडितः ।
कोशक्षयमवाप्तोर्वी पुरंचारुध्यातारिणा ॥१८॥
इत्थंसपीड्यमानस्तुक्षीणकोशोदिनेदिने ।
विषादमागात्परमव्याकुलत्वंचचेतसः ॥१९
आर्त्तिंसपरमांप्राप्यतत्स्मारांगुलीयकम् ।
यदुद्दिश्यपुराप्राहमातांतस्यमदालसा ॥२०
ततः स्नात शुचिर्भूत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ।
निष्कृष्यशासनंतस्माद्दृष्टेप्रस्फुटाक्षरम् ॥२१

अपने सामन्त राजाओं से युक्त हो कर आक्रमण के पश्चात् उन्होंने अलर्क को वश में कर लिया ॥१५॥ उन्होंने अलर्क के सामन्तों को पीड़ित किया और दुर्ग रक्षक तथा वनवासियों को वशीभूत किया ॥१६॥ किसी को धन से, किसी को भेद से तथा किसी को दण्ड से अधीन कर लिया ॥१७॥ इस प्रकार परचक्र से पीड़ित हुए अलर्क का कोष खाली हो गया और नगर भी शत्रु द्वारा घेर लिया गया ॥१८॥ इससे अलर्क अत्यन्त विषाद को प्राप्त हुआ और उसका चित्त भी व्याकुल हो उठा ॥१९॥ फिर अत्यन्त आर्त्त हो गये, तब उन्हें अपनी माता मदालसा के वचन और वह अंगूठी याद आई ॥२०॥ तब उन्होंने स्नान करके स्वस्ति वाचन कराके बँधे हुए शासन को बाहर निकाल कर देखा तो वह स्पष्ट अक्षरों में लिखा हुआ था ॥२१॥

तत्रैवलिखितंमात्रावाचयामासपार्थिव ।
प्रकाशपुलकांगोऽसौप्रहर्षोत्फुल्ललोचन ॥२२

सग सर्वात्मनात्याज्य सचेत्स्यक्तुं नशक्यते ।
ससद्भि सहकर्त्तव्य सतासगो हिभेषजम् ॥२३
काम सर्वात्मनाहेयोहातु चेच्छक्यतेनस ।
मुमुक्षाप्रतितत्कार्यसैवतस्यापिभेषजम् ॥२४
वाचयित्वातुबहुशोनृणार्थं य कथत्विति ।
मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः ॥२५
तत ससाधुसम्पर्कचिन्तयन्पृथिवीपति ।
दत्तात्रेयमहाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥२६
तसमेत्यमहात्मानमलकमपमस्त्विनम् ।
प्रणिपत्याभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत ॥२७

माता द्वारा लिखे उस शासन के पढने ही उनका देह पुलकित होगया और दोनो नेत्र आनन्द से फूल गये ॥२२॥ शासन मे लिखा था 'काम को सर्वान्त करण से त्याग दे' यदि सग का त्याग न कर सके तो साधु सग करे, क्योकि साधु—सग ही विश्व का ओषधि स्वरूप है ॥२३॥ काम का सर्वान्त करण से त्याग करने मे समर्थ न हो तो मोक्ष की कामना के लिये ही करे, क्योकि मोक्ष का वही महान् उपाय है ॥२४॥ इस प्रकार माता प्रदत्त शासन का पाठ करके, मनुष्य का कल्याण कैसे हो, मोक्ष की कामना ही उसका उपाय है और सत्सग ही उसका साधन है ॥२५॥ ऐसा सोचकर अलर्क साधु सग के लाभ का विचार करने लगे, अत्यन्त भाव मे आतुर होकर अन्त मे वह दत्तात्रेयजी की शरण मे गये और उनको प्रणाम करके पूजन किया और न्यायानुसार निवेदन किया ॥२६-२७॥

ब्रह्मन्कुरुप्रसादमेशरण्य शरणार्थिनाम् ।
दु खापहारकुरुमेदु खार्त्तस्यातिकामिन. ॥२८
दु खापहारमर्थं वकरोमितवपार्थिव ।
सत्यत्र हिकिमर्थतेदु खतत्पृथिवीपते ॥२९
कस्यत्वकस्यवादु खतत्त्वमेवविचार्यताम् ।
अ गान्यंगीश्चिरपचससर्वागानिविचिन्तय ॥३०

इत्युक्तश्चिन्तयामासस राजातेनधीमता ।
त्रिविधस्यापिदु खस्यस्थानमात्मानमेवच ॥३१
सविमृश्यचिरराजापुन पुनरुदारधी ।
आत्मानमात्मनाधीर प्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥३२
नाहमुर्वीर्नसलिलनज्योतिरनिलोनच ।
नाकाशकितुशारीरसमेत्यसुखमिच्छते ॥३३
न्यूनातिरिक्तताया तिपञ्चकेऽस्मिन्सुखासुखम् ।
यदिस्यान्ममकिनस्यादग्यस्थेऽपिहितमयि ॥३४

हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न हो, शरण आने वालों के लिए आप ही आश्रय स्वरूप है, मैं विषय भोगों मे लिप्त होकर दु ख से अभिभूत होगया हूँ, उससे आप मुझे छुडाइये ॥२८॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! मैं तुम्हारे दु ख को अवश्य दूर करूँगा,तुम मुझे बताओ कि तुम्हे किस प्रकार से दु ख प्राप्त हुआ है ?॥२९॥ प्रथम यह विचार करो कि तुम किसके हो ? दु ख किसका है ? अग, अगी भाव और निरग इन सबका विचार करो ॥३०॥ जड ने कहा—दत्तात्रेयजी के इस प्रश्न से राजा तीन प्रकार के दु ख का स्थान एव आत्मा इन दो विषयो का चिन्तन करने लगे ॥३१॥ राजा ने बारम्बार आत्मा द्वारा आत्म विचार करते हुए हँस कर कहा ॥३२॥ मै पृथिवी, जल, ज्योति, वायु, आकाश आदि मे से कुछ भी नही हूँ किन्तु देह का आश्रय करता हुआ सुख चाहता हू ॥३३॥ इस पाचभौतिक देह मे सुख-दु ख उत्पन्न होकर न्यूनाधिक्य की प्राप्ति होती है ॥३४॥

नित्यप्रभूतसद्भावैन्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ।
तथाचममतात्यक्तोविशेषेणोपलभ्यते ॥३५
तन्मात्राचस्थितेसूक्ष्मेतृतीयाशेचपश्यत ।
तथैवभूतसद्भावशारीरकिसुखासुखम् ॥३६
मनस्यवस्थितदु खसुखवामानसचयत् ।
यतस्ततोनमेदु.खसुखवान्ह्यहमन ॥३७
नाहङ्कारोनचमनोबुद्धिर्नाह्यतस्ततः ।
अन्त करणजदु खपारक्यममतत्कथम् ॥३८

नाहशरीरनमनोयतोऽहंपृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तत्सन्तुचेतस्ययथापिदेहेसुखानिदुःखानिचकिममात्र ॥३६
राज्यस्यवाञ्छाकुरुतेऽग्रजोऽस्यदेहस्यचेत्स्यचमयोहिराशिः ।
गुणप्रवृत्त्याममकिंनुतत्रतत्स्थ सचाहचशरीरतोऽन्य. ॥४०
नयस्यहस्तादिकव्यशेषमासनचास्थीनिशिराविभाग ।
कस्तस्यनागाश्वरथादिकोशे स्वल्पोपिसम्बन्धइहास्तिपुंसः ॥४१
तस्मान्ममेऽरिर्नचमेऽस्तिदुःखनमेसुखनापिपुरनकोशम् ।
नचाश्वनागादिकखनतस्यनान्यस्यवाकस्यचिद्वाममास्ति ॥४२
यथाघटीकुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकबहुधाहिदृष्टम् ।
तथासुबाहु सचकाशिपोऽहमन्येचदेहेषुशरीरभेदे ॥४३

इस प्रकार होने पर भी मेरी क्या हानि है ? क्योंकि वह देह नहीं है, स्वतन्त्र भाव से देह में अवस्थान करता हूँ, मेरे घटने-बढने की सम्भावना नहीं है, मुझे नित्य प्रभूत सद्भाव की प्राप्ति है। न्यूनाधिक्य के कारण नीचा ऊँचा भी होना है, इसलिये ममता को छोड़कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, मैं तन्मात्रा में तथा सूक्ष्म तृतीयांश में अवस्थित हूँ, मेरा देह भी भूत सद्भाव युक्त है अतः सुख-दुःख की सम्भावना कदापि नहीं है ? ॥३५-३६॥ सुख, दुःख मन का धर्म होने से, मन में ही रहते है, जब मैं वह मन भी नहीं हूँ तो मुझे सुख-दुःख भी नहीं है ॥३७॥ जब मैं अहङ्कार, मन, बुद्धि आदि में से भी कुछ नहीं हूँ तो मुझ में अन्तःकरण से उत्पन्न पारुष्य ही कैसे सम्भव है ? ॥३८॥ मैं शरीर नहीं, मन नहीं तथा इन दोनों से ही पृथक् हूँ, इसलिये सुख मन में या शरीर में कहीं भी रहे, उसमें मेरी क्या ? उसमें मेरी हानि या लाभ नहीं है ॥३९॥ इसी शरीर के बड़े भाई राज्य चाहते हैं और यदि यह शरीर पाञ्चभौतिक है तो उसकी गुण-प्रवृत्ति में मेरा क्या होगा ? बड़ा भाई अथवा मैं, दोनों ही देह से पृथक् वस्तु हैं ॥४०॥ जिसके हस्तादि अंग, माँस, अस्थि और शिरा आदि कुछ नहीं, उसकी अश्व, गज, रथ, कोष आदि में क्या आवश्यकता है ? आत्मा का इससे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता ॥४१॥ जिस प्रकार मेरा कुछ नहीं है, वैसे ही मेरे अग्रज अथवा अन्यान्य पुरुष या शत्रु का भी सुख, दुःख, नगर, कोष,

सैन्यादि नहीं है ॥४२॥ जैसे घटी, कुम्भ और कमण्डलु के भेद से एक आकाश ही अनेक दिखाई देता है, वैसे ही आत्मा एक होकर भी काशीराज, सुबाहु तथा मेरे इस प्रकार के भेद से अनेक दिखाई देता है ॥४३॥

३०—दत्तात्रेय से अलर्क की योग जिज्ञासा

दत्तात्रेयततोविप्रप्रणिपत्यस्पार्थिव ।
प्रत्युवाचमहात्मानप्रश्रयावनतोवच ॥१
सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखनकिंचन ।
असम्यग्दर्शिनोमग्ना सर्वदैवासुखार्णवे ॥२
यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेनबुद्धि पुंस प्रजायते ।
ततस्तत समादायदुःखान्येवप्रयच्छति ॥३
मार्जारभक्षितेदुःखयादृग्गृहकुक्कुटे ।
नतादृङ्ममताशून्येकलविङ्कोऽथमूषिके ॥४
सोऽहनदुःखीनसुखीयतोऽहमकुतोभयः ।
योभूताभिभवोभूतं सुखदुःखात्मकोहिस ॥५
एवमेतन्नरव्याघ्रयथैतद्वचाहृतत्वया ।
ममेतिमूलदुःखस्यनममेतिचनिर्वृति ॥६
मत्प्रसादादवतेज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ।
ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्त शाल्मलितूलवत् ॥७

जड़ बोला—इसके पश्चात् राजा ने विनय पूर्वक महर्षि दत्तात्रेयजी से प्रणाम पूर्वक कहा ॥१॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे भले प्रकार दृष्टि प्राप्त होने से अब कुछ भी दुःख नहीं रहा है, क्योंकि असम्यक् दृष्टि वाले पुरुष ही दुःख सागर में डूबते हैं ॥२॥ मनुष्य की बुद्धि जिस-जिस विषय में आसक्त होती है, उस-उस से ही दुःख की उत्पत्ति होती है ॥३॥ घर में पाले हुए कुक्कुट के बिल्ली द्वारा भक्षित होने पर जो दुःख उदय होता है, वह दुःख, ममता न होने के कारण

चूहे के भक्षित होने पर नहीं होता ॥४॥ मैं न सुखी हूँ, न दुःखी हूँ क्योंकि प्रकृति के परे हूँ, क्योंकि संसार में आसक्ति वाले को ही सुख-दुःख होता है ॥५॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! तुम्हारा कथन सत्य है, ममता ही दुःख का कारण और ममता ही उसे निवृत्त करने वाली है ॥६॥ मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदय में सर्वोत्कृष्ट ज्ञान उदित हुआ है और उस ज्ञान के बल से ही तुम्हारी ममता जैसे मेघर की गई उड़ जाती है, वैसे ही उड़ गई है ॥७॥

अहमित्यङ्कुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्रोच्चशाखश्चपुत्रदारादिपल्लव ॥८
धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धित ।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्चसुखदुःखमहाफल ॥९
अपवर्गपथव्यापीमूढसम्पर्कसेचन ।
विधित्साभूरुहमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरु ॥१०
संसाराध्वपरिश्रान्तायेनच्छायासमाश्रिता ।
भ्रान्तिज्ञानसुखार्थीनास्तेषामात्यन्तिककुत ॥११
यैस्तुसत्सङ्गपाषाणशितेनममतातरु ।
छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना ॥१२
प्राप्यब्रह्मवनंशीतंनीरजस्कमकण्टकम् ।
प्राप्नुवन्तिपराप्राज्ञानिर्वृतिर्वृत्तिवर्जिता ॥१३
भूतेन्द्रियमयस्थूलनत्वराजन्नचाप्यहम् ।
नतन्मात्रमयावाच्यनैवान्तःकरणात्मकौ ॥१४

अहङ्कार रूप अङ्कुर ने ही अज्ञान रूपी महावृक्ष को उत्पन्न कर दिया, घर और खेत उसकी ऊँची शाखाएँ तथा स्त्री-पुत्रादि उसकी पत्तियाँ है ॥८॥ धन-धान्य उसके बड़े पत्ते, पुण्यापुण्य उसके पुष्प और सुख-दुःख उसके महाफल है ॥९॥ मोह से अभिभूत समान सम्बन्ध इसका थावला है, यह वृक्ष दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त है तथा मोक्ष मार्ग को ढक कर खड़ा है ॥१०॥ भ्रान्ति से जो सुख मान कर इस वृक्ष का आश्रय लेते है, उन्हें किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होगी ? ॥११॥ जो पुरुष विद्यारूपी कुठार को सत्सङ्ग रूपी पत्थर से तीक्ष्ण

करके, उसके द्वारा ममता रूपी इस महावृक्ष को काटने मे समर्थ होते है ॥१२॥ वही उस मार्ग मे ब्रह्म रूपी वन को प्राप्त हो सकते है, यह वन अत्यन्त शीतल, धूलि-रहित तथा निष्कटक है, इसमे पहुँचने से निर्वृत्ति युक्त परमबुद्धि का लाभ होता है ॥१३॥ हे राजन् ! तुम भी भूतेन्द्रिय युक्त या स्थूल नही हो, मै भी नही हू, हम दोनो मे कोई भी सन्मात्रिक या अन्त करणात्मक नही है ॥१४॥

कवापश्यामिराजेन्द्रप्रधानमिदमात्रयो ।
यत परोहिक्षेत्रज्ञसघातोहिगुणात्मक ॥१५
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसायथा ।
एकत्वेऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप ॥१६
भगवस्त्वत्प्रसादेनममाविर्भूतमुत्तमम् ।
ज्ञानप्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ॥१७
किन्त्वत्राविषयाक्रान्तेस्थैर्य्यवत्त्वनचेतसि ।
नचापिवेद्मिमुच्येयकथाप्रकृतिबन्धनात् ॥१८
कथनभूयाभूयश्चकथनिर्गुणतामियाम् ।
कथचब्रह्मणैकत्वब्रजयेयशाश्वतेनवै ॥१९
तन्मेयोगतथाब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ।
सम्यग्ब्रूहिमहाप्राज्ञसत्सङ्गोह्यु पकुर्वृणाम् ॥२०

हम मे से किसी को भी तुम प्रधान से युक्त देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृति के परे तथा पञ्च भौतिक पदार्थ गुणात्मक और प्रधानात्मक है ॥१५ हे राजन् ! मच्छर गूलर मे, सीक मूज मे और मछली जल मे एकी भाव से रह कर भी पृथक्-पृथक् है, इसी प्रकार क्षेत्र और आत्मा को भी पृथक्-पृथक् समझो ॥१६॥ अलर्क बोला—हे प्रभो ! मुझे आपके प्रसाद से विवेक उत्पन्न करने वाले ज्ञान की प्राप्ति हुई है ॥१७॥ परतु, मेरा चित्त विषयो मे आकर्षित है, इसलिये वह स्थिर नही हो सकता, अतः प्रकृति के बन्धन से कैसे मुक्त हो सकूगा, यह नही जानता ॥१८॥ पुनर्जन्म से किस प्रकार बचा जाय ? क्या करने से शाश्वत ब्रह्म से एकी भाव की प्राप्ति हो ॥१९॥ ऐसे योग का उपदेश

मेरे प्रति कीजिये, मैं प्रार्थी होकर आपके समीप प्रार्थना करता हूँ। सत्सङ्ग से ही मनुष्य का उपकार सिद्ध हो सकता है ॥२०॥

३१—योगाध्याय

ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ।
सामुक्तिर्ह्यणाचैक्यमनैक्यप्राकृतैर्गुणैः ॥१
योगेचशक्तिर्विदुषायेनश्रेय परभवेत् ।
मुक्तियोंगात्तथायोग सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
सगदोषोद्भवदुःखममत्वासक्तचेतसाम् ॥२
तस्मात्सङ्ग प्रयत्नेनमुमुक्षुः सत्यजेन्नर ।
सङ्गाभावेममेत्यस्या ख्यातेर्हानि प्रजायते ॥३
निर्ममत्वसुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
ज्ञानादेवचवैराग्यज्ञानवैराग्यपूर्वकम् ॥४
तद्गृ ह्यत्रवसतिस्तद्भोज्ययेनजीवति ।
यन्मुक्तयेतदेवोक्तं ज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥५
उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाचपार्थिव ।
कर्त्तव्यमितिनित्यानामकामकरणात्तथा ॥६
असचयाद्पूर्वस्यक्षयात्पूर्वार्जितस्यच ।
कर्मणोबन्धमाप्नोतिशरीरञ्चपुनः पुनः ॥७
कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्यतु ।
एतत्तेकथितज्ञानयोगचेमनिबोधमे ।
यप्राप्यब्रह्मणोयोगीशाश्वताक्षान्यतांव्रजेत् ॥८

दत्तात्रेय बोले—योग मे आरुढ पुरुषो का ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् अज्ञान से जो वियोग होता है, वही मोक्ष कहा जाता है, तथा प्राकृतिक गुणो से पृथकता ही ब्रह्म की एकता कही गयी है ॥१॥ हे राजन्! ममता मे आसक्त

चित्त से दुःख, दुःख से सम्यक् ज्ञान, ज्ञान से योग और योग से मोक्ष की प्राप्ति होती है ॥३॥ इसलिए मुमुक्षु को सग का त्याग करना चाहिये, विषयो से आसक्ति दूर होते ही यह मेरा है, ऐसा ज्ञान नही रहता ॥३॥ ममता के त्याग मे ही सुख है, वैराग्य होने पर ही ससार के सब दोष स्पष्ट हृदयगम होते है, जैसे ज्ञान से वैराग्य होता है, वैसे ही वैराग्य से ज्ञान की उत्पत्ति होती है ॥४॥ जहाँ रहे वही घर, जिससे जीवन धारण हो वही भोज्य, जिससे मोक्ष मिले वही ज्ञान है तथा इसके विपरीत को अज्ञान कहते है ॥५॥ पुण्यापुण्य के उपभोग से कामना-रहित नित्य कर्म के करने पर ॥६॥ पूर्वोपार्जित कर्मो के क्षीण होने पर और नवीन कर्मों का सचय न होने पर देह के बन्धन को प्राप्त नही होता, हे राजन् ! तुमसे जो कहा है, वही योग है, इसे पाकर योगीजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का आश्रय नही लेते ॥७-८॥

प्रागेवात्मात्मनाजेयोयोगिनासहिदुर्जय ।
कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंशृणुष्वमे ॥९
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषम् ।
प्रत्याहारेणविषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥१०
यथाग्निर्दहतेधातूनाध्मातानादह्यतेमलम् ।
तथेन्द्रियकृतादोषाद्दह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ॥११
प्रथमसाधनकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामउदाहृत. ॥१२
लघुमध्योत्तरीयाख्य प्राणायामस्त्रिधोदित ।
तस्यप्रमाणवक्ष्यामितदलक्ष्यंशृणुष्वमे ॥१३
लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुण सतुमध्यम ।
त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तम.परिकीर्त्तित ॥१४

सर्व प्रथम आत्मा से आत्मा को जीते, क्योकि आत्मा ही योगियो के लिये कठिनता से जीता जाने वाला है, आत्मा को किस प्रकार जीतना चाहिये, वह भी कहता हूँ ॥९॥ प्राणायाम से दोषो को, धारणा से पापो को, प्रत्याहार से विषयो को और ध्यान से अनीश्वर गुणो को भस्म करे ॥१०॥ जैसे अग्नि

मे पड कर सब धातु दोष–रहित होती हैं, वैसे ही प्राणवायु के निग्रह से इंद्रियो के सब दोष नष्ट होते है ॥११॥ योगज्ञाता प्रथम प्राणायाम का साधन करे, प्राणापान के निरोध को प्राणायाम कहते है ॥१२॥ प्राणायाम के तीन प्रकार है—लघु, मध्यम और उत्तरीय, अब इनका प्रमाण कहता हूँ ॥१३॥ लघु प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला,मध्यम प्राणायाम उससे दुगुना और उत्तरीय उससे तिगुनी मात्रा में कहा गया है ॥१४॥

निमेषोन्मेषणेमात्राकालोलघ्वक्षरस्तथा ।
प्रथमेनजयेत्स्वेदमध्यमेनचकंपथुम् ।
विषादहृतृतीयेनजयेद्दोषाननुक्रमात् ॥१६
मृदुत्वसेव्यमानास्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥१७
वश्यमस्तयथेच्छातोनायन्तिसिंहस्तिप. ।
तथैवयोगीछन्देनप्राणनयतिसाधितम् ॥१८
यथाहिसाधित सिंहोमृगान्हंतिनमानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवनःकिल्बिषंनहृणातनुम् ॥१९
तस्माद्युक्त सदायोगीप्राणायामपरोभवेत् ।
शृणुतामुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥२०
ध्वस्ति प्राप्तिस्तथासंवित्प्रसादश्चमहीपते ।
स्वरूपश्रृणुचैतेषांकथ्यमानमनुक्रमात् ॥२१

निमेष और उन्मेष का समय ही मात्रा है ऐसी बारह मात्रा होने पर लघु प्राणायाम होता है ॥१५॥ पहले प्राणायाम होता है ॥१५॥ पहले प्राणायाम से स्वेद, दूसरे से कम्प और तीसरे से विषादादि दोषो को जीते ॥१६॥ जैसे सेवा के द्वारा सिंह, व्याघ्र और हाथी भी कोमल स्वभाव हो जाते है, वैसे ही प्राणायाम द्वारा योगियो को प्राण को वश करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥१७॥ जैसे हाथी का स्वामी मत्त हाथी को वश करके इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही योगीजन प्राण के द्वारा ही इच्छानुसार कार्य करने मे समर्थ होते है ॥१८॥ जैसे पाला हुआ सिंह मृगो को मारता है, मनुष्यादि की हिंसा नही करता,वैसे साधित प्राणवायु के द्वारा पाप नष्ट होते है,देह नष्ट नही होता ।१९।

इसलिये योगियो को प्राणायाम परायण होना चाहिये, प्राणायाम की अवस्था चार प्रकार की है, जिससे मोक्ष फल की प्राप्ति होती है, अब इनका वर्णन करता हूँ ॥२०॥ हे राजन् ! प्राणायाम के ध्वस्ति, प्राप्ति, सवित् और प्रसाद यह चार भेद है। अब इनके स्वरूप को क्रमश बताता हू ॥२१॥

कर्म्मणामिष्टदुष्टानाजायतेफलसक्षय ।
चेतसोऽपकषायत्वयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ॥२२
ऐहिकामुष्मिकान्कामाल्लोभमोहात्मक.स्वयम् ।
निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्ति सासार्वकालिकी ॥२३
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणाज्ञानसम्पदा ॥२४
तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसविदम् ।
तदासम्विदितिख्याताप्राणायामस्यसास्थिति ॥२५
यान्तिप्रसाद येनास्यमन पञ्चवायव. ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चसप्रसादइतिस्मृत ॥२६
शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम् ।
युञ्जतश्चसदायोगवाहम्विहितमासनम् ॥२७
पद्ममर्द्धासनचापिलथास्वस्तिकमासनम् ।
आस्थाययोगयुञ्जीतकृत्वाचप्रणवहृदि ॥२८

ध्वस्ति उसे कहते है जिससे दूषित, अदूषित कर्मो का फल क्षीण हो और चित्त की मलीनता नष्ट हो ॥२२॥ प्राप्ति वह अवस्था कही गई है, जिसमे योगीजन लोभमोहात्मक समस्त काम को स्वय ही निरुद्ध करते है ॥२३॥ जिस अवस्था मे चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र के समान ज्ञान शक्ति को प्राप्त हुए योगीजन ॥२४॥ अतीत, अनागत और तिरोहित, इन सब विषयो को जान लेते है, वह अवस्था सवित् कही गयी है ॥२५॥ जिस अवस्था द्वारा पञ्चवायु, इन्द्रिय और उसके विषयो से योगी का चित्त शुद्ध हो जाता है, वह अवस्था ही प्रसाद कही जाती है ॥२६॥ हे राजन् ! अब प्राणायाम के लक्षण और योगारम्भ मे जिस आसन का अनुष्ठान उचित है, उसे सुनो ॥२७॥ पद्मासन, अर्द्धा-

सन, स्वस्तिकासन इत्यादि का अवलम्बन करके हृदय में प्रणव का जप करता हुआ योगानुष्ठान में लगे ॥२८॥

सम समासनोभूत्वासंहृत्यचरणावुभौ ।
संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रत ॥२९
पार्ष्णिभ्यालिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयत स्थित ।
किंचिदुन्नामितशिरादन्तैर्दन्तानसंस्पृशेत् ॥३०
सपश्यन्नासिकाग्रं स्वदिशश्चानवलोकयन् ।
रजसातमसोवृत्तिंसत्त्वेनरजसस्तथा ॥३१
सञ्छाद्य निर्म्मलेसत्त्वेस्थितोयुञ्जीतयोगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्य प्राणादीन्मनएवच ॥३२
निगृह्यसमवायेतप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
यस्तुप्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीवकच्छपः ॥३३॥
सदात्मरतिरेकस्थ पश्यस्यात्मानमात्मनि ।
सबाह्याभ्यन्तरस्तस्माच्चनिष्पाद्याकण्ठनाभित' ॥३४
पूरयित्वाबुधोदेहप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
प्राणायामादशद्वौत्वधारणासाभिधीयते ॥३५)

सरल चित्त से सम आसन में बैठे, दोनो पाँवो को सकोड कर मुख बंद करे तथा अग्र भाग में दोनो ऊरु स्तब्ध करे ॥२९॥ तथा संवृत्त मन से इस प्रकार बैठे, जिससे उपस्थ और अण्डकोष का हाथ से स्पर्श न हो, शिर कुछ ऊपर की ओर उठावे तथा दाँत से दाँत का स्पर्श न होने दे ॥३०॥ अपनी नासिका के अग्रभाग में दृष्टि रखे, दूसरी ओर न देखे । इसी अवस्था में रजोगुण में तमोगुण और सत्वगुण से रजोगुण को ॥३१॥ नष्ट करके केवल निर्मल तत्त्व में अवस्थान करता हुआ योगाभ्यास करे, इन्द्रिय के विषय से मन प्राणादि को ॥३२॥ निवृत्त करके जैसे कछुआ अपने अङ्गो को समेट लेता है, वैसे ही प्रत्याहार में प्रवृत्त हो ॥३३॥ इस प्रकार आत्मा में आसक्त रहने पर आत्मा के द्वारा ही आत्मा का दर्शन होता है, कण्ठ से नाभि तक बाह्याभ्यन्तर बुद्धि

करता हुआ ॥३४॥ देह को परिपूर्ण कर प्रत्याहार का साधन करे। प्राणायाम के दश प्रकार और धारणा के दो प्रकार कहे गये है ॥३५॥

द्वे धारणेस्मृतेयोगैर्यैर्गिभिस्तत्त्वदर्शिभि. ।
तयावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियतात्मन ॥३६
सर्वेदोषा प्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते ।
वीक्षतेचपरब्रह्मप्राकृताश्चगुणान्पृथक् ॥३७
व्योमादिपरमाणु श्चतथात्मानमकल्मषम् ।
इत्ययोगीयताहारःप्राणायामपरायण ॥३८
जिताजिताशनैर्भूमिमारोहेत्तयथागृहम् ।
दोषव्याधीस्तथामोहमाक्रान्तामूरनिर्जिता ॥३९
विवर्धयतिनारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ।
प्राणानामुपसरोधात्प्राणायामइतिस्मृत ॥४०

तत्वदर्शी योगीजनो ने दो प्रकार की ही धारणा बतायी है नियतात्मा हो कर साधन करने पर ॥३६॥ योगी के सभी दोषो का शमन होता है और शान्ति मिलती है तथा सभी प्राकृत गुण और परब्रह्म को पृथक् रूप से दर्शन प्राप्त होता है ॥३७॥ तथा आकाशादि परमाणु एव विशुद्ध आत्मा से साक्षात्कार होता है, इस प्रकार नियताहार करता हुआ योगी प्राणायाम--परायण हो ॥३८॥ धीरे धीरे योगभूमि को जीत कर घर के समान उसी मे आरूढ रहे, यदि भूमि न जीती जाय तो उससे कामादि व्याधियो को ॥३९॥ और मोह की वृद्धि होती है, इस लिये बिना जीती हुई भूमि पर आरूढ न हो, जिससे पञ्च-प्राण नष्ट हों, वही प्राणायाम है ॥४०॥

(धारणेत्युच्यतेचेयश्चार्य्यतेयन्मनोयया ।
शब्दादिभ्य प्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभि. ॥४१
प्रत्याह्रियन्तेयोभेनप्रत्याहारस्तत स्मृत ।
उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षिभिः ॥४२)
येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिन ।
यथातोयार्थिनस्तोययन्त्रनालादिभिःशनैः ॥४३

आपिबेयुस्तथावायुं पिबेद्योगी जितश्रमः ।
प्राङ्नाभ्याहृदयेचाथतृतीयेचतथोरसि ॥४४
कण्ठमुखेनासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु ।
किञ्चतस्मात्परस्मिंश्चधारणापरमास्मृता ॥४५
दशैताधारणा प्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।
नाघ्नात क्षुधित.श्रान्तोनचभ्याकुलचेतन ॥४६
युञ्जीतयोगराजेन्द्रयोगीसिद्धयर्थमादृत ।
नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात्मके ॥४७
कालेष्वेतेषुयुञ्जीतनयोगध्यानतत्पर ।
सशब्दाग्निजलाभ्याशेजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे ॥४८
शुष्कपर्णचयेनद्याश्मशानेससरीसृपे ।
सभयेकूपतीरेवाचैत्यवल्मीकसंचये ॥४९
देशेष्वेतेषुतत्त्वज्ञोयोगाभ्यासंविवर्जयेत् ।
सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालविवर्जयेत् ॥५०

जिससे मन का धारण हो, वह धारणा है तथा जिस अवस्था में इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से नियतात्मा पुरुष ॥४१॥ प्रत्याहरण करते हैं, वही प्रत्याहार है, योग सिद्ध ऋषियों ने इस विषय में जो उपाय कहा है ॥४२॥ उससे योगी के देह में व्याधियों का आक्रमण नहीं हो सकता। पिपासु जैसे पात्रादि से धीरे धीरे जल पीते हैं ॥४३॥ वैसे ही श्रम को जीत कर योगीजन धीरे-धीरे वायु का पान करते हैं, पहिले नाभि में, फिर हृदय में, फिर वक्ष स्थल में ॥४४॥ फिर कण्ठ, वदन, नासाग्र, नेत्र, भौं, ऊर्ध्व प्रदेश और अन्त में पर-ब्रह्म में धारणा करनी उचित है ॥४५॥ इस दश प्रकार से धारणा का निर्देश हुआ है, इसकी सिद्धि से ब्रह्म सारूप्य की प्राप्ति होती है, योगी जन सिद्धि प्राप्त करने के लिये अति भोजन, क्षुधा, श्रम एवं चित्त की चञ्चलता को ॥४६॥ हटाकर प्रयत्न पूर्वक योगाभ्यास करते हैं, अति शीत, अति ग्रीष्म या अत्यन्त वायु चलती हो उस समय ॥४७॥ ध्यान में तत्पर हो कर योगाभ्यास करने का निषेध है, शब्द युक्त स्थान, अग्नि और जल के समीप, प्राचीन गोशाला वा

चौराहा ॥४८॥ शुष्क पत्तो से युक्त स्थान, नदी तट, श्मशान, सर्पादि वाले स्थान, कुएँ के किनारे अथवा जहाँ सात्विक पदार्थ उपलब्ध न हो, उन सब स्थानो का परित्याग करे ॥४९-५०॥

नासतोदर्शनंयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
दोषानेतानना दृत्यमूढत्वाद्योयुनक्तिवै ॥५१
विघ्नायतस्यवैदोषाजायन्तेतन्निबोधमे ।
बाधिर्य्यजडतालोप स्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥५२
ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिन. ।
प्रमादाद्योगिनोदोषाएतेस्युश्चिकित्सितम् ॥५३
तेषानाशायकर्त्तव्ययोगिनातन्निबोधमे ।
स्निग्धायवागूमत्युष्णाभुक्त्वातत्रैवधारयेत् ॥५४
वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ततेबोदरे ।
यवागू वापिपवनवायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ॥५५
तद्वत्कंपेमहाशैलस्थिरमनसिधारयेत् ।
विघातेवचसोवाचंबाधिर्य्येश्रवणेन्द्रियम् ॥५६
यथैवाम्रफलध्यायेत्तृष्णार्त्तोरसनेन्द्रियम् ।
यस्मिन्यस्मिन्भवेदंहेतस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥५७

अतत् बातो को न देखे, जो मूर्खतः से इन सब बातो का विचार न करके योगाभ्यास करता है ॥५१॥ उसके कार्य मे सब दोष उत्पन्न होकर विघ्न रूप हो जाते हैं, उसे बधिरता, जडता, मूकता, अन्धता, स्मृति लोप ॥५२॥ या ज्वर की उत्पत्ति होती है, यदि प्रमाद वश यह दोष उत्पन्न हो जायें तो उनकी शान्ति के लिये जो चिकित्सा करनी चाहिये ॥५३॥ उसे भी सुनो, भले प्रकार पकायी हुई खिचडी स्निग्ध करके भोजन करे ॥५४॥ वात गुल्म, अफरा अथवा उदर रोगो के शमनार्थ खिचडी अवश्य खाय, इससे वायु रोग तथा वायु ग्रंथि रोग भी दूर हो जाता है ॥५५॥ कम्प के उत्पन्न होने पर मन मे अत्यंत भारी पर्वत का धारण करे, वाणी के विलुप्त होने पर वाक्य धारणा करे और श्रवण शक्ति नष्ट हो जाय तो ॥५६॥ जैसे प्यासा मनुष्य जिह्वा से ही लाभ चिन्तन करता

है, वैसे ही श्रवणेन्द्रिय की धारणा करनी चाहिए, इसी प्रकार जिस-जिस अंग में जो व्याधि हो जाय, उस-उस अंग का उपकार करने वाली क्रिया को करे ॥५७॥

धारयेद्धारणामुष्णेशीतांशीतेचदाहिनम् ।
कीलशिरसिसंस्थाप्यकाञ्चे काष्ठेनताडयेत् ॥५८
लुप्तस्मृतेस्मृतिःसद्योयोगिनस्तेनजायते ।
व्योमपृथिव्यौवाव्यग्नीव्यापिनावपिधारयेत् ॥५९
अमानुषात्सत्त्वजाद्वाबाधास्त्वतिचिकित्सितम् ।
अमानुषसत्त्वमन्तर्योगिनप्रवेशेविद्यदि ॥६०
वाय्वग्निधारणेनैनंदेहसंस्थंविनिर्दहेत् ।
एवंसर्वात्मनारक्षाकार्य्यायोगविदानृप ॥६१
धर्मार्थकाममोक्षाणांशरीरंसाधनंयतः ।
प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा ।
विज्ञानविलयंयातितस्माद्गोप्या प्रवृत्तय ॥६२
अलोल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वंगन्धःशुभोमूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्ति प्रसादःस्वरसौम्यताचयोगप्रवृत्तेप्रथमंहिचिह्नम् ॥६३
अनुरागजनोयातिपरोक्षेगुणकीर्त्तनम् ।
नबिभ्यतिचसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥६४
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्यबाधानविद्यते ।
नभीतिर्मेतिचान्येभ्यस्तस्यसिद्धिरुपस्थिता ॥६५

उष्ण में शीतल और शीतल में उष्ण धारणा करे, शिर में सूक्ष्म काल को स्थित कर काष्ठ से उसे ठोके तो उससे ॥५८॥ रोगी की लुप्त स्मृति तुरत उदित हो जाती है, अथवा स्मृति नष्ट होने पर आकाश, पृथिवी, वायु और अग्नि की धारणा करनी चाहिये ॥५९॥ अमानुष सत्व से उत्पन्न विघ्नों में, इस प्रकार उपचार करे, योगियों के हृदय में अमानुष सत्व के प्रवेश करने पर वह ॥६०॥ उसे वायु और अग्नि की धारणा से जलावे, इस प्रकार सर्वात्मकरण से अपने देह की रक्षा करना योग ज्ञानियों को कर्त्तव्य है ॥६१॥ क्योंकि धर्म, अर्थ, काम

मोक्ष की प्राप्ति का मूल देह ही है, प्रवृत्ति रूप वर्णन और विस्मय से ही योगी के विज्ञान का नाश होता है, इसलिए प्रवृत्ति को गुप्त ही रखे ॥६२॥ अचंचलता, आरोग्य, अनिष्ठुरता, देह में सुगंधि का संचार, मूत्र-पुरीष की न्यूनता, कान्ति, प्रसाद और स्वर माधुर्य यह सब योग प्रवृत्ति के प्राथमिक लक्षण है ॥६३॥ जिस अवस्था के प्राप्त होने पर मनुष्य पीछे से उसका गुणगान करे और सब जीव जिससे निर्भय रहे, वही सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण है ॥६४॥ जिसके लिए अत्युग्र शीत या उष्णता आदि बाधक न हो सके और जिस किसी अन्य को भय न हो, उसी को सिद्धि प्राप्त हुई समझो ॥६५॥

३२—योगसिद्धि

उपसर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टे ह्यात्मनियोगिन. ।
येतास्तेसंप्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ॥१
काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियोदानफलविद्यामयाकुप्यधनदिवम् ॥२
देवत्वममरेशत्वंरसायनवयःक्रियाम् ।
मरुत्प्रपतनंयज्ञं जलाग्न्यावेशनंतथा ॥३
श्राद्धानांसर्वदानानांफलानिनियमास्तथा ।
तथोपवासात्पूर्त्तांश्चदेवताभ्यर्चनादपि ॥४
तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ।
चित्तमित्थं वर्तमानयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ॥५
ब्रह्मसद्भिमनं कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ।
उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः ॥६

दत्तात्रेय बोले—आत्म-दर्शन होने पर जो उपसर्ग योगियों को उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप से कहता हूँ ॥१॥ उस समय विभिन्न प्रकार की काम्य क्रिया और अनेक प्रकार के भोगों के उपभोग की इच्छा होती है, स्त्री, दान,

फल, विद्या, माया, कुएं का जल, धन, स्वर्ग ॥२॥ देवत्व, अमरत्व रसायन, वायु युक्त स्थान में कूदना, यज्ञ, जल तथा अग्नि में प्रविष्ट होना ॥३॥ सब आढ्यों और दानों का फल एवं नियम इत्यादि में योगी की इच्छा का उदय होता है, उस समय उपवास, पूर्तादि, देव-पूजन ॥४॥ आदि उस उस कर्म में जब जब युक्त होने की इच्छा हो, तब-तब उस-उस विषय से यत्न पूर्वक निवृत्ति प्राप्त करे ॥५॥ इस प्रकार विषयों से निवृत्ति लाभ करके ही ब्रह्म साक्षी करते हुए उपसर्ग से बचा जा सकता है ॥६॥

योगिन सप्रवर्तन्तेसात्त्वराजसतामसा ।
प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ ॥७
पञ्चैतेयोगिनायोगविघ्नायकटुकोदया ।
वेदार्था काव्यशास्त्रार्थाविद्याशिल्पान्यशेषत ॥८
प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभ सतुयोगिन ।
शब्दार्थानखिलान्वेत्तिशब्दगृह्णातिचैवयत् ॥९
योजनानासहस्रेऽय श्रावण सोऽभिधीयते ।
समन्ताद्वीक्षतेचाष्टौसयदादेवयोनय ॥१०
उपसर्गतमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधा ।
भ्राम्यतेयन्निरालम्बमनोदोषेणयोगिन ॥११
समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रम सपरिकीर्तित ।
आवर्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तोयदाकुल ॥१२
नाशयेच्चित्तमावर्तउपसर्ग सउच्यते ।
एतैर्नाशितयोगास्तुसकलादेवयोनय ॥१३
उपसर्गमहाघोरैरावर्तन्तेपुन पुन ।
प्रावृत्यकम्बलशुक्लयोगीतस्मान्मनोमयम् ॥१४

इन सब उपसर्गों पर विजय कर लेने पर योगी के समक्ष सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से अपरापर विघ्न आक्रमण करते हैं उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैत्य, आवर्त्त ॥७॥ यह उपसर्ग भयंकर रूप से योग में विघ्न उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत होते हैं, जिससे वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ, विद्या और शिल्प

का ॥८॥ योगी के मन में प्रतिभात हो, वही प्रातिभ कहा है, जिससे सम्पूर्ण शब्द का अर्थ ज्ञात हो जाय ॥९॥ हजार-हजार योजन दूर का शब्द भी सुनाई पड़े वही श्रावणी है, जिसके द्वारा देवता के समान हुआ योगी उन्मत्त के समान आठो दिशाओं को देखता है ॥१०॥ उसे पण्डितों ने दैव उपसर्ग कहा है, जिससे योगी का चित्त आचार भ्रष्टता और मन के दूषित होने से निराश्रय रूप से भ्रमण करता है ॥११॥ वही 'भ्रम' कहा जाता है, जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त्त के समान आकुल होकर ॥१२॥ चित्त को विनष्ट करता है, वही आवर्त्त उपसर्ग कहा गया है, इन सब उपसर्गों के प्रभाव से योगी सम्पूर्ण देवयोनि ॥१३॥ तथा योग से भ्रष्ट होकर संसार चक्र में बारम्बार घूमते हैं, इसलिए मन से निर्मित श्वेत कम्बल से आवृत्त हो ॥१४॥

शरीरमण्डले दृष्ट्वा गुरुज्ञानतरोहियत् ।
ज्ञानपूर्वोपियोगोज्ञातव्योवैदिपदिचता ॥१५
चिन्तयेत्परमब्रह्मकृत्वात्तत्प्रवणमनः ।
योगयुक्तस्तदायोगीलघ्वाहारोजितेन्द्रिय ॥१६
सूक्ष्मास्तुधारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् ।
धरित्रीधारयेद्योगीतत्सौक्ष्म्यप्रतिपद्यते ॥१७
आत्मानमन्यतेचोर्वीतद्गधवज्जहातिस ।
तथाप्सुरससूक्ष्मतद्वद्रूपंचतेजसि ॥१८
स्पर्शंवायौतथातद्वद्विभ्रतस्तस्वधारणम् ।
व्योम्न सूक्ष्माप्रवृत्तिंचशब्दतद्वज्जहातिस ॥१९
मनसासर्वभूतानामनस्याविशतेयदा ।
मानसी धारणाविघ्नंमनःसूक्ष्मंचजायते ॥२०
तद्वद्बुद्धिमशेषाणासत्त्वात्मेत्ययोविद् ।
परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२१

शरीर मण्डल में गुरु ज्ञान का दर्शन करे, क्योंकि ज्ञान से योग करना सीखना चाहिये ॥१५॥ मन से परब्रह्म का चिन्तन और उन्हीं का ध्यान करे, निरंतर जितेन्द्रिय, अल्प भोजी तथा योग युक्त होकर ॥१६॥ मस्तक में भूरादि

सात प्रकार की सूक्ष्म धारणा धारण करने से उसे उसका सूक्ष्म ज्ञान होगा ।१७। इस प्रकार आत्म-चिन्तन करने से पृथिवी के बन्धन को काटने में समर्थ होना, इसी प्रकार जल में सूक्ष्म रस, तेज में रूप ।।१८।। वायु में स्पर्श और आकाश में सूक्ष्मा प्रवृत्ति तथा शब्द धारणा पूर्वक परित्याग करे ।।१९।। मन के द्वारा समस्त भूत के मन में प्रवेश करके मानसी धारणा करने से ही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ।।२०।। इस प्रकार योगी समस्त भूत की बुद्धि में प्रवेश करके अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धि रूप का लाभ करके उसे छोड़ता है ।।२१।।

परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ।
सम्यग्विज्ञाययोऽलंकृतस्यावृत्तिर्नविद्यते ।।२२
एतासांधारणानांतुसप्तानांसौक्ष्म्यमात्मवान् ।
दृष्ट्वादृष्ट्वातत सिद्धित्यक्त्वात्यक्त्वापराव्रजेत् ।।२३
यस्मिन्यस्मिञ्चकुरुतेभूतेरागमहीपते ।
तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिमप्राप्यसविनश्यति ।।२४
तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणिसप्तसक्तानिपरस्परम् ।
परित्यजतियोदेहीसपर प्राप्नुयात्पदम् ।।२५
एतान्येवतुसंधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव ।
भूतादीनाविनाशोऽत्रसंद्भावज्ञस्यमुक्तये ।।२६
गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ।
पुनरावर्ततेभूपसब्रह्मापरमानुषम् ।।२७
सप्तैताधारणायोगीसमतीत्ययदिच्छति ।
तस्मिंस्तस्मिंल्लयंसूक्ष्मेभूतेयातिनरेश्वर ।।२८
देवानामसुराणांवागन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
देहेषुलयमायातिसगनाप्नोतिचक्रवर्त्तिन् ।।२९

जो योगी सात प्रकार इन सूक्ष्म भावों को जानकर छोड़ता है, उसे पुनर्जन्म नहीं लेना होता ।।२२।। आत्मवान् योगी सात प्रकार की धारणाओं के सूक्ष्मत्व को बारम्बार देखकर, बारम्बार सिद्धि का वित्तर्जन करता हुआ परम-गति पाकर ।।२३।। जिस-जिस भूत में अनुरागी होता है, उसी-उसी में आसक्ति

को प्राप्त होता हुआ विनष्ट होजाता है ॥२४॥ इसलिए परस्पर संसक्त भूतों को पृथक् २ करके उनका परित्याग कर देता है, उसी को परमपद की प्राप्ति होती है ॥२५॥ वह इस प्रकार के सूक्ष्म सन्धान पूर्वक भूतादि में राग छोड़कर ही ब्रह्मरूप को जानकर मोक्ष लाभ करता है ॥२६॥ हे भूपते ! गन्धादि में आसक्ति ही नाश का कारण है, उसीसे उसका संसार चक्र में पुनरावर्तन होता है ॥२७॥ योगी इन सात प्रकार की धारणाओं का अतिक्रमण करके उस-उस भूत में लीन होजाता है और देव, दानव, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि के देह में लीन होकर भी किसी में आसक्त नहीं होता ॥२८-२९॥

अणिमालघिमाचैवमहिमाप्राप्तिरेवच ।
प्राकाम्यञ्चतथेशित्व वशित्वञ्चतथापरम् ॥३०
यत्रकामवसायित्व गुणानेतास्तथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरनिर्वाणसूचकान् ॥३१
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वलघिमागुण ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्यमस्यवत् ॥३२
प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वचेश्वरोयत ।
वशित्वाद्वशिमानामयोगिन सप्तमोगुण ॥३३
यत्रेच्छास्थानमप्युक्त यत्रकामावसायिता ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिन प्रोक्तमष्टधा ॥३४
मुक्तिसूचकभूपपरनिर्वाणमात्मन ।
ततोनजायतेनैवर्द्धतेनविनश्यति ॥३५

वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व इन आठ प्रकार के निर्वाण प्रदायक ऐश्वर्यात्मक गुणों को प्राप्त करता है ॥३०-३१॥ जिसके द्वारा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हो सके, वह अणिमा है, जिसके द्वारा सब कार्यों में शीघ्रता उत्पन्न हो सके वह लघिमा है, जिसके द्वारा सबका पूजनीय हो सके वह महिमा है, जिसके द्वारा समस्त इच्छित की प्राप्ति हो सके वह प्राप्ति है ॥३२॥ जिसके द्वारा व्यापित्व शक्ति उत्पन्न हो सके वह प्राकाम्य है, जिसके द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति हो वह ईशित्व है, जिसके द्वारा

सब वशीभूत हो सके, वह वशित्व है, यह वशित्व ही योगियों का सातवां गुण है ॥३३॥ जिनके द्वारा स्वेच्छानुसार गमन कर सके और स्वेच्छानुसार कार्य सिद्ध हो सके वह कामावसायित्व है, इन आठ प्रकार के गुणों से ईश्वर के सब कार्य करने में समर्थ होजाता है ॥३४॥ यह सब गुण मोक्ष के सूचक है, इनके मिलने पर मुक्ति काल उपस्थित समझे, फिर उसे जन्म मरण वृद्धि और मरण के चक्र में नहीं पड़ना होगा ॥३५॥

नापिक्षयमवाप्नोतिपरिणामंनगच्छति ।
छेदक्लेदतथादाहशोषभूरादितोनच ॥३६
भूतवर्गादिशाप्नोतिशब्दाद्यैर्ह्रियतेनच ।
नचास्यमन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्नयुज्यते ॥३७
यथाहिकानकखण्डमपद्रव्यवदग्निना ।
दग्धदोषद्वितीयेनखण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप ॥३८
नविशेषमवाप्नोतितद्वद्योगाग्निनायति ।
निर्दग्धदोषस्तेनैक्यप्रयातिब्रह्मणासह ॥३९
यथाग्निरयोसंक्षिप्त समानत्वमनुव्रजेत् ।
तदाख्यस्तन्मयोभूतोनगृह्यतेविशेषत ॥४०
परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यंदग्धकिल्बिष ।
योगीयातिपृथग्भावंनकदाचिन्महीपते ॥४१
यथाजलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति ।
तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिन परमात्मनि ॥४२

उसको क्षय की प्राप्ति कभी नहीं होगी, उसे कभी भूरादि भूतों से छिन्न, भिन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नहीं होना पड़ेगा ॥३६॥ शब्दादि उसे अपहृत न कर सकेंगे, विषयों के साथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, वह भोक्ता भी न होगा तथा उनसे उसका स्पर्श भी न हो सकेगा ॥३७॥ हे राजन् ! जैसे स्वर्ण के टुकड़े को अपद्रव्य के समान अग्नि से तपा कर दोष रहित करने पर एक निर्मल स्वर्ण खंड का संयोग होता है ॥३८॥ किसी प्रकार का प्रभेद उसमें नहीं दीखता, वैसे ही योगाग्नि से रागद्वेषादि दोषों को तपाने से योगी भी ब्रह्म के

साथ संयोग प्राप्त करता है ॥३६॥ जैसे अग्नि मे अग्नि डाले तो वह अभेद होती है तथा तदात्म हो जाती है ॥४०॥ वैसे ही दोषो के जल जाने पर योगी भी ब्रह्म से तदात्म रूप को प्राप्त होता है, उसका पृथक् भाव नही रहता ॥४१॥ जिस प्रकार जल मे गिरा हुआ जल समभाव होता है, वैसे ही योगियो का आत्मा भी ब्रह्म से समभाव हो जाता है ॥४२॥

३३–योगचर्या

भगवन्योगिनश्चर्य्याश्रोतुमिच्छामितत्त्वत ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथायोगीनसीदति ॥१
मानापमानौयावेतौप्रत्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेवविपरीतार्थौयोगिन सिद्धिकारकौ ॥२
मानापमानौयावेतौतावेवाहुर्विषामृते ।
अपमानोऽमृततत्रमानस्तुविषमविषम् ॥३
चक्षु पूतन्यसेत्पादवस्त्रपूतजलपिबेत् ।
सत्यपूतावदेद्वाणीबुद्धिपूतचचिन्तयेत् ॥४
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषुदेवयात्रोत्सवेषुच ।
महाजनेषुसिद्धचर्थनगच्छेद्योगवित्क्वचित् ॥५
व्यस्तेविधूमेव्यङ्गारेसर्वस्मिन्भुक्तवज्जने ।
अटेतयोगविद्भैक्ष्यनक्तुलेष्वेवनित्यशः ॥६
यथैवमवमन्यतेजना परिभवन्तिच ।
तथायुक्तश्चरेद्योगीसतावर्त्मनदूषयन् ॥७

अलर्क बोले—हे भगवन् ! योगियो के जिस आचरण से ब्रह्मपथ के अनुगामी होकर नाश को प्राप्त नही होना होता है उसे मै यथार्थ रूप से सुनना चाहता हू ॥१॥ दत्तात्रेयजी बोले—मान और अपमान ही प्रीति और उद्वेग के कारण है, यदि योगी इन दोनो को विपरीतार्थक अर्थात् मान को अपमान और

अपमान को मान समझले तो वह सिद्धि देने वाले होते है ॥२॥ मान, अपमान ही अमृत और विष है, मान को विष और अपमान को अमृत माने ॥३॥ जल को वस्त्र से छान कर पीवे, सत्य से पवित्र हुए वचन ही बोले तथा बुद्धि पूर्वक विचार कर ही चिन्तन करे ॥४॥ आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, याचा और महोत्सव मे कभी न जाय तथा सिद्धि के लिए महाजनो के पास भी गमन न करे ॥५॥ जब गृहस्थ के गृह की भी अग्नि शान्त होजाय, सब मनुष्य भोजन करके निश्चिन्त हो ले, उसी समय योगी को भिक्षा के लिये जाना चाहिये ॥६॥ जिसने मनुष्य अपमान करे, ऐसी चेष्टा करता हुआ, साधुत्व को कभी दूषित न करता हुआ ही विचरण करे ॥७॥

भैक्ष्यचरेद्गृहस्थेषुयावरगृहेषुच ।
श्रेष्ठानुग्रथमाचेतिवृत्तिरस्यप्रदिश्यते ॥८
अथनित्यगृहस्थेषुशालीनेषुचरेद्यति. ।
श्रद्दधानेषुदान्तेषु श्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥९
अतऊर्ध्वपुनश्चापिअदुष्टःपतितेषुच ।
भैक्ष्यचर्य्याविवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ॥१०
फलमूलप्रियगु वाकणपिण्याकसक्तव ॥११
इत्येतेचशुभाहारायोगिनासिद्धिकारका ।
तत्प्रयुञ्ज्यान्मुनिर्भक्तग्रापरमेणसमाधिना ॥१२
अप पूर्वसकृत्प्राश्यतूष्णीभूत्वासमाहित ।
प्राणायेतितततस्तस्यप्रथमाह्याहुति स्मृता ॥१३
अपानायद्वितीयातुसमानायेतिचापरा ।
उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपञ्चमी ॥१४

गृहस्थो अथवा यावावर पुरुषो के घर से ही भिक्षा ले, उनमें प्रथम वृत्ति ही प्रधान मानी गयी है ॥८॥ जो गृहस्थ लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय, महात्मा, निर्दोष तथा अपतित है, उसी के घर भिक्षा मांगे, विवर्ण पुरुषो के यहाँ से भिक्षा लेने को जघन्य वृत्ति कहा गया है ॥९-१०॥ यवागु, मट्ठा, दूध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियगु, कण, पिण्याक, सक्तु इनको

भिक्षा ले ॥११॥ यह वस्तुएँ कल्याण करने और सिद्धि देने वाले आहार के रूप में निर्दिष्ट है, इसलिए सावधानी पूर्वक यह वस्तु उपभोग करे ॥१२॥ भोजन के पहिले मौन रहकर पहले एक बार जल पीकर प्राणाय स्वाहा कहता हुआ आहार करे, योगियों की यही प्रथम आहुति मानी गयी है ॥१३॥ फिर 'अपानाय' कहकर दूसरी, 'समानाय' कहकर तीसरी, 'उदानाय' कहकर चौथी और 'व्यानाय' कहकर पाँचवीं आहुति दे ॥१४॥

प्राणायामैः पृथक्कृत्वाशेषभुञ्जीतकामतः ।
अप पुनः सकृत्प्राश्याचम्यहृदयस्पृशेत् ॥१५
अस्तेयब्रह्मचर्यत्यागोऽलोभस्तथैवच ।
व्रतानिपञ्चभिक्षूणामहिंसापरमाणिवै ॥१६
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ।
नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमा परिकीर्तिता ॥१७
सारभूतमुपासीतज्ञानयत्कार्यसाधकम् ।
ज्ञानानाबहुतायेययोगविघ्नकरोहिंसा ॥१८
इदज्ञेयमिदज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ।
अपिकल्पसहस्रेषुनंवज्ञेयमवाप्नुयात् ॥१९
त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारोजितेन्द्रिय ।
विधायबुद्ध्याद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत् ॥२०
शून्येष्वेवावकाशेषुगुहानुच्चवनेषुच ।
नित्ययुक्त सदायोगीध्यानसम्यगुपक्रमेत् ॥२१

फिर प्राणायाम द्वारा पृथक् करते हुए स्वेच्छानुसार शेष भोजन करे, फिर एकबार जल पीकर आचमन करे और हृदय को स्पर्श करे ॥१५॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ, अहिंसा यह पाँच परम व्रत भिक्षुक के लिये कहे गये है ॥१६॥ तथा अक्रोध, गुरु सेवा, शौच, लघु, आहार और नित्य स्वाध्याय यह पाँच नियम बताये है ॥१७॥ कार्य सिद्धि वाले सार रूप ज्ञान की ही आलोचना करे, क्योंकि अनेक प्रकार की ज्ञान विषयक चर्चा से योग मे विघ्न पड़ता है ॥१८॥ जो योगी ज्ञेय पदार्थ की जिज्ञासा करते हुए तृषित चित्त से भ्रमते है

उनको हजार कल्प में भी ज्ञेय पदार्थ की उपलब्धि नहीं हो सकती ॥१९॥ संग का परित्याग करता हुआ अक्रोधी, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धि योग से विचार करके चित्त को ध्यान-मग्न करे ॥२०॥ निर्जन स्थान गुफा तथा वन में जाकर सदा सम्यक् विधान पूर्वक ध्यान-रत हो ॥२१॥

वाग्दण्ड कर्मदण्डश्च मनोदण्डश्चतेत्रय ।
यस्यैतेनियतादण्डा स त्रिदण्डीमहायति ॥२२
सर्वमात्ममयंयस्यसदसज्जगदीदृशम् ।
गुणागुणमयंतत्रकः प्रियः कोनृपाप्रियः ॥२३
विशुद्धबुद्धि समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषुसमः समाहितः ।
स्थानंपरंशाश्वतमव्ययंचयतिर्हिगत्वान्नपुनर्प्रजायते ॥२४
वेदाच्छ्रेष्ठा सर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जाप्यंज्ञानमार्गश्चजप्यात् ।
ज्ञानाद्ध्यानंतद्रागवर्जितंतस्मिन्प्राप्तेशाश्वतंस्यात्पलब्धि ॥२५
समाहितोब्रह्मपरोऽप्रमादीशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रिय ।
समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्माविमुक्तिमाप्नोतितत स्वयोगत ॥२६

वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड को वश में रखने वाला त्रिदण्डी ही महायती कहा जाता है ॥२२॥ इस सत्-असत्, गुण, अगुण युक्त दिखाई पड़ने वाले विश्व को जो योगी आत्ममय मानते हैं, उनके लिए कौन प्रिय और कौन अप्रिय है ? ॥२३॥ जो विशुद्ध बुद्धि से लोहा और सुवर्ण को समान मानते तथा समस्त भूत में समाहित होकर सर्वाधार, शाश्वत एवं अव्यय ब्रह्म को सर्वत्र विद्यमान देखते हैं, उन्हें पुनर्जन्म नहीं धारण करना होता ॥२४॥ निखिल वेद और सब प्रकार की यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है, उस यज्ञ से जप श्रेष्ठ है, जप से ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्ग से निःसंग और राग हीन ध्यान श्रेष्ठ है, क्योंकि उस ध्यान योग के द्वारा ही शाश्वत ब्रह्म की प्राप्ति होती है ॥२५॥ जो सावधानी में ब्रह्मपरायण, प्रमाद रहित, एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योग-साधन करते हैं, वे आत्मा में आत्मा के संयोग को पाकर मोक्ष लाभ करते हैं ॥२६॥

३४---- ओंकार स्वरूप कथन

एवयोवर्त्ततेयोगीसम्यग्योगव्यवस्थित ।
नसज्यावर्तितुं शक्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१
दृष्ट्वाचपरमात्मानप्रत्यक्षविश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रीवविश्वेशविश्वभावनम् ॥२
तत्प्राप्तयेमहत्पुण्यमोमित्येकाक्षरंजपेत् ।
तदेवाध्ययनंतस्यस्वरूपश्रृण्वत परम् ॥३
अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ।
एतास्तिस्त्र स्मृतामात्राःसात्त्वराजसतामसा ॥४
निर्गुणायोगिगम्यात्याचाधर्ममात्रोर्ध्वसंस्थिता ।
गान्धारीतिचविज्ञेयागान्धारस्वरसश्रया ॥५
पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ।
यथाप्रयुक्तओङ्कार प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि ॥६
तथोङ्कारमयोयोगीत्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ।
प्राणोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मदेव्यमनुत्तमम् ॥७

दत्तात्रेयजी बोले—जो योगी इस प्रकार सम्यक् विधान पूर्वक योग युक्त होते है, वह सौ-सौ जन्मान्तर मे भी अपने पद से निवृत्त नही होते ॥१॥ जो विश्व स्वरूप, विश्वेश्वर और विश्वभावन है तथा विश्व ही जिनके पाद, ग्रीवा और मस्तक है उन्ही परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी ॥२॥ उनको पाने के निमित्त 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्र का जप करे, यही उनका स्वाध्याय है, इसी ओंकार स्वरूप का श्रवण करना चाहिये ॥३॥ अकार, उकार और मकार यही तीन अक्षर ओंकार स्वरूप है, इन्हे तीन मात्रा समझो यही मात्रा के क्रम से सात्विक, राजसिक और तामसिक होते है ॥४॥ तथा ओंकार मे एक अर्द्ध मात्रा और है, वह तीनो गुणो से परे है, ऊर्ध्व मे अवस्थित योगियो को गम्य है, इसमे गान्धार स्वर का आश्रय होने से यह गान्धारी नाम से प्रसिद्ध है ॥५॥ यह मात्रा चीटी के समान गति और स्पर्श वाली है, यह शिरोभाग मे दिखाई देती

है, तथा जिस प्रकार ओंकार प्रयुक्त यह शिरोभाग में जाती है ॥६॥ वैसे ही योगी अक्षर-अक्षर से ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को बाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने ॥७॥

अप्रमत्तेनवेद्धव्यशरवत्तन्मयोभवेत् ।
ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नय ॥८
विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषि च ।
मात्रा साद्धिस्तिस्रश्चविज्ञेयाःपरमार्थत ॥९
तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ।
अकारस्त्वचभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुव ॥१०
सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोक परिकल्प्यते ।
व्यक्तातुप्रथममात्राद्वितीयव्यक्तसंज्ञिता ॥११
मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरपदम् ।
अनेनैवक्रमेणेतांविज्ञेयायोगभूमय. ॥१२

प्रमाद रहित होकर ही बाण के समान ब्रह्म को विद्ध करने में तन्मय हो सकता है, ओंकार ही त्रिवेद, त्रैलोक्य और तीनों अग्नि ॥८॥ ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा ऋक्, यजु, साम स्वरूप है, परम अर्थ में ओंकार की साढे तीन मात्रा है ॥९॥ इस ओंकार में मिलकर योगी उसमें लीन होते है, अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक ॥१०॥ तथा व्यञ्जन युक्त मकार स्वर्लोक कहा गया है, उसकी प्रथम मात्रा व्यक्ता, द्वितीय अव्यक्ता ॥११॥ तृतीय चिच्छक्ति और चतुर्थ परम-पद है, इस प्रकार क्रम पूर्वक इसे योगभूमि समझो ॥१२॥

ओमित्युच्चारणात्सर्वगृहीतसदसद्भवेत् ।
ह्रस्वातुप्रथममात्राद्वितीयादैर्घ्यसंयुता ॥१३
तृतीयाचप्लुतार्धस्थावचस सानगोचरा ।
इत्येतदक्षरब्रह्मपरमोंकारसंज्ञितम् ॥१४
यस्तुवेदनर सम्यक्तथाध्यायतिचापुन ।
संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्त्रिविधबन्धन ॥१५

प्राप्नोतिब्रह्मणिलयंपरमेपरमात्मनि ।
आक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृत्युमरिष्टत ॥१६
उत्क्रान्तिकालेसम्मृत्वपुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेनसिद्ध योगेनवापुन. ।
ज्ञेयान्यरिष्टानिसदायेनोत्क्रान्तौनसीदति ॥१७

केवल ॐ का उच्चारण करते ही सदैव सत्—असत् का ग्रहण होजाता है, प्रथम मात्रा ह्रस्व और द्वितीय मात्रा दीर्घ है ॥१३॥ तृतीय मात्रा प्लुत स्वरूप है और अर्द्ध मात्रा का तो स्वरूप वर्णन ही नहीं किया जा सकता, इस प्रकार जो योगी ओंकार स्वरूप अक्षर परब्रह्म को ॥१४॥ जानकर उनका ध्यान करते है वह ससार चक्र का अतिक्रमण करते हुए सभी बन्धनों को छोड कर ॥१५॥ उन परब्रह्म मे ही लीन हो जाते है, यदि उनके कर्म-बन्धन क्षीण न हो तो वह अरिष्ट द्वारा मृत्यु काल को जानकर ॥१६॥ उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुन प्राप्त होते है, इसलिए सिद्ध या असिद्ध कैसा भी योगी हो, अरिष्ट का ज्ञान होना ही चाहिये, क्योंकि अरिष्ट के ज्ञान से मरण-काल मे दुख की प्राप्ति नही होती ॥१७॥

३५—अरिष्ट कथन

अरिष्टानिमहाराजशृणुवक्ष्यामितानिते ।
येषामालोकनान्मृत्यु निजजानातियोगवित् ॥१
देवनागंध्रुवशुक्रसोमच्छायामरुन्धतीम् ।
योनपश्येच्चजीवेत्सनरःसवत्सरात्परम् ॥२
अरश्मिबिम्बसूर्य्यस्यवह्निंचैवाशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादशमासेभ्योनरोनोर्ध्वंनुजीवति ॥३
वान्तेमूत्रपुरीषेचय स्वर्णंरजततथा ।
प्रत्यक्षकुरुतेस्वप्नेजीवेत्सदशमासिकम् ॥४

दृष्ट्वाप्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणिच ।
सुवर्णवर्णान्वृक्षाञ्श्चनवमासान्सजीवति ॥५
स्थूल कृश कृश स्थूलोयोऽकस्मादेवजायते ।
प्रकृतेश्चनिवर्तनस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥६
खरोड यस्यपदंपाष्ण्यर्पादस्याग्रेचनाभवेत् ।
पाशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ॥७

दत्तात्रेयजी बोले—हे राजन्! अब तुम्हारे प्रति समस्त अरिष्ट का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो, इन्हें देख कर योगी अपना मृत्यु काल समझले ॥१॥ देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, चन्द्र, स्वच्छाया और अरुन्धती इनको जो नहीं देख सकता वह सम्वत्सर के पश्चात् ही मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२॥ सूर्य का बिम्ब रश्मियों से रहित तथा अग्नि को किरणों युक्त जो देखे, वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥३॥ स्वप्नावस्था में मूत्र पुरीष और कफ में जिसे स्वर्ण अथवा चाँदी दिखाई दे, वह दश महीने से अधिक नहीं जीता ॥४॥ जो प्रेत, पिशाच, गन्धर्वनगर अथवा स्वर्णिम वृक्ष को देखता है वह नौ मास ही जीवित रहता है ॥५॥ जो सहसा स्थूल हो कर कृश हो जाय और पुनः कृश से स्थूल हो जाय वह आठ महीने ही प्राण धारण करता है ॥६॥ रेत अथवा अथवा कीचड़ में पाँव जमाने पर जिसकी एड़ी या पाँव के अगले भाग का चिह्न खंडित दिखाई पड़े उनकी परमायु सात महीने ही समझो ॥७॥

गृध्रकङ्कोलकाकोलोवायसोवापिमूर्द्धनि ।
क्रव्यादोवाखगोलीन षण्मासायुःप्रदर्शक ॥८
हन्यतेकाकपक्षीभि पाशुवर्षेणवानर ।
स्वाच्छायामन्यथादृष्ट्वाचतु पचसजीवति ॥९
अनभ्रे विद्युतंदृष्ट्वादक्षिणादिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्रधनुश्चापिजीवितंहित्रिमासिकम् ॥१०
वृतेतैलेतथादर्शतोयेवादात्मनस्तनुम् ।
य पश्येदशिरस्काधामासादूर्ध्वनजीवति ॥११

यस्यवक्त्रसमोगन्धोगात्रेशत्रसमोऽपिवा ।
तस्यार्द्धमासिकज्ञेयंयोगिनोनृपजीवितम् ॥१२
प्रस्यवंस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ।
पिबतश्चजलशोषोदशाहसोऽपिजीवति ॥१३
सभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति ।
हृष्यतेनाम्बुसस्पर्शात्तस्यमृत्युरुपस्थित ॥१४

गृद्ध, उलूक, काक अथवा क्रव्याद या अन्य कोई नीलवर्ण का हिंसक पक्षी उड़ कर शिर पर आ बैठे तो छ मास ही जीवन रहता है ॥८॥ जो काक पंक्ति से अथवा धूधि की वर्षा से आहत हो जाय तथा जो अपने देह की छाया को विपरीत देखे वह चार या पांच मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥९॥ बिना मेघ के दक्षिण दिशा मे जिसे बिजली चमकती दिखाई पड़े अथवा रात्रि के समय इन्द्र धनुष दिखायी दे वह दो-तीन मास तक ही जीवन धारण करता है ॥१०॥ जिसे घृत, तेल, दर्पण और जल मे अपना स्वरूप दिखायी न पड़े अथवा अपने शरीर ही मस्तक रहित देखे, वह एक मास से अधिक जीवित नहीं रहता ॥११॥ जिसके शरीर से मृतक शरीर जैसी गन्ध निकलती हो वह एक पक्ष ही जीवित रहता है ॥१२॥ जिसका हृदय और पाँव स्नान करते ही सूख जाय अथवा जल पीते ही पुनः प्यास से कण्ठ सूखने लगे वह दश दिन ही जीवित रहता है ॥१३॥ जिसके मर्म स्थान को वायु छिन्न भिन्न करदे तथा जल के स्पर्श से जिसे रोमाच न हो, उसका मृत्यु काल ही उपस्थित समझे ॥१४॥

ऋक्षवानरयानस्थोगायन्योदक्षिणादिशम् ।
स्वप्नेयमातिसस्वापिनमृत्यु कालमिच्छति ॥१५
रक्तकृष्णाम्बरधरागायन्तीहसतीचयम् ।
दक्षिणाशानयेन्नारीस्वप्नेसोपिनजीवति ॥१६
नग्नक्षपणकस्वप्नेहसमानमहाबलम् ।
एवसवीक्ष्यवलगन्तविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥१७
आमस्तकतलाद्यस्तुनिमग्नपङ्कसागरे ।
स्वप्नेपश्यत्यथात्मानससद्योम्रियतेनर ॥१८

केशाङ्गारास्तथाभस्मभुजङ्गान्निर्जलानदीम् ।
दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तु मृत्युरेकादशेदिने ॥१६
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताडितं स्वप्नेसद्योमृत्युं लभेन्नरः ॥१७
सूर्योदयेयस्य शिवाक्रोशन्तीयातिसमुखम् ।
विपरीतपरीतवाससद्योमृत्युमृच्छति ॥१८

जो स्वप्नावस्था मे रीछ या बन्दर के यान मे चढ कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की तरफ जाय उसका मृत्यु काल आया समझे ॥१५॥ जिसे लाल, काले वस्त्र पहिने हुए हास्य मुख से गाली हुई स्त्री स्वप्न मे दक्षिण दिशा मे ले जाय उसकी भी मृत्यु शीघ्र होती है ॥१६॥ स्वप्न मे महाबल, नग्न, सप्तक सन्यासी को एकाकी हँसता हुआ जाता देखे तो मृत्यु काल समीप जाने ॥१७॥ तथा जिसे स्वप्न मे अपना शरीर मस्तक तक कीचड मे घुसा हुआ दिखाई दे, उनका मरण काल भी निकट समझे ॥१८॥ स्वप्न मे केश, अङ्गार, भस्म' सर्प, शुष्क नदी दिखाई दे तो ग्यारहवे दिन उसकी मृत्यु होती है ॥१९॥ स्वप्न मे जिसे कराल तथा विकट आकार वाले कृष्ण वर्ण पुरुष शस्त्र लेकर पत्थर से मारे उसकी मृत्यु शीघ्र ही होने वाली समझो ॥२०॥ जिस के सोपने, पीछे अथवा चारो ओर सूर्योदय काल मे गीदडी जाय वह शीघ्र ही मरता है ॥२१॥

यस्यवैभुक्तमात्रस्यहृदयंबाध्यतेक्षुधा ।
जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुर्नसंशय ॥२२
दीपगन्धनयोर्वेत्तिनस्यत्यह्नितथानिशि ।
नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षतेनसजीवति ॥२३
शक्रायुधंचार्द्धरात्रेदिवाग्रहतारास्तथा ।
दृष्ट्वामन्येतसक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥२४
नासिकावक्रतामेतिकर्णौंयोनमनोन्नतौ ।
नेत्रंचवामंस्रवतियस्यतस्यायुरुद्गतम् ॥२५

आरक्ततामेतिमुखंजिह्वाचाप्यामतायदा ।
तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥२६
उष्ट्रखरसमारूढोनयेत्स्वप्नेदक्षिणादिशम् ।
प्रयातिसत्वरंजानीयात्सद्योमृत्युं नरेश्वर ॥२७
पिधायकर्णौनिर्घोषंनशृणोत्यात्मसम्भवम् ।
नश्यत्येकश्रुतोज्योतिर्यस्यसोऽपिनजीवति ॥२८

भोजन करके उठते ही जो तुरन्त भूख से व्याकुल हो जाय तथा दन्त घर्षण होने लगे, उसकी आयु समाप्त ही समझो ॥२५॥ जिसको नासिका को दीप गन्ध का ज्ञान न हो, जो दिन और रात्रि भय को प्राप्त हो तथा जो अपने प्रतिबिम्ब को दूसरे के नेत्र में न देख सके उनकी भी आयु समाप्त हुई समझो ॥२३॥ यदि आधी रात में इन्द्र धनुष और दिन में तारे दिखाई दे तो उसकी भी आयु को निःशेष हुआ समझे ॥२४॥ जिसकी नाक टेढ़ी हो जाय, दोनों कान ऊँचे नीचे प्रतीत हों अथवा बाँए नेत्र से आँसू गिरते हों, उसकी आयु भी सम्पूर्ण हुई समझिये ॥२५॥ मुख लाल जिह्वा श्याम हो जाय तो अपना काल समीप समझे ॥२६॥ स्वप्न में ऊँट या गधे के यान में चढ़ कर दक्षिण की ओर जाय तो शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ॥२७॥ दोनों कान ढक लेने पर अपना शब्द सुनाई न पड़े अथवा जिनके नेत्रों में कुछ दिखाई न पड़े वह शीघ्र ही मरता है ॥२८॥

पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारपिधीयते ।
नचोत्तिष्ठतिय श्चभ्रात्तदन्ततस्यजीवितम् ॥२९
ऊर्ध्वाचेदृष्टिर्नसंप्रतिष्ठारक्तापुनःसपरिवर्तमाना ।
मुखस्यचोष्माशिशिराचनाभि शसंतिपु सामपरशरीरम् ॥३०
स्वप्नेऽग्निप्रविशेद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुनः ।
जलप्रवेशादपिवातदन्ततस्यजीवितम् ॥३१
यश्चाभिहन्यतेदुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिव ।
समृत्यु समरात्रान्तेनर प्राप्नोत्यसंशयम् ॥३२

स्वप्नस्त्वममलशुक्लंरक्तंपश्यत्यथोसितम् ।
य पुमान्मृत्युमासन्नतस्यापिहिविनिर्दिशेत् ॥३३
स्वभावविपरीत्यमनुप्रकृतेश्चविपर्ययः ।
कथयन्तिमनुष्याणासमासन्नौयमान्तकौ ॥३४

स्वप्न मे जो गढे मे गिरकर उससे निकलने का मार्ग न पा सके या गिरकर उठने मे असमर्थ हो तो भी उसकी आयु निःशेष समझो ॥२९॥ जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व भाग मे नही जमती, लाल रग की होकर बारम्बार घूर्णित या चचल हो जाय, तथा जिसका मुख उष्णता से युक्त और नाभि विस्तृत हो जाय वह शरीर त्याग कर अन्य देह धारण करता है ॥३०॥ स्वप्न मे जो अग्नि या जल मे घुस कर फिर बाहर न निकले उसका जीवन समाप्त समझो ॥३१॥ जो दिन अथवा रात्रि मे दुष्ट भूतो से ताडित हो वह रात दिन मे मर जाता है ॥३२॥ जो अपने पहिने हुए वस्त्रो को लाल या काले रग के देखता है उसका मरण काल निकट समझो ॥३३॥ स्वभाव के विपरीत होने तथा प्रकृति का विपर्यय होने से यम और अन्तक उस पुरुष के समीप होते है ॥३४॥

येषाविनीत मततलेऽस्यपूज्यतमामता ।
तानेवचात्यजानातितानेवचविनिन्दति ॥३५
देवब्राह्मणचैत्येवृद्धान्गुरूंश्चप्राज्ञनिन्दति ।
मातापित्रोर्नसत्कारंजामातृणाकरोतिच ॥३६
योगिनाज्ञानविदुषामन्येषाचमहात्मनाम् ।
प्राप्तेतुकाले पुरुषस्तद्विज्ञेयविचक्षणैः ॥३७
योगिनाक्षतलयत्वादरिष्टान्यबनीपते ।
सवत्सरान्तेतज्ज्ञेयफलदानिशिवासरम् ॥३८
विलोक्यारिष्टदाचैवपाकलक्षणसुभीषणा ।
विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर ॥३९
ज्ञात्वाकालंचतत्स्थानंसःस्थानंसमाश्रित ।
युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानान्यात्फलोभवेत् ॥४०

दृष्ट्वारिष्टतथायोगीत्यक्त्वामरणजभयम् ।
तत्स्वभावतदालोक्यकालोयावद्विपाकद ॥४१
तस्यभागेतथैवाह्नोयोगयुञ्जीतयोगवित् ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे चमध्याह्ने चापिदिने ॥४२
यत्रवारजनीभागेतदरिष्टनिरीक्षितम् ।
तत्रैवतावद्युञ्जीतयावत्प्राप्तहितदिनम् ॥४३

काल के प्राप्त होने पर ही मनुष्य पूजनीय पुरुषो का निरादर तथा निन्दा करता है ॥३५॥ देव-पूजन से विमुख होना, वृद्धो और विप्रो की निन्दा करना तथा माता-पिता और जामाता का सत्कार ॥३६॥ नही करता और योगी, ज्ञानी तथा अन्य साधु-सन्तो के सत्कार से विमुख होना है, उनकी भी आयु निःशेष समझे ॥३७॥ हे राजन् ! योगियो को यह ज्ञान रखना चाहिये कि यह सभी अरिष्ट संवत्सर के अन्त मे रात्रि हो या दिन, फल देते है ॥३८॥ इन सभी भीषण फलो पर दृष्टि रखे, इनका ज्ञान सहज मे ही होजाता है, इन्हे भले प्रकार जान कर उनके उपस्थित-काल का ध्यान रखे ॥३९॥ उनके उपस्थिति काल को जान कर भय रहित स्थान का आश्रय लेकर योग मे निमग्न हो, जिससे काल का वश न चल सके ॥४०॥ अरिष्ट को देखकर उससे होने वाले मृत्यु भय को त्याग कर अरिष्ट के स्वभाव पर विचार करे और जब वह समय उपस्थित हो ॥४१॥ दिन के उसी भाग मे योगी योग निमग्न हो, दिन के पूर्वाह्ण अथवा अपराह्ण मे ॥४२॥ अथवा रात्रि मे, जिस समय भी अरिष्ट दिखायी पडा, उसी समय योग मग्न होना चाहिये, जब तक वह मृत्यु का दिन न आवे, तब तक इसी प्रकार योग क्रिया मे लगा रहे ॥४३॥

ततस्त्यक्त्वाभयसर्वंजित्वाकालमात्मवान् ।
तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मन ॥४४
युञ्जीतयोगतिर्जित्यत्रीन्पुराणान्परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वृत्तिमपिसत्यजेत् ॥४५
तत परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ।
यद्दुर्द्धर्षंब्रह्मचाख्यातु शक्यतेतत्समश्नुते ॥४६

एतत्सर्वसमाख्यातंतवालर्कंयथार्थवत् ।
प्राप्स्यसेयेनवद्ब्रह्मसक्षेपात्तन्निबोधमे ॥४७
शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिर्यथा ।
समुत्सृजतिनायुक्तं सोपमायोगिन स्मृता ॥४८
यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ।
आविष्करोतिनैकं सन्नुपमासापियोगिन ॥४९

वह आत्मवान् होकर सम्पूर्ण भव को छोड़कर और उस समय को जीतकर उसी गृह मे या जहाँ भी मन स्थिर रह सके॥४४॥ निवास करता हुआ तीनो गुणो पर विजय प्राप्त करके, एकान्तिक चित्त से योग युक्त होकर परब्रह्म मे अभिनिविष्ट हो तथा आत्मा की तन्मयता पूर्वक चित्त वृत्ति का सर्वथा त्याग करे ॥४५॥ ऐसा करके ही वह इन्द्रियातीत, बुद्धि द्वारा अगम्य और वाणी द्वारा अकथनीय परम निर्वाण को प्राप्त कर सकते है ॥४६॥ यह सब यथार्थ रूप से मैंने तुम्हे बताया है, अब जिस प्रकार ब्रह्म पदार्थ की उपलब्धि हो सकती है, उसे सक्षिप्त रूप से कहता हूँ, श्रवण करो ॥४७॥ चन्द्रमा की किरणो के सयोग से ही चन्द्रकान्त मणि से जल निकलता है योगियो की योग सिद्धि का उपाय भी यही है अर्थात् योग मे मन न लगाने से आत्मज्ञान का सस्कार कभी नही हो सकता ॥४८॥ सूर्य रश्मियो के सयोग से चन्द्रकान्त मणि से जैसे अग्नि निकलती है, वैसे ही योग युक्त न होने से ब्रह्म का साक्षात्कार सम्भव नही ॥४९॥

पिपीलिकाखुनकुलगृहगेधाकपिजला ।
वसन्तिस्वामिवद्गेहेष्वस्तेयान्ततोऽन्यत्र ॥५०
दुःखतुस्वामिनोध्वंसेतस्यतेषानकिंचन ।
वेश्मनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये ॥५१
मृद्दिहिकाल्पदेहाणिमुखाग्रेणाप्यणीयसा ।
करोतिमृद्धारचयमुपदेश सयोगिन ॥५२
पशुपक्षिमनुष्याद्यैः पत्रपुष्पफलान्वितम् ।
वृक्षविलुप्यमानंतुदृष्ट्वासिध्यन्तियोगिन ॥५३

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् ।
सहजेनविवर्द्धन्तयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४
द्रवपूर्णमुपादायपात्रमारोहतोभुव ।
तुङ्गं विलोकयोच्चैर्विज्ञातक्रियोगिना ॥५५
सर्वस्वेजीवनायालनिखातं पुरुषस्यया ।
चेष्टातातत्त्वतोज्ञात्वायोगिन कृतकृत्यता ॥५६

चींटी, सूयक, नकुल,गोधा,कपिञ्जल और कपोत यह सब गृहस्वामी के समान ही वहाँ रहते है और घर के नष्ट होने पर ही अन्यत्र जाते है ॥५०॥ गृहस्वामी के न रहने से उन्हे कुछ प्रयोजन नही है इसी प्रकार स्वभाव से ही देह के पीछे देह का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, इसलिए उसके प्रति ममता के वश मे नही पडना चाहिये, ऐसा जानकर सब छोडकर योग-साधन मे ही चित्त लगावे ॥५१॥ सूक्ष्म शरीर वाली चींटी अपने अत्यन्त सूक्ष्म मुख से ही सञ्चय करती है, योगियो के लिए यह भी एक दृष्टान्त है कि ब्रह्म साधन जैसा कठिन कार्य योग रूप साधारण उपाय से वश मे कर लिया जाता है ॥५२॥ पशु, पक्षी, मनुष्यादि फल, पुष्प, पत्र से युक्त वृक्ष को नष्ट कर देते है, उसी प्रकार काल के हाथ से सबको नष्ट होना पडता है, यह जानकर योग-साधन पूर्वक मोक्ष लाभ करे ॥५३॥ रुरु मृग के बालक के सींग का अग्र भाग तिलक के आकार का होकर भी उसी के साथ बढता है, इसी प्रकार योगी की कठिन योगचर्या भी अभ्यास से सुलभ हो जाती है ॥५४॥ जब मनुष्य द्रव से भरा हुआ पात्र हाथ मे लेकर ऊँचे स्थान मे चढता है, उस समय उसके अग पर दृष्टि डालने से योगी को कोई बात अज्ञात नही रहती ॥५५॥ मनुष्य जीवन के लिए जो अपने सर्वस्व को नष्ट करने मे लगा है, उसे भले प्रकार जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है ॥५६॥

तद्गृहयत्नवसतितद्भोज्ययेनजीवति ।
येनसम्पद्यतचार्थास्तत्सङ्गममताजका ॥५७
अभ्यर्थितोऽपितैं कार्यकरोतिकरणैर्यथा ।
तथाबुद्ध्यादिभियोंगीपारक्यं साधयेत्परम् ॥५८

ततः प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कं नृपतिः ।
प्रश्रयावनतोवाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ॥५९
दिष्ट्यादेवैरिदुर्ब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् ।
उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदभयम् ॥६०
दिष्ट्याकाशियतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः ।
यदुच्छेदादिहायातं मयुष्मत्सङ्गदोमम ॥६१
दिष्ट्यामदबलश्चाहंदिष्ट्यामृत्याश्चमेहताः ।
दिष्ट्याकोपक्षयायातोदिष्ट्याहंभीतिमागतः ॥६२
दिष्ट्यात्वत्पादयुगुलममस्मृतिपथंगतम् ।
दिष्ट्यात्वदुक्तयः सर्वामेमचेतसिसंस्थिताः ॥६३

जहाँ निवास करे वही गृह, जिससे प्राण धारण हो वह भोज्य और जिससे विषय की निष्पत्ति हो वही सुख है, इसलिये, इस विषय मे ममता क्यो करे ? ॥५७॥ जिन प्रकार कारण से कार्य सिद्ध होता है उसी प्रकार योगी पारलौकिक बुद्धि आदि कारण रूप से ब्रह्म को सिद्धि लाभ करते है ॥५८॥ जब बोला—इसके पश्चात् राजा अत्रिपुत्र विधि पूर्वक भुक्त कर दत्तात्रेयजी को प्रणाम करते हुए आनन्द सहित बोले ॥५९॥ हे ब्रह्मन् ! मुझे सौभाग्य से अत्युग्र, प्राणो को संशयप्रद एव भयदायक तिरस्कार शत्रु से मिला है ॥६०॥ सौभाग्य से ही काशीराज इतने समृद्धिशील हुए, जिसके कारण मै आपके सत्सग का लाभ कर सका ॥६१॥ सौभाग्य से ही मेरा बल क्षीण होगया, सौभाग्य से ही मेरे भृत्य मारे गये है और सौभाग्य से ही मेरा कोप नष्ट होगया और भय का सचार हुआ ॥६२॥ सौभाग्य से ही आपके दोनो चरण मेरे स्मृति मार्ग मे उदय हुए है तथा आपके वचन मेरे हृदय मे निवास प्राप्त कर सके है ॥६३॥

दिष्ट्याज्ञानममोत्पन्नभवतश्चसमागमात् ।
भवताचैवकारुण्यदिष्ट्याब्रह्मन्कृतमयि ॥६४
अनर्थोऽप्यर्थतायातिपुरुषस्यशुभोदये ।
तथेदमुपकारायव्यसनसंगमात्तव ॥६५

सुबाहुरुपकारीमेसचक्राशिपतिः प्रभो ।
तथा कृतेऽहृतप्राप्तोयोगीशभवतोऽन्तिकम् ॥६६
सोऽहृतवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिष ।
तथायतिष्येयेनेदृङ्नभूयोदुःखभाजनम् ॥६७
परित्यजिष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् ।
त्वत्तोऽनुज्ञामासाद्यज्ञानदातुर्महात्मन ॥६८
गच्छराजेन्द्रभद्रं तेयथाशक्तिकथितमया ।
निर्ममोनिरहङ्कारस्तथाचरविमुक्तये ॥६९

सौभाग्य से ही आपका समागम पाकर ज्ञान का मुझ में उदय हुआ है और सौभाग्य से ही आपने मुझ पर दया की है ॥६४॥ शुभादय हो तो अनर्थ भी अर्थ होजाता है, इस भीषण विपत्ति ने आपसे मिला कर मेरा उपकार ही किया है ॥६५॥ हे प्रभो ! मैं जिनके लिये यहाँ आया हूँ,वह सुबाहु और काशी-नरेश दोनो ही मेरे लिए परमोपकारी सिद्ध हुए है ॥६६॥ आपकी कृपा रूप अग्नि ने मेरे अज्ञान रूपी पापो को भस्म कर दिया है, जिससे ऐसे दुःखो की प्राप्ति पुन न हो सके, अब मैं उसी के अनुष्ठान में लगूँगा ॥६७॥ आप ज्ञान-दाता महात्मा है, आपकी अनुमति पाकर ही मै गृहस्थाश्रम को छोड़ूँगा, क्योंकि वह अत्यन्त दुःख रूपी वन ही है ॥६८॥ दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन् ! तुम जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, मैंने तुम्हे जो उपदेश दिया है, ममता और अहकार छोड कर मोक्ष लाभार्थ उसी पर चलो ॥६९॥

एवमुक्त प्रणम्यैनमाजगामत्वरान्वित ।
यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽव्रज ॥७०
समुत्पत्यमहाबाहु सोलर्क काशिभूपतिम् ।
सुबाहोरग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निव ॥७१
राज्यकामुककाशीशभुज्यतांराज्यमूर्जितम् ।
यथाचरोचतेतद्वत्सुबाहो.सप्रयच्छवा ॥७२
किमलर्कपरित्यक्त राज्यतेसयुगविना ।
क्षत्रियस्यनधर्मोऽयभवाश्चक्षत्रधर्मवित् ॥७३

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् ।
सदधीतशरजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम् ॥७४
सजित्वानृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ।
भुञ्जीतपरमसिद्धयै यजेतक्रमहामखः ॥७५
एवमीदृशकवीरममाप्यासीन्मन.पुरा ।
साम्प्रतविपरीतार्थंशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥७६

जड ने कहा—दत्तात्रेयजी की यह आज्ञा सुनकर अलर्क ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रता से अपने भाई सुबाहु और काशीनरेश के पास पहुँचे ॥७०॥ उन्होंने काशीनरेश के समीप जाकर सुबाहु के सामने हँसते हुए कहा ॥७१॥ हे काशिराज ! तुमने राज्य की अभिलाषा की है, इसलिए इस समृद्धिशाली राज्य का उपभोग करो या सुबाहु को देदो, जो चाहो, वही करो ॥७२॥ काशिराज बोले—हे अलर्क ! तुम युद्ध के बिना राज्य को क्यों छोडते हो, तुम तो क्षात्रधर्म-विशारद हो, यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है ॥७३॥ अमात्यों को वश में रखकर राजा मृत्यु के भय को छोडकर शत्रु को लक्ष्य बनाकर बाण सधान करे ॥७४॥ तथा शत्रु को जीत कर सिद्धि के लिए इच्छित भोगों का उपभोग करते हुए श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करे ॥७५॥ अलर्क बोले—हे वीर ! मैं भी पहिले यही सोचता था, किन्तु अब उसके विपरीत सोचता हूँ, उसका कारण सुनो ॥७६॥

यथायभौतिक.सघस्तथान्तःकरणंनृणाम् ।
गुणास्तुमकलास्तद्वच्छेषेष्वेवजन्तुषु ॥७७
चिच्छक्तिरेकएवायंयदानान्योऽस्मिकश्चन ।
तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥७८
तन्मयादु खमासाद्यत्वद्वयोद्भवमुत्तमम् ।
दत्तात्रेयप्रसादेनज्ञानप्राप्तनरेश्वर ॥७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासगमशेषत ।
मनोब्रह्मणिसधास्येतज्जयेपरमोजय ॥८०

साध्यमन्यत्तत्सिद्ध्यै यत किंचिन्नविद्यते ।
इन्द्रियाणिचसंयम्यतत सिद्धिनियच्छति ॥८१
सोहनतेऽरिर्नममासिशत्रु सुबाहुरेवोनममापकारी ।
हृष्टमयासर्वं मिदंयथात्मान्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयान्य. ॥८२
इत्थसतेनाभिहितोनरेन्द्रोहृष्ट समुत्थायततःसुबाहु ।
विष्ट्वेतितभ्रातरमाभिनन्द्यकाशीश्वरवाक्यमिदंबभाषे ॥८३

जैसे मनुष्य मात्र का संग भौतिक है, उसी प्रकार उनका अन्त करण और गुणगण भी भूत की समष्टि है ॥७७॥ हे राजन् ! केवल चिच्छक्ति रूप ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सब असत्य है ऐसा ज्ञान मुझे मिला है तब शत्रु, मित्र, प्रभु या भृत्य की कल्पना ही कैसी ? ॥७८॥ हे नरेश्वर ! तुम्हारे भय से अत्यंत दुःखित होकर दत्तात्रेयजी की कृपा से यह ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ ॥७९॥ अब जितेन्द्रिय होकर समस्त संग का त्याग करके केवल परब्रह्म में ही मन को लगाऊँगा, ब्रह्म के जीतते ही सबकुछ जीत लिया समझो ॥८०॥ एकमात्र वही विद्यमान है उसके लिए अन्य साधना उचित नहीं है, जितेन्द्रिय हुए बिना सिद्धि लाभ नहीं हो सकता ॥८१॥ हे राजन् न मैं तुम्हारा शत्रु हूँ, न तुम मेरे शत्रु हो, सुबाहु ने भी मेरा कोई अपकार नहीं किया, इसलिए अब दूसरे शत्रु की खोज करो ॥८२॥ अलर्क के इन वचनों से काशिराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सुबाहु भी हर्ष से 'परम सौभाग्य' कहते हुए उठकर भाई को अभिनन्दन करते हुए काशिराज से बोले ॥८३॥

३६—अलर्क की योगसिद्धि

यदर्थं नृपशार्दूलत्वामहंशरणंगत' ।
तन्मयासकलंप्राप्तं यास्यामित्वंसुखीभव ॥१
किंनिमित्तभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव ।
सुबाहोतन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलहिमे ॥२

समाक्रान्तमलर्केणपितृपैतामहंमहत् ।
राज्यदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदित' ॥३
ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते ।
एतत्तेबलमानीततद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम् ॥४
काशिराजनिबोधत्वयदर्थं मयमुद्यम ।
कृतोमयाभवाञ्चैवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५
भ्रातामममायग्र्येषुतत्त्ववित् ?भोगतत्परः ।
विमूढौबोधवन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥६
तयोर्ममचयन्मात्राबाल्येस्तन्ययथामुखे ।
तथावबोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते ॥७
तयोर्ममचविज्ञेया पदार्थायेमतानृभि' ।
प्राकाम्यमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥८

सुबाहु ने कहा—हे नृपशार्दूल ! जिस लिये मैं आपकी शरण मे गया था, वह सब मुझे मिल गया, अब मैं जाता हू, आप भी सुखी रहे ॥१॥ काशी-नरेश ने कहा—हे सुबाहो ! आप मेरी शरण मे किस लिये आये थे और आपका कौन-सा कार्य सम्पादित होगया, यह बताओ, इसके प्रति मुझे अत्यत कुतूहल हुआ है ॥२॥ अलर्क अपने परपरागत राज्य को भोगता था, आपने उस राज्य को जीतने के लिये मुझे उत्तेजित किया था ॥४॥ सुबाहु बोला—हे काशिराज ! मैंने उद्यम पूर्वक आपको इस कार्य मे क्यो प्रवृत्त किया, उसे सुनो ॥५॥ मेरे यह छोटे भ्राता तत्त्वज्ञानी होकर भी भोगो मे आसक्त थे तथा मेरे दो अग्रज विमूढ होते हुए भी तत्त्वज्ञानी हुए है ॥६॥ हे राजन् ! मेरी माता ने शिशुकाल मे जैसे हमको दूध पिलाया था, वैसे ही हमारे कानो मे तत्त्वज्ञान का उपदेश किया था ॥७॥ मनुष्यो के लिए जो-जो विषय ज्ञातव्य है, वह सभी हमारी माता ने हम सब भाइयो के हृदयगत कर दिये थे, किन्तु अलर्क उन्हे भूल गया ॥८॥

यथैकमर्थंयातानामेकस्मिन्नवसीदति ।
दुखभवतिसाधूनातथास्माकमहीपते ॥९

गार्हस्थ्यमोहमापन्नेसीदत्यस्मिन्नरेश्वर ।
सम्बन्धिन्यस्यदेहस्यबिभ्रातिभ्रातृकल्पनाम् ॥१०
ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाढ्यं राज्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्यभवानित्युद्योगायसंश्रित ॥११
तदस्यदुःखाढ्यं राज्यसबोधादवनीपते ।
समुद्भूतकृतकार्यभद्र तेस्तुव्रजाम्यहम् ॥१२
सुष्ठ्वमदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातिवर्त्मयात्वितिपार्थिव ॥१३
विचार्य्यतन्मयासर्वयुष्मत्सश्रयपूर्वकम् ।
कृततच्चापिनिष्पन्नं प्रयास्येसिद्धयेपुनः ॥१४

हे राजन् ! जैसे एक साथ जाने वालो मे एक मनुष्य के दु खित होने से सभी साथी दु खित होते है, वैसी ही मेरी अवस्था थी ॥९॥ क्योंकि अलर्क से मेरा सम्बध बधुत्व का है और वह गृहस्थी के मोह मे पड कर दु खित हो रहे थे ॥१०॥ इसलिए दु ख होने पर ही विरक्ति होगी, ऐसा विचार करके ही मैंने आपकी शरण ग्रहण की थी ॥११॥ हे राजन् ! उससे वह दु खी हुआ और उसी दु ख से उसमे तत्त्वज्ञान की उत्पत्ति हुई और विरक्ति का उदय हुआ इसलिए अब मैं अपने कार्य मे सफल हो गया हूँ, आपका मगल हो, मैं जाता हूँ ॥१२॥ यह अलर्क मदालसा के गर्भ से उत्पन्न है उसी का इसने दूध पिया है, इसलिए अन्य नारी से उत्पन्न पुत्र जिस मार्ग से नही जा पाते, यह उस श्रेष्ठ मार्ग पर चले ॥१३॥ यही विचार कर मैंने आपका आश्रय लिया और तदनुरूप कार्य किया मेरा कार्य पूरा हो गया अब पुनः सिद्धि की प्राप्ति के लिए जा रहा हूँ ॥१४॥

उपेक्ष्यतेसीदमान स्वजनोबान्धव सुहृत् ।
यैर्नरेन्द्रनतान्मन्येसेन्द्रियाविकलाहिते ॥१५
सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्थं योऽवसीदति ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्योवाच्यास्तेतत्रनत्वसौ ॥१६

एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूपमयाकार्यंमहत्कृतम् ।
स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिज्ञानमार्गभवत्तम ॥१७
उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् ।
ममोपकारायकथ नकरोषिस्वमानसम् ॥१८
फलदायीसतासङ्गि सगमोनाफलोयत ।
तस्मात्त्वत्सङ्गमाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नति ॥१९
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयम् ।
तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपर ॥२०
तत्तेसम्प्रतिवक्ष्येतदिहैकमना शृणु ।
श्रुत्वाचसम्यगालोच्ययतेथा श्रेयसेनृप ॥२१

हे राजन् ! स्वजन, सुहृद्जन और बांधवो के दुखित होने पर, उनके प्रति उपेक्षा करने वाला मनुष्य मेरे विचार मे विकलेन्द्रिय है ॥१५॥ तथा स्वजन, सुहृद्जन और बांधवजन के समर्थ होते हुए भी जो दुःख पाता है, उससे वे स्वजनादि निन्दनीय एव धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से वचित होते है ॥१६॥ आपके सग-लाभ से मैंने इस महान् कार्य को सम्पन्न किया है, आपका कल्याण हो और आप ज्ञान मार्ग पर चलने वाले हो, मैं अब गमन करता हूँ ॥१७॥ काशिराज बोले—आपने अलर्क का अत्यत उपकार किया है, परतु मेरा उपकार करने से विमुख क्यो है ? ॥१८॥ साधु-सग या सत-मिलन फल देने वाला होता है, इसलिये आपका सत्सग होने मे मेरी भी उन्नति ही होगी ॥१९॥ सुबाहु बोले—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चार पदार्थ पुरुषार्थ कहे गये है, इनमे धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि तो आपको हो चुकी है, केवल मोक्ष का ही अभाव है ॥२०॥ इसलिए आपसे जो कहता हूँ उसे एकाग्र मन से श्रवण करो और उस पर भले प्रकार विचार करके अपने कल्याणार्थ प्रयत्नशील होओ ॥२१॥

ममेतिप्रत्ययोभूपनकार्य्योऽहमितित्वया ।
सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्मीभावनिराश्रय ॥२२
कोवाहमितिसञ्जे यमित्यालोच्यत्वयात्मना ।
बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥२३

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ।
व्यक्ताव्यक्तं त्वयाज्ञेयज्ञाताकस्त्वाहमित्युत ॥२४
एतस्मिन्नेवविज्ञातेविज्ञातमखिलत्वया ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ॥२५
सोऽहंसर्वगतोभूपलोकसव्यवहारतः ।
मयेदमुच्यतेसर्वंत्वयापृष्टोब्रजाम्यहम् ॥२६
एवमुक्त्वामयौधीमान्सुबाहु काशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपिसपूज्यसोऽलर्कंस्वपुरंययौ ॥२७
अलर्कोऽपिसुतज्येष्ठमभिषिच्यनराधिपम् ।
वनंजगामसन्त्यक्तसर्वसङ्ग स्वसिद्धये ॥२८

हे राजन् ! यह मेरा है, यह मैं हूँ इत्यादि ममता और अहंकार पूर्ण विचार के वश मे न पडना और भले प्रकार धर्म की आलोचना करना, क्योंकि धर्म नही तो आश्रय भी नही मिलता ॥२२॥ विचार करने पर ही 'मै किसका हूँ ?' इसका ज्ञान होता है, रात्रि के शेष भाग मे इस पर भले प्रकार विचार करो ॥२३॥ अव्यक्त से प्रकृति तक विकार-रहित, चेतना-रहित, और व्यक्त-अव्यक्त जो कुछ है उसे जानते हुए, ज्ञाता, ज्ञेय और अपने विषय मे भी जाने ॥२४॥ इसके जान लेने पर ही आप सब कुछ जान लेंगे शरीरादि आत्मा से पृथक् वस्तु मे आत्मबोध तथा पराये को अपना मानना ही मूर्खता है ॥२५॥ हे राजन् ! 'वही मैं' सासारिक ज्ञान मे सम्पन्न हूं, जो आपने प्रश्न किया, उसका समाधान कर चुका, अब मै गमन करता हूँ ॥२६॥ मेधावी सुबाहु ऐसा कह कर चले गये, तब काशिराज ने अलर्क का भले प्रकार पूजन किया और अपने नगर को गये ॥२७॥ अलर्क ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर समस्त सग परित्याग करके आत्म सिद्धि के लिए वनवास किया ॥२८॥

ततः कालेनमहतानिर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्राप्ययोगद्धिमतुलांपरनिर्वाणमाप्तवान् ॥२९
पश्यञ्जगदिदंसर्वंसदेवासुरमानुषम् ।
गाथागुणमयैर्बद्धं वक्ष्यमानंचनित्यशः ॥३०

पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभवान्वितैः
आकृष्यमाणैकरणैर्दुः खार्त्तभिन्नदर्शनम् ॥३१
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमतुद्धारंमहामतिः ।
आत्मानंचसमुत्तीर्णंगाथामेतामगायत ॥३२
अहोकष्टं यदस्माभिःपूर्वंराज्यमनुष्ठितम् ।
इतिपश्चान्मयाज्ञातयोगाज्ञास्तिपरंसुखम् ॥३३
तातैनत्वंसमातिष्ठमुक्तयेयोगमुत्तमम् ।
प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥३४
ततोऽहमपियास्यामिकियद्वै किंजपेनमे ।
कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते ॥३५
ततोऽनुज्ञामवाप्याहंनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ।
प्रयतिष्येतथामुक्तौयथायास्यामिनिर्वृतिम् ॥३६

फिर बहुत समय व्यतीत होने पर उन्होंने अतुलित योग-ऐश्वर्य को प्राप्त कर परम मोक्ष का लाभ किया ॥२९॥ सुर, असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण यह विश्व गुणमय पाश से बद्ध होकर नित्य ही वध्यमान रहता है ॥३०॥ यह पाश पुत्र आदि, भ्रातृ-पुत्रादि तथा अपने पराये के मोह से बनी हुई है, भिन्न दिखायी पड़ने वाला विश्व उसी पाश मे आकृष्ट होकर दुःख मे डूब रहा है ॥३१॥ इस पर भी अज्ञान रूपी पंक मे फँसने पर मुक्ति का उपाय नहीं है, बुद्धिमान् अलर्क ने इस पर विचार करके 'मेरा उद्धार हो गया' इस प्रकार गाथा का गान किया ॥३२॥ 'अहो कैसा कष्ट है ? पहिले मैं राज्य भोगता था, परन्तु अन्त मे मुझे ज्ञान हो गया कि योग की अपेक्षा अन्य कोई परम सुख नहीं है ॥३३॥ पुत्र ने कहा—हे तात ! मोक्ष लाभ के लिए आप उस श्रेष्ठ योग का आचरण करें तो ब्रह्म को प्राप्त हो सकेंगे क्योंकि ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः शोक मे नहीं पड़ना होगा, अब मैं भी जाऊँगा ॥३४॥ मुझे यज्ञ या जप की आवश्यकता नहीं है, कृतकृत्य मनुष्य का कार्य तो ब्रह्म प्राप्ति के लिये ही है ॥३५॥ इसलिये आपकी आज्ञा पाकर मैं द्वन्द्व और परिग्रह का त्याग कर मोक्ष लाभ के लिए सम्यक् प्रयत्न करूँगा ॥३६॥

एवमुक्त्वासपितरमाप्यानुज्ञाततश्च सः ।
ब्रह्मञ्जगाममेवावीपरित्यक्तपरिग्रहः ॥३७
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ।
वानप्रस्थसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात् ॥३८
तत्रात्मजसमासाद्यहित्वाबन्धगुणादिकम् ।
प्रापसिद्धिपरांप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥३९
एतत्तेकथितब्रह्मन्यत्पृष्टाभवताबयम् ।
सुविस्तरयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०
यश्चैतच्छ्रृणुयाद्विप्रपठेद्वासुसमाहितः ॥४१
यदश्वमेधावभृथस्नातःप्राप्नोतिवैफलम् ।
सकलंतदवाप्नोतिश्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥४२
एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ।
अलर्कत्रेयसंवादमशुभान्मुच्यतेनरः ॥४३

पक्षियों ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह महामति जड अपने पिता से ऐसा कह कर और उनकी आज्ञा लेकर परिग्रह-रहित होकर चला गया ॥३७॥ उसके पिता ने भी वानप्रस्थ आश्रम का आश्रय लेते हुए चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया ॥३८॥ वह पुत्र की संगति से गुणादि बन्धन को त्याग कर तत्काल उत्पन्न हुई बुद्धि के बल से परम सिद्धि को प्राप्त हुए ॥३९॥ हे विप्र ! आपका पूछा हुआ सभी विस्तार पूर्वक कह दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो, सो बताओ ॥४०॥ हे ब्रह्मन् ! इस वार्ता को जो सावधानी से पढ़ता अथवा श्रवण करता है ॥४१॥ वह अश्वमेध के अवभृथ स्नान के फल को पाता है, हे मुनीश्वर ! इसके श्रवण से ही सब कुछ प्राप्त होता है ॥४२॥ संसार में विचरण करने वालों की श्रेष्ठ रक्षा यही है, इस अलर्क-दत्तात्रेय संवाद को श्रवण करके मनुष्य अशुभ से मुक्त हो जाता है ॥४३॥

३७ - ब्रह्माण्ड और ब्रह्मोत्पत्ति

सम्यगेतन्मयाख्यातभवद्भिर्द्विजसत्तमा ।
प्रवृत्तं चनिवृत्तं चद्विविधं कर्मवैदिकम् ॥१
अहोपितृप्रसादेनभवताज्ञानमीदृशम् ।
येनतिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्यमोहस्तिरस्कृत ॥२
धन्याभवन्त संसिद्धचै प्रागवस्थास्थितयत ।
भवतांविषयोद्भूतैर्नमोहैश्चाल्यतेमन ॥३
दिष्ट्याभगवतातेनमार्कण्डेयेनधीमता ।
भवन्तोवैसमाख्याता सर्वसन्देहहृत्तमा ॥४
ससारेऽस्मिन्मनुष्याणाभ्रमतामतिसङ्कटे ।
भवद्विधैःसमसङ्गोजायतेनातपस्विनाम् ॥५
यद्यहसङ्गमासाद्यभवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभि. ।
नस्याकृतार्थंस्तन्नूननमेऽन्यत्रकृतार्थता ॥६॥
प्रवृत्तं चनिवृत्तं चभवताज्ञानकर्मणि ।
मतिमस्तमलामन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ॥७

जैमिनी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो ! वैदिक कर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति भेद से दो प्रकार का है, आपने वह सब मेरे प्रति भले प्रकार कहा है ॥१॥ आपने पिता के अनुग्रह से ऐसा ज्ञान पाया है, उसी ज्ञान के प्रभाव से, तिर्यक् योनि को पाकर भी आप का मोह नष्ट हो चुका है ॥२॥ आपका मन सिद्धि लाभ के लिये पूर्वावस्था मे स्थित रहता है, अत. आप धन्य है, आपके मन को विषयों से उत्पन्न मोह चलायमान नही कर सकता ॥३॥ महामति मार्कण्डेयजी ने सौभाग्य से ही आपका वृत्तान्त कहा था, आप सब सन्देहो को दूर करने वाले है ॥४॥ इस सङ्कटमय विश्व मे जो भ्रमते है, उनके भाग्य मे आप जैसे तपस्वियो से मिलना दुर्लभ ही है ॥५॥ आप ज्ञानब्रह्म है, यदि आपके सग लाभ से भी मेरा मनोरथ पूर्ण न हुआ तो अन्यत्र कही भी नही हो सकता ॥६॥ आपको प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञान और कर्म मे जो विश्व बुद्धि प्राप्त हुई है,वह मेरे विचार मे अन्य किसी को नही हो सकती. ॥७॥

यदित्वनुग्रहवतीममयिबुद्धिर्द्विजोत्तमा ।
भवतातत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषत ॥८
कथमेतत्समुद्भूतजगत्स्थावरजङ्गमम् ।
कथ चप्रलयकालेपुनर्यास्यतिसत्तमा ॥९
कथचवशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ।
मन्वन्तराणिचकथवशानुचरितचयत् ॥१०
यावत्य सृष्टयश्चैवयावन्त प्रलयास्तथा ।
यथाकल्पविभागश्चयाचमन्वन्तरस्थिति ॥११
यथाचक्षितिसस्थानयत्प्रमाणाचवैभुव ।
यथास्थितिसमुद्रादिनिम्नगा कालनानिच ॥१२
भूर्लोकादिश्चलोकानागणः पातालसञ्चय ।
गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥१३
श्रोतुमिच्छाम्यहसर्वमेतदाभूतसप्लवम् ।
उपसहृतेचयच्छेषजगत्यस्मिन्भविष्यति ॥१४

हे श्रेष्ठ द्विजो ! यदि आपकी मति मेरे प्रति अधिक अनुग्रह वाली हुई है, तो मेरे प्रश्न का विस्तार सहित समाधान करिये ॥८॥ इस स्थावरजगम युक्त विश्व की सृष्टि किस प्रकार हुई और यह प्रलय काल मे किस प्रकार लीन होगी ? ॥९॥ देव, ऋषि, पितर, भूतादि की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, और मन्वन्तरो का प्राकट्य कैसे होता है ? ॥१०॥ सम्पूर्ण सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्प का विभाग, मन्वन्तरो की स्थिति ॥११॥ पृथिवी का संस्थान और परिमाण पर्वत, शैल, सरिता और वनो का विवरण ॥१२॥ मर्त्यलोक, स्वर्ग और पाताल का विवरण तथा सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गति ॥१३॥ इन सबका प्रलय पर्यन्त वर्णन सुनने की अभिलाषा है तथा प्रलयकाल मे उपसहृति होने पर जो जगत् अवशिष्ट रहता है, वह सुनना चाहता हूं ॥१४॥

प्रश्नभारोऽयमतुलोयस्त्वयामुनिसत्तम ।
पृष्टस्तेप्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहजैमिने ॥१५

मार्कण्डेयेनकथितपुराक्रौष्टुकेयथा ।
द्विजपुत्रायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ॥१६

मार्कण्डेयमहात्मानमुपासीनद्विजोत्तमै ।
क्रौष्टुकि परिपप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥१७

तस्यचाकथयत्प्रीत्याभगवान्मुनिर्भृगुनन्दन ।
तत्तो प्रकथयिष्याम शृणुत्वंद्विजसत्तम ॥१८

प्रणिपत्यजगन्नाथपद्मयोनिपितामहम् ।
जगद्योनिस्थितसृष्टौस्थितौविष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलयेचान्तकर्त्तारंरौद्र रुद्रस्वरूपिणम् ॥१९

उत्पन्नमात्रस्यपुराब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनि सृताः ॥२०

पुराणसहिताश्चक्रुर्बहुला परमर्षय ।
वेदानाप्रविभागश्चकृतस्तैस्तुसहस्रशः ॥२१

पक्षियो ने कहा—हे जैमिने ! आपने यह अत्यन्त प्रश्न भार हम पर डाला है, फिर भी हम उसका वर्णन करते है, सुनो ॥१५॥ मार्कण्डेयजी ने जिस प्रकार क्रौष्टुकी के प्रति कहा था, उसे ही कहते है ॥१६॥ आपने जो प्रश्न किया, वही क्रौष्टुकी ने मार्कण्डेयजी से किया था ॥१७॥ हे द्विजवर ! भृगुपुत्र ने प्रसन्न चित्त से जो कुछ कहा था, वही सब कहते है, सुनो ॥१८॥ जगत् के कारण कमलयोनि पितामह स्वरूप से जो इस संसार को उत्पन्न करते हैं, विष्णु रूप से स्थित करते और रौद्र रूप से प्रलय काल मे संहार करते है, उन्ही जगन्नाथ को प्रणाम पूर्वक हम सब कहते है ॥१९॥ मार्कण्डेयजी ने कहा पुराकाल मे ब्रह्माजी के उत्पन्न होने पर उनके चार मुखो से वेद-पुराण प्रकट हुए ॥२०॥ उन पुराण संहिता को ऋषियो ने अनेक अंश मे विभाजित किया तथा वेद के भी हजार-हजार विभाग किये ॥२१॥

धर्मज्ञानंचवैराग्यमैश्वर्य्यंचमहात्मन ।
तस्योपदेशेनविनानहिसिद्ध चतुष्टयम् ॥२२॥

वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसा ।
पुराणंजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसा ॥२३
भृगो सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्त चद्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापिदक्षायप्रोक्तमेतन्महात्मभि ॥२४
दक्षेणचापिकथितमिदमासीत्तदाममं ।
तत्तुभ्यमकथयाम्यद्यकलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्वमेतन्महाभागश्रूयतामेसमाधिना ।
यथाश्रुतमयापूर्वदक्षस्यगदतोमुने ॥२६
प्रणिपत्यजगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ।
चराचरस्यजगतोधातारपरमपदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसयमे ।
यत्कारणमनौपम्ययत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥२८

उनके उपदेश बिना धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ईश्वरीय भाव सिद्ध नहीं हो सकते ॥२२॥ उनके मन से सप्तर्षियों की उत्पत्ति हुई, जिनके समस्त वेद पुराण उनके मानसोत्पन्न अन्य ऋषियों ने ग्रहण किये ॥२३॥ भृगु से उस पुराण को लेकर च्यवन ऋषि ने अन्य ऋषियों पर प्रकट किया और उन ऋषियों ने उसे दक्ष के प्रति कहा ॥२४॥ दक्ष ने ही उसे हमें प्रदान किया है, तभी से यह हमारे पास है, इसके प्रभाव से कलियुग में पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी को तुमसे कहते हैं ॥२५॥ हे मुने ! हम ने दक्ष से जो सुना, वही दत्तचित्त होकर हम से सुनो ॥२६॥ जो जगत् कारण, अजन्मा, अव्यय, चराचर विश्व के एक मात्र आश्रय, धाता एवं परमपद रूप है ॥२७॥ जो सृष्टि स्थिति और प्रलय के कारण, आदि पुरुष, अनुपम है तथा सब कुछ उन्हीं में प्रतिष्ठित रहता है ॥२८॥

तस्मैहिरण्यगर्भायलोकतन्त्रायधीमते ।
प्रणम्यसम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महदाद्य विशेषान्तसवैरूप्यसलक्षणम् ।
प्रमाणैं पचभिर्गम्यस्तोभिःषड्भिरन्वितम् ॥३०

पुरुषाधिष्ठितनित्यमनित्यमिवचस्थितम् ।
तच्छ्रूयतामहाभागपरमेणसमाधिना ॥३१
प्राधानकारणयत्तदव्यक्ताख्यमहर्षय. ।
यदाहु प्रकृतिसूक्ष्मानित्यासदसदात्मिकाम् ॥३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयनान्यसश्रयम् ।
गन्धरूपरसैर्हीनशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३
अनाद्यंतजगद्योनित्रिगुणप्रभवाप्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्मात्रे समवर्त्तत ॥३४
प्रलयस्यानुतेनेदव्याप्तमासीदशेषत ।
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥३५

उन्हीं हिरण्य गर्भ को प्रणाम करके अनुपम प्रपच को कहते है ॥२६॥ महत् से विशेष पर्यन्त जो भी भौतिक सृष्टि के विकार और लक्षण है उन सभी को पाँच प्रकार के प्रमाण और षट्स्रोत सहित कहेंगे ॥३०॥ पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण यह भूत सृष्टि नित्य होकर भी अनित्य के समान अवस्थान करती है,-उसे भी कहते हैं, सावधान चित्त से सुनो ॥३१॥ सत्-असत् वाली अव्यक्त कही जाने वाली को महर्षियो ने नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहा है ॥३२॥ जो-नित्य, अक्षय, अजर, अपरिमेय, अनाश्रित, निर्गंध तथा रूप, रस, शब्द और स्पर्श से परे है ॥३३॥ जो अनादि, अनन्त एव विश्व के उत्पत्ति स्थान है,जिनसे तीनो गुणो की उत्पत्ति हुई है, जो अविनाशी, अविज्ञेय, सदा विद्यमान और सर्व कारण है, वही प्रधान स्वरूप ब्रह्म सबके समक्ष विराजमान रहकर ॥३४॥ प्रलय के पश्चात् अखिल विश्व को ग्रास करके स्थित रहते है उन्ही मे परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूप से तीनो गुण विद्यमान रहते है ॥३५॥

गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकालेतत पुन: ।
प्रधानतत्त्वमुद्भूतमहान्ततत्समावृणोत् ॥३६
यथाबीजत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतोमहान् ।
सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदित ॥३७

सम्भवन्तिततोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिका ।
रसमात्रन्तुताह्यापोरूपमात्रसमावृणोत् ॥४४
अपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रससर्जिरे ।
संघातोजायततस्मात्तस्यन्धोगुणोमत ॥४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रतेनतन्मात्रतास्मृता ।
अविशेषवाचकत्वाबविशेषास्ततश्चते ॥४६
नशान्तानाघिधोरास्तेनमूढाश्चाविशेषत ।
भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात् ॥४७
वैकारिकादहंकारात्सत्वोद्रिक्तात्तुसात्त्विकात् ।
वैकारिक ससर्गस्तुयुगपत्तप्रवर्त्तते ॥४८

स्पर्श मात्र वायु मे रूपमात्र ढका रहता है, इससे ज्योति के विकृत होने पर रसमात्र की उत्पत्ति होती है ॥४३॥ इसी के द्वारा रसात्मक जल उत्पन्न होता है जो रूपमात्र से ढका रहता है ॥४४॥ फिर रसमात्र जल की विकृति से गन्धमात्र की उत्पत्ति होती है,उसी से गन्धात्मिका पृथिवी उत्पन्न होती है ॥४५॥ इसी प्रकार जिस–जिस पदार्थ मे जो तन्मात्र है, उस–उस के द्वारा ही तन्मात्र की गणना होती है, इसके लिए कोई विशेष वाचक नही होता, इसलिये यह भी अविशेष है ॥४६॥ अविशेष होने के कारण वह शान्त, घोर अथवा मूढ नही है, इस प्रकार भूत तन्मात्र की उत्पत्ति अहङ्कार से ही होती है ॥४७॥ सत्वोद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहङ्कार से एक संग ही वैकारिक सृष्टि की प्रवृत्ति है ॥४८॥

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपचकर्मेन्द्रियाणिच ।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ॥४९
एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकास्मृता: ।
श्रोत्रत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपचमी ॥५०
शब्दादीनामवाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ।
पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौवाक्पचमीभवेत् ॥५१

गतिर्विसर्गोह्यानन्द शिल्पवाक्यचकर्मतत् ।
आकाशशब्दमात्रतुस्पर्शमात्रसमाविशत् ॥५२
द्विगुणोजायतेवायुस्तस्यस्पर्शोगुणोमत' ।
रूपतर्थवाविशत शब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥५३
त्रिगुणास्तुततश्चाग्नि सशब्दस्पर्शरूपवान् ।
शब्द स्पर्शश्चरूपञ्चरसमात्रसमाविशत् ॥५४
तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञेयास्तारसात्मिका. ।
शब्द स्पर्शश्चरूपञ्चरसोगन्धसमाविशत् ॥५५
सहतागन्धमात्रेणआवृण्वन्तेमहीमिमाम् ।
तस्मात्पञ्चगुणाभूमि स्थूलाभूतेषुदृश्यते ॥५६

पच ज्ञानेन्द्रिय और पच कर्मेन्द्रिय तैजस इन्द्रिय कही गयी है, यह वैकारिक दश देवता होते है ॥४९॥ ग्यारहवाँ मन मिलाकर ग्यारह देवता हुए, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और नासिका ॥५०॥ इनसे शब्दादि का बोध होता है इसीलिये इन्हे बुद्धीन्द्रिय कहा गया है, चरण, गुद, उपस्थ, हाथ और जिह्वा ॥५१॥ इत्यादि कर्मेन्द्रिय कही गयी है, इनके द्वारा चलना, मल त्यागना, मैथुन, शिल्प और कथन यह कार्य होते है, शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्र मे समाविष्ट होकर ॥५२॥ द्विगुण वायु को उत्पन्न करता है, उसका विशेष गुण वायु ही है, शब्द और स्पर्श यह दोनो गुण रूप मे समाविष्ट होकर ॥५३॥ त्रिगुण अग्नि की उत्पत्ति करते है, यह अग्नि, शब्द और रूप गुण से युक्त है, शब्द, स्पर्श और रूप रसमात्र मे समावेश करके ॥५४॥ चतुर्गुण रसात्मक जल की सृष्टि करते है और अन्त मे शब्द, स्पर्श, रूप और रस के गन्धमात्र मे समावेश करने से ॥५५॥ उनके साथ मिलकर इस पृथिवी की आवृत्ति करते है, इसीलिये भूतो मे पचगुणात्मिका स्थूलाकार वाली पृथिवी दिखायी देती है ॥५६॥

शान्ताघोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृता ।
परस्परानुप्रवेशाद्वासयन्तिपरस्परम् ॥५७
भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकालोकघनावृतम् ।
विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्यानियतत्वाच्चतेस्मृता ॥५८

गुणपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ।
नानावीर्य्या पृथग्भूता सप्तैतेसहतिर्विना ॥५९
नाशक्नुवन्प्रजा स्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नश ।
सयेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्चते ॥६०
एकसंघातचित्ताश्चसप्राप्यैक्यमशेषत ।
पुरुषाधिष्ठितत्वाच्चप्रधानानुग्रहेणच ॥६१
महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ।
जलबुद्बुदवत्तत्रैकमाद्यं वृद्धिमागतम् ॥६२
भूतेभ्योऽण्ड महाबुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ।
प्रकृतेऽण्डेविवृद्ध सन्क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञित ॥६३

इसी कारण वह शान्त, घोर और मूढ कहे गये है, यह परस्पर एक दूसरे को धारण करते है ॥५७॥ यह सभी लोकालोक भूमि के अन्तर मे निविष्ट रह कर, नियतत्व के कारण इन्द्रिय ग्राह्य विशेष' कहे गये है ॥५८॥ पहिले-पहिले के गुण उत्तरोत्तर मे प्रविष्ट होते है, जब तक यह अनेक वीर्य वाले सात पदार्थ परस्पर नही मिलते, ॥५९॥ तब तक सृष्टि करने मे समर्थ नही होते, जब यह परस्पर मिल कर एक दूसरे के अवलम्बन से ॥६०॥ भले प्रकार से एकता को पाते है और जब पुरुष का अधिष्ठान और प्रकृति का अनुग्रह प्राप्त करते है ॥६१॥ तभी महत् से विषय तक इन सब मे अण्ड की उत्पत्ति करते है, यह अण्ड जल के बुलबुले के समान जल मे रह कर ही क्रमश बढता रहता है ॥६२॥ जब मे स्थित यह अण्ड भूतो से बृहत् है, ब्रह्म संज्ञा वाले क्षेत्रज्ञ भी उस प्राकृत अण्ड मे बढते है ॥६३॥

सर्वशरीरीप्रथम सर्वपूरुषउच्यते ।
आदिकर्त्ताचिभूतानाब्रह्माग्रे समवर्तत ॥६४
तेनसर्वमिदव्याप्त क्षेत्रोक्षयसचराचरम् ।
मेरुस्तस्यानुसभूतोजरायुश्चापिपर्वता ॥६५
समुद्रागर्भसलिलतस्याण्डस्यमहात्मन ।
तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वसदेवासुरमानुषम् ॥६६

द्वीपाद्रिसमुद्राश्चसज्योतिर्लोकसग्रह ।
जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनावहि ॥६७
वृतमण्ड दशगुणैरेकैकत्वेनतं पुन ।
महतातत्प्रमाणेनसहैवानेनवेष्टित ॥६८
महास्तैसयुत सर्वैरव्यक्तेनसमावृत ।
एभिरावरणैरण्ड सप्तभिःप्रकृतैर्वृतम् ॥६९

वही प्रथम देह और पुरुष नाम वाले है, वही भूतो के आदिकर्त्ता ब्रह्मा है, वही इन तत्व से आगे प्रतिष्ठित होते है ॥६४॥ वही चराचर तीन लोको को व्याप्त कर रहे है, उस वृहद् अण्ड मेरु पर्वत जरायु ॥६५॥ और समुद्र गर्भजल है, सुर असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण सम्पूर्ण विश्व उस अण्ड मे है ॥६६॥ द्वीप, पर्वत, समुद्र, ज्योति आदि के सहित सभी लोक उनमे स्थित है, जल, वायु, अग्नि और आकाश भूतादि के सहित ॥६७॥ प्रत्येक ही उत्तरोत्तर दशगुण के नियम से बाहर के भाग मे उस अण्ड को घेरे रहते है, इनके अतिरिक्त महत्तत्त्व ने इसी प्रमाण से उनके साथ अण्ड का आच्छादन किया हुआ है ॥६८॥ इस महत्तत्त्व के सहित अण्ड को ढक कर प्रकृति गुणोंसिह होती है, इस प्रकार सात प्राकृतिक आवरणों द्वारा वह अण्ड ढका हुआ है ॥६९॥

अन्योन्यमावृत्यचतास्थौप्रकृतय स्थिताः ।
एपासाप्रकृतिर्नित्यालदन्त पुरुषश्चस ॥७०
ब्रह्माख्य कथितोऽस्तेसमासाच्छ्रु यतापुन ।
यथासर्गोजलेकश्चिदुन्मज्जश्चलसम्भवम् ॥७१
वलयक्षिपतिब्रह्मासतथाप्रकृतीर्विभु ।
अव्यक्त क्षेत्रमुद्दिष्टब्रह्माक्षेत्रज्ञउच्यते ॥७२
एतत्समस्तजानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ।
इत्येषप्राकृत सर्ग क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसा ।
अबुद्धिपूव प्रथम प्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥७३

इसी प्रकार आठ प्रकृति परस्पर को ढक कर विद्यमान है, इन प्रकृतियों को नित्य स्वरूप समझो, इनके अन्त मे वह पुरुष विद्यमान है ॥७०॥ तुमसे

जिस ब्रह्म तत्त्वक पुरुष का वर्णन किया, उसका विषय अब संक्षिप्त रूप से कहता हूँ, जल में डुबा हुआ मनुष्य जैसे जल में से उठते समय जल में प्रकट ॥७१॥ द्रव्य को फेंकता है, उसी प्रकार ब्रह्मा को प्रकृति का स्वामी समझो, क्योंकि प्रकृति क्षेत्र और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ है ॥७२॥ क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के लक्षण यही हैं, इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि सहित प्रथम विद्युत् के समान प्रकट हुई ॥७३॥

३८—ब्रह्माजी की आयु का परिमाण

भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथितामम ।
ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तंमहात्मन ॥१
एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं त्वत्तोभृगुकुलोद्भव ।
यदासंसृष्टिभूतानामस्तिकिंनुनचास्तिवा ।
कालेवेप्रलयस्यान्तेसर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥२
यदासुप्रकृतौयातिलयंविश्वमिदंमुने ।
तदोच्यतेप्राकृतोऽयंविद्धद्भिःप्रतिसंचर ॥३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेविकारेप्रतिसंहृते ।
प्रकृतिपुरुषश्चैवसाधर्म्येणावतिष्ठत ॥४
तदातमश्चसत्त्वस्यसमत्वेनगुणास्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनूनौचओतप्रोतौपरस्परम् ॥५
तिलेषुवायथातैलंघृतंपयसिवास्थितम् ।
तथालमसिरूपेचरजोऽप्यनुसृतस्थितम् ॥६

कौष्टुकि ने कहा—हे भगवन् ! आपने अणु की सृष्टि और ब्रह्माण्ड में ब्रह्माजी के जन्म को यथावत् कहा है ॥१॥ हे भृगुवंशोत्पन्न ! अब प्रलय के अवसान में सृष्ट हुई सृष्टि अविद्यमान थी, तब फिर भूतों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई ? वही सब सुनना चाहता हूँ ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—जब यह संसार

प्रकृति मे लीन हो जाता है, उसी अवस्था को विद्वानो ने प्रलय कहा है ॥३॥ जब आत्मा मे अवस्थित हो जाती है, तब सब पदार्थ अदृश्य हो जाते है, जब प्रकृति-पुरुष दोनो साधर्म्य मे प्रतिष्ठित होते है ॥४॥ उस समय सत्व और तम दो ही गुण समान भाव से अधिष्ठान करते है, उस समय उनमे से कोई बढता या घटता नही, वे दोनो ताने-बाने के समान समभाव से परस्पर सयुक्त अधिष्ठित रहते है ॥५॥ जैसे तिल मे तेल और दूध मे घी विद्यमान है, वैसे ही सतोगुण और तमोगुण मे रजोगुण विद्यमान रहता है ॥६॥

उत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम् ।
तावद्दिनपरेशस्यतत्समास्त्रयमेनिशा ॥७
(अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रप्रजापते ।
अनेनैवक्रमानेनशतब्रह्मासजीवति ।
पितामहशतेनैवविष्णोर्मानविधीयते ।
निमेषार्धेनशम्भोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ।
विनश्यतितथाविष्णोरस्रष्टाता पितामहा ।)
अहमुन्मेषप्रबुद्धस्तुजगदादिरनादिमान् ।
सर्वं हेतुरचिन्त्यात्मापर कोऽप्यपरक्रिय ॥८

प्रकृतिपुरुषचैवप्रविश्याशुजगत्पति ।
क्षोभयामासयोगेनपरेणपरमेश्वर ॥९
यथाग्निर्दोनवस्त्रीणा यथावायुर्वानिल ।
अनुप्रविष्ट क्षोभायतथासौयोगमूर्त्तिमान् ॥१०

प्रधानेक्षोभ्यमाणेतुसदेवोब्रह्मसज्ञित ।
समुत्पन्नोऽण्डकोपस्थोयथातेकथितमया ॥११
सएवक्षोभक पूर्वसक्षोभ्य प्रकृते पति ।
ससकोचविकाशाभ्याप्रधानत्वेऽपिसस्थित ॥१२

उत्पन्न सजगद्योनिरगुणोऽपिरजोगुणम् ।
भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गे ब्रह्मत्वसमुपाश्रित ॥१३

ब्रह्माजी की आयु का परिमाण द्विपरार्द्ध पर्यन्त है, जो परिमाण उनके दिन का है, उतना ही उनकी रात्रि का है ॥७॥ (आठ हजार का प्रजापति का एक अहोरात्र होता है, इसी परिमाण से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की है, ब्रह्माजी की सौ आयुओं के बराबर विष्णु की आयु होती है, शिव के अर्द्ध-निमेष में चौदह हजार विष्णु होजाते हैं ब्रह्मा कितने होते हैं ? इसकी संख्या नहीं है) वह विश्व के आदि हैं, उनका आदि नहीं, वह सब के कारण, अचिन्त्यात्मा परमेश्वर और क्रियातीत हैं ॥८॥ यह जगदीश्वर परम योग के निमित्त प्रकृति और पुरुष में प्रवेश करके उनका विक्षोभ करते हैं ॥९॥ जिस प्रकार मद अथवा वसंत समीर नवयुवतियों के हृदय को क्षोभित करते हैं, वैसे ही ब्रह्माजी प्रकृति और पुरुष को क्षोभित करते हैं ॥१०॥ प्रकृति को क्षोभित कर वह ब्रह्मा सलक देव अण्डकोष में स्थिर होकर समुत्पन्न होते हैं, यह मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है ॥११॥ पहिले तो वे क्षोभित करते हैं फिर प्रकृति के स्वामी होकर स्वयं क्षोभित होते हैं, इस प्रकार संकोच और विकास से वह प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं ॥१२॥ वह जगद्योनि निर्गुण होते हुए भी प्रकट होकर रजोगुण के अवलम्ब से ब्रह्मा के रूप में आविर्भूत होकर सृष्टि के उद्यम में लगते हैं ॥१३॥

ब्रह्मत्वेसृजतेप्रजा सृष्ट्वातत सत्त्वातिरेकवान् ।
विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम् ॥१४
ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत् ।
उपसंहृत्यवर्षेतेत्रैलोक्यत्रिगुणोऽगुण ॥१५
यथाप्रारब्धापक्क क्षेत्री पालकोलवकस्तथा ।
तथासंसज्ञामाप्नोतिब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ॥१६
ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्रुद्रत्वेसंहरत्यपि ।
विष्णुत्वेचाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्था स्वयम्भुव ॥१७
रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णु सत्त्वजगत्पति ।
एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ॥१८

अयोन्यमिथुनाह्यैते ह्यन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणविप्रयोगोनह्यैपानत्यजन्तिपरस्परम् ॥१९
एवब्रह्माजगत्पूर्वोदेवदेवश्चतुर्मुखः ।
रजोगुणसमाश्रित्यसृष्ट्वेसव्यवस्थित ॥२०

ब्रह्मा रूप सृजन कार्य करके सतोगुण के आश्रित्य से विष्णु रूप होकर प्रजा-पालन करते है ॥१४॥ फिर तमोगुण का उद्रेग होने पर रुद्र रूप धारण कर सहार करके शयन करते है, इस प्रकार वह निर्गुण ब्रह्म तीनो काल मे तीनो गुणो का अवलम्बन करते है ॥१५॥ सर्व जनक, सर्वव्यापी ईश्वर इस प्रकार, सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के कारण ही उनकी सज्ञा ब्रह्मा, विष्णु और शिव होती है ॥१६॥ वह ब्रह्म रूप मे सब लोको को उत्पन्न, रुद्र रूप मे सहार और विष्णु रूप मे उदासीन होकर रहते है, स्वयभू भगवान् की यह तीन अवस्था है ॥१७॥ ब्रह्मा रजोगुण, रुद्र तमोगुण और विष्णु सतोगुण है ॥१८॥ यह त्रिदेव तीन गुण रूप मे परस्पर के आश्रय पूर्वक स्थित रहते है, यह क्षण भर को भी वियुक्त नही होते ॥१९॥ इस प्रकार जगत् के आदि देव चतुर्मुखी ब्रह्मा रजोगुण के आश्रय मे सृष्टि कार्य मे प्रवृत्त होते है ॥२०॥

हिरण्यगर्भोदेवादिरित्यादिरुपचारतः ।
भूपद्मकर्णिकासंस्थोब्रह्मात्रेसमजायत ॥२१
तस्यवर्षशतत्वेकपरमायुर्महात्मन ।
ब्राह्म्यं चैवहिमानेनतस्यसख्यानिबोधमे ॥२२
निमेषैर्दशभि काष्ठातथापञ्चभिरुच्यते ।
कलास्त्रिंशच्चवैकाष्ठामुहूर्तास्त्रिंशदेवता ॥२३
अहोरात्रमुहूर्तानानृणात्रिंशत्तुवैस्मृतम् ।
अहोरात्रैश्चत्रिंशद्भि पक्षौद्वौमास उच्यते ॥२४
ते षड्भिरयनवर्षद्वेवनेदक्षिणोत्तरे ।
तद्देवानामहोरात्रदिनतत्रोत्तरायणम् ॥२५
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तुकृतत्रेतादिसज्ञितम् ।
चतुर्युगद्वादशभिस्तद्विभागश्रृणुष्वमे ॥२६

चत्वारिसहस्राणिवर्षाणांकृतमुच्यते ।
शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्यांशश्चतथाविध ।
त्रेतात्रीणिसहस्राणिदिव्याब्दानांशतत्रयम् ।
तस्यसन्ध्यासमाख्यातासन्ध्यांशश्चतथाविध ॥२८

वह देवताओं के आदि रूप हिरण्य गर्भ एक प्रकार से आदि रहित है ॥२१॥ वह भूतचकरिणका का आश्रय करके सब से पहिले प्रकट होते हैं॥२२॥ उनकी परमायु ब्राह्म मान से सौ वर्ष की है, उनकी संख्या का वर्णन करता हूँ, सुनो ॥२३॥ पन्द्रह निमेष की काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त ॥२३॥ और तीस मुहूर्त का मनुष्यों का एक अहोरात्र होता है, तीस अहोरात्र अथवा दो पखवाड़ों का एक मास होता है ॥२४॥ छः मास का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है, दक्षिणायन और उत्तरायण के भेद से अयन दो प्रकार का है; इस प्रकार मानव-मान से एक वर्ष का देवताओं का एक अहोरात्र होता है, उसमें उत्तरायण देवताओं का दिन है ॥२५॥ देवताओं के परिमाण से बारह वर्ष की एक चतुर्युगी होती है, अब उन चारों युगों का विभाग वर्णन करता हूँ ॥२६॥ चार हजार दिव्य वर्षों का सत्ययुग तथा उसकी सन्ध्या के चार-चार सौ वर्ष होते हैं ॥२७॥ तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेतायुग और उसकी सांय तथा सन्ध्यांश के तीन-तीन सौ वर्ष होते हैं ॥२८॥

द्वापरंद्वेसहस्रेतुदिव्यवर्षाणांद्विशतंतथा ।
तस्यसन्ध्यासमाख्यातादे शताब्देनदशक ॥२९
कलिः सहस्रं दिव्यानांशब्दानांद्विजसत्तम ।
सन्ध्यासन्ध्यांशकश्चैवशतकौमुनिसत्तमौ ॥३०
एषाद्वादशसाहस्रीयुगाख्याकविभिः कृता ।
एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम् ॥३१
ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनवस्तुश्चतुर्दश ।
भवन्तिभागयस्तेषांसहस्रं तद्विभज्यते ॥३२

दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर युग तथा उसकी सन्ध्या के दो सौ वर्ष होते हैं ॥२९॥ एक हजार दिव्य वर्षों का कलियुग तथा उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश के सौ-सौ वर्ष होते हैं ॥३०॥ इस प्रकार बारह हजार वर्षों का एक चतुर्युगी होती है, ऐसा विद्वानों ने कहा है, इसको एक हजार से गुणा करने पर ब्रह्मा का एक दिन होता है ॥३१॥ ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं, उनके भाग को एक हजार से भाग देते हैं ॥३२॥

देवा सप्तर्षय सेन्द्रामनुस्तत्सुतनृपा ।
मनुनासहसृज्यन्तेसह्रियन्तेचपूर्ववत् ॥३३
चतुर्युगानासंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरतस्यसंख्यामानुषाब्दैर्निबोधमे ॥३४
त्रिंशत्कोट्यस्तुसम्पूर्णाःसंख्याताःसप्तयाद्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥३५
त्रिंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयंसाधिकोविना ।
एतन्मन्वन्तरप्रोक्तंदिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ॥३६

दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर, उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश के दो-दो सौ वर्ष होते है ॥२९॥ एक हजार दिव्य वर्ष का कलियुग तथा उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश के एक एक सौ वर्ष होते है ॥३०॥ इस प्रकार से चारो युग का परिमाण कवियों ने बारह हजार दिव्य वर्षों मे विभक्त किया है, इसको सहस्र गुणा करने पर जो समय होता है, वही ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है ॥३१॥ ब्रह्मा के इस एक दिन मे चौदह मनु हो जाते है, उनका सहस्र विभाग कहा गया है ॥३२॥ इन्द्रादि देव, सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्र राजा मन्वन्तर सहित उत्पन्न होते और पहिले के समान नष्ट होजाते है ॥३३॥ इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है, इसकी संख्या मानव मान के अनुसार कहता हू ॥३४॥ तीस करोड सड़सठ लाख तीस हजार मानव वर्ष का एक मन्वन्तर होता है, अब दिव्य मान के अनुसार सुनो ॥३५-३६॥

अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्ययासंख्ययायुतम् ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानितु ॥३७
चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्म्यमहः स्मृतम् ।
तस्यान्तेप्रलय प्रोक्तोब्राह्मोनैमित्तिकोबुधैः ॥३८
भूर्लोकोऽयंभुवर्लोक स्वर्लोकस्तत्रिवासिनः ।
तदाविनाशमायातिमहर्लोकश्चतिष्ठति ॥३९
तद्वासिनोऽर्पितापेनजनलोकंप्रयान्तिवै ।
एकार्णवेचत्रैलोक्येब्रह्मास्वपितिवैनिशि ॥४०

तत्प्रमाणैर्वसारात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुन ।
एवतुब्रह्मणोवर्षमेकंवर्षशतंतुतत् ॥४१
शतद्वितस्यवर्षस्यपरमित्यभिधीयते ।
पचाशद्द्विस्तथावर्षे परार्द्धमितिकीर्त्यते ॥४२
एकमस्यपरार्द्धंतुव्यतीतंद्विजसत्तम ।
यस्यान्तेऽभून्महाकल्प पाद्मइत्यभिविश्रुत ॥४३
द्वितीयस्यपरार्द्धंस्ववर्त्तमानस्यवैद्विज ।
वाराहइतिकल्पोऽयप्रथम परिकल्पित ॥४४

आठ लाख बावन सहस्र दिव्य वर्ष का परिमाण एक मन्वन्तर को होता है ॥३७॥ इतने काल को चौदह गुणा करने पर एक करोड इक्तीस लाख अट्ठाईस हजार दिव्य वर्षों का ब्रह्मा का एक दिन होता है, इस ब्रह्म दिवस के अन्त मे जो प्रलय होता है, उसी को ज्ञानीजन नैमित्तिक प्रलय कहते है ॥३८॥ भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक मे निवास करने वाले जीव, इस लोको के नष्ट होने पर महर्लोक मे जाकर निवास करते है ॥३९-४०॥ जो परिमाण ब्रह्माजी के दिन का है, उतना ही उनका रात्रि का है, रात्रि के अन्त मे सृजन कार्य का पुनरारम्भ होता है, इस प्रकार से ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ॥४१॥ एक सौ वर्ष का पर और पाच सौ वर्ष का एक परार्द्ध होता है ॥४२॥ हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार ब्रह्माजी का एक परार्द्ध बीत चुका है, उसी के अन्त मे 'पाद्म' सज्ञक महाकल्प उपस्थित हुआ था ॥४३॥ अब यह 'वाराह कल्प' नामक द्वितीय परार्द्ध है, यही प्रथम कल्प कहा गया है ॥४४॥

३९—प्राकृत और वैकृत सृष्टि

यथासससर्जवैब्रह्मामगवानादिकृत्प्रजा ।
प्रजापति पतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ॥१
कथयाम्येषतेब्रह्मन्ससर्जभगवान्यथा ।
लोककृच्छाश्वत कृत्स्नजगत्स्थावरजगमम् ॥२

पाद्मादसानसमये निशासुप्तोत्थित प्रभुः ।
सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्मा शून्यलोकमवैक्षत ॥३
इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगत प्रभवाप्ययम् ॥४
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनव ।
तासु शेते यस्माच्च तेन नारायण स्मृत ॥५
विबुद्ध सलिलेशस्मिन्विधाद्यान्तर्गतान्हरिम् ।
अनुमानात्समुद्धारकर्तुकामस्तदाक्षिति ॥६
अकरोत्सतनूरन्या कल्पादिषु यथापुरा ।
मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहवपुरास्थित ॥७

क्रौष्टुकि बोले—जिस प्रकार आदि स्रष्टा ब्रह्माजी ने प्रजा की उत्पत्ति की, वह मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ॥१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—अनादि भगवान् श्री ब्रह्माजी ने इस स्थावर जगममय विश्व की जिस प्रकार रचना की वह आपके प्रति वर्णन करता हूँ ॥२॥ पाद्म नामक प्रलय के अवसान होने पर सत्वगुण उद्रेक वाले ब्रह्माजी रात्रि के व्यतीत होने पर शयन से जाग्रत हुए तब उन्होंने सम्पूर्ण भुवन को शून्य देखा ॥३॥ उस समय जगत्कारण नारायण के विषय मे यह कहा जाता है ॥४॥ जल शब्द को नार कहा गया है, उस नार मे यह शयन करते है, इस लिये वह नारायण कहे जाते है ॥५॥ नारायण ने जान कर पृथिवी को जल मे डूबा हुआ जाना और उसे निकालने की इच्छा से ॥६॥ पूर्व कल्पो मे मत्स्य या कूर्म आदि के समान वाराह रूप धारण किया ॥७

वेदयज्ञमयदिव्यवेदयज्ञमयोविभु ।
रूपकृत्वाविवेशाप्सुसर्वंग सर्वसम्भवः ॥८
समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम् ।
जनलोकस्थितैः सिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पति ॥९
तस्योपरिजलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता ।
विस्तृतत्वात्तुदेहस्यनमह्नीयातिसप्लवम् ॥१०

ततः क्षितिसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन् ।
प्राक्सर्गेदह्यमानेनुतदासवर्तकाग्निना ॥११
तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः ।
शेलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसंहृता ॥१२
निपत्तायत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलाभवन् ।
भूविभागंतत कृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३
भूरादाश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ।
सृष्टिचिन्तयतस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा ॥१४

वह वेदमय प्रभु दिव्य वेदमय स्वरूप को धारण करके वाराह रूप से जल में घुसे ॥८॥ और पाताल से निकाल कर पृथिवी को जल पर स्थापित किया और फिर देखने लगे ॥९॥ कि वह नौका के समान जल पर डोलती है, विस्तृत होने के कारण स्थिर नहीं होती ॥१०॥ फिर उन्होंने पृथिवी को समान करके पर्वतों की रचना की, पहिले सृष्टि को सम्वर्तक अग्नि से दग्ध किया था ॥११॥ वह सभी पर्वत उस अग्नि के ताप से विशीर्ण हो कर समुद्र में मग्न हो गये थे, उस समय वहां का जल भी वायु के द्वारा एकत्र हो गया था ॥१२॥ इस लिये पर्वत जहां जहां पड़े थे, वहीं-वहीं अचल हो गये, फिर सप्त द्वीप के रूप में पृथिवी को विभक्त करके ॥१३॥ पहिले के समान ही भूर्लोक आदि चार लोकों का विधान किया, और पूर्व कल्पों के समान ही सृष्टि विषयक विचार करने लगे ॥१४॥

अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमय ।
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसंज्ञित ॥१५
अविद्यापंचपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मन ।
पंचधावस्थित सर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६
बहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मक ।
मुख्यानगायतश्चोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७
तदृष्ट्वासाधकसर्गमसन्यदपरंपुन ।
तस्याभिध्यायत सर्गतिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत ॥१८

यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्ति सातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृत ।
पश्चादयस्तेविख्यातास्तम प्रायाह्यवेदिन ।।१६
उत्पथग्राहिणश्चैवतेऽज्ञानेज्ञानमानिन ।
अहङ्कृता अहमानाअष्टाविंशद्विधात्मकाः ।।२०

तव तमोगुण तम, मोह तामिस्र, अन्धतामिस्र नामक ।।१५।। पाच अविद्या इनसे उत्पन्न हुई, इस प्रकार के चिन्तन से अप्रतिबोध वाली सृष्टि की की पाच प्रकार से स्थिति हुई ।।१६।। वह सवृत्तात्मक और पर्वत स्वरूप अपने भीतर बाहर सर्वत्र अप्रकाशित थी, पर्वत प्रधान होने के कारण वह सृष्टि मुख्य सर्ग सज्ञा वाली कही गई है ।।१७।। इस असाधक सृष्टि को देख कर उन्होने अन्य सृष्टि की इच्छा की तो उनके ध्यान से तिर्यक्स्रोत की प्रवृत्ति हुई ।।१८।। उस तिर्यक्स्रोत के प्रवाहित होने से इसके द्वारा अधिक तमोगुणी सृष्टि अर्थात् पशु आदि अज्ञानी उत्पन्न हुए ।।१९।। वह उन्मार्गी अज्ञान को ही ज्ञान मानने लगे, अहकारी अहमानी वे अट्ठाईस प्रकार के हुए ।।२०

अन्ध प्रकाशास्तेसर्वेआवृतास्तुपरस्परम् ।
तमप्यासाधकमत्वाध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।।२१
ऊर्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तुसात्त्विकोद्ध्वंमवर्तत ।
तेसुखप्रीतिबहुलादहिरन्तस्त्वनावृता ।।२२
प्रकाशाबहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोत समुद्भवः ।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः ।।२३
तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ।
ततोऽयमतदादध्यौसाधकसर्गमुत्तमम् ।।२४
तथाभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्तत ।
प्रादुर्बभौतदाव्यक्ताद्वर्वस्रोतस्तुसाधक ।।२५
यस्मादवाग्व्यवर्तन्ततोऽर्वस्रोतसस्तुते ।
तेचप्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्तारजोऽधिका ।।२६
तस्मात्ते दुःखबहुलाभूयोभूयश्चकारिणः ।
प्रकाशाबहिरन्तश्चमनुष्या साधकाश्चते ।।२७

पञ्चमोऽनुग्रह सर्ग सचतुर्द्धाव्यवस्थित ।
विपर्ययेणसिद्धयाचशान्त्यातुष्ट्यातथैवच ॥२८

यह सब अन्त प्रकाश और एक दूसरे को ढक कर स्थित है, इस सृष्टि को उन्होंने असाधक समझ कर और चिन्तन किया तो ॥२१॥ ऊर्ध्व पथ गामी तृतीय स्रोत प्रवाहित होने लगा, उससे जिनकी उत्पत्ति हुई, वह सुख और प्रीति की अधिकता वाले तथा बाहर और अन्तर मे अनावृत्त ॥२२॥ बाह्याभ्यतर मे प्रकाश वाले और तुष्टात्मा थे, यह तीसरी सृष्टि देव सर्ग कही गयी ॥२३॥ इस सृष्टि को उत्पन्न करके ब्रह्माजी अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और फिर उन्होंने श्रेष्ठ साधक सर्ग का चिन्तन किया ॥२४॥ उनके चिन्तन करने पर अव्यक्त से अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग की उत्पत्ति हुई ॥२५॥ ऊर्ध्व से उग्र होने के कारण ही इसे अर्वाक्स्रोत सर्ग कहा गया है, इनमे प्रकाश की अधिकता, तम की न्यूनता तथा रजोगुण का आधिक्य है ॥२६॥ इस लिये इनमे दुःख की अधिकता है, यह बारम्बार कार्य वाले तथा बाह्याभ्यतर मे प्रकाश वाले साधक मनुष्य रूप है ॥२७॥ फिर अनुग्रह नाम की पाँचवी सृष्टि हुई, यह विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टि रूप चार भागो मे विभाजित है ॥२८॥

भिद्यत्त वर्तमानचतेऽर्थजानन्तिवैपुन ।
भूतादिकानाभूतानापष्ठ सर्ग सउच्यते ॥२९
तेपरिग्रहिणा सर्वेसविभागरतास्तथा ।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्चजेयाभूतादिकाश्चते ॥३०
प्रथमोमहत सर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुस ।
तन्मात्राणाद्वितीयस्तुभूतसर्ग सउच्यते ॥३१
वैकारिकस्तृतीयस्तुसगश्चैन्द्रियक स्मृत ।
इत्येषप्राकृत सर्ग सभूतोबुद्धिपूर्वक ॥३२
मुख्य सर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यार्वस्थाइरा स्मृता ।
तिर्तक्स्रोतस्तुय प्रोक्तस्तिर्यग्योन्य सपञ्चम ॥३३
तथोद्ध्वस्रोतसाषष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृत ।
ततोर्वाक्स्रोतसासर्ग सप्तम सतुमानुषः ॥३४

अष्टमोऽनुग्रह सर्ग सात्विकस्तामसश्च स ।
पञ्चैतेवैकृता सर्गा प्राकृतास्तुत्रय स्मृता ॥३५
प्राकृतोवैकृतश्चैवकौमारोनवम स्मृत ।
इत्येतेवैसमाख्याताननवसर्गा प्रजापते ॥३६
प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतव ।
सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३७

भूत और वर्त्तमान के सब अर्थ को जानने वाले भूतादि तथा अन्य समस्त भूतो की सृष्टि षष्ठ सर्ग कही गयी है ॥३४॥ यह सभी ओ युक्त, विषय मे लगे हुए, प्रेरणा मे निपुण, अशील स्वभाव के भूतादि कहे जाते है ॥३०॥ जिससे ब्रह्माजी का अविर्भाव होता है, वह प्रथम महत् सृष्टि है, ब्रह्मा द्वारा होने वाली सृष्टि द्वितीय है, वह भूत सर्ग कही जाती है ॥३१॥ ऐन्द्रिक वैकारिक जो तृतीय सृष्टि है, वह प्राकृत सर्ग बुद्धि पूर्वक कहा गया है ॥३२॥ चतुर्थ सर्ग मुख्य है, स्थावरो को मुख्य कहा है, तिर्यक् योनि रूप तिर्यक्स्रोत जो कहा गया है, वह पञ्चम सर्ग है ॥३३॥ ऊर्ध्व स्रोत की छठी सृष्टि देव सर्ग कही जाती है, इसके पश्चात् सप्तम सृष्टि अर्वाक् स्रोत मानवी सृष्टि है ॥३४॥ आठवाँ अनुग्रह सर्ग सात्विक और तामसिक दो प्रकार का है, यह पाँच वैकृत सर्ग और पहिले कहे हुए तीन प्राकृत सर्ग है ॥३५॥ प्राकृत और वैकृत सयुक्त एक नवम सृष्टि कौमार नाम की है, इस प्रकार प्रजापति की यह नौ सृष्टि कही गयी है ॥३६॥ यह प्राकृत और वैकृत ही ससार के मूल कारण है, जिनकी रचना जगदीश्वर ने की है, अब और क्या सुनना चाहते हो ? ॥३७॥

४०—देवादि की सृष्टि

समासात्कथितासृष्टि सम्यग्भगवतामम ।
देवादीनामवब्रह्मन्विस्तरात्तुब्रवीहिमे ॥१
कुशलाकुशलैर्ह्यन्भावितापूर्वकर्मभि ।
ख्यात्यातयाह्यभिर्मुक्ता प्रलयेह्य पसहृता ॥२

देवाद्या स्थावरान्ताश्चप्रजाब्रह्म श्चतुर्विधा ।
ब्रह्माण कुर्वत सृष्टिजग्मिरेमानसास्तदा ॥३
ततोदेवासुरपितृन्मानुषाश्चचतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत् ॥४
युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्ताभूत्प्रजापते. ।
सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेतत ॥५
उत्ससर्जततस्तानुतमोमात्रात्मिकातनुम् ।
सापविद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ॥६
अन्यातनुमुपादायसिसृक्षु प्रीतिमापस ।
सत्त्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ॥७
उत्ससर्जचसूतेशस्तनु तामप्यसौविभु ।
साचापविद्धादिवससत्त्वप्रायमजायत ॥८

क्रौष्टुकि बोले—हे प्रभो ! आपने जिस प्रकार से सृष्टि प्रकरण कहा, वह अति संक्षिप्त है, इसलिए अब देवता आदि की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥१॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्र ! पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म से ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह प्रलय में लीन होते हैं, मुक्त नहीं होते ॥२॥ देवादि से स्थावर तक चार प्रकार की प्रजा जब प्रलय काल में नष्ट हो गई तब ब्रह्माजी ने उनकी सृष्टि की पुन इच्छा की और अपने मन से ॥३॥ सुर, असुर, पितर और मनुष्य की सृष्टि की इच्छा से उन्होंने अपने अंश को जल में डाला ॥४॥ सृष्टिकर्मी ब्रह्माजी में तमोगुण का उद्रेक होने से, उनकी जंघा से प्रथम असुरों की उत्पत्ति हुई ॥५॥ इसीलिए उन्होंने उन असुरों को तमोगुणी शरीर दिया, वही शरीर त्याग जाकर तमोगुणात्मिका रात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥६॥ फिर ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया, उससे वे प्रसन्न हुए, उसमें सतोगुण का उद्रेक होने से उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई ॥७॥ उनको सात्विक शरीर दिया, वही व्यक्त देह सत्वगुणात्मक दिवस नाम से प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेवतयोऽन्याजगृहेतनुम् ।
पितृवन्मन्यमानन्यपितरस्तस्यजज्ञिरे ॥९
सृष्ट्वापितृनुत्ससर्जतनु तामपिसप्रभु ।
सा चोत्सृष्टाभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता ॥१०
रजोमात्रात्मिकामन्यातनु भेजेऽथसप्रभु ।
ततोमनुष्या सम्भूतारजोमात्रसमुद्भवा ॥११
सृष्ट्वामनुष्यान्सविभुरुत्ससर्जतनु ततः ।
ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्तातेऽहर्मुखेचया ॥१२
इत्येतास्तनवस्तस्यदेवदेवस्यधीमत ।
ख्याताराज्यहनीचैवसन्ध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥१३
ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाह सत्त्वमात्रात्मकत्रयम् ।
तमोमात्रात्मिकारात्रि सावैतस्मात्तमोधिका ॥१४

फिर उन्होंने अन्य सत्त्वमय शरीर धारण कर पितरों की सृष्टि की ॥९॥ पितरों को शरीर देने पर, वह व्यक्त शरीर दिवस रात्रि के भीतर स्थित सन्ध्या रूपात्मक हुआ ॥१०॥ इसके पश्चात् रजोगुण युक्त अन्य देह धारण करके उन्होंने रजोगुण की अधिकता वाले मनुष्यों को उत्पन्न किया ॥११॥ मनुष्यों को उत्पन्न करके उस शरीर का भी परित्याग कर दिया, वह व्यक्त शरीर ज्योत्स्ना हुआ, रात्रि के शेष में और दिवस के प्रथम भाग में आविर्भूत होती है ॥१२॥ हे द्विज ! मेधावी देवदेव के यह सब विग्रह ही दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना के नाम से प्रसिद्ध हुए है ॥१३॥ ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिवस यह तीन सतोगुणी है और रात्रि तामसिक होने से अन्धकार मयी है ॥१४॥

तस्माद्दैवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विता ।
ज्योत्स्नागमेचमनुजास्सन्ध्यायापितरस्तथा ॥१५
भवन्तिबलिनोऽधृष्याविपक्षाणानसशय: ।
तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्नारात्र्यहनीसन्ध्याश्चत्वार्येतानिवैप्रभो. ।
ब्रह्मणस्तुशरीराणित्रिगुणोपसृतानितु ॥१७

चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यततनुमन्याप्रजापतिः ।
रजस्तमोमयीरात्रौजगृहेक्षुत्तृडन्वितः ॥१८
तदन्धकारेक्षुत्क्षामामगृह्णाद्भगवानज ।
विरूपाञ्छ्मश्रुलानत्तुमारब्धास्तेचतातनुम् ॥१९
रक्षामइतितेभ्योऽन्येयउचुस्तेतुराक्षसाः ।
खादामइतियेचोचुस्तेयक्षायक्षणाद्विज ॥२०
तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यकेशाःशीर्यन्तवेधसः ।
समारोहणहीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥२१
सर्पणास्तेऽभवन्सर्पाहीनत्वादहय स्मृता ।
सर्पान्दृष्ट्वातन क्रोधात्क्रोधात्मासोविनिर्ममे ॥२२

पूर्वोक्त गुणों की अधिकता से दिन में देवता, रात्रि में असुर, ज्योत्स्ना में मनुष्य और सन्ध्या काल में पितर ॥१५॥ अधिक बलवान् होकर शत्रुओं द्वारा नहीं जीते जाते, इस प्रकार विपरीत काल में विपरीत बलवान् हो जाते हैं ॥१६॥ प्रजापति ने दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना रूप जो चार प्रकार के देह उत्पन्न किये, वही ब्रह्माजी का त्रिगुणात्मक देह है ॥१७॥ चारों देहों को प्रजापति ने उत्पन्न करके क्षुधा पिपासा से युक्त रज-तम युक्त रात्रि को ग्रहण किया ॥१८॥ उस अंधेरे में ब्रह्माजी ने क्षुधा से कृश हुए विरूप दाढ़ी मूँछ वालों की रचना की तब वे उस देह को भक्षण करने को ही प्रवृत्त हुए ॥१९॥ जब वह उस देह को भक्षण करने को उद्यत हुए तब जिन्होंने 'रक्षा करो' कहा वे राक्षस और जिन्होंने 'खाऊँगा' कहा वह यक्ष कहे गये ॥२०॥ उन्हें देख कर अप्रसन्नता उत्पन्न हुई इससे ब्रह्माजी के सब केश मस्तक से पतित हुए ॥२१॥ और विचरण करने से सर्प सदृश हुए, हीन होने से यह अहि भी कहे जाते हैं, सर्पों को देख कर क्रोध युक्त होने से उन्हें क्रोधा मा बनाया ॥२२॥

वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूता पिशिताशना ।
ध्यायतोगाततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसता ॥२३
जज्ञिरेक्षितितोवाचगन्धर्वास्तेनतेस्मृता ।
अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभु ॥२४

ततः स्वदेहतोऽन्यानि वयांसि पशवोऽसृजत् ।
मुखतोऽजाः ससर्ज्जाथ वक्षसश्चावयोऽसृजत् ॥२५
गाश्च बोदरतोब्रह्मन्पार्श्वाभ्याच्च विनिर्ममे ।
पद्भ्यां चाश्वान्समातङ्गान्खरान्सभान्क्षकान्मृगान् ॥२६
उष्ट्रानश्वतराश्चैव नानारूपाश्च जातयः ।
ओषध्यः फलमूलिन्योरोमभ्यस्तस्यजज्ञिरे ॥२७
एवमश्वोषधीः सृष्ट्वाह्ययज्ञाश्चैवरोविभुः ।
तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखेतदा ॥२८

कपिल वर्ण से प्रकट कर्कश स्वभाव वाले आमिष भोजी गणों की उत्पत्ति हुई, गौ का चिन्तन करते समय गन्धर्व उत्पन्न हुए ॥२३॥ वाक्य को ग्रहण करते करते उत्पत्ति को प्राप्त होने से उनका नाम गन्धर्व हुआ, इस प्रकार आठ प्रकार की देवयोनि को प्रकट करके ॥२४॥ अपने शरीर से अन्य सभी पशु पक्षी प्रकट किये, मुख से बकरा और हृदय से पक्षी उत्पन्न किये ॥२५॥ उदर और पार्श्व से गौ, दोनों चरणों से अश्व, हाथी, गधा, खरगोश, मृग ॥२६॥ ऊँट और खच्चर उत्पन्न किये तथा रोम से फल मूल युक्त विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न की ॥२७॥ इस प्रकार त्रेतायुग के आरम्भ में ब्रह्माजी पशु और औषधियों की रचना करके यज्ञ सृजन में लगे ॥२८॥

गौरजः पुरुषोमेषोऽश्वाश्वतरगर्दभाः ।
एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्निबोधमे ॥२९
श्वापदद्विखुरहस्तीवानरा पक्षिपञ्चमाः ।
औदका पशवः षष्ठा सप्तमास्तुसरीसृपाः ॥३०
गायत्रीञ्चतृचञ्चैव त्रिवृत्साम रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमचयज्ञानां निर्ममेप्रथमान्मुखात् ॥३१
यजूंषित्रैष्टुभञ्छन्द स्तोमपञ्चदशंतथा ।
बृहत्सामतथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात् ॥३२
सामानिजगतीच्छन्द स्तोमपञ्चदशंतथा ।
वैरूपमतिरात्रञ्च निर्ममेपश्चिमान्मुखात् ॥३३

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
आनुष्टुभसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४
विद्युतोऽशनिमेघाश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ।
वयांसि चससर्ज्जादौ कल्पस्यप्रभवान्विभु ॥३५

गौ, बकरा, भैंसा, मेढ़ा, घोड़ा, खच्चर और गधा इन पशुओं को ग्राम्य कहा गया है, अब आरण्य पशुओं का वर्णन करता हूँ ॥२९॥ श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर, पक्षी, उभ के जीव, पशु और सर्पादि यह सात आरण्य अर्थात् वन के जीव कहे गये हैं ॥३०॥ ब्रह्मा ने पहिले अपने मुख से गायत्री, त्रिवृत्, साम रथन्तर और अग्निष्टोम की उत्पत्ति की ॥३१॥ दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छंद, पचदश स्तोम, बृहत् साम और उक्थ को प्रकट किया ॥३२॥ पश्चिम मुख से सामवेद, जगती छन्द, पचदश स्तोम, वैरूप और अतिरात्र को प्रकट किया ॥३३॥ उत्तर मुख के द्वारा इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराज की उत्पत्ति की ॥३४॥ उन विभु ने कल्प के प्रथम विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष और पक्षियों को उत्पन्न किया ॥३५॥

उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ।
सृष्ट्वातुष्ट्यपूर्वंदेवासुरपितॄन्प्रजा ॥३६
ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावरागिचरागिच ।
यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसागणान् ॥३७
नरकिन्नररक्षांसिवयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययच्चव्ययंचैवयदिदंस्थाणुजङ्गमम् ॥३८
तेषांयेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेप्रतिपेदिरे ।
तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमाना पुनः पुनः ॥३९
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरेधर्माधर्मानृतेऽनृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्तेतस्मात्तत्तस्यरोचते ॥४०
इंद्रियार्थेषुभूतेषुशरीरेषुचसप्रभुः ।
नानात्वंविनियोगंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥४१

नामरूपञ्चभूतानाकृत्यानाञ्चप्रपञ्चनम् ।
वेदशब्देभ्यएवादौदेवादीनाञ्चकारसः ॥४२
ऋषीणानामधेयानियाञ्चदेवेषुसृष्टयः ।
चकर्यन्तेप्रसूतानामन्येषाञ्चदृदातिसः ॥४३
यथार्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्य्यये ।
दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावायुगादिषु ॥४४
एवविधा सृष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
चकर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवै ॥४५

फिर सुर, असुर, पितर, मनुष्य उत्पन्न करके विभिन्न प्रकार के अन्य प्राणियो को उत्पन्न किया ॥३६॥ फिर स्थावर, जगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गधर्व और अप्सराएँ ॥३७॥ नर, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, तथा नाग इत्यादि सब नाशवान् और स्थायी स्थावर जगम पदार्थो की उत्पत्ति हुई ॥३८॥ सृष्टि के प्रथम ही जिनका जो कर्म है, वह निर्दिष्ट हो गया, इसलिए वह बारबार उत्पन्न होकर भी अपने नियत कर्मो को प्राप्त होते है ॥३९॥ पूर्व जन्म मे जीव जिस अहिंसा, मृदुता, क्रूरता, धर्म, सत्य, मिथ्या आदि का आश्रय लेता है, उसे परजन्म मे उसी की प्राप्ति होती है ॥४०॥ जीवो मे इन्द्रियो के विषय और देहो मे इंद्रियाँ उनके कर्मानुसार ही उन विभु ब्रह्माजी ने निर्मित की है ॥४१॥ उनके नाम, रूप, कृत्य, अकृत्य, प्रपच और देव-कर्म आदि का निर्माण वेद शब्द से किया ॥४२॥ प्रलय के पश्चात् पहिले के समान ही उन्होंने ऋषियो के नाम और देवताओ की रचना की ॥४३॥ जैसे ऋतु परिवर्तन के समय उसके लक्षण दिखाई देने लगते है, वैसे ही युग-युग मे उनके आगामी लक्षण प्रकट होने लगते है ॥४४॥ अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रलयान्त के समय इसी प्रकार सृजन कार्य करते है ॥४५॥

४१--मिथुन सृष्टि और स्थान कथन

अवक्त्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ।
ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ॥१

यथा ववर्णानिसृजद्यद्गुणाश्चमहामते ।
यच्चयेषास्मृतकर्मविप्रादीनावदस्वतत् ॥२
ब्रह्मणा सृजत पूर्वंतत्याभिध्यायिनस्तथा ।
मिथुनानासहस्र तुमुखात्सोऽथासृजत्मुने ॥३
जातास्तेह्युपपद्यन्तेसत्त्वोद्रिक्ता स्वतेजसः ।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानाससर्जह ॥४
तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःक्रुधिभणाश्चाप्यमर्षिण. ।
ससर्जान्यत्सहस्र तुद्वद्वानामूरुत पुन ॥५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईर्ष्याशीलास्तुते स्मृता ।
पद्भ्यासहस्रमन्यच्चमिथुनानाससर्जह ॥६
उद्रिक्तास्तमसासर्वेनि श्रीकाह्यल्पतेजस ।
तत सघर्षभाणास्तेद्वन्दोत्पन्नास्तुप्रारिणन' ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवान् ! आपने अर्वाक्स्रोत वाले मनुष्यों का जो वर्णन किया, उसी विषय को विस्तार पूर्वक कहिये ॥१॥ हे महामते ! गुण वाली सब वर्णों की सृष्टि जिस प्रकार हुई तथा ब्राह्मणादि का जो-जो कर्त्तव्य है, वह सभी मुझे बताइये ॥२॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—सृष्टि के पहिले ही ध्यान शील ब्रह्माजी के मुख से सहस्र मिथुन की सृष्टि हुई थी ॥३॥ यह सब तेजस्वी तथा सतोगुण की अधिकता वाले हुए उनके वक्षस्थल से और दूसरे सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ॥४॥ वह सब क्रोधमय स्वभाव के तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेश से जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ॥५॥ वह रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से युक्त, ईर्ष्याधान् हुए तथा जो सहस्र मिथुन दोनों चरणों से उत्पन्न हुए ॥६॥ वह लक्ष्मीहीन तमोगुणी तथा तेजहीन हुए, तदनन्तर सघर्षण से जो द्वन्द्वरूप जीव उत्पन्न हुए ॥७॥

अन्योन्यहृच्छयाचिष्टामैथुनायोपचक्रमु ।
तत प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानाहिसम्भव ॥८
मासिमास्यार्तवयत्तुनतदासीत्तुयोषिताम् ।
तस्मात्तदानसुषुवु सेवितैरपिमैथुने ॥९

आयुषोन्तेप्रसूयन्तेमिथुनान्येवता सकृत् ।
(कुलिककुलिकाचैवउत्पद्य तेमृमूर्षता) ।
तत प्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानाहिसम्भव ॥१०
ध्याने नमनसातासाप्रजानाजायतेसकृत् ।
शब्दादिविषय शुद्ध प्रत्येकपचलक्षण ॥११
इत्येषामानुषीसृष्टिर्यापूर्ववंप्रजापते ।
तस्यान्वयसम्भूतायैरिदपूरितजगत् ॥१२
सरित्सर समुद्राश्चसेवन्तेपर्वतानपि ।
तास्तदाह्यल्पशीतोष्णायुगेतस्मिञ्चरन्तिवै ॥१३
तृप्तिस्त्वाभाविकीप्राप्ताविषयेषुमहामते ।
नतासाप्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सर ॥१४
पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुमर्वग ।
तावेनिष्कामचारिण्योनित्यमुदितमानसा ॥१५

वह द्वन्द्व से उत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्त से मैथुन मे प्रवृत्त हुए, इस प्रकार इस कल्प मे मिथुनो की सृष्टि हुई ॥८॥ पूर्वकाल मे स्त्रियो को मासिक रजोधर्म का अभाव था, इसलिए वह अन्य समय मे मैथुन करके भी ॥९॥ सन्तति उत्पादन मे समर्थ नही थी केवल अवस्था के अन्त मे एक ही बार सन्तति होती थी (अन्त अवस्था मे ही कुलिक और कुलका उत्पन्न होते थे) तब से इसी प्रकार इस कल्प मे मिथुन की उत्पत्ति होती आयी है ॥१०॥ ब्रह्माजी ने जब प्रजा का चिन्तन किया, तब उनके मन से पच महाभूत और शब्दादि विषय एक साथ उत्पन्न हुए ॥११॥ यही प्रजापति की मानसी सृष्टि कही जाती है, इस समय यह विश्व उसी सृष्टि से परिपूर्ण होरहा है ॥१२॥ पहिले युग मे अल्प शीतोष्ण हुए प्रजागण सरित्, सरोवर और समुद्र के निकट अथवा पर्वतो मे घूमते थे ॥१३॥ हे महामते ! वह उपभोग मे स्वाभाविक रूप से तृप्त रहते थे, उनमे किसी भी प्रकार का विघ्न, द्वेष और मत्सर नही था ॥१४॥ वह पर्वत मे या समुद्र के किनारे रहते हुए सदा कामना रहित आचरण करते थे और प्रसन्न चित्त रहते थे ॥१५॥

पिशाचोरगरक्षांसितथामत्सरिणोजना: ।
पशव पक्षिण श्चैवनक्रामत्स्या सरीसृपा ॥१६
अवारकाह्यण्डजावातेह्यधर्मप्रसूतय: ।
नमूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणिच ॥१७
सर्वकालसुख कालोनास्त्यर्थंघर्मशीतता ।
कालेनगच्छतातेषापित्रासिद्धिरजायत ॥१८
ततश्चतेषापूर्वाह्णे मध्याह्ने चवितृप्तता ।
पुनस्तथेच्छतातृप्तिरनायासेनसाभवत् ॥१९
इच्छताचतथाथासोमनस समजायत ।
अपासौक्ष्म्यततस्तासासिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥२०
समजायतचैवान्यासर्वकामप्रदायिनी ।
असस्कार्यैं शरीरैश्चप्रजास्ता स्थिरयौवना ॥२१

पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सर युक्त मनुष्य पशु, पक्षी, नक्र, मत्स्य, सरिसृप ॥१६॥ अवारक और अण्डज प्राणियों की उत्पत्ति अधर्म से हुई है, उस समय मूल, फल, पुष्प, ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ भी नहीं था ॥१७॥ उस समय उष्णता या शीत भी नहीं था, सब काल अत्यन्त सुख ही था, काल क्रम से उन्हें अद्भुत सिद्धि प्राप्त थी ॥१८॥ पूर्वाह्ण या मध्याह्न में उनकी तृप्ति नहीं होती थी तो वह इच्छा करके सहज में ही तृप्ति को प्राप्त कर लेते थे ॥१९॥ तथा इच्छा करते ही जल के सूक्ष्म होने के कारण उनको विभिन्न प्रकार की रस और उल्लास वाली अन्य सिद्धि ॥२०॥ उपस्थित होकर सब इच्छा पूर्ण कर देती, वह सस्कार-हीन होते हुए भी स्थिर यौवन से सम्पन्न थे ॥२१॥

तासांविनातुसकल्पजान्तेमिथुना प्रजा: ।
समजन्मचरूपञ्चम्रियन्तेचैवता समम् ॥२२
अनिच्छाद्वेषसयुक्तावर्तन्तेतुपरस्परम् ।
तुल्यरूपायुष.सर्वाश्चधर्मोत्तमतांविना ॥२३
चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणामानुषाणितु ।
आयु प्रमाणजीवन्तिनचक्लेशाद्विपत्तय ॥२४

क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत्क्षितिर्भाग्येनसर्वश ।
कालेनगच्छतानाशमुपयान्तियथाप्रजा ॥२५
तथाताःक्रमशोनाशजग्मु सर्वत्रसिद्धय ।
तासुसर्वासुनष्टासुनभस प्रच्युतारसा ॥२६
पयस कल्पवृक्षास्तेसभूतागृहसस्थिता ।
सर्वेप्रत्युपभोगाश्चतासातेभ्य प्रजापते ॥२७
वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेतदा ।
तत कालेनवैरागस्तथासामाकस्मिकोऽभवत् ॥२८

बिना सकल्प ही उनकी मिथुन प्रजा जैसे एक साथ उत्पन्न होती वैसे ही रूप आदि मे समता प्राप्त करके एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होती थी ॥२२॥ उनमे पारस्परिक इच्छा या द्वेष न था, सभी समान भाव से समय को व्यतीत करते थे, उनमे कोई ऊँच-नीच भी न था, क्योंकि सभी आयु और रूपादि मे समान होते थे ॥२३॥ यह मिथुन सृष्टि चार हजार मानवी वर्ष तक जीवित रहती थी और बिना विपत्ति अथवा क्लेश के ही प्राण छोडती थी ॥२४॥ कही कही पृथिवी दैववशात् ऐसी होजाती थी, जिसके कारण प्रजा को क्रमानुसार जीवन समाप्त करना होता था ॥२५॥ वह सभी सिद्धियाँ क्रमानुसार नाश को प्राप्त होगयी और उनके समाप्त होते ही आकाश से रस बरसने लगे ॥२६॥ तब जल और दुग्ध की प्राप्ति हुई, गृहो मे कल्पवृक्षो की उत्पत्ति हुई और उन कल्पवृक्षो से ही सम्पूर्ण भोगो की उपलब्धि होने लगी ॥२७॥ त्रेता के प्रारम्भ मे अपने जीवन का निर्वाह मनुष्य इस प्रकार किया करते थे, फिर समय पाकर उनमे आकस्मिक राग की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

मासिवास्यार्तवोत्पत्त्यागर्भोत्पत्ति पुन पुन ।
रागोत्पत्त्यातत्तस्तासावृक्षास्तेगृहसस्थिता ॥२९
प्रणेशुरपरेचासञ्छतु शाखामहीरुहाः ।
वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ॥३०
तेष्वेवजायतेतेषागन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमाक्षिकमहावीर्यपुटकेपुटकेमधु ॥३१

तेनतावर्तयन्तिस्ममुखेत्रेतायुगस्यवै ।
तत कालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुता ॥३२
वृक्षास्ता पर्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतस ।
नेशुस्तेनापचारेणतेहितासामहीरुहा ॥३३
(सूलेषुचापरत्रासचक्रु शालामहीरुहाम् ।)
ततोद्वन्द्वान्यजायन्तशीतोष्णक्षुन्मुखानिवै ।
तास्तद्वद्वन्द्वोपघातार्थंचक्रु पूर्वपुराणितु ॥३४

इस प्रकार राग के उत्पन्न होने से ही मासिक ऋतुकाल और बारबार गर्भधारणादि होने लगा और उनके गृह मे स्थित कल्पवृक्ष भी रागयुक्त हो गये ॥२९॥ इससे वह कल्पवृक्ष नाश को प्राप्त हुए और चार शाखो वाले अन्य वृक्षो की उत्पत्ति हुई, उनके फलो मे वस्त्राभरण प्रकट होते थे ॥३०॥ फलो के प्रत्येक पुट मे श्रेष्ठ गन्ध और वर्ण वाला बलप्रद मधु मक्खियो के बिना ही उत्पन्न होता था ॥३१॥ त्रेता के प्रारभ काल की प्रजा इस मधु को पीकर ही जीवन धारण करती थी, फिर वह कालक्रम से लोभान्वित होकर ॥३२॥ ममता वाले मन से उन वृक्षो के ग्रहण किये जाने के कारण सभी वृक्ष नष्ट होगये ।३३। (वृक्षो की निवास योग्य शाला बनाली थी) फिर शीत, उष्णता क्षुधा आदि सभी द्वन्द्व उत्पन्न हुए, तब उन्हे निवारण करने के लिये पुरो का निर्माण किया ॥३४॥

मरुध्वन्वसुदुर्गेषुपर्वतेषुदरीषुच ।
सश्रयन्तिचदुर्गाणिवार्क्षपार्वतमौदकम् ॥३५
कृत्रिमचतथादुर्गमित्वामित्वात्मनोऽगुलै ।
मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वंप्रचक्रिरे ॥३६
परमाणु परसूक्ष्मत्रसरेणुर्महीरज ।
वालाग्र चैवलिक्षाचयूकाचाथयवोदरम् ॥३७
क्रमादष्टगुणान्यःहुर्यवानष्टौतथागुलम् ।
षडगुलपदतच्चवितस्तिर्द्विगुणंस्मृतम् ॥३८

द्वे वितस्ती तथा हस्तो ब्राह्म्यं तीर्थादि वेष्टित ।
चतुर्हस्तो धनुर्दण्डो नाडिका युगमेव च ॥३६
क्रोशो धनु सहस्रे द्वौ गव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ।
प्रोक्त चयोजनप्राज्ञै सख्या नार्थमिदं परम् ॥४०
चतुर्णामथ दुर्गाणामस्वसमुत्थानि त्रीणि तु ।
चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तच्चक्रुर्वत्तं तस्तुवै ॥४१

तब मरुभूमि, पर्वत, गुफा इत्यादि में दुर्ग आदि के बनने पर वह उन वृक्षों, पर्वतों और जल आदि में बने दुर्गों में रहने लगे ॥३५॥ तथा अपनी अँगुली आदि के परिणाम से सब कृत्रिम दुर्ग बना कर परिमाण निश्चित करने के लिये प्रमाण बनाया ॥३६॥ अति सूक्ष्म प्रमाण के लिये परमाणु जाली के छेदों में किरण पड़ने से सूक्ष्म रज दिखायी देती है, उसके तृतीयांश को परमाणु कहते हैं, त्रसरेणु और धूल तथा स्थूल प्रमाण के लिये केशाग्र, निष्क, यूका और यव निश्चित किया ॥३७॥ आठ यव में एक अगुल, छ अगुल में एक पद, दो पद में एक वितस्ति ॥३८॥ दो वितस्ति में एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ तक चार हाथ में धनुर्दण्ड अथवा नाडिका युग ॥३९॥ दो हजार धनु में एक गव्यूति और चार गव्यूति में एक योजन होता है, सख्या निरूपणार्थ पडितजनों ने इस प्रकार निर्धारित किया है ॥४०॥ पहिले कहे हुए चार प्रकार के दुर्ग में तीन स्वाभाविक और अन्य कृत्रिम है, दुर्ग कर्म यही है ॥४१॥

पुरं च खेटकं चैव तद्वद्द्रोणीमुखद्विज ।
शाखानगरकं चापि तथा खर्वटकद्रमौ ॥४२
ग्रामसघोषविन्यासस्तेषु चावसथान्पृथक् ।
सोत्सेधप्रकारं च सर्वत परिखावृतम् ॥४३
योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टमं मानतः पुरम् ।
प्रागुदक्प्रवणाशस्तशुद्धवशबहिर्गमम् ॥४४
तदर्द्धेन तथा खेटं तत्पादेन च खर्वटम् ।
न्यूनद्रोणीमुखं तस्मादष्टभागेन चोच्यते ॥४५

प्राकारपरिखाहीनपुरखर्वटमुच्यते ।
शाखानगरकं चान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥४६
तथाशूद्रजनप्रायाः स्वस्वसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्येवसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥४७
अन्यस्मान्नगरादेर्याकार्यमुद्दिश्यमानवै ।
क्रियतेवसतिः सार्वैर्विज्ञेयावसतिर्नरैः ॥४८
दुष्टप्रायोविनाक्षेत्रैः परभूमिचरोबली ।
ग्रामएवद्रमीसंज्ञोराजवल्लभसंश्रयः ॥४९

फिर उन्होंने उन स्थानों में पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ॥४२॥ ग्राम समूह की रचना की और उनमें पृथक् पृथक् आवास गृह बनाये, जिनके चारों ओर प्राचीर और खाइयाँ थीं ॥४३॥ लम्बाई में दो कोश और उसके अष्टांश चौड़े को पुर कहते हैं, इसका पूर्व और उत्तर भाग जल प्लावित होने के कारण उसमें बाहर जाने का मार्ग (पुल) होना चाहिये ॥४४॥ पुर के अर्ध लक्षण वाले को खेटक, उससे अर्ध लक्षण वाले को खर्वटक तथा पुर के अष्टमांश लक्षण वाले को द्रोणमुखी कहते हैं ॥४५॥ जिस पुर में दीवार तो है, परन्तु खाई नहीं है, उसे खर्वट कहा गया है, जिसमें मन्त्रिगण और सामन्तादि रहते हों, उस विभिन्न प्रकार के भोग पदार्थ वाले को शाखानगर कहते हैं ॥४६॥ जहाँ शूद्र अथवा अपनी-अपनी समृद्धि वाले कृषक रहते हों और जिसके चारों ओर खेत आदि हैं, उसे ग्राम कहा गया है ॥४७॥ किसी कार्य से अन्यान्य नगरादि से जहाँ आकर लोग रहते हैं, उसे बसति कहते हैं ॥४८॥ जिस ग्राम के मनुष्य दुष्ट प्रकृति के बलवान् और अपना खेत न होने पर पराये खेत पर अधिकार कर लेते हैं और जहाँ राजा के प्रिय लोग रहते हैं, वह ग्राम द्रमी कहा गया है ॥४९॥

शकटारूढभाण्डैश्चगोपालैर्विपणैर्विना ।
गोसमूहैस्तथाघोषोयत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥५०
दण्डवर्गादीस्तुकृत्स्नावासार्थमात्मनः ।
निकेतनानिद्वज्ञानाचक्रुश्चोपशमायवै ॥५१

गृहाकारास्तथापूर्वतेषामासन्महीरुहा ।
तथास्मृत्यतत्सर्वचक्रुर्वेश्मानिता प्रजा ॥५२
वृक्षस्यैवङ्गताःशाखास्तथैवचपरागता ।
नताश्चैवोन्नताश्चैवतद्वच्छाखा प्रचक्रिरे ॥५३
या शाखा कल्पवृक्षाणापूर्वमासन्द्विजोत्तम ।
ताएवशालागेहानाशालात्वतेनतासुतत् ॥५४
कृत्वाद्व द्वोषघाततेवार्तोपायमचिंतयन् ।
नष्टेषुमधुनासार्द्धं कल्पवृक्षेष्वशेषत ॥५५

जहाँ ग्वाले अपने बर्तन आदि को गाड़ी पर लाद कर रखते है, जहाँ गौएँ अधिक रहती है, जहाँ बाजार न हो और भूमि धन के बिना ही मिल जाती हो, उसे घोष कहते है ॥५०॥ इस प्रकार इन्होंने अपने निवासार्थ स्थान बना कर द्वन्द्वो का शमन करने और व्यापार आदि के लिए गृहो का निर्माण किया, पहिले जो वृक्ष घरो के समान थे, इन्ही के आधार पर घर बनाये गये ॥५१-५२॥ जैसे वृक्ष की शाखाएँ एक के पीछे दूसरी तथा ऊँची नीची होती है, उसी प्रकार घरो की रचना की गई ॥५३॥ पहिले जो कल्प वृक्ष की शाखाएँ थी, उन शाखाओ ने सब घरो का शालात्व प्राप्त किया ॥५४॥ जब इन शालाओ द्वारा उनके शीत उष्ण आदि दुःख नष्ट हुए, तब वह अपनी जीविका के निर्वाहार्थ चिन्ता करने लगे, उस समय मधु के सहित सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये ॥५५॥

विषादव्याकुलास्तावंप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिता ।
तत प्रादुर्बभौतासासिद्धिस्त्वेतामुखेतदा ॥५६
वार्तास्वसाधिताह्यन्यावृष्टिस्तासानिकामतः ।
तासावृष्ट्यूदकानीहयानिनिम्नगतानिवै ॥५७
वृष्ट्यावरुद्धं रभवन्स्रोत खातानिनिम्नगा ।
येपुरस्तादपास्तोकाआपन्ना पृथिवीतले ॥५८
ततोभूमेश्चसयोगादोषध्यस्तादाभवन् ।
अकालकृष्टाश्चानुनाग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥५९

ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे ।
प्रादुर्भावस्तु त्रेतायामाद्योऽयमौषधस्य तु ॥६०
तेनौषधेनवर्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेमुने ।
रागलोभौसमासाद्यप्रजाश्चाकस्मिकीतदा ॥६१
ततस्ता-पर्यगृह्णन्तनदीक्षेताणिपर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्मसर्यच्चियथाबलम् ॥६२
तेनदोषेणतानेशुरोषध्योमिषतांद्विज ।
अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषध्योमहामते ॥६३

तब वह सम्पूर्ण प्रजा विषाद और क्षुधा, पिपासा से अत्यन्त व्याकुल हो गई, क्यों कि त्रेता के प्रारम्भ मे ही उनमे इस प्रकार की सिद्धि थी ॥५६॥ उस समय उनके इच्छा करते ही वृष्टि होती और वर्षा का जल नीचे को गमन करता था ॥५७॥ वर्षा का रुका हुआ जल स्रोत द्वारा गहराई करता हुआ नदी स्वरूप होगया तथा प्रथम जो सामान्य जल पृथिवी मे गिरा ॥५८॥ उस समय वह जल मिट्टी से मिल कर निर्दोष हो गया, इसमे ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष थे, वे सभी स्वय उत्पन्न हुए थे ॥५९॥ वह सब ऋतु मे फल, पुष्प उत्पन्न करते थे, इस प्रकार त्रेता के प्रारम्भ मे सब औषधियाँ उत्पन्न हुई ॥६०॥ हे मुने ! अकस्मात् राग और लोभ से युक्त हुए प्रजागण उन औषधियो से उत्पन्न हुए पदार्थो से ही त्रेता के प्रारम्भ मे जीवन धारण करते थे ॥६१॥ फिर जिससे देह अधिक बलशाली हो सके, इस लिये नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म एव सब औषधियो का अवलम्बन करने लगे ॥६२॥ इसी दोष के कारण वह सभी औषधिया नष्ट हो गई अर्थात् एक समय मे ही वह सब औषधियाँ पृथिवी द्वारा ग्रास कर ली गई ॥६३

पुनस्तासूप्रणष्टासुविभ्रान्तास्ता-पुन प्रजा ।
ब्रह्माणंशरणंजग्मु क्षुधार्त्ताःपरमेष्ठिनम् ॥६४
सचापितत्त्वतोज्ञात्वातदाग्रस्तावसुन्धराम् ।
वत्सकृत्वासुमेरु तुदुदोहभगवान्विभु ॥६५

दुर्ग्रहेयगौस्तदातेनसस्थानिपृथिवीतले ।
जज्ञिरेतानिबीजानिग्राम्यारण्यास्तुलाःपुनः ॥६६
ओषध्य फलपाकान्तागणा सप्तदशस्मृता ।
व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाश्रणवस्तिला ॥६७
प्रियङ्गवः कोविदारा कोरदूषास्तीनका ।
माषास्तुद्गामसूराश्चनिष्पावा सकुलत्थका ॥६८
आढकयश्चणकाश्चैवशणा सप्तदशस्मृता ।
इत्येताओषधीनातुग्राम्याणाजतय पुरा ॥६९

इस प्रकार सब ओषधियो के ग्रसित होने पर सम्पूर्ण प्रजा भ्रान्त हुई और क्षुधातुर हो कर ब्रह्माजी की शरण मे गयी ॥६४॥ तब उन ब्रह्माजी ने पृथिवी को ग्रास करने वाली जान कर सुमेरु पर्वत को बछडा बना कर दोहन किया ॥६५॥ तब पृथिवी अपने तल मे समस्त धान्यो का दोहन कराने लगी, उससे सब बीजो की उत्पत्ति हुई और ग्राम तथा वन के वृक्ष उत्पन्न हुए ॥६६॥ फल पकने पर सूखने वाली सत्रह प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुईं उनके नाम व्रीहि, जौ, गेहूँ, तिला कोदो ॥६७॥ प्रियगुफल, राई, कोविदार, लाल कचनार, मटर, उडद, मूँग, मसूर, लोबिया, कुलथी ॥६८॥ अरहर और चना इन सत्रह जातियो की यह ग्राम्यौषधि उत्पन्न हुई ॥६९॥

औषध्योयज्ञियाश्चैवग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाश्रणवस्तिला ॥७०
प्रियगुपार्वेह्लेतसमास्तुकुलत्थकाः ।
श्यामाकास्त्वथनीवारायस्तिला सगवेधुका ॥७१
कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये ।
ग्राम्यारण्या स्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥७२
यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिता पुनः ।
तत सतासावृद्धयर्थवार्त्तोपायचकारह ॥७३
ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्हस्तलिद्धिचकर्मजाम् ।
तत प्रभृत्यथौषध्य कृष्टपच्यारुजज्ञिरे ॥७४

ससिद्धायानुवार्त्तयिाततस्तासास्वयप्रभु ।
मर्यादास्थापयामासयथान्याययथागुणम् ।।७५
वर्णानामाश्रमाणाचधर्मान्धर्मभृतावर ।
लोकानासर्ववर्णानासम्यग्धर्मार्थपालिनाम् ।।७६

जो चौदह प्रकार की ग्राम्य और आरण्यक औषधियाँ हैं, वह यज्ञ में व्यवहृत होती है, व्रीहि, जौ, रेहूँ, अणु, तिल ।।७०।। प्रियगु, कुलत्थी, श्यामक, अलसी, तिल तथा गवेधुक ।।७१।। कुलत्थी, मर्कटक, वेणु, यव, चावल यह चौदह प्रकार की औषधियां ग्राम्यारण्यक मानी गई है ।।७२।। इस प्रकार जब उन श्रेष्ठ औषधियों का उत्पादन रुक गया तब ब्रह्माजी उनके जीवन यापन का उपाय सोचने लगे ।।७३।। तब उन्होंने कर्म द्वारा सिद्ध होने वाली हस्त-सिद्धि को उत्पन्न किया, तभी से जोतने से उत्पन्न होने वाली औषधियों की उत्पत्ति हुई ।।७४ इस प्रकार उनके जीवन का साधन हो जाने पर स्वयं ब्रह्मा जी ने न्याय और गुण के अनुसार उनकी मर्यादा बनायी ।।७५।। उस समय सब वर्णाश्रमों का धर्म तथा धर्म और अर्थ का पालन करने वाले लोक-धर्म का निरूपण किया ।।७६।।

प्राजापत्यब्राह्मणानान्मृतस्थानक्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणांसङ्ग्रामेष्वपलायिनाम् ।।७७
वैश्यानामारुतस्थानस्वधर्ममनुवर्त्तताम् ।
गन्धर्वं शूद्रजातीनापरिचर्यानुवर्तिनाम् ।।७८
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतंतेषान्तुयत्स्थानंतदेवगुरुवासिनाम् ।।७९
सप्तर्षीणांतुयत्स्थानंस्मृतंतद्वैवनौकसाम् ।
प्राजापत्यगृहस्थानान्यासिनांब्रह्मणःक्षयम् ।
योगिनाममृतस्थानमितिवैस्थानकल्पना ।।८०

कर्मवान् ब्राह्मणों के लिये उन्होंने प्राजापत्य स्थान की कल्पना की और युद्ध से विमुख न होने वाले क्षत्रियों के लिये ऐन्द्र स्थान नियत किया ।।७७।। स्वधर्म परायण वैश्यों के लिये मारुत स्थान और सेवा करने वाले शूद्रों के लिए

गार्हपत्य स्थान बताया ॥७८॥ अट्ठासी सहस्र ऊर्ध्वरेता ऋषियों के लिये जो स्थान नियत किये गये, वही स्थान गुरु-गृह में निवास करने वाले ब्राह्मणों के लिये निश्चित हुए ॥७९॥ सप्तऋषियों के लिये जिन स्थानों की कल्पना हुई वही स्थान वनवासियों के लिये नियत किये गये, गृहस्थ के लिये प्राजापत्य, सन्यासियों के लिये अक्षय ब्राह्मपद तथा योगियों को अमृत स्वरूप मोक्ष स्थान कल्पित किया गया ॥८०॥

४२—यज्ञानुशासन

ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसी प्रजा. ।
तच्छीघ्रसमुत्पन्नै कार्यैस्तै कारणै सह ॥१
क्षेत्रज्ञा समवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमत. ।
तेसर्वे समवर्त्तन्तयेमयाप्रागुदाहृता ॥२
देवाद्या स्थावरान्ताश्चत्रैगुण्यविषया स्मृता ।
एव भूतानिसृष्टानिस्थावराणिचराणिच ॥३
यदास्यता प्रजा सर्वानिव्यवर्द्धतधीमतः ।
अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥४
भृगु पुलस्त्यपुलहक्रतुमङ्गिरसतथा ।
मरीचिदक्षमत्रिंचवसिष्ठं चैवमानसम् ॥५
नवब्रह्माणइत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गता. ।
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ॥६
सङ्कल्पंचैवधर्मंचपूर्वेषामपिपूर्वजम् ।
सनन्दनादयोयेचपूर्वंसृष्टा स्वयभुवा ॥७
तेलोकेषुसृज्जन्तोनिरपेक्षा समाहिता. ।
सृष्टंतेऽनागतज्ञानावीतरागाविमत्सरा. ॥८

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर ब्रह्माजी के दुबारा चिन्तन करने पर उन के देह से कार्य कारण वाली मानसी प्रजा की उत्पत्ति हुई ॥१॥ उन ब्रह्माजी के शरीर से सब क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और जो इनके अतिरिक्त उत्पन्न हुए उनका उल्लेख पहिले ही किया जा चुका है ॥२॥ देवताओं से स्थावर तक सभी जीव त्रिगुणात्मक है, इस प्रकार स्थावर जंगम चराचर प्राणियों की ब्रह्माजी ने उत्पत्ति की ॥३॥ परन्तु जब ब्रह्माजी ने अपनी समस्त प्रजा की वृद्धि होती हुई न देखी, तब उन्होंने अपने जैसे ही मानस पुत्रों की सृष्टि की ॥४॥ उन्होंने भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन मानस पुत्रों को उत्पन्न किया ॥५॥ ब्रह्माजी के यह नौ मानस पुत्र माने गये है, फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्र की उत्पत्ति की ॥६॥ फिर सङ्कल्प और धर्म को उत्पन्न किया, जो कि पहिले से ही प्रकट है, उन्होंने पूर्व सृष्टि मे ही सनन्दनादि तथा स्वायम्भुव को उत्पन्न किया ॥७॥ यह सभी भविष्य के जानने वाले, राग-रहित मात्सर्यहीन, निरपेक्ष और समाधि युक्त होकर प्रजा-सृजन के विषय मे लगे ॥८॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ महात्मन. ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥९
अर्द्धनारीनरवपु पुरुषोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ससर्जान्तर्दधेततः ॥१०
सचंस्त्रीवैपृथक्स्त्रीत्व पुरुषत्व तथाकरोत् ।
विभेदपुरुषत्व चदशधाचैकधातुसः ॥११
सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तै रु स्त्व स्त्रीत्व चसप्रभु ।
विभेदबहुधादेव-पुरुषैरमितै शितैः ॥१२
ततोब्रह्मात्मसम्भूतपूर्व स्वायम्भुव प्रभु ।
आत्मनःसदृशंकृत्वाप्रजापाल्येमनु द्विज ॥१३
शतरूपाचतानारीतपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवोमनुर्देव पत्नीत्वेजगृहेविभु ॥१४

सृष्टि कार्य मे उनके इस प्रकार लग जाने पर ब्रह्माजी अत्यन्त क्रोधित हुए और उस क्रोध से सूर्य के समान तेजस्वी एक पुरुष आविर्भूत हुआ ॥९॥

उसके शरीर का अर्द्धाङ्ग पुरुष और अर्द्धाङ्ग स्त्री था, फिर ब्रह्माजी उससे 'अपने देह को विभाजित कर' कहते हुए अन्तर्धान हो गये ॥१०॥ ब्रह्माजी की ऐसी आज्ञा पाकर उस पुरुष ने अपने शरीर के दो विभाग किये, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक्-पृथक् हो गये, उससे पुरुषाकार भाग को सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित आदि के भेद से ग्यारह भागों में बाटा ॥११-१२॥ फिर ब्रह्माजी ने अपने समान पूर्वोत्पन्न उस पुरुष का नाम स्वायम्भुव मनु रखा और उसे प्रजा पालक बनाया ॥१३॥ और जिस स्त्री ने तप के द्वारा अपने पापों का क्षय किया था, उसका नाम 'शतरूपा' रखा, तब देव एव विभु स्वायम्भुव मनु ने उस शतरूपा को अपनी भार्या बनाया ॥१४॥

तस्मात्पुरुषात्पुत्रौद्वौशतारूपाव्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौप्रख्याताव्यात्मकर्मभिः ॥१५
कन्येद्वे चतथाकूतिप्रसूतिश्चतत पिता ।
ददौप्रसूतिदक्षायतथाकूतिरुचे पुरा ॥१६
प्रजापति सजग्राहतयोर्यज्ञ सदक्षिण ।
पुत्रोजज्ञे महाभागदम्पतोमिथुनतत. ॥१७
यज्ञस्यदक्षिणायान्तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे ।
यामाइतिसमाख्याताद्वेवा स्वायम्भुवेऽन्त रे ॥१८
तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायासुभास्वरा ।
प्रसूत्याचतथादक्षश्चतस्रोविंशतिस्तथा ॥१९
ससर्ज्जकन्यास्तासाचसम्यङ्नामानिमेशृणु ।
श्रद्धालक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि.पुष्टिर्मेधाक्रियातथा ॥२०
बुद्धिर्लज्जावपु शान्ति.सिद्धि कीर्तिस्त्रयोदशी ।
पत्न्यर्थेप्रपिजग्राहधर्मोदाक्षायणी.प्रभु ॥२१

उस पुरुष के द्वारा शतरूपा के दो पुत्र हुए, उनमें से एक का नाम प्रियव्रत और दूसरे का नाम उत्तानपाद हुआ, इन दोनों की प्रसिद्धि अपने-अपने कर्म से हुई ॥१५॥ और शतरूपा के दो कन्याएँ आकूती और प्रसूती नाम की हुईं, स्वयम्भुव मनु ने प्रसूती को दक्ष के लिए और आकूती को प्रजापति रुचि

के लिये ॥१६॥ अर्पण कर दिया, उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा रखा गया, वे दोनो दाम्पत्य सूत्र मे बँध गये ॥१७॥ उस दक्षिणा से यज्ञ के जिन बारह पुत्रो की उत्पत्ति हुई, वह स्वायभुव मन्वन्तर मे 'याम' देवता के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥१८॥ उसी दक्षिणा से भास्वर आदि अन्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुये थे, उधर दक्ष ने प्रसूती के गर्भ से चौबीस ॥१९॥ कन्याएँ उत्पन्न की, उनके नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, वृत्ति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ॥२०॥ बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि इन तेरह दक्षसुताओ को धर्म ने अपनी पत्नी बना डाला ॥२१॥

ताभ्य शिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचना ।
ख्याति सत्यथसम्भूति स्मृति.प्रीतिस्तथाक्षमा ॥२२
सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा ।
भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनि ॥२३
पुलस्त्य.पुलहश्चैव क्रतुश्चऋषयस्तथा ।
वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्नि पितरश्चयथाक्रमम् ॥२४
ख्यात्याद्याजगृहु कन्यामुनियोमुनिसत्तमा. ।
श्रद्धाकामश्रीश्चदर्पनियमधृतिरात्मजम् ॥२५
सन्तोषचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ।
मेधाश्रुतक्रियादण्डंनयविनयमेवच ॥२६
बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयवपुरात्मजम् ।
व्यवसायप्रजज्ञे वैक्षेमश्चान्तिरसूयत ॥२७
सुखंसिद्धिर्यश.कीर्तिरित्येतेधर्मयोनय: ।
कामादतिमुदहर्षधर्मपौत्रमसूयत ॥२८

और ग्यारह—ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ॥२२॥ सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नाम से प्रसिद्ध थी, उन्हे भृगु इत्यादि ने क्रमश. ग्रहण किया ॥२३॥ भृगु, शङ्कर, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितर गण ॥२४॥ इन मुनियो, मुनिसत्तमो और ऋषियो ने ख्याति इत्यादि ग्यारह दक्ष सुताओ को यथाक्रम ग्रहण

किया, श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया, लक्ष्मी ने दर्प को, धृति ने नियम को ॥२५॥ तुष्टि ने सन्तोष को, पुष्टि ने लोभ को, मेधा ने श्रुत को, क्रिया ने दण्ड को ॥२६॥ बुद्धि ने बोध को, लज्जा ने विनय को, वपु ने व्यवसाय को, शान्ति क्षेम को ॥२७॥ सिद्धि ने सुख को और कीर्ति ने यश को जन्म दिया, धर्म की यही सन्तान है, काम से हर्ष नामक धर्म के पौत्र की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

हिंसाभार्यात्वधर्मस्यतस्याज्ज्ञेतथानृतम् ।
कन्याचनिर्ऋतिस्तस्यासुतौद्वौनरकभयम् ॥२९
मायाचवेदनाचैवमिथुनद्वयमेतयोः ।
तयोर्ज्ञेयश्चवैमायामृत्यु भूतापहारिणम् ॥३०
वेदनात्मसुतचापिदुःखज्ञेयस्तुरौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्चजज्ञिरे ॥३१
दुःखोद्भवा स्मृताह्येतेसर्वेवाधर्मलक्षणाः ।
नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासवतेहच्यूर्ध्वरेतस ॥३२
निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्योर्भार्यामवन्मुने ।
अलक्ष्मीर्नामतस्याश्चमृत्यो पुत्राश्चतुर्दश ॥३३
अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिणः ।
विनाशकालेषुनरान्भजन्त्येतेभ्रुगुष्वतान् ॥३४

अधर्म की पत्नी का नाम अहिंसा हुआ, उससे अनृत की उत्पत्ति हुई, अनृत ने निर्ऋति नाम की पत्नी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम 'नरक' और 'भय' हुए ॥२९॥ तथा माया और वेदना नामक दो कन्याएँ हुई, इन पुत्र पुत्रियों मे परस्पर मिथुन भाव की सृष्टि हुई, माया के गर्भ से जीवों का संहारक 'मृत्यु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥३०॥ तथा वेदना के गर्भ से नरक ने दुःख नामक पुत्र उत्पन्न किया, मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध की उत्पत्ति हुई ॥३१॥ दुःख के यह सभी पुत्र महा अधर्मी हुए, यह सब ऊर्ध्व रेता है, इसलिये इनके पत्नी या पुत्र नहीं है ॥३२॥ हे मुने ! मृत्यु की निर्ऋति नामक जो पत्नी थी, वह अलक्ष्मी भी कही जाती है, उससे मृत्यु ने चौदह पुत्रों की उत्पत्ति की ॥३३॥ मृत्यु की आज्ञा मे रहने वाले सब पुत्र 'अलक्ष्मी' हो

कहे जाते है, मृत्यु के समय यह मनुष्यों के जिस-जिस अंग में स्थित रहते है, उनके नाम बताता हूँ ॥३४॥

इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथामनसिचस्थिता ।
स्वेस्वेनरस्त्रियवापिविषयेयोजयन्तिहि ॥३५
अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ।
योजयन्तियथाहानिह्यन्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहङ्कारगताश्चान्येतथान्येबुद्धिसंस्थिता: ।
विनाशायनरस्त्रीणायतन्तेमोहसंश्रिता ॥३७
तथैवान्योगृहेषु सादु सहोनामविश्रुत: ।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वन ॥३८
ससर्वान्खादितुं सृष्टोब्रह्मणातमसोनिधि. ।
दंष्ट्राकरालमत्यर्थविवृतास्यसुभैरवम् ॥३९
तमत्तुकाममाहेदंब्रह्मालोकपितामह ।
सर्वब्रह्ममय:शुद्ध कारणंजगतोऽव्यय: ॥४०
नात्तव्यतेजगद्विद्वजहिकोपंशमंव्रज ।
त्यजैकातामसीवृत्तिमपास्यरजस:कलाम् ॥४१
क्षुत्क्षामोऽस्मिजगन्नाथपिपासुश्चापिदुर्बल ।
कथतृप्तिमियान्नाथभवेयबलवान्कथम् ।
कश्चाश्रयोममाख्याहित्वर्तेयत्रनिवृत: ॥४२

इनमे से प्रथम दश तो दसों इन्द्रियो मे निवास करते है, ग्यारहवाँ मन के ऊपर रहता है और स्त्री-पुरुषो को अपने-अपने विषय मे संयुक्त करता है ॥३५॥ फिर रागादि के द्वारा सब इंद्रियो को आक्रान्त कर अधर्म आदि से मिला देता है, जिससे उनकी अत्यंत हानि होती है ॥३६॥ मृत्यु का बारहवाँ पुत्र अहंकार मे रहता है, तेरहवाँ पुत्र जीवो की बुद्धि पर रहता है इससे मोहित हुए मनुष्य स्त्रियो को नष्ट करने का प्रयत्न करते है ॥३७॥ और चौदहवाँ अलक्ष्मी-पुत्र जिसे दु सह कहते है, यह घर-घर मे रह कर सदा क्षुधातुर, अधो-मुख, नग्न, चीरधारी और कौए के समान शब्द करता है ॥३८॥ प्रतीत होता है

कि ब्रह्माजी ने इस तपोनिधि को सर्व पदार्थों का भक्षण करने के लिए ही उत्पन्न किया है, फिर उस दुःसह को कराल दृष्टा, फैले हुए मुख से भयंकर शब्द करते हुए ॥३९॥ तथा सबको भक्षण करने के लिये तत्पर देख कर जगत् के कारण रूप अविनाशी पितामह ब्रह्माजी बोले ॥४०॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे दुःसह ! संसार को भक्षण करना तुम्हारे लिए अनुचित है, तुम क्रोध को छोड़ कर शान्त होओ, इस तमोगुणी वृत्ति और रजोगुण के अंश का परित्याग करो ॥४१॥ दुःसह ने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं क्षुधा के कारण अत्यन्त कृश और पिपासा के कारण दुर्बल हो गया हूं, मैं किस प्रकार तृप्त, तथा बलवान् होऊँ और किसके आश्रय मे सुख पूर्वक रहूं, यह कृपा पूर्वक बताइये ॥४२॥

तवाश्रयोगृहपु साजनश्चाधार्मिकोबलम् ॥
पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्याभवान्वत्सगमिष्यति ॥४३॥
लूता स्फोटाश्चतेवस्त्रमाहारश्चददामिते ।
धृतकीटावपन्न चतथाश्वभिरवेक्षितम् ॥४४
भग्नभाण्डगतंतद्वन्मुखवातोपशामितम् ।
उच्छिष्टापक्वमस्विन्नमबलीढमसंस्कृतम् ॥४५
भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेवच ।
विदिङ्मुखंसन्ध्ययोश्चनृत्यद्वाद्यस्वनाकुलम् ॥४६
उदक्योपहृतमुक्तमुदक्यादृष्टमेवज ।
यच्चोपघातवत्किंचिद्भुक्ष्यपेयमथापिवा ॥४७
एतानितवपुष्टयर्थंमन्यच्चापिददामिते ।
अश्रद्धयाहुतदत्तमस्नातैर्यंदवज्ञया ॥४८
यन्नाम्नापूर्वकक्षिप्तमनात्मीकृतमेवच ।
त्यक्तुमाविष्कृतयत्तुदत्तंचैवातिविस्मयात् ॥४९

ब्रह्माजी ने कहा—हे वत्स ! पुरुषों का घर तुम्हारा आश्रय स्थान, अधर्मी मनुष्य तुम्हारा बल तथा नित्यकर्म की हानि ही तुम्हारे लिए पुष्टि होगी ॥४३॥ मकड़ी के जाले और सब स्फोट तुम्हारे वस्त्र हैं, अब मैं तुम्हें आहार देता हूं, जिस घाव मे कीड़े उत्पन्न हो गये और जिसे कुत्ते ने देख लिया है, ऐसे

वश का स्वामी तुम्हारे आहार स्वरूप है ।।४४।। फूटे पात्र में रखा हुआ पदार्थ अथवा जो पदार्थ अथवा मुख की फूँक से ठंडा किया गया हो, उच्छिष्ट या या कच्चा अथवा संस्कार रहित हो ।।४५।। अथवा जो मनुष्य फटे आसन पर बैठ कर या अतिथि को भोजन दिये बिना अथवा दक्षिण की ओर मुख करके या संध्या के समय, नृत्य, के समय, गायन-वादन के समय जो पदार्थ खाया जाय ।।४६।। अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखा या छुआ, किसी का झूठा अथवा दोष युक्त पका हुआ भोजन ।।४७।। यह सब पदार्थ तुम्हारे खाने के योग्य और पुष्टि करने वाले होंगे, तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी प्रदान करता हूं, जो स्नान किये बिना अश्रद्धा से हवन किया जाय या अज्ञानी मनुष्यों के द्वारा दान किया जाय ।।४८।। जो वस्तु जल स्पर्श के बिना दी गयी हो, व्यर्थ पड़ी हुई हो, जो विस्तार की गयी हो या भय से दी गयी हो ।।४९।।

दुष्टक्रुद्धार्तदत्तोच्चयक्षमन्प्राप्स्यसितत्फलम् ।
यच्चपौनर्भवं किंचित्करोत्यामुष्मिकक्रमम् ।।५०
यच्चपौनर्भवायोषित्तद्यक्षभतवतृप्तये ।
कन्याशुल्कोपधानाद्यसमुपास्तेधनक्रिया ।।५१
तथैवयक्षमपुष्टयर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्चया ।
यच्चार्थनिर्वृतौकिंचिद्धीतयत्नसत्यत ।।५२
तत्सर्वंतवकामाश्चददामितवसिद्धये ।
गुर्विण्यभिगमेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे ।।५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुच्चदु सह ।
तवाभिभवसामर्थ्यभविष्यतिसदानृषु ।।५४
पङ्क्तिभेदेवृथापाकेपाकभेदेतथाकृते ।
नित्यचगेहकलहेभविताव्यसतिस्तव ।।५५
अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोवाहनादिके ।
असन्ध्याभ्युक्षितागारेकालेत्वत्तोभवत्नृणाम् ।।५६

दुष्ट, क्रोधित या आर्त्त मनुष्यों द्वारा दी गयी हो, ऐसी सब वस्तुओं का भोग करो, हे यक्ष ! यह तुम्हारे वश में की गयी, जो कार्य दूसरी बार विवाहित

हुई स्त्री के पुत्र द्वारा परलोक की सिद्धि के लिये किया गया हो ॥५७॥ अथवा दूसरी बार विवाहित स्त्री जो कर्म करे, उससे तुम्हारी ही तृप्ति होगी अथवा जो कन्या पर द्रव्य लेने में जो धर्म-कार्य किया जाय ॥५१॥ या जो क्रिया मिथ्या धर्मशास्त्र द्वारा संपादन की जाय, वह भी तुम्हारी ही पुष्टि के लिये दिया, असत्यता से पढ़ा हुआ अर्थ प्राप्ति के लिए जो कार्य है ॥५२॥ वह भी तुम्हारी पुष्टि का कारण बनेगा, अब तुम्हारी सिद्धि का समय कहता हूँ—जब गर्भवती नारी से समागम किया जाता है, तब संध्या और नित्य कर्म का व्यतिक्रम होता है ॥५३॥ तथा जब मिथ्या शास्त्र द्वारा कहे गये कार्य द्वारा मनुष्य दोष युक्त होते है, तब उनका तिरस्कार करने में तुम समर्थ होगे ॥५४॥ जहाँ पंक्ति में भेद किया जाय, जहाँ वृथा पाक बनाया जाय और जहाँ सदैव क्लेश रहता हो तुम्हारा निवास वहीं होगा ॥५५॥ जिन गृहों में गौ अश्वादि अन्न तृण के बिना भूखे बंधे रहते हैं और सूर्यास्त से पहिले बुहारी नहीं लगती, उन घरों के मनुष्य तुम से डरेंगे ॥५६॥

नक्षत्रग्रहपीडासुचिविधोत्पातदर्शने ।
अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ॥५७
वृथोपवासिनोमर्त्यांस्तस्त्रीषुसदारता ।
त्वद्भाषणोपकर्त्तारोवैडालव्रतिकाश्चये ॥५८
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्याचाविदुषाकृता ।
तपोवनेग्राम्यभूजातथैवानिजितात्मनाम् ॥५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचस्वकर्मतः ।
परिच्युतानांयाचेष्टापरलोकार्थमीप्सताम् ॥६०
तस्याश्चयत्फलंसर्वंतत्तेयक्ष्मन्भविष्यति ।
अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्टयर्थं सनिबोधतत् ॥६१
भवतोवैश्वदेवान्तेनामोच्चारणपूर्वकम् ।
एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्जितम् ॥६२
यसस्कृताशीविधिवच्छुचिरन्तस्यथाबहिः ।
अलोलुपोजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥६३

नक्षत्र या ग्रह की पीड़ा या विविध उत्पातों के दिखायी देने पर जो उनकी शान्ति का उपाय नहीं करते, तुम उन मनुष्यों को घेरे रहोगे ॥५७॥ वृथा उपवास करने वाले, द्यूत और स्त्री में आसक्ति रखने वाले तुम्हारे ही उपकारी है, जो बिल्ली के समान अपने प्रयोजन मे लगे रहते है ॥५८॥ या जो ब्रह्मचर्य के बिना ही वेदपाठ करते है, मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करते हैं तथा तपोवन में गृहस्थ धर्म जैसा आचरण करते है, चचल चित्त और असयम पूर्वक अध्ययन ॥५९॥ तथा अपने कर्म से भ्रष्ट होकर पारलौकिक सुख की इच्छा वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रो द्वारा तपोवन मे किये जाने वाले कर्म ॥६०॥ तथा इन कार्यों का जो फल है, वह सभी तुम्हारे वश मे है, तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी प्रदान करता हूँ ॥६१॥ जो वैश्वदेव के अन्त मे तुम्हारा नाम लेकर 'यह तुम्हारा है' ऐसा कहते हुए तुम्हे अर्जित बलि देते है ॥६२॥ परन्तु जो मनुष्य संस्कार युक्त पदार्थों का भोजन करते और बाहर भीतर से पवित्र तथा निर्लोभ हैं, जिन्हे स्त्रियां अपने वश मे नही कर सकती, उनके घरो को तुम छोड़ दो ॥६३॥

पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यादेवताःपितरस्तथा ।
जामयोऽतिथयश्चापितद्गेहंयक्षमवर्जय ॥६४
यत्रमैत्रीगृहेबालवृद्धयोषिन्नरेषुच ।
तथास्वजनवर्गेषुगृहंतच्चापिवर्जय ॥६५
योषिताऽभिमतायत्रमबहिर्गमनोत्सुका ।
लज्जान्विता सदागेहंयक्षमतत्परिवर्जय ॥६६
वय सम्बधयोग्यानिशयनान्यशनानिच ।
यत्रगेहेत्वयायक्षमतद्वर्ज्यंवचनान्मम ॥६७
यत्रकारुणिकानित्यसाधुकर्मण्यवस्थिता ।
सामान्योपस्करैर्युक्तात्यजेथायक्षमतद्गृहम् ॥६७
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सुगुरुवृद्धद्विजातिषु ।
नतिष्ठन्तिगृहंतच्चवर्ज्ययक्षमत्वयासदा ॥६९

तरुगुल्मादिभिर्द्वारि न विद्धं यस्य वेश्मन ।
मर्मभेदोनवाक्यं सस्तद्धं योऽवसन्नते ॥७०

जिस घर मे देवता और पितर सदा हव्य कव्य द्वारा तृप्त रहते है और जहाँ अतिथियो की पूजा है, उस घर का भी परित्याग कर दो ॥६४॥ जिस घर मे बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजन आदि सदा मैत्री भाव से रहते है, उस घर को भी छोड दो ॥६५॥ जिस गृह की नारिया अनुरक्ता है तथा घर से बाहर जाने की इच्छा नही करती और सदा लज्जावती रहती है, वह घर भी तुम्हारे रहने योग्य नही ॥६६॥ हे यक्ष्म ! जिस घर के लोग अपनी अवस्था और वैभव के अनुसार ही शयन या भोजन करते हो, वह घर भी तुम्हारे लिये त्याज्य है ॥६७॥ जिस घर के मनुष्य करुणा युक्त, सत्कार्य मे तत्पर और सामान्य सामग्री से परिपूर्ण है, वह भी तुम्हे त्याग देना चाहिये ॥६८॥ जहाँ के मनुष्य गुरु, वृद्ध, और ब्राह्मणो के आसन पर बैठ जाने पर भी आसन ग्रहण नही करते उस घर को सदा के लिये छोड दो ॥६९॥ जिस गृह का द्वार वृक्ष गुल्मादि के द्वारा अवरुद्ध न हो और जहाँ कोई किसी के प्रति मर्मभेदी वाक्यो का उच्चारण न करता हो, उस श्रेष्ठ गृह मे भी तुम्हे न जाना चाहिये ॥७०॥

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्चवर्तनम् ।
यस्यावशिष्टेनान्नेनपुंसस्तस्यगृहंत्यज ॥७१
सत्यावाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ।
पुरुषानीदृशान्यक्ष्मत्यजेथाश्चानसूयकान् ॥७२
भर्तृशुश्रूषणेयुक्तासमत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ।
कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टाचत्यजयोषितम् ॥७३
यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिसदा ।
याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिद्विजंत्यज ॥७४
दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तचदुःसह ।
क्षत्रियंत्यजसच्छुल्कशस्त्राजीवास्तवेतनम् ॥७५

त्रिभि पूर्वगुणैर्युक्त पशुपाल्यवणिज्ययोः ।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिचत्यजवैश्यमकल्मषम् ॥७६
दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परंयक्ष्मसंत्यज ।
शूद्रचब्राह्मणादीनाशुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥७७

जो पुरुष देव, पितर, मनुष्य और अतिथि को भोजन कराकर ही शेष अन्न का भोजन करता है, उसका घर भी तुम्हें त्याग देना चाहिये ॥७१॥ हे यक्ष्म ! जो सत्यभाषी, क्षमावान्, अहिंसक, अनुतापहीन तथा असूयारहित हैं, उन मनुष्यों के यहाँ मत जाना ॥७२॥ जो नारी सदैव पतिसेवा में तत्पर है और असती स्त्री के संग में नहीं रहती और कुटुम्ब तथा पति के अन्न से पुष्टि को प्राप्त होती है ऐसी स्त्री के पास कभी मत जाना ॥७३॥ जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानादि के विषय में दत्तचित्त है तथा यज्ञ, अध्यापन और दान के प्रतिग्रह से जीविकोपार्जन करते है, उन ब्राह्मणों को भी परित्याग करो ॥७४॥ जो क्षत्रिय सदा दान, अध्ययन और यज्ञ में तत्पर रहते हैं तथा शस्त्रजीविका से प्रजा रक्षण करते हुए वेतन मात्र ग्रहण करते हैं, वे भी तुम्हारे द्वारा त्याज्य हैं ॥७५॥ जो वैश्य पहिले कहे गये तीन प्रकार के गुणों से युक्त है, पशुपालन, व्यापार और कृषि कर्म द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते है, उन निष्पाप वैश्यों का भी परित्याग करो ॥७६॥ जो शूद्र, दान, यज्ञ और ब्राह्मण-सेवा में तत्पर और ब्राह्मणादि की सेवा-वृत्ति से निर्वाह करने वाले है, उन शूद्रों को भी त्याग दो ॥७७॥

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गृहेगृही ।
यत्रयत्रतत्पत्नीचतस्यैवानुगतात्मिका ॥ ७८
यत्रपुत्रोगुरो पूजादेवानाचतथापितु ।
पत्नीचभर्तुं कुरुतेतत्रालक्ष्मीर्भयंकृत ॥७९
सदानुलिप्तसन्ध्यासुगृहमम्बुसमुक्षितम् ।
कृतपुष्पबलियक्ष्मनत्वंशक्नोषिवीक्षितुम् ॥८०
भास्करादृष्टशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ।
सूर्यावलोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिभाजनम् ॥८१

यत्रोक्षाचन्दनवीणाऽऽदर्शोमधुसर्पिषी ।
विषाज्यताम्रपात्राणितद्गृहंनतवाश्रय ॥८२
यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पावबल्लरी ।
भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तद्वध्मतवमन्दिरम् ॥८३
यस्मिन्गृहेनरा पञ्चस्त्रीत्रयतावतीश्चगाः ।
अन्धकारेन्धनाग्निश्चतद्गृहवसतिस्तव ॥८४

जो मनुष्य घर मे रह कर श्रुति स्मृति सम्मत जीवन निर्वाह करते हैं और उनकी भार्या भी उन्ही का अनुसरण करती है ॥७८॥ जिस गृह मे पुत्र अपने देवता, पितर और गुरु की पूजा तथा स्त्रियां पति सेवा करती है, वहाँ अलक्ष्मी का भय किस प्रकार हो सकता है ? ॥७९॥ तीनो सध्याओ के समय जो घर लीपा जाय या जल छिडक कर पवित्र किया जाय और जहाँ सुगन्धित पुष्पो द्वारा देवताओ को बलि दी जाय, तुम उस गृह को देख भी न सकोगे ॥८०॥ जिस घर की शय्या को सूर्य न देखते हो अर्थात् सूर्योदय के समय तक जहाँ कोई शयन न करता हो, तथा जो घर सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित रहता हो और जिस घर मे अग्नि और जल विद्यमान रहते हो, वह घर लक्ष्मी का ही निवास स्थान है ॥८१॥ जिस घर मे चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और ताम्रपात्र विद्यमान हो वह घर तुम्हारा आश्रय स्थान कदापि नही हो सकता ॥८२॥ जिस घर मे काँटेयुक्त वृक्ष, निष्पावबल्लरी, दुबारा ब्याही हुई पत्नी और वल्मीक (बाँबी) हो, उस घर को तुम अपना ही समझो ॥८३॥ जिस घर मे पाँच पुरुष और तीन स्त्री तथा तीन गौ, अँधेरा, काष्ठ और अग्नि हो, वही घर तुम्हारा निवास स्थान होगा ॥८४॥

एकच्छागद्विबालेयत्रिगवपञ्चमाहिषम् ।
षडश्वसप्तमालङ्ग गृहंयक्ष्माशुशोषय ॥८५
कुद्दालदात्रपिटकतद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ।
यत्रतत्रैवक्षिप्तानितवदद्यु प्रतिश्रयम् ॥८६
मुशलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वद्बुदुम्बरे ।
अवस्करेमन्त्रणचयक्ष्मतदुपकृत्तव ॥८७

लंघ्यन्तेयत्रधान्यानिपक्वानिवेश्मनितथा ।
तद्गच्छास्त्राणितत्रत्वंयथेष्टंचरदुःसहं ॥८८
स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दत्तोदर्वीफलेनवा ।
गृहेतत्रह्यरिष्टानामशेषाणांसमाश्रय ॥८९
मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्रमृतस्थिति ।
यत्रयक्षमलंवासस्तथान्येषांचरक्षसाम् ॥९०
अदत्त्वाभुञ्जतेयेवैबन्धोःपिंडतथोदकम् ।
सपिण्डान्सोदकाश्चैवतत्कालेतान्नरान्भज ॥९१

हे यक्ष्म ! जिस घर मे एक बकरी दो स्त्री, तीन गौ, पांच भैंस, छ अश्व, सात हाथी हो, उस घर का शीघ्र ही शोषण करो ॥८५॥ जिस घर मे कुदाल, दरांत, पीढा, थाली इत्यादि वस्तुएँ-इधर-उधर बिखरी पडी रहती हो, वहाँ के मनुष्य तुम्हे निवास देना चाहते है ॥८६॥ जिस घर मे स्त्री मूसल या ओखली पर बैठ कर या आंगन मे गूलर के नीचे बैठ कर घर के पीछे रहने वाली स्त्री से बाते करने मे लगी रहती है, उसके वे कार्य तुम्हारा उपकार करने वाले है ॥८७॥ जिस घर मे पक्के या कच्चे दान का अनादर और सत्शास्त्र का तिरस्कार होता है, उस घर मे स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण करो ॥८८॥ जिस घर मे थाली, ढक्कना अथवा करछुली से स्त्री किसी को अग्नि देती हो, वह घर सम्पूर्ण अरिष्ट का निवास स्थान है ॥८९॥ जिस घर मे मृत पदार्थ या मनुष्य की हड्डी रातदिन विद्यमान रहे,वहाँ सभी राक्षसो का निवास होगा ॥९०॥ जब मनुष्य बन्धु, सपिंड या सामानोदक पुरुषो को पिण्ड या जल नही देते, तुम उस समय उनकी कामना करो ॥९१॥

यत्रपद्ममहापद्मौसुरभिर्मोदकाशिनी ।
वृषभैरावतौयत्रकल्प्यतेतद्गृहंत्यज ॥९२
अशस्त्रादेवतायत्रसशस्त्राश्चाहवंविना ।
कल्प्यन्तेमनुजैरुच्चैस्तत्परित्यजमन्दिरम् ॥९३
पौरजानपदैर्यत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवा ।
क्रियन्ते पूर्ववद्गेहेनत्वंतत्रगृहेचर ॥९४

शूर्पवातघटाम्भोभि स्नानवस्त्राम्बुविप्रुषैः ।
पक्वान्नसलिलैश्चैवतानाहिहतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान्समयाञ्जातिधर्मजपहोममङ्गलदेवतेष्टिम् ।
सम्यक्छौचविधिवल्लोकवापान्पु सस्त्वयाकुर्वतोऽस्तुसङ्गः ।९६
इत्युक्त्वादु सहब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ।
चकारशासनंसोऽपितथापकजजन्मनः ॥९७

जिस घर मे पक्व और सङ्कपक्व विद्यमान है, स्त्रियाँ सदा मोदक खाती हैं तथा जहाँ बैल और ऐरावत भी है, तुम उस घर को छोड दो ॥९२॥ जहाँ अशस्त्र देवता बिना युद्ध के ही सशस्त्र देवता के समान पूजे जाते है, तुम उस मन्दिर को भी छोड दो ॥९३॥ जिन घरो या पुरो मे तथा जनपदो मे सदा महोत्सव होते रहते हैं, वहाँ तुम कभी मत जाना ॥९४॥ जो मनुष्य सूप की वायु, कलश के जल, वस्त्र के निचोडे हुए जल तथा पादाग्र से स्पर्श जल से स्नान करते हैं उन हीनलक्षणो के पास जाओ ॥९५॥ जो मनुष्य देशाचार, समय, जाति, धर्म, जप, हवन, मङ्गल कार्य, देव पूजन विधिवत् शौच अथवा सब लोकाचार का पालन करते हैं, उनसे तुम्हारा सग नही हो सकता ॥९६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्रवर ! इस प्रकार दुःसह को आदेश देकर ब्रह्माजी वही पर अन्तर्धान होगये और वह दुःसह भी उनकी आज्ञा को उसी प्रकार पालने लगा ॥९७॥

४३—दौःसहोत्पत्ति

दुःसहस्याभवद्भार्यानिर्मर्यादेतिनामतः ।
जातकलेस्तुभार्यायामृतौचाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवन्नग्व्यापीनिषोडश ।
अष्टौकुमारा.कन्याश्चतथाष्टावतिभीषणाः ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथापरः ।
अङ्गभ्रुवल्लकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३

गर्भहाशस्यहाचान्यःकुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यास्तथैवाष्टौतासामानिमेशृणु ॥४
नियोजिकाऽतिप्रथमातथैवान्याविरोधिनी ।
स्वयहारकरीचैवश्रामणीऋतुहारिका ॥५
स्मृतिबीजहरेचान्येतयो कन्येसुदारुणे ।
विद्वेषण्यष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ॥६
एतासांकर्मवक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत् ।
अष्टानाचकुमाराणाश्रूयतांद्विजसत्तम ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—दुःसह की पत्नी निर्मर्यादा थी, वह यम की पुत्री थी, जब यमपत्नी ऋतुमती हुई, उस समय उसने चाण्डाल को देखा, उस गर्भ से निर्मार्ष्टि उत्पन्न हुई ॥१॥ फिर निर्मार्ष्टि के गर्भ से दुःसह के द्वारा अत्यन्त भीषण आकार वाली सोलह सन्ताने हुईं, जिनमे आठ पुत्र, आठ कन्याएँ हुईं ॥२॥ दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अक्षकुक्ष, शकुनि, गड, , प्रान्तरति ॥३॥ गर्भहा, और शस्यहा नामक आठ पुत्र हुए, अब आठ कन्याओं के नाम सुनो ॥४॥ नियोजिका, विरोधिनी, स्वयहारकरी, श्रामणी, ऋतुहारिका ॥५॥ स्मृतिहरा और बीजहरा यह दोनो अत्यन्त भयङ्कर हुई तथा आठवीं विद्वेषिणी थी, वह लोको के लिये अत्यन्त भयावह थी ॥६॥ हे द्विजोत्तम ! अब इन आठ पुत्रो के कर्म और उनकी दोष-शक्ति का उपाय कहता हू, उसे सुनो ॥७॥

दन्ताकृष्टि प्रसूतम्नाबालानादशनस्थित ।
करोतिदंतसघर्षंचिकीर्षुर्दुःसहागमम् ॥८
तस्योपशमनकार्य्यंसुप्तस्यसितसर्षपैः ।
शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मन्त्रिषैर्दंशनोपरि ॥९
सौवर्चलौषधीस्नानात्तथासच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।
उष्ट्रगण्टकगात्रास्थिलोमवस्त्रविधारणात् १०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्रियसकृद्वदन् ।
शुभाशुभेनृणामुक्ते तथोक्तिस्तच्चनान्यथा ॥११

तस्माद्दुष्टमङ्गल्यमुक्त्वायपरिदर्तं सदा ।
दुष्टेश्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयोजनार्दन ॥१२
चराचरागुरुर्ब्रह्मायामस्यकुलदेवता ।
अन्यगर्भेपरान्याच्छन्सदं वपरिवर्तयन् ॥१३
रतिमाप्नोतिवाक्यचविवक्षोरन्यदेवयत् ।
परिवर्त्तकसशोऽयतस्यापिसितसर्षपै ॥१४

दन्ताकृष्टि उत्पन्न हुए बालक के दाँतो को किटकिटाता है और दुःसह भी दन्ताकृष्टि के आश्रय से वहाँ आजाता है ॥९॥ इसकी शान्ति का उपाय कहते हैं—सोते हुए बालक के दाँतो और शय्या पर सरसो डाले ॥१॥ अथवा औषधि-जल से स्नान करावे, सत् शास्त्रो का कीर्तन करावे तथा ऊँट या गैंडे की अस्थि का यत्र बना कर बालक के कठ मे डाले अथवा रेशमी वस्त्र धारण करावे ॥१०॥ दूसरा पुत्र तथोक्ति 'यही हो' कहता हुआ सब मनुष्यो के शुभ अशु[ए] मे लगता है, इसमे असत्य नही है ॥११॥ इसकी शान्ति के लिये श्रेष्ठत्व और मङ्गल का प्रकाश करते हुए भगवान् जनार्दन का नाम-सकीर्तन करे ॥१२॥ अथवा चराचर विश्व के गुरु श्री ब्रह्माजी का नाम-कीर्तन अथवा अपने कुल-देवता का ही स्मरण करे, परिवर्त्तक नामक तृतीय पुत्र अन्य गर्भ मे अपर गर्भ स्थापन ॥१३॥ और एक प्रकार के वचनो को अन्य प्रकार से कहने से प्रसन्न होता है, उसकी शान्ति के लिये भी श्वेत सरसो बिखेरनी चाहिये ॥१४

रक्षोघ्नमन्त्रजप्येश्वरक्षाकुर्वीततत्त्ववित् ।
अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गेषुस्फुरणोदितम् ॥१५
शुभाशुभसमाचष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम् ।
काकादिपक्षिसस्थोऽन्य श्वादेरगगतोऽपिवा ॥१६
शुभाशुभशकुनि कुमारोऽन्योब्रवीतिवै ।
तत्रापिदुष्टेर्व्याक्षेप प्रारम्भत्यागएवच ॥१७
शुभेद्रुततरकार्यमितिप्राहप्रजापति ।
गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्ताद्धं द्विजोत्तम ॥१८

सर्वारिभान्कुमारोऽत्तिशमंतस्यनिशामय ।
विप्रोक्त्यादेवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचद्विज ॥१६
गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तदृक्षग्रहपूजनैः ।
पुनश्चधर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ॥२०
अवज्ञयाजन्मनश्चप्रशमयातिगण्डजान् ।
गर्भस्त्रीणातथाऽन्यस्तुकललाशीमुदारुणः ॥२१

अथवा ज्ञानीजन रक्षोघ्न मंत्र के जप से रक्षा करे, चौथा अंगधुक् नामक पुत्र मनुष्य के अंग मे वायु के समान स्पंदन ॥१५॥ और लोम-हर्षण करके शुभाशुभ बताता है, उसकी शान्ति के लिये शरीर मे कुशा से आघात करे, पाँचवाँ पुत्र शकुनी काकादि पक्षी तथा श्वान या गीदड के देह मे प्रविष्ट रह कर ॥१६॥ मनुष्य के शुभ-अशुभ को व्यक्त करता है, यदि अशुभ लक्षण प्रकाशित हो तो सभी कार्य का आरम्भ छोड दे ॥१७॥ और यदि शुभ लक्षण दिखायी पडे तो कार्यारम्भ मे अत्यंत शीघ्रता करे, छटवाँ पुत्र गण्डान्तरित आधे मुहूर्त्त गण्डान्त मे निवास कर ॥१८॥ सभी मंगलमय कार्य, अनिन्द्यता आदि को नष्ट कर देता है, उसके शमनार्थ ब्राह्मण का आशीर्वाद, देव-स्तुति या मूल नक्षत्र की शान्ति ॥१९॥ गोमूत्र और श्वेत सरसो से स्नान, नक्षत्र और ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषद का श्रवण और शास्त्रो का दर्शन ॥२०॥ तथा जन्म का तिरस्कार करे इस गण्डदोष का शमन होता है, तथा सातवाँ गर्भहा नामक भयंकर पुत्र, स्त्रियो के गर्भस्थ कलल को नष्ट करता है ॥२१॥

तस्यरक्षासदाकार्यानित्यशौचनिषेवणात् ।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ॥२२
विशुद्धगेहावसनादनायासाच्चवैद्विज ।
तयैवशस्यहाचाव्य शस्यर्द्धिमुपहन्तियः ॥२३
तस्यापिरक्षाकुर्वीतजीर्णोपानद्विधारणात् ।
तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्यप्रवेशनात् ॥२४
बहिर्बलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात् ।
परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ॥२५

नियोजयतिचैवान्याःकन्यासाचनियोजिका ॥२७
नियोजयत्येनमितिनगच्छेत्तद्वशबुध ।
परदारादिसर्गेचित्तमात्मानमेवच ॥२८
नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ।
विरोधकुरुतेचान्यादम्पत्यो प्रीयमाणयोः ॥२९
बन्धूनासुहृदापित्रो पुत्रं सावर्णिकैश्चया ।
विरोधिनीसातद्रक्षाकुर्वीतबलिकर्मणा ॥३०

उसके शमनार्थं सदैव पवित्र भाव से रहे, प्रसिद्ध मन्त्र लिख कर माल्यादि धारण पूर्वक ॥२२॥ शुद्ध गृह मे निवास करे तथा आयास को त्यागे, हे विप्र ! इसी प्रकार आठवीं शस्यहा नामक पुत्र सम्पूर्ण शस्य का नाश करता है ॥२३॥ खेत मे पुराना जूता रखे और बाँई ओर से खेत मे जाकर चण्डाल का प्रवेश करावे ॥२४॥ बहिर्बलि प्रदान तथा सोमाम्बु के पाठ से उसका शमन होता है, प्रथम पुत्री नियोजिका मनुष्यो को परनारी गमन और पराये द्रव्य के हरण आदि मे नियोजित करती है, इसके शमनार्थ पुण्य ग्रन्थो का पाठ और क्रोध लोभादि का त्याग करे ॥२५-२६॥ किसी के द्वारा दुर्वचन कहने पर भी क्रोधित न हो और नियोजिका के उपर्युक्त कर्म का चिन्तन करके उस असत् वृत्त से अपने को रोके, जो विरोधिनी नाम वाली द्वितीय पुत्री है, वह अत्यन्त प्रेम युक्त दम्पति मे ॥२७-२८-२९॥ तथा सुहृद बन्धु, पिता, माता, पुत्र आदि मे विवाद उत्पन्न कराती है, उसके शमनार्थ बलि कर्म करे ॥३०॥

तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ।
धान्यखलाद्गृहाद्गोष्ठात्यय सर्पितथापरा ॥३१
समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ।
सास्वयहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ॥३२
महानसादर्द्ध सिद्धमन्नागारस्थिततथा ।
परिविष्यमाणचसदासार्द्ध भुक्तेचभुञ्जता ॥३३
उच्छेषणमनुष्याणाहरत्यन्न चदुर्हरा ।
कर्मान्तागारशालाभ्य सिद्धथृद्धिहरतिद्विज ॥३४

गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपय क्षीरहारीसदैवसा ।
दध्नोघृततिलात्तैलसुरागारात्तथासुराम् ॥३५

इस प्रकार सब प्रकार के अतिवाद को परित्याग कर शास्त्रानुसार पवित्र कर्मों को करे, और जो तीसरी खरिहान नाम की पुत्री है, वह घर के अन्न, गौ दूध, घी ॥३५॥ तथा द्रव्यादि की हानि और समस्त ऋद्धि सिद्धि का हरण करती है और जिसका नाम स्वयहारिणी है, वह सदा छिपे रूप मे रहती है ॥३२॥ तथा रसोई की वस्तुओ या अन्य वस्तुओ मे प्रविष्ट होकर अन्न का सचय नही होने देती तथा खाने वालो के साथ स्वय भी खाती है ॥३३॥ जिस घर मे अन्न के ढेर मे से जो चोरी होती है उस अन्न के चुराने वाली वही है, जिस घर मे श्रेष्ठ कर्म नही होते, उस घर की ऋद्धि-सिद्धि का वही हरण करती है ॥३४॥ गौओ और स्त्रियो के स्तन से दूध, दही मे से घी, तिल मे से तेल और सुरा की भट्टी मे से सुरा को वही पीती है ॥३५॥

रागकुसुम्भकादीनांकार्पासात्सूत्रमेवच ।
सास्वयहारिकानामहरत्यविरतद्विज ॥३६
कुर्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वं रक्षार्थंकृत्रिमास्त्रियम् ।
रक्षाश्चैवगृहेलेख्यावर्ज्याचोच्छिष्टतातथा ॥३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया ।
कार्यक्षीरादिभाण्डानामेवतद्रक्षणंस्मृतम् ॥३८
उद्वगजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिन. ।
पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ॥३९
तस्याथरक्षाकुर्वीतविक्षिप्तं सितसर्षपं ।
आसनेशयनेचोर्व्यायत्रास्तेसतुमानव: ॥४०
चिन्तयेच्चनर पापाभ्रमेषादुष्टचेतना ।
भ्रामयत्यसकृज्जन्यभुव:सूक्त समाधिना ॥४१
स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तसातुकन्यका ।
तथाप्रवृत्तंसाज्ञे यादु सहाऋतुहारिका ॥४२

कुसुम्भादि पुष्प से रंग तथा कपास से सूत को हरती है, इसलिये इसे क्षय-हारिका कहा गया है ॥३६॥ इसका शमन करने के लिये अपने घर में एक स्त्री और दो मोरों के चित्र बनावे, वे चित्र सदा व्यक्त रहें, मिटे नहीं ॥३७॥ होम करे, देवताओं के लिए धूप दिखावे फिर उसी अग्नि की भस्म को दुग्धादि के पात्रों पर लगावे, स्त्री अपने स्तनों पर मले, इससे सब दोषों की शान्ति होती है ॥३८॥ तथा भ्रामणी नामक चौथी कन्या एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होकर उद्वेग उत्पन्न करती है ॥३९॥ इसका शमन करने के लिये आसन, शय्या और पृथिवी में श्वेत सरसों बिखेरे, किसी पाप कर्म में चित्त के लगने पर उसी दुष्टात्मा की प्रेरणा समझ कर समाधि युक्त होकर भूमि सूक्त का जप करे ॥४१॥ पाँचवीं कन्या ऋतु-हारिका ऋतुमती स्त्रियों के रज का हरण करती है ॥४२॥

कुर्वीततीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ।
नदीसंगमखातेषुस्नपनंतत्प्रशान्तये ॥४३
मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञ पर्वसूक्तसिद्धिज ।
तेषामुपूजनकार्यधूपवर्त्युपहारकैः ।
चिकित्साज्ञश्चवैद्यैश्च सप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥४४
स्मृतिचापहरत्यन्याप्रवृत्तासातुकन्यका ।
अथाप्रवृत्तासाज्ञेयानृणासास्मृतिहारिका ॥४५
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमोभवेत् ।
बीजापहारिणीचान्यास्त्रीषु सोरतिभीषणा ।
मेध्यान्नभोजनैः स्नानैस्तस्याश्चोपशमोभवेत् ॥४६
दारुणासादुराचारादारुणंकुरुतेभयम् ।
तत्प्रशांत्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनंशुभम् ॥४७
अष्टमीद्वेषणीनामकन्यालोकभयावहा ।
याकरोतिजनद्विष्टनरनारीमथापिवा ॥४८
मधुक्षीरघृतैस्तस्तुशान्त्यर्थंहोमयेत्तिलान् ।
कुर्वीतमित्रविन्दाचतयेष्टितत्प्रशान्तये ॥४९

इसके शमनार्थ तत्त्वज्ञानी पंडित पर्वत की कन्दराओं और तीर्थों में मन्दिर बनवावे तथा नदी के संगम स्थल पर स्नान करे ॥४३॥ मंत्रविद् इन सब कर्मों को प्रातः काल करे तथा धूपादि से उपहार का पूजन और चतुर वैद्य से चिकित्सा करावे ॥४४॥ छटवीं कन्या स्मृति हारिका स्त्रियों और पुरुषों की स्मृति को हर लेती है ॥४५॥ इसके शमन के लिये श्रेष्ठ, परिष्कृत और रमणीक स्थान का सेवन करे, सातवीं पुत्री बीजाप-हारिणी स्त्री-पुरुषों की रति को विनष्ट करती है, इसकी शान्ति के लिये पवित्र अन्न का भोजन और स्नान करे ॥४६॥ यह दुराचारिणी घोर भय को उत्पन्न करने वाली है, उसकी शान्ति के लिये ब्राह्मण-पूजन श्रेष्ठ कर्म है ॥४७॥ आठवीं पुत्री द्वेषिणी स्त्री-पुरुषों मे द्वेष कराने वाली है ॥४८॥ इसका शमन करने के लिये मधु, दुग्ध, घृत और तिल की आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे ॥४९॥

एतेषांतुकुमारीणाकन्यानाद्विजसत्तम ।
अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेशृणु ॥५०
दन्ताकृष्टेरभूत्कन्याविजल्पाकलहातथा ।
अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये ॥५१
तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञ प्रयतश्चगृहीभवेत् ।
कलहाकलहोहेकरोत्यविरतंनृणाम् ॥५२
कुटुम्बनाशहेतु सातत्प्रशान्तिनिशामय ।
दूर्वांकुरान्मधुघृतक्षीरात्तान्बलिकर्मणि ॥५३
विक्षिपेज्जुहुयान्त्वैवानलमित्रचकीर्तयेत् ।
भूतानामातृभिःसार्द्धं बालकानांतुशान्तये ॥५४
विद्यानांतपसांचैवसयमस्ययमस्यच ।
कृत्यावारिणिज्यलाभेचशांतिकुर्वन्तुमेसदा ॥५५
पूजिताश्चयथान्यायतुष्टिगच्छन्तुसर्वश ।
कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसंज्ञिता ॥५६

इन सब पुत्र पुत्रियों की अड़तीस संतानें हुईं, उनके नाम सुनो हूं, सुनो ॥५०॥ दन्ताकृष्टि के विजल्पा और कलहा नाम की दो कन्याएँ हुईं, विजल्पा

अवज्ञा करने वाली तथा मिथ्या और दुष्ट भाषिणी है, उसके शमनार्थ ॥५१॥ गृहस्थ को संयत चित्त होकर उसी का चिन्तन करना चाहिये और कलहा सदा घरों में कलह कराती है ॥५२॥ तथा उनके कुटुम्ब का नाश कराने वाली है, इसकी शान्ति के लिये दूध के अंकुर, मधु, दूध की बलि देकर ॥५३॥ अग्नि में होम करे तथा सम्पूर्ण गृह में जल छिड़के, मित्रविन्दा का जप करे और यश वर्णन तथा विनती सहित भूतों का पूजन करे, इससे कालकी की शान्ति हो जायगी ॥५४॥ फिर कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि और व्यापार में तुम लाभार्थ हमारी सहायता करो ॥५५॥ तथा सभी कूष्माण्ड और यातुधान आदि गण हैं वे सब भी मेरे इस पूजन को स्वीकार कर संतुष्टि को प्राप्त हों ॥५६॥

महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ।
सर्वएतेनृणांनित्यतुष्टिमायुरवजन्तुते ॥५७
तुष्टाःसर्वेनिरस्यन्तुदुष्कृतदुरनुष्ठितम् ।
महापातकजंसर्वंयच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥५८
तेषामेवप्रसादेनविघ्नानश्यन्तुसर्वश ।
उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचैवहि ॥५९
पुण्यानुष्ठानयोगेषुगुरुदेवार्चनेषुच ।
जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ॥६०
शरीरारोग्यभोग्येषुसुखदानधनेषुच ।
वृद्धबालातुरेष्वेवशान्तिकुर्वंतुमेसदा ॥६१
सोमाम्बुपौतथाम्भोभिःसवितात्वान्निलालयौ ।
तथोक्तैःकलिजिल्लोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतन ॥६२
सयेषारात्रासंस्थस्तानसाधूनुत्किरादयेत् ।
परिवर्तसुतौद्वौतुविरूपविकृतौद्विज ॥६३
तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकाराम्भोधिसंश्रयौ ।
गुर्विण्या परिवर्तेतोकुरुतं वादधादिषु ॥६४

महादेव के प्रसाद और महेश्वर की अनुमति के अनुसार सब मनुष्यों पर शीघ्र प्रसन्न होकर नित्य ही रक्षा करो ॥५७॥ तथा संतुष्ट होकर मेरे सब

पाप, दूषित कर्म तथा महापाप जनित सब कष्टों और विघ्न के कारणों को नष्ट करो ॥५८॥ यदि विवाहादि शुभ कार्यों की वृद्धि में विघ्न उपस्थित हो तो वह सब भी आपके प्रसाद से नष्ट हो जाय ॥५९॥ पुण्य कार्य के अनुष्ठान, कुल-देवता के पूजन, जप, यज्ञ, कर्त्तव्य और चौदह वर्षों में ॥५०॥ शारीरिक आरोग्य, भोग, सुख, दान, धन के विषय में तथा वृद्ध, बालक और पीड़ित व्यक्ति के विषय में भी सदैव शान्ति की स्थापना करो ॥६१॥ सोम, वरुण, सूर्य, सागर, वायु, अग्नि आदि भी मेरी रक्षा करें, क्योंकि का कालजिह्व नामक कालवृक्ष में रहने वाला एक पुत्र है ॥६२॥ वह कालजिह्व जिस स्त्री की जिह्वा पर बैठ जाता है, उसके बालक को अत्यन्त पीड़ाप्रद होता है, परिवर्त्तक के दो पुत्र विरूप और विकृत नामक हुए ॥६३॥ वह वृक्ष के अग्रभाग में, खाई में, प्राचीर में निवास करके गर्भिणी का परिवर्तन किया करते है ॥६४॥

कोष्टुकेपरिवर्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्तत ।
नवृक्षचैवनैवाद्रिनप्राकारमहोदधिम् ॥६५
परिखावासमाक्रामेदबलागर्भधारिणी ।
अङ्गभ्रुकनयनलेभेपिशुननाम नामत. ॥६६
सोऽस्थिमज्जागत.पु सांबलमत्यजितात्मनाम् ।
श्येनकाककपोतांश्चगृध्रोलूकौचवैसुतान् ॥६७
अवापशकुनिःपचगृह्णस्तान्सुरासुराः ।
श्येनजग्राहमृत्युश्चकाकंकालोगृहीतवान् ॥६८
उलूकनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम् ।
गृध्रंव्याधिस्तदीशोऽथकपोतश्चस्वययमः ॥६९
एतेषामेवचैवोक्तामूता पापोपपादने ।
तस्माच्छ्येनादयोयस्यनिलीयेयु.शिरस्यथ ॥७०
तेनात्मरक्षणायालशातिकुर्य्याद्द्विजोत्तम ।
गेहे प्रसूतिरेतेषातद्विशीडनिवेशनम् ॥७१
नरस्तबर्जयेद्गेहकपोताक्रांतमस्तकम् ।
श्येन कपोतोगृध्रश्चकाकोलूकौगृहेद्विज ॥७२

प्रविष्ट कथयेदंतंवसतांतत्रवेश्मनि ।
ईदृक्परि त्यजेद्गेहशातिकुर्याच्चपण्डित ॥७३

हे क्रौष्टुकि ! गर्भिणी स्त्री को वृक्ष मे, कोठे पर, नदी तट पर न जाना चाहिये ॥६५॥ तथा खाई मे भी न जाय, अगस्त्यऋषि के पिशुन नामक पुत्र हुआ ॥६६॥ वह अज्ञान मे अन्धे हुए मनुष्यो की हड्डी और मज्जा मे घुस कर बल का भक्षण करता है श्येन, काक,कपोत, गृध्र और उलूक ॥६७॥ यह पाच पुत्र शकुनि के हुए, इनको सुर, असुर ने ग्रहण किया है, श्येन को मृत्यु ने, काक को काल ने, ॥६८॥ उलूक को नैऋति ने, गृध्र को व्याधि ने और कपोत को स्वय यम ने ग्रहण किया ॥६९॥ यह सभी पापो के उत्पन्न करने वाले है, इस लिए आज इत्यादि के सर पर बैठने से ॥७०॥ आत्मरक्षा के निमित्त शांति कर्म करे, जिस घर मे यह घोसला बनावें अथवा शिशु उत्पादन करें ॥७१॥ उस घर का भी मनुष्य परित्याग कर दे, श्येन, कपोत, गृध्र, काक और उलूक ॥७२॥ घर मे प्रविष्ट हो कर उस घर मे रहने वाले के अन्त की सूचना देते है, इसलिये ज्ञानियो को ऐसे घर को छोड कर शान्ति कर्म करना उचित है ॥७३॥

स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शनंतप्रशस्यते ।
षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रान्तरतेस्तथा ॥७४
स्त्रीणांरजस्यवस्थानतेषांकालाश्चमेशृणु ।
चतुर्थ्यहानिपूर्वाणितथैवान्त्यत्रयोदशम् ॥७५
एकादशंतथैवान्त्यदपत्यतस्यवैदिने ।
हिनाभिगमनेश्राद्धदानेतथापरे ॥७६
पर्व्वस्वथान्यत्तस्मात्तुवर्ज्यान्येतानिपण्डितै ।
गर्भहन्तुःसुतोनिघ्नोमोहनीचापिकन्यका ॥७७

कबूतर का स्वप्न मे देखना भी अमङ्गल जनक है, गण्ड प्रान्तरिक के जो छः पुत्र कहे गये ॥७४॥ वह स्त्रियो के रज मे रहते है, उनका समय सुनो, पहिले चार दिन, तेरहवाँ दिन ॥७५॥ ग्यारहवा दिन, दिन का अन्त समय, श्राद्ध का दिन अथवा दान कर्म का दिन ॥७६॥ और पर्व दिवस यह सब उनके रहने का समय समझो, इन सब दिनो का ज्ञानियो को परित्याग करना

चाहिये, गर्भहन्ता के एक विघ्न नामक पुत्र और मोहिनी नामक एक कन्या उत्पन्न हुई ॥७७॥

प्रविश्यगर्भमत्त्येकोभुक्त्वागर्भोहयतेऽपरा ।
जायन्तेमोहनात्तस्या सर्पमण्डूककच्छपा ॥७८
सरीसृपाणिचान्यानिपुरीषमथावापुनः ।
षण्मासाद्गुर्विणीमासमश्नतानामसंयताम् ॥७९
वृक्षच्छायाश्रयारात्रावथवाश्चितुष्पथे ।
श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥८०
रुद्यमानानिशीथेऽथआविशेत्तामिमौस्त्रियम् ।
शस्यहन्तुस्तथैवैक क्षुद्रकोनामनामतः ॥८१
सस्यर्द्धिसंसदाहन्तिलब्ध्वारंध्र शुशुष्वतत् ।
अमङ्गल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः ॥८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवैशबैंकरेत्यन्तोपसर्गिषु ॥८३

यह कन्या गर्भ मे प्रविष्ट होती है और विघ्न स्वच्छ गर्भ का आहार करता है, मोहिनी मोह को उत्पन्न करती है, उसी मोह से सर्प भेड, कछुए ॥७८॥ तथा बिच्छू आदि जन्तु और पुरीष उत्पन्न होते है, गर्भवती छ महीने मास भक्षण से, असंयम से ॥७९॥ रात्रि मे वृक्ष के नीचे, तिराहे या चौराहे पर जाने से अथवा श्मशान मे जाने से या नग्न होने से ॥८०॥ अथवा रात्रि के समय रोने से उस स्त्री मे विघ्न प्रविष्ट होता है, शस्यहन्ता के क्षुद्रक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥८१॥ वह छिद्र मिलते ही धान्य की वृद्धि को रोक देता है, जो मनुष्य मङ्गल रहित दिवस मे तृप्त रह कर धान्य का बीजारोपण करता है उसके खेत मे क्षुद्रक घुस जाता है ॥८२-८३॥

अमङ्गल्यादिनारंभमंगलानाचवर्जयेत् । (महद्भयप्रयच्छतियत्र वैतत्प्रसंगिषु ।) तस्माकल्पःसुप्रशस्तेदिनेऽभ्यर्च्यनिशाकरम् ॥८४
कुर्यादारम्भमुन्निद्रहृष्टस्तुष्ट सहायवान् ।
नियोजिकेतियाकन्यादुःसहस्यमयोदिता ॥८५

जातप्रचोदिकासज्ज तस्या कन्याश्चतुष्टयम् ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तास्तुनरान्नारीस्तुता सदा ॥८६
समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहदारुणम् ।
अधर्मधर्मरूपेणकामचाकामरूपिणम् ॥८७
अनर्थचार्थ रूपेणमोक्षचामोक्षरूपिणम् ।
दुर्विनीतान्विनाशौचदर्शयन्तिपृथङ्नरान् ॥८८
अ शत्याभि प्रविष्टाभि पुरुषार्थात्पृथङ्नराः ।
तासाप्रवेशश्चगृहेसन्ध्यक्षेषुह्युदुम्बरे ॥८९
धात्रेविधात्रेचबलिर्यत्रकालेनदीयते ।
भुञ्जतापिबतावापिसगिभिर्जलविप्रुषं ॥९०
नरनारीषुसक्रान्तिस्तासामाभिजायते ।
विरोधिन्यास्त्रय पुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ॥९१

वह मगलो को बाधा देकर अमगल का आरम्भ करता है (और भव प्रस्तुत करता है) इसकी शान्ति के लिये शुभ पवित्र दिन मे चन्द्रमा का पूजन करके ॥८४॥ प्रसन्न चित्त होकर कृषि कार्य का आरम्भ करे, दुःसह की जिस नियोजिका नाम वाली कन्या का पहिले वर्णन कर चुका हूँ ॥८५॥ उसके प्रचोदिका नाम की चार कन्याएँ हुईं, वे अत्यन्त मद मत्त यौवन सम्पन्न स्त्री पुरुषों मे प्रवेश करके ॥८६॥ उनको नष्ट करने के लिये बुरे रूप से प्रेरित करती है और धर्म और अधर्म तथा अकाम मे काम को ॥८७॥ अर्थ मे अनर्थ को, अमोक्ष मे मोक्ष को प्रेरणा पूर्वक पृथक्-पृथक् भावो का दर्शन कराती और अत्यन्त दारुण रूप उनके विनाशार्थ प्रविष्ट होती है ॥८८॥ पूर्वोक्त आठ कन्याओ द्वारा पुरुषार्थ हृत हो कर पुरुष घूमते फिरते है, वह गृहो मे स्थित गूलर मे नक्षत्र के सधिकाल मे प्रविष्ट होती है ॥८९॥ जब धाता विधाता का पूजन नहीं किया जाता, उसी समय घर मे घुसती है, साथियो सहित भोजन, जलपान या कुल्ला करने के समय ॥९०॥ स्त्री पुरुषो को उनका संक्रमण होता है, विरोधिनी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए—एक का नाम चोदक, दूसरे का ग्राहक ॥९१॥

तम प्रच्छादकश्चान्यस्तदस्वरूपंशृणुष्वमे ।
प्रदीपतैलससर्गदूषितेलघितेखले ॥९२
मुसलोलूखलेयत्रपादुकेवासनेस्त्रिय ।
शूर्पदात्रादिकंयत्रपदाकृष्टतथासनम् ॥९३
यत्रोपलिप्तेनाभ्यर्च्यविहार क्रियतेगृहे ।
दर्वीमुखेनयत्राग्निराहृतोऽन्यत्रनीयते ॥९४
विरोधिनीसुतास्तत्रविजृम्भन्तेप्रबोधिता ।
एकोजिह्वागत पु सास्त्रीणाचालीकसत्यवान् ॥९५
चोदकोनामसप्रोक्त पैशुन्यकुरुतेगृहे ।
अवधानगतश्चान्य श्रवणस्थोऽतिदुर्मति ॥९६
करोतिग्रहणातेषानवसग्राहकस्तुसः ।
आक्रम्यान्योमनोनृणांतमताच्छाद्यदुर्मति ॥९७
क्रोधजनयतेयस्तुतम प्रच्छादकस्तुस ।
स्वयहार्यास्तुचौर्येणजनिततनयत्रयम् ॥९८

तीसरे तामाच्छादक पुत्र का स्वरूप सुनो, जहा मूसल या ओखली दीपक के तेल से दूषित की जाती अथवा उलाँघी जाती है ॥९२॥ अथवा जहा मूसल और ओखली स्त्रियो की चरण पादुका अथवा आसन होता है, जहा स्त्रिया पैरो से सूप बराती, आसन आदि को हटाती हैं ॥९३॥ लिपे हुए स्थान मे जहाँ पूजन किये बिना ही विहार किया जाता है, अथवा जहाँ कन्छुली से अग्नि निकाल कर दी जाती है ॥९४॥ उन सभी स्थानो मे विरोधिनी के पुत्र अपना विक्रम दिखाते है और जो स्त्री पुरुषो की रसना पर बैठ कर झूठ-सत्य कहलवाता है ॥९५॥ उसे चोदक कहते हैं, वही कुटिलता तथा अन्य नीच कर्म कराने वाला है, अति दुर्मति कानो मे रह कर ॥९६॥ उन सब वाक्यो को ग्रहण करता है तथा तमाच्छादक मनुष्यो के मन पर अधिकार करके ॥९७॥ तम से आच्छादित कर क्रोध को उत्पन्न करता है, स्वयहारी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥९८॥

सर्वहार्यर्द्धहरीचवीर्यहारीतथैवच ।
अनाचान्तगृहेष्वेतेमन्दाचारगृहेषुच ॥९९
अप्रक्षालितपादेषुप्रविशत्सुमहानसम् ।
खलेषुगोष्ठेषुचवैदोहोयेषुगृहेषुवै ॥१००
तेषुसर्वेयथान्यायविहरन्तिरमन्तिच ।
भ्रामण्यास्तनयस्त्वेक काकजङ्घइतिस्मृत ॥१०१
तेनाविष्टोरतिसर्वोनैवप्राप्नोतिवैमुने ।
भुञ्जन्योगायतेमैत्रेगायतेहसतेचयः ॥१०२
सन्ध्यामैथुनिनचैवनरमाविशतिद्विज ।
कन्यात्रयप्रसूतासायाकन्याऋतुहारिणी ॥१०३
एकाकुचहराकन्याअन्याव्यञ्जनहारिका ।
तृतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ॥१०४
यस्यानक्रियतेसर्वैःसम्यग्दैवाहिकोविधि ।
कालातीतोऽथवातस्याहस्त्येकाकुचद्वयम् ॥१०५

सर्वाहारी, अर्द्धाहारी और वीर्यहारी, यह अपवित्र अथवा मन्द आचरण वाले घर में ॥९९॥ बिना चरण धोये पाकशाला में घुसने वालों के घर या खलियान में विद्रोह उपस्थित करता है ॥१००॥ यह उन सभी स्थानों में विभिन्न रीति से विहार करते हैं, भ्रामणी के काकजङ्घ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई ॥१०१॥ वह जिस घर में घुस जाता है, उसमें कोई प्रसन्न नहीं रहता, जो जो मनुष्य भोजन के समय गाते और मित्रों से वार्त्तालाप, हास-परिहास करते हैं ॥१०२॥ अथवा जो सन्ध्या काल में मैथुन करते, उन पर काकजङ्घ का आक्रमण होता है, ऋतुहारिणी के तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं ॥१०३॥ प्रथम कन्या का नाम कुचहरा, द्वितीय का व्यञ्जनहारिका तथा तृतीय का जातहारिणी नाम हुआ ॥१०४॥ जिस कन्या का विवाह सम्यक् विधि विधान से नहीं होता या विवाह की लग्न व्यतीत होने पर होता है, उस कन्या के स्तनद्वय को वह कचहरा हरण कर लेती है ॥१०५॥

सम्यक्श्राद्धमदत्त्वाचतथानभ्यर्च्यमातृका ।
विवाहिताया कन्यायाहरतिव्यञ्जनतथा ॥१०६

अग्न्यम्बुशून्येचतथाविधूपेसूतिकागृहे ।
अदीपशस्त्रमुसलेभूतिसर्षपवर्जितः ॥१०७
अनुप्रविश्यसाजातमपहृत्यात्मसम्भवम् ।
क्षणप्रसविनीबालतत्रैवोत्सृजतेद्विज ॥१०८

साजातहारिणीनामसुखोराधिशताशना ।
तस्मात्सरक्षणाकार्यमत्नतःसूतिकागृहे ॥१०९
स्मृतिचाप्रयतानाचशून्यागारनिषेवणात् ।
अपहन्तिसुतस्तस्या प्रचण्डोनामनामत. ॥११०

पौत्रेभ्यस्तस्यसम्भूतालीकाशतसहस्रश ।
चण्डालयोनयश्चाष्टौदण्डपाशातिभीषणा. ॥१११
क्षुधाविष्टास्तोलीकास्ताश्चचण्डालयोनयः ।
अभ्यधावन्तचान्योन्यभक्षणकामा.परस्परम् ॥११२

श्राद्धादि कर्म और मातृका के अर्चन बिना जिस कन्या का विवाह किया जाता है, व्यञ्जनहारिका उसका हरण कर लेती है ॥१०६॥ सूतिकागृह मे अग्नि, जल, धूप, दीपक, शस्त्र, मूसल, भस्म, सरसो आदि के न होने से ॥१०७॥ जातहारिणी वहाँ प्रविष्ट हो कर तत्काल उत्पन्न हुए बालको का हरण करती है और उनके स्थान पर अन्य बालक रख देती है ॥१०८॥ इस लिये उस जातिहारिणी से सूतिकागृह मे बालक की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिये ॥१०९॥ उसका प्रचण्ड नाम का पुत्र है जो निर्जन घर मे रहने वाले असंयत चित्त वाले मनुष्यो की स्मृति का हरण कर लेता है ॥११०॥ उसके पौत्रो के द्वारा सौ सहस्र लोको की उत्पत्ति हुई, दण्ड और पाश को धारण करने वाली अत्यन्त भयकर चाण्डालो की आठ योनियाँ भी इसी के वश से हुई है ॥१११॥ जब तोलीका और चाण्डाल जातिया क्षुधातुर हो कर परस्पर के भक्षणार्थ दौड़ी ॥११२॥

प्रचण्डोवारयित्वातुयास्ताश्चण्डालयोनय ।
समयेस्थापयामासयाद्दशेताद्दशश्रृणु ॥११३
अद्यप्रभृतिलोकानामावासयोहिदास्यति ।
दद तस्याहमतुलपातयिष्येनसंशय ॥११४
चण्डालयोन्यावसथेलीकायाप्रसविष्यति ।
तस्याश्चसन्तति पूर्वसाचसद्योनशिष्यति ॥११५
प्रसूतेकन्यकेद्वे तुस्त्रीपु सोर्वीजहारिणी ।
वातरूपामरूपाचतस्या प्रहरणतुते ॥११६
वातरूपानिशेकान्तेसायस्मैक्षिपतेसुतम् ।
सपुमान्वातशुक्रत्वप्रयातिवनितापिवा ॥११७
तथैवगच्छतःसद्योनिर्बीजित्वमरूपया ।
अस्ताशीनरोयोऽन्यौतथाचापिवियोगिन. ॥११८
विद्वेषिणीतुयाकन्याभ्रुकुटीकुटिलानना ।
तस्यद्वौतनयौपु सामपकारप्रकाशकौ ॥११९

तब प्रचण्ड ने उन्हे निवारण किया और जिस समय मे स्थापित किया, उसे सुनो ॥११३॥ आज से जो पुरुष लीको को स्थान देगा, उसे मै घोर दुख दूँगा ॥११४॥ चाण्डाल के घर मे या पराये घर मे रह कर जो स्त्री सन्तान को जन्म देती है, वह लीक उसकी सब सन्तानो को नष्ट करने वाली होती है ॥११५॥ स्त्री-पुरुषो के वीर्य को हरण करने वाली बीजाग्रहारिणी के वातरूपा और अरूपा नाम की दो कन्याएँ हुई ॥११६॥ उनमे वातरूपा सिचन के समय शुक्र को जिसमे गिराती है, वह पुरुष या स्त्री वातशुक्रत्व के रोग से पीड़ित होते है ॥११७॥ जो पुरुष बिना स्नान, बिना भोजन करे नारी समागम करता अथवा किसी अन्य योनि मे भोग करता है, उसे अरूपा शीघ्र ही वीर्य रहित कर देती है ॥११८॥ कुटिल मुख वाली, जिसकी भौंहे सदा तनी रहती है, उस विद्वेषिणी के दो पुत्र उत्पन्न हुए, वह सदा ही पुरुषो का अपकार करते रहते है ॥११९॥

निर्बीजत्वं नरो याति तारो वाशौचवर्जिता ।
पैशुन्याभिरतो लोलमसज्जलनिषेवणम् ॥१२०
पुरुषद्वेषिणश्चैतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः ।
मातृभ्रातृतथामित्रैरभीष्टे स्वजनैः परैः ॥१२१
विद्विष्टो नाशमायाति पुरुषो धर्मतोऽर्थतः ।
एकस्तु स्वगुणाल्लोके प्रकाशयति पापकृत् ॥१२२
द्वितीयस्तु गुणान्मैत्रीलोकस्थामपकर्षति ।
इत्येतौ सहसा सर्वं ग्रसमानौ सन्ततावथ ॥१२३

अपवित्र स्त्री-पुरुष ही निर्बीजत्व को प्राप्त होते है, विद्वेषिणी के दोनो पुत्र परनिन्दा मे लगे, चञ्चल, अशुद्ध एव जलसेवी ॥१२०॥ तथा पुरुष द्वेषी पुरुष मे अवस्थित होते है, माता भ्राता, मित्र, प्रियजन या आत्मीयजन के ॥१२१॥ विद्वेषी होने पर धर्म और अर्थ को नष्ट कर देते है, इस प्रकार एक पापाचारी पुत्र ने अपने गुणो को प्रकाशित किया हुआ है ॥१२२॥ दूसरा पुत्र लोको के गुणो और मैत्री भाव का आकर्षण करने मे समर्थ है, इस प्रकार पाप का आचरण करने वाले दु सह के गणो ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया हुआ है ॥१२३॥

४४--रुद्रादिसृष्टि

इत्येषतामस सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मन ।
रुद्रसर्गप्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥१
तनवश्चतथैवाष्टौपत्न्य पुत्राश्चतेतथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यसुतप्रध्यायत प्रभो. ॥२
प्रादुरासीदथाकेऽस्यकुमारोनीललोहितः ।
रुरोदसुस्वरसोऽथद्रवञ्छद्विजसत्तम ॥३
किरोदिषीतितंब्रह्मारुदन्तप्रत्युवाचह ।
नामदेहीतितंसोऽथप्रत्युवाचजगत्पतिम् ॥४

रुद्रस्त्वदेवनाम्नासिमारोदीर्धैर्य्यमावह ।
एवमुक्तस्ततः सोऽथसप्तकृत्वोरुरोदह ॥५
ततोऽन्यानिददौतस्मैनामानिवैप्रभु ।
स्थानानिचैषामष्टानापत्नी पुत्राश्चवैद्विज ॥६

मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी की तामसी सृष्टि का यह वर्णन हुआ, अब रुद्रसर्ग का विषय वर्णन करते है, श्रवण करो ॥१॥ आठ पुत्र, उनकी पुत्री और स्व पुत्र कल्प के आदि मे आत्मतुल्य सुत का चिन्तन करने के कारण उसी प्रकार के हुए ॥२॥ हे द्विजवर ! उन आठ पुत्रो मे जो एक नीललोहित वर्ण वाला पुत्र ब्रह्माजी की देह से उत्पन्न हुआ था, वह उनकी गोदी मे ही सुस्वर पूर्वक रोने लगा ॥३॥ उसे रुदन करता हुआ देखकर ब्रह्माजी ने प्रश्न किया 'तू क्यो रोता है ?' तो उस बालक ने कहा 'हे जगत्पते ! मुझे नाम दीजिये ॥४॥ ब्रह्माजी ने कहा—'तुम्हारा नाम रुद्र हुआ, अब तुम रुदन बन्द करके धैर्य धारण करो, ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर भी वह बालक सात बार पुन रोया ॥५॥ हे द्विज ! तब उन्होने उसे क्रमश सात नाम और दिये, तदनन्तर इन आठो को आठ स्थान, पत्नी और पुत्र भी दिये ॥६॥

भवश्चर्वतथेशानतथापशुपतिप्रभु ।
भीममुग्र महादेवमुवाचसपितामहः ॥७
चक्रे नामान्यथैतानिस्थानान्येषाचकारह ।
सूर्य्योजलमहीवह्निर्व्वायुराकाशमेवच ॥८
दीक्षितोब्रह्मणःसोमइत्येतास्तनव क्रमात् ।
सुवर्चलातथैवोमाविकेशीचापरास्वधा ॥९
स्वाहादिशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनाद्विजश्रेष्ठरुद्राद्यैर्नामभि सह ॥१०
शनैश्चरस्तथाशुक्रोलोहिताङ्गोमनोजव ।
स्कन्द सर्गोऽयसन्तानोबुधश्चानुक्रमात्सुता ॥११
एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतीभार्य्यामविन्दत ।
दक्षकोपाद्धतत्याजसासतीस्वकलेवरम् ॥१२

शभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यंनंवसूरिभिः ।
(एतेचब्राह्मणाः सर्वेयेद्विषतोमहेश्वरम् ।
भवतुतेवेदबाह्या पापोपहतचेतसः ।
पाखडाचारनिरता सर्वेनिरयगामिनः ।
कलौयुगेतुसम्प्राप्तेदरिद्रा शूद्रजापका ।
हिमवद्दुहितासाभून्मेनाताद्विजसत्तमः ।)
तस्याभ्रातातुमैनक सखाम्भोधेरनुत्तमः ॥१३
उपयेमेपुनश्चैनामनन्याभगवान्भव ।
देवौधातविधातारौभृगो.ख्यातिरसूयत ॥१४

ब्रह्माजी ने रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ॥७॥ यह आठ नाम देकर आठो स्थान का निर्देश किया—सूर्य, जल, पृथिवी, वह्नि, वायु आकाश ॥८॥ दीक्षित ब्राह्मण और सोम तथा सुवर्चला, उमा विकेशी, स्वधा ॥९॥ स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी यह नाम उनकी भार्याओं के हुए, अब रुद्रादि के नामों के सहित उनके पुत्रों के नामों का वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥१०॥ रुद्रादि के क्रमशः शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ पुत्र है ॥११॥ इन रुद्र ने पत्नी रूप से सती को प्राप्त किया था और दक्ष कोप के कारण सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया था ॥१२॥ (क्यों कि जहाँ शिवजी का तिरस्कार हो वहाँ न रहे, महेश्वर से द्वेष करने वाले यह ब्राह्मण पाप से नष्टचेता हों, वेद से बहिर्मुख तथा पाखडी और नास्तिक हों, कलियुग के आने पर दरिद्र और शूद्रों का जप करें) इस प्रकार शाप देकर वह मेनका के गर्भ से हिमवान् सुता बनी, उसका भाई मैनक सागर का सखा है ॥१३॥ उस पार्वती से भगवान् भव ने विवाह किया, भृगुजी की पत्नी ख्याति के धाता विधाता नामक दो पुत्र हुए थे ॥१४॥

श्रियंचदेवदेवस्यपत्नीनारायणस्यया ।
आयातिनियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मन ॥१५

भार्येधातुर्विधातुस्तेतयोर्जातौसुताशुभौ ।
प्राणश्चैवमृकण्डुश्चधितामममहायशा ॥१६
मनस्विन्यामहतस्मात्पुत्रोवेदशिरासम ।
धूम्रवत्यासमभवत्प्राणस्यावितिबोधमे ॥१७
प्राणस्यद्युतिमान्पुत्रउत्पन्नस्तस्यचात्मज ।
अजराश्चतयोःपुत्रा पौत्राश्चबहवोऽभवन् ॥१८
पुत्रीनरीचेसम्भूतिं पौर्णमासमसूयत ।
विरजा पर्वतश्चैवतस्यपुत्रौमहात्मन. ॥१९
तयो पुत्रास्तु वक्ष्येहवशसकीर्त्तनेद्विज ।
स्मृतिश्चाङ्गिरस पत्नीप्रसूताकन्यकास्तथा ॥२०
सिनीवालीकुहूश्चैवराकाचानुमतिस्तथा ।
अनसूयात्र्यैवात्रेर्जज्ञेपुत्रानकल्मषान् ॥२१
सोमदुर्वाससश्चैवदत्तात्रेयचयोगिनम् ।
प्रीत्यापुलस्त्यभार्यायादत्तोन्यस्तत्सुतोऽभवत् ॥२२

लक्ष्मीर्जो भगवान् नारायण की भार्या हुई और महात्मा मेरु की आयति नियति नाम की दो कन्याएँ थी ॥१५॥ वे दोनो धाता-विधाता की पत्नी हुईं, इन दोनो के एक-एक पुत्र हुआ, धाता ने आयति के पुत्र का नाम प्राण और विधाता ने नियति के पुत्र का नाम मृकण्डु रखा, महायशस्वी मुझ मार्कण्डेयजी के यही पिता है ॥१६॥ मेरे पिता मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ, वही मेरी माता है, मैंने अपने पुत्र का नाम वेदशिरा रखा, प्राण की भार्या धूम्रवती थी, अब उसके पुत्रो का वर्णन करता हूँ ॥१७॥ धूम्रवती के द्युतिमान् और अराजक नामक दो पुत्र हुए, इनके अनेक पुत्र पौत्र हुए ॥१८॥ मरीचि की पत्नी सम्भूति से पौर्णमास का जन्म हुआ, उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१९॥ हे द्विज ! इनके पुत्रो के वश का वर्णन करता हूँ, अङ्गिरा-पत्नी स्मृति ने ॥२०॥ चार कन्याएँ उत्पन्न की, उनका नाम सिनीवाली, कुहू, राका अनुमति था, अत्रि से अनसूया ने निष्पाप ॥२१॥ सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय

नामक तीन योगी पुत्रों को उत्पन्न किया, पुलस्त्य-पत्नी प्रीति ने दत्त को जन्म दिया ।।२२।।

पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्य स्मृत स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
कर्दमश्चार्ववीरश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम् ।।२३
क्षमातुसुषुवेभार्यापुलहस्यप्रजापते ।
क्रतोस्तुसन्नतिर्भार्यावालखिल्यानसूयत ।।२४
षष्टिर्यानिसहस्राणिऋषीणामूर्द्ध रेतसाम् ।
ऊर्जायान्तुवसिष्टस्यसप्ताजायन्तवैसुताः ।।२५
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्चसवलश्चानघस्तथा ।
सुतपाःशुक्लइत्येतेसर्वेसप्तर्षय स्मृता ।।२६
योसावग्निरभीमानीब्रह्मणस्तनयोऽग्रज. ।
तस्मात्स्वाहासुतांल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज ।।२७

यही दत्त पूर्व जन्म में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध थे, प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा के कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र हुए, क्रतु की पत्नी सन्नति ने ।।२३-२४।। साठ हजार ऊर्ध्वरेता बालखिल्यों की उत्पत्ति की, वसिष्ठ के द्वारा ऊर्जा के प्रसव से सात पुत्रों की उत्पत्ति हुई ।।२५।। यही सप्तर्षि रज, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवल, अनघ सुतपा और शुक्र नाम से प्रसिद्ध हुए ।।२६।। हे द्विजोत्तम ! ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि हुए, उनका विवाह स्वाहा के साथ हुआ तथा उनके अत्यन्त प्रतापी और बली तीन पुत्र हुए ।।२७।।

पावकपवनश्चैवशुचिश्चापिजलाशिनम् ।
तेषांतुसन्ततावन्येचत्वारिंशच्चपञ्चच ।।२८
कथ्यन्तेबहुशश्चैतेपितापुत्रत्रयश्चयत् ।
एवमेकोनपञ्चाशद् ज्ञेया परिकीर्तिता ।।२९
पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव ।
अग्निष्वात्ताबर्हिषदोऽनन्तय सान्नयश्चये ।।३०
तेभ्य स्वधासुतेजज्ञे मेनाचैधारिणीतथा ।
तेउभेब्रह्मवादिन्यौयोगिन्यौचाप्युभेद्विज ।।३१

पावक पवमान और शुचि, यह सर्वदा जल पीते रहते है, उनके पैंतालीस पुत्र हुए ॥२८॥ जो अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नाम से कहे है, वह अग्नि के पौत्र है, अग्नि के यह उनचास पौत्र दुर्जय कहे जाते है ॥२९॥ पहिले मैंने इन्ही को, पितरो के नाम से बताया था, अग्निष्वत्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ॥३०॥ स्वधा ने पितरो से मेना और धैर्यारिणी नाम की दो कन्याएँ प्राप्त की, यह दोनो ही परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास परायणा हुई ॥३१॥

४५--स्वायम्भुव मन्वन्तर कथन (१)

स्वायम्भुवत्वयाख्यातमेतन्मन्वन्तरंत्वया ।
तदहंभगवन्सम्यक्श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥१
मन्वन्तरप्रमाणंचदेवादेवर्षयस्तथा ।
येचक्षितीशाभगवन्देवेन्द्रश्चैवयत्कथा ॥२
मन्वन्तराणांसख्यातासाधिदाह्यैकसप्तति. ।
मानुषेणप्रमाणेनश्रुतंमन्वन्तरंमे ॥३
त्रिंशत्कोट्यस्तुसख्याता सहस्राणिचविंशति ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसख्यया ॥४
मन्वन्तरप्रमाणंचइत्येतत्साधिकंविना ।
अष्टांशतसहस्राणिदिव्ययासख्ययास्मृतम् ॥५
द्विपंचाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानिच ।
स्वायम्भुवोमनुःपूर्वमनु स्वारोचिषस्तथा ॥६
औत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ।
षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैवस्वतोऽधुना ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवन् ! आपने जिस स्वायंभुव मन्वन्तर का विषय कहा है, उसे भले प्रकार से सुनना चाहता हूँ ॥१॥ मन्वन्तर का प्रमाण, देवता, देवर्षि, राजा तथा देवेन्द्र के वृत्तान्त को विस्तार सहित कहिये ॥२॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—मन्वन्तर की संख्या कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगी है, मैं इसे मानव-मान से कहता हूँ ॥३॥ एक मन्वन्तर मे तीस करोड सडसठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष व्यतीत होते है ॥४॥ मन्वन्तर का यह प्रमाण आधिक्य रहित है, दिव्य आठ लाख ॥५॥ बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर मे होते है, प्रथम मनु स्वायम्भुव, स्वारोचिष ॥६॥ औत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष इस प्रकार छ. मनु व्यतीत हो चुके है, इस समय वैवस्वत मनु है ॥७॥

सावर्णा पञ्चरौच्याश्चभौत्याश्चागामिनस्त्वमी ।
एतेषाविस्तरभूयोमन्वतरपरिग्रहे ॥८
वक्ष्येदेवानृषीश्चैववेन्द्रा.पितरश्चये ।
उत्पत्तिसग्रहब्रह्मन्नृश्च यतामस्यसतति ॥९
यच्चतेषामभूत्क्षेत्रतत्पुत्राणामहात्मनाम् ।
मनो.स्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्तुलत्समा: ॥१०
यैरियपृथिवीसर्वासप्तद्वीपासपर्वता ।
ससमुद्राऽऽकरवतीप्रतिवर्षनिवेशिता ॥११
स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वंमाद्ये त्रेतायुगेतथा ।
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैं पौत्रैःस्वायम्भुवस्यच ॥१२
प्रियव्रतात्प्रजावत्यावीरात्कन्याव्यजायत ।
कन्यासातुमहाभागाकर्दमस्यप्रजापते ॥१३
कन्येद्वे दशपुत्राश्चसम्राट्कुक्षीचलेउभे ।
तयोर्वंभ्रातर.शूरा प्रजापतिसमादश ॥१४

पचसावर्णि, रौच्य और भौत्य भविष्य मे होगे, इन सब का पूरा वृत्तान्त मन्वन्तरो का वर्णन करने मे कहूँगा ॥८॥ हे विप्र ! मन्वन्तरो मे जो जो देवता, ऋषि, इन्द्र, पितर होते है, उन सब की उत्पत्ति आदि का वर्णन उनकी सन्तति सहित करूँगा ॥९॥ उन महात्माओ के जो जो सन्तति हुई, उसे कहता हूँ, स्वायम्भुव के दश पुत्र उन्ही के उत्पन्न हुए ॥१०॥ उन्होने इस सप्त द्वीप, पर्वत, समुद्र और खान से सम्पन्न पृथिवी को वर्षो मे विभाजित किया था ॥११॥ पहिले भी स्वायम्भुव मन्वन्तर मे अर्थात् त्रेता के आरम्भ मे स्वायम्भुव के पौत्रो

अर्थात् प्रियव्रत के पुत्रों ने भी इसी प्रकार किया था ॥१२॥ प्रजापति कर्दम की प्रजावती नाम की अत्यन्त सौभाग्यवती कन्या के गर्भ से ॥१३॥ दश पुत्र और दो कन्याएँ उत्पन्न हुई, इन दोनों कन्याओं का नाम सम्राट् और कुक्षि हुआ और उनके दशों भाई भी अत्यन्त शूर और प्रजापति के तुल्य थे ॥१४॥

आग्नीध्रोमेधातिथिश्चवपुष्माञ्छ्रतथापर ।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्य.सवनःसप्तएवते ॥१५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणा ।
शांतिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधु ।
प्रियव्रतोऽभ्यषिचत्तान्सप्तसप्तसुपार्थिवान् ।
द्वीपेषुतेनधर्मेणद्वीपाश्चैवनिबोधमे ॥१६
जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्र राजानकृतवान्पिता ।
प्लक्षद्वीपेश्वरञ्चापितेनमेधातिथि कृत ॥१७
शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तज्योतिष्मन्तकुशाह्वये ।
क्रौचद्वीपेद्युतिमन्तभव्यशाकाह्वयेश्वरम् ॥१८
पुष्पकराधिपतिचापिसवनकृतवान्सुतम् ।
महावीतोधातकिश्चपुष्करराधिपते सुतौ ॥१९
द्विधाकृत्वात्ययोर्वर्षपुष्करेसन्यवेशयत् ।
भव्यस्यपुत्रा सप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे ॥२०
जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवक ।
कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः ॥२१

उन दशों के नाम अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सवन(यह सात)॥१५॥ तथा सब से छोटे मेधा,अग्निबाहु और मित्र हुए यह तीनों जन्म से ही योगपरायण हुए और उन सातों को राजा प्रियव्रत ने सात द्वीपों का राज्य प्रदान किया, जहाँ यह धर्मपूर्वक राज्य करने लगे, अब उन द्वीपों के विषय में कहता हूँ ॥१६॥ अर्थात् राजा ने अग्नीध्र को जम्बू द्वीप का तथा मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का राज्य दिया ॥१७॥ वपुष्मान् को शाल्मलि द्वीप, ज्योतिष्मान् को कुश द्वीप, द्युतिमान् को क्रौचद्वीप और भव्य को शाकद्वीप

का राजा बनाया ॥१८॥ और सवन को पुष्कर द्वीप दिया, इसी सवन के दो पुत्र उत्पन्न हुए,जिनका नाम मेधावी और धातकी हुआ ॥१९॥ राजा सवन ने अपने दोनो पुत्रो के लिए पुष्कर द्वीप को दो भागो मे विभक्त कर दिया, शाक-के राजा भव्य के सात पुत्र हुए, अब उनके नाम कहता हूँ ॥२०॥ जो क्रमशः जलद कुमार सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम नाम के हुए ॥२१॥

तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारसः ।
तथाद्युतिमतःसप्तपुत्रास्तास्तुनिबोधमे ॥२२
कुशलोमनुगश्चोष्ण.प्राकारश्चार्थकारक. ।
मुनिश्चदुन्दुभिश्चैवसप्तम परिकीर्तित ॥२३
तेषास्वनामधेयानिकौचद्वीपेतथाभवन् ।
ज्योतिष्मत्र कुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवै ॥२४
(तत्रापिसप्तवर्षाणितेषानामानिमेशृणु) ।
तस्यापिसप्तपुत्रास्तुर्ज्ञेयास्तेपिमहौजस. ।
उद्भिदवैणवश्चैवसुरथेलम्बनंतथा ॥२५
धृतिमत्प्रभाकरश्चैवकापिलश्चापिसप्तमम् ।
चपुष्मत्त सुता सप्तशाल्मलेशस्यचाभवन् ॥२६
श्वेतश्चहरितश्चैवजीमूतोरोहितस्तथा ।
वैद्युतोमानसश्चैवकेतुमानन्सप्तमस्तथा ॥२७
तथैवशाल्मलेस्तेषासप्तनामानिसप्तवै ।
सप्तमेभ्रातिथे पुत्रा प्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै ॥२८

उस राजा ने अपने शाकद्वीप को सात भागो में विभक्त करके सातों पुत्रों मे बाँट दिया, वह सात भाग ही सप्त वर्ष कह कर इन्ही के नाम से प्रख्यात हुए, इसी प्रकार कौच द्वीप के राजा द्युतिमान् के सात पुत्र उत्पन्न हुए, उनके भी नाम बताता हूँ ॥२२॥ वे क्रमशः कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक मुनि और दुदुभि नामक हुए ॥२३॥ क्रौचद्वीप को भी सात भागो मे बाँटा गया, ज्योतिष्मान् ने सात पुत्रो के नामानुसार ही कुश द्वीप का विभाग किया ॥२४॥

उनके नाम पर भी सात बने, जिनके नाम सुनो उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ॥२५॥ धृतिमान्, प्रभाकर और कपिल यह सात नाम हुए तथा शाल्मलि द्वीप के राजा वपुष्मान् के भी सात ही पुत्र हुए ॥२६॥ उनके नाम क्रमश श्वेत, हरित, जीमूल, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान् ॥२७॥ उस द्वीप के भी सात भाग होकर इन्ही के नामो पर सप्त वर्ष हुए तथा प्लक्ष द्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए ॥२८॥

येषानामाङ्कितैर्वर्षैः प्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ।
पूर्वशाकभववर्षशिशिरतुसुखोदयम् ॥२९
आनन्दचशिवश्चैवक्षेमकश्चध्रुवतथा ।
प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिमेषुवै ॥३०
नैय.पचसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ।
नित्य स्वाभाविकश्चैवअहिंसाविधिवर्जितः ॥३१
(यानिर्किपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
सुखमायुश्चरूपचबलधर्मश्चनित्यशः) ।
पचस्वेतेषुवर्षेषुसर्वसाधारण स्मृत ।
अग्नीध्रायपितापूर्वंजम्बूद्वीपंद्वौद्विज ॥३२
तस्यपुत्राश्चभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ।
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुज. ॥३३
हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
वश्यश्चपचम पुत्रोहिरण्य षष्ठउच्यते ॥३४
कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वश्चाष्टम स्मृत ।
नवम केतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसंस्थितिः ॥३५

उन्होने भी प्लक्ष द्वीप को सात भागो मे विभक्त किया, वह भी उनके नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए, उनके नाम थे—शाकभव, शिशिर, सुखोदय ॥२९॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौच और शाक इन पाँच द्वीपो में ॥३०॥ और इनके विभागो मे वर्णाश्रम धर्म सदा स्थित रहता है और स्वभाव से ही वहाँ हिंसा नही होती ॥३१॥ (हिमालय के अति-

रिक्त किम्पुरुषादि वर्ष मे सुख, पूर्णायु, बल और धर्म सदैव स्थित रहता है) हे विप्रवर ! इन पाँचो द्वीपो मे सम्पूर्ण धर्म साधारण रूप से विद्यमान है, जिन आग्नीध्र को अपने पिता से जम्बू द्वीप मिला था ॥३२॥ उनके प्रजापति तुल्य नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, सबसे बडा नाभि, उससे दूसरा किम्पुरुष ॥३३॥ तीसरा हरि, चौथा इलावृत्त, पांचवा रम्य, छटवाँ हिरण्य ॥३४॥ सातवाँ कुरु, आठवाँ भद्र और नौवाँ केतुमाल हुआ, इन सबके नामो पर ही वर्ष बने ॥३५॥

यानिकिम्पुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
तेषास्वभावत सिद्धि सुखप्रायाह्ययत्नत ॥३६
विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयनच ।
धर्माधर्मौनतेष्वास्तानोत्तमाधममध्यमा ॥३७
नवैचतुर्युगावस्थानाश्रमाश्चर्तवोनच ।
आग्नीध्रसूनोनाभिस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ॥३८
ऋषभाद्भरतोजज्ञेवीर. पुत्रशताग्रर. ।
सोऽभिषिच्यर्षभ पुत्रमहाप्राव्राज्यमास्थित ॥३९
तपस्तेपेमहाभाग पुलह्माश्रमसश्रयः ।
हिमाह्व दक्षिणंवर्षभरतायपितादद्दौ ॥४०
तस्मात्तुभारतवर्षतस्यनाम्नामहात्मन. ।
भरतस्यान्वभूत्पुत्र: सुमतिर्नामधार्मिक ॥४१
तस्मिन्राज्यसमावेश्यभरतोऽपिवनययौ ।
एतेषापुत्रपौत्रैस्तुसप्तद्वीपावसुन्धरा ॥४२
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तुभुक्तास्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एषस्वायम्भुव सर्ग कथितस्तेद्विजोत्तम ।
पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कथयामिते ॥४३

हिमालय के अतिरिक्त जो किम्पुरुष है, उनको सिद्ध स्वभाव से ही तथा सुख बिना यत्न के ही उपलब्ध है ॥३६॥ उनको विपर्यय अथवा वृद्धावस्था और मृत्यु से उत्पन्न होने वाला भय उपस्थित नही होता, वहाँ धर्म, अधर्म श्रेष्ठ मध्यम या निम्न रूप मे विभाग ॥३७॥ और चारो युग की भिन्न अवस्था नही

होती, ऋतु विभाग भी नहीं है, आग्नीध्र के पुत्र नाभि के ऋषभ नामक पुत्र हुआ ॥३८॥ ऋषभ के पुत्र भरत हुए, ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर लिया ॥३९॥ इन महाभाग ने पुलहाश्रम में निवास पूर्वक तप किया था, हिम नामक दक्षिण वर्ष को उनके पिता ने भरत को दिया था ॥४०॥ इसलिये उन्हीं के नाम पर भारत वर्ष हुआ है, भरत के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमति था ॥४१॥ भरत ने भी सुमति को राज्य देकर वन गमन किया, इस प्रकार इनके पौत्रों तथा प्रियव्रत के पुत्रों ने स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस सप्तद्वीपा पृथिवी का निरन्तर भोग किया ॥४२॥ पूर्व मन्वन्तर में यह स्वायम्भुव सर्ग का सम्यक् वर्णन हुआ, अब और क्या कहूँ ? ॥४३॥

४६—जम्बूद्वीप वर्णन

कतिद्वीपाःसमुद्राश्चपर्वताश्चाकतिद्विज ।
कियन्तिचैववर्षाणितेषानद्यश्चकामुने ॥१
महाभूतप्रमाणंचलोकालोकतथैवच ।
पर्य्यासपरिमाणंचगतिचन्द्रार्कयोरपि ॥२
एतत्प्रब्रूहिमेसर्वंविस्तरेणमहामुने ॥३
शताद्धंकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ।
तस्याःसंस्थानमखिलंकथयामिशृणुष्वतत् ॥४
येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बुद्वीपादयोद्विज ।
पुष्करान्तामहाभागास्तेषांविस्तरंपुनः ॥५
द्वीपात्तुद्विगुणोद्वीपोजम्बुप्लक्षोऽथशाल्मलिः ।
कुशः क्रौंचस्तथाशाकः पुष्करद्वीपएवच ॥६
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ।
द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्यासर्वतः परिवेष्टिता ॥७

क्रौष्टुकी ने कहा—हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ

कितनी है ? ॥१॥ महाभूत एवं लोकालोक का प्रमाण कितना है तथा चन्द्रमा और सूर्य के व्यास का परिमाण और गति का प्रकार क्या है ? ॥२॥ हे महामुने ! विस्तार सहित इनका वर्णन करिये ॥३॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—यह सम्पूर्ण पृथिवी पचास करोड योजन विस्तार वाली है, उन सभी के स्थानों का विषय वर्णन करता हूँ, उसे सुनो ॥४॥ हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि जिन सप्त द्वीपों का वर्णन किया है, उसका पुन विस्तार सहित वर्णन करता हूँ ॥५॥ जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर यह सातो द्वीप क्रमश, एक से दूसरा विस्तार मे दुगुना है ॥६॥ लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दही, दूध और जल समुद्र के द्वारा दुगुने-दुगुने भाव से बढते हुए है ॥७॥

जम्बूद्वीपस्यसस्थानप्रवक्ष्येऽहंनिबोधमे ।
लक्षमेकयोजनानावृत्तोविस्तारदैर्घ्यत ॥८
हिमवान्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवच ।
नील श्वेतस्तथशृङ्गीसप्तवर्षपर्वता ॥९
द्विलक्षयोजनोद्यामौमध्येतत्रमहाचलौ ।
तयोर्दक्षिणतोयौतुयौतथोत्तरतोगिरी ॥११
दशभिर्दशभिन्यूनै सहस्रै स्तेपरस्परम् ।
द्विसाहस्रोच्छ्राया सर्वेतावद्विस्तारिणश्चते ॥११
समुद्रान्त प्रविष्टाश्चषडस्मिन्वर्षपर्वता ।
दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षिति ॥१२
वेदार्द्धं दक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ।
इलावृततयोर्मध्येचन्द्रार्द्धाकारवत्स्थितम् ॥१३
तत पूर्वेणभद्राश्वकेतुमालचपश्चिमे ।
इलावृतस्यमध्येतुमेरु कनकपर्वत ॥१४

जम्बू द्वीप का आकार परिमाण बताता हू, यह विस्तार, दीर्घता और व्यास मे यह एक लाख योजन का है ॥८॥ उसके वर्ष पर्वत हिमवान्, हेमकूट ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी यह सात है ॥९॥ मध्य मे दो लाख योजन विस्तार वाले दो महान् पर्वत है, उनके दक्षिण और उत्तर मे दो-दो

पर्वत है ॥१०॥ वह परस्पर दस-दस हजार न्यून संख्यक है तथा अन्य पर्वत दो हजार योजन ऊँचे और इतने ही विस्तार वाले है ॥११॥ इसके मध्य समुद्र मे स्थित छ वर्ष पर्वत है, यह भूमि उत्तर दक्षिण की ओर नीची और मध्य मे ऊँची तथा विस्तृत है ॥१२॥ उत्तर और दक्षिण मे तीन-तीन वर्ष हैं, इन दोनो के मध्य इलावृत्त वर्ष अर्द्धचन्द्र के आकार मे स्थित है ॥१३॥ उसके पूर्व मे भद्राश्व और पश्चिम मे केतुमाल है, इलावृत्त के मध्य मे ही सुमेरु पर्वत है ॥१४॥

चतुराशीतिसाहस्रस्तस्योच्छ्रायोमहागिरेः ।
प्रविष्टःषोडशाधस्ताद्विस्तार गुडसंज्ञितः ॥१५
शरावसंस्थितत्वाच्चद्वात्रिंशन्मूर्ध्निविस्तृतः ।
शुक्लपीतोऽसितोरक्तः प्राच्यादिषुयथाक्रमम् ॥१६
विप्रोवैश्यस्तथाशूद्र क्षत्रियश्चस्ववर्णतः ।
तस्योपरिसभाद्दिव्या पूर्वादिषुक्रमेणतु ।
इंद्रादिलोकपालानातन्मध्येब्रह्मणः सभा ।
योजनानासहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ॥१८
अयुतोच्छ्रायास्तस्याश्वस्तथाविष्कम्भपर्वतः ।
प्राच्यादिषुक्रमेणैवमन्दरोगन्धमादनः ॥१९
विपुलश्चसुपार्श्वश्चकेतुपादपशोभिता ।
कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वैमन्धमादने ॥२०
विपुलेचतथाश्वत्थ सुपार्श्वेचवटोमहान् ।
एकादशशतायामायोजनानामिमेनगा ॥२१

यह महापर्वत चौरासी सहस्र योजन ऊँचा है, सोलह हजार योजन धरती मे घुसा हुआ और वहाँ से सोलह सहस्र योजन विस्तार वाला है ॥१५॥ इसकी शिखर बत्तीस सहस्र योजन चौडी है, यह पूर्व की ओर श्वेत वर्ण का दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम मे नीला तथा उत्तर मे लाल वर्ण का है ।१६। इनकी दिशाओ मे पूर्वादि के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं

॥१७॥ उसके ऊपर उक्त दिशा क्रम से ही इन्द्रादि लोकपालो तथा मध्य मे ब्रह्माजी की चौदह सहस्र योजन विस्तार वाली सभा सुशोभित है ॥१८॥ इसके नीचे पूर्वादि दिशाओ मे दश सहस्र योजन ऊँचे चार विष्कम्भ पर्वत है, उनके नाम मन्दार, गधमादन ॥१९॥ विपुल और सुपार्श्व है, इन चारो पर्वतो पर चार वृक्ष क्रमश कदम्ब, जामुन ॥२०॥ पीपल और वरगद केतु के समान स्थित है, यह पर्वत एकादश सहस्र योजन परिमाण के है ॥२१॥

जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यादिशिपर्वतौ ।
आनीलनिषधायातौपरस्परनिरन्तरौ ॥२२
निषध पारियात्रश्चमेरो पार्श्वेतुपश्चिमे ।
यथापूर्व्वौतथाचैतावानीलनिषधायतौ ॥२३
कैलासोहिमवाश्चैवदक्षिणेनमहाचलौ ।
पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४
शृगवाञ्जारुधिश्चैवतथोत्तरपर्वतौ ।
यथैवदक्षिणेतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५
मर्यादापर्वताह्येतेकथ्यन्तेऽष्टौद्विजोत्तम ।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानापरस्परम् ॥२६
नवयोजनसाहस्र प्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ।
मेरोरिलावृतेतद्वदन्तरवैचतुर्दिशम् ॥२७

पूर्व मे जठर और देवकूट पर्वत स्थित है, यह परस्पर नील से निषध तक विस्तृत है ॥२२॥ मेरु के पश्चिम पार्श्व मे निषध और पारियात्र स्थित है, पूर्व दिशा के ही समान यह भी नील से निषध तक विस्तार युक्त है ॥२३॥ दक्षिण मे कैलाश और हिमवान् नामक महान् पर्वत है यह पूर्व पश्चिम मे लम्बे होकर समुद्र मे प्रवेश किये हुए है ॥२४॥ उत्तर मे शृङ्गवान् और जारुधि है, यह भी दक्षिण दिशा के ही समान ही समुद्र तक विस्तार किये हुए है ॥२५॥ हे विप्र श्रेष्ठ ! आठो पर्वतो का मान यही है, जो तुम्हारे प्रति कहा है तथा हिमवान् और हेमकूट आदि पर्वत परस्पर मे ॥२६॥ नौ सहस्र योजन

तक विस्तृत है, यह सभी पर्वत मेरु के चारो ओर तथा इलावृत्त के मध्य मे है ॥२७॥

फलानियानिवोजम्ब्वागन्धमादनपर्वते ।
गजदेहप्रमाणानिपतन्तिगिरिमूर्द्धनि ॥२८
तेषांरसाद्वातप्रभवतिख्यातोजम्बूनदीतिवै ।
यत्रजाम्बूनदनामकनकसम्प्राजायते ॥२९
सापरिक्रम्यवैमेरुजम्बूमूलपुनर्नदी ।
विशतिद्विजशार्दूलपीयमानाजनैर्भृतैः ॥३०
भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसंस्थिति ।
वराह केतुमालेचमत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥३१
तेषुनक्षत्रविन्यासाऋक्ष समवस्थिता ।
चतुर्ष्वपिद्विजश्रेष्ठग्रहाभिभवपाठका ॥३२

गंधमादन पर्वत से गजदेह जैसे जामुन के फल शिखर से नीचे गिरते है ॥२८॥ उनके रस से उत्पन्न होने वाली नदी जम्बू नदी कही जाती है, इसी नदी से जाम्बूनद नामक स्वर्ण उत्पन्न हुआ है ॥२९॥ सुमेरु पर्वत की चारो ओर परिक्रमा करती हुई वह नदी, उसी जामुन के वृक्ष के नीचे प्रवाहमान है, वहाँ रहने वाले मनुष्य उसी का जल पीते है ॥३०॥ भद्राश्व मे अश्वशिरा, भारत मे कूर्माकृति, विष्णुकेतु माल मे वराह और उत्तर मे मत्स्य के स्वरूप मे भगवान् नारायण प्रतिष्ठित है ॥३१॥ इन चारो पर्वतो मे नक्षत्र और ऋषि स्थित है तथा नक्षत्रो का जाना-आना रहता है और उन ग्रहो का श्रेष्ठ या निकृष्ट फल भी होता रहता है ॥३२॥

४७--जम्बूद्वीप के वन पर्वतादि

शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वपिद्विजोत्तम ।
वनानियानिचत्वारिसरांसिचनिबोधमे ॥१

पूर्वे चैत्ररथनामदक्षिणेनन्दनवनम् ।
वैभ्राजपश्चिमेशैलेसावित्रंचोत्तराचले ॥२
अरुणोदसर पूर्वे मानसदक्षिणेतथा ।
शीतोदपश्चिमेमेरोर्महाभद्र तथोत्तरे ॥३
शीतान्तश्चक्रमु जश्चकुलीरोऽथश्चक्रवान् ।
मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीभवाचल ॥४
सुविन्दुमन्दरोवेणुस्तामसोनिषधस्तथा ।
देवशैलश्चपूर्वेणमन्दरस्यमहाचल ॥५
त्रिकूट शिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपतङ्गक. ।
रुचक सानुमाश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ॥६
श्वेतादर समूलश्चवसुधारश्चरत्नवान् ।
एकशृङ्गोमहाशैलोराजशैल पिपाठक ॥७
पचशैलोऽथकैलासोहिमवाश्चाचलोत्तम ।
इत्येतेदक्षिणेपार्श्वे मेरो प्रोक्तामहाचला ॥८

मार्कण्डेय जी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! मन्दरादि पर्वतो मे चार वन तथा सरोवर है, अब उनका वर्णन करता हूँ, सो सुनो ॥१॥ पूर्व मे चैत्ररथ, दक्षिण मे नन्दन, पश्चिम मे वैभ्राज और उत्तर मे सावित्र नामक वन मे स्थित है ॥२॥ सुमेरु के पूर्व मे अरुणोद, दक्षिण मे मानस, पश्चिम मे शीतोद तथा उत्तर मे महाभद्र नामक सरोवर है ॥३॥ मदर के पूर्व मे शीतान्त, चक्रमुज, कुलीर, सुचक्रवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ॥४॥ विन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल नामक पर्वत स्थित है ॥५॥ त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतगक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक, विशाखवान् ॥६॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एक शृङ्ग, महाशैल, पिपाठक ॥७॥ पचशैल, कैलास तथा हिमवान् यह सभी महापर्वत सुमेरु के दक्षिण ओर अवस्थित है ॥८॥

सुरक्ष शिशिराक्षश्चवं दूर्य पिगलस्तथा ।
पिजरोऽथमहाभद्र सुरस कपिलोमधु ॥९

अञ्जन कुक्कुट कृष्ण पाण्डुरश्चाचलोत्तम. ।
सहस्रशिखरश्चाद्रिपारियात्र.सप्त भवान् ॥१०
पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहि ।
एतेऽचला समाख्याता शृणुष्वान्यास्तथोत्तरान् ॥११
शङ्खकूटोऽथवृषभोहंसनाभस्तथाचलः ।
कपिलेन्द्रस्तथाशैल सानुमान्नीलएवच ॥१२
स्वर्णशृङ्ग शातशृ ग पुष्पकोमेघपर्वत ।
विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा ॥१३
इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ।
एतेषापर्वतानातुद्रोण्योतीवमनोहराः ॥१४

सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ॥९॥ अजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर, सहस्र शिखर, पारियात्र और शृङ्गवान् ॥१०॥ यह सुमेरु और विष्कम्भ के पश्चिम और बहिर्भाग में अवस्थित है, अब उत्तर दिशा के पर्वतों के विषय में कहता हूँ, उसे सुनो ॥११॥ शङ्खकूट, वृषभ, हंसनाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ॥१२॥ स्वर्ण शृङ्गी, शातशृङ्गी, पुष्पक, मेघ पर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, मयूर और जारुधि ॥१३॥ हे विप्र ! यह सभी पर्वत सुमेरु के उत्तर भाग में स्थित बताये गये हैं, इन पर्वतों की गुफाएँ अत्यन्त रमणीक है ॥१४॥

वर्णैरमलपानीयैःसरोभिरुपशोभिता ।
तानुपुण्यकृताजन्ममनुष्याणाद्विजोत्तम ॥१५
एतेभौमाद्विजश्रेष्ठस्वर्गा स्वर्गगुणाधिकाः ।
नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥१६
पुण्योपभोगएवोक्तोदेवानामपितास्वपि ।
शीतान्ताद्येषुचेतेषुशैलेषुद्विजसत्तम ॥१७
विद्याधराणायक्षाणाकिन्नरोरगरक्षसाम् ।
देवानाचमहावासागन्धर्वाणाचशोभना. ॥१८

सभा पुर्योमनोज्ञाश्चसदैवोपवनैर्युता ।
सरासिचमनोज्ञानिसर्वर्तुसुखदोनिल ॥१६
नचैतेषुक्लमोबाधावैमनस्यचकुत्रचित् ।
तदेतत्पार्थिवपद्म चतुष्पत्रमयोदितम् ॥२०
भद्राश्चभारताद्यानिपत्राण्यस्यचतुर्दिशम् ।
भारतनामयद्वर्षदक्षिणेनमयोदितम् ॥२१
तत्कर्मभूमिर्नान्यत्रसप्राप्तिःपुण्यपापयो. ।
एतत्प्रधानविज्ञेयंयत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ॥२२
अस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ।
तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरा प्राप्नोतिवैद्विज ॥२३

यह सभी पर्वत वन तथा निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवरो से सुशोभित है, इस परम पुण्य स्थल मे पुण्यात्मा मनुष्य ही उत्पन्न होते है ॥१५॥ हे द्विजवर ! यह सब स्थान स्वर्ग से भी गुणवत भौम स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ अपूर्व पाप अथवा पुण्य सचित नही होता ॥१६॥ इन सभी शीतान्तादि पर्वतो का उपभोग हो सकना देवगणो के लिए भी पुण्य भोग स्वरूप है ॥१७॥ यहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता, गधर्व आदि का अत्यन्त सुशोभित निवास है ॥१८॥ यह भूमि अत्यन्त पुण्यरूपा, सुरम्य और देवोद्यान एव मनोहर सरोवरो से युक्त है, यहाँ की समीर सभी ऋतुओ मे सुखदायी है ॥१९॥ यहाँ कही भी मनुष्य मे विद्वेष भाव दिखायी नही देता, इसीलिये इसे मैंने चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहा है ॥२०॥ भद्राश्व और भारत आदि इसके चारो ओर चार पत्ते है तथा जो दक्षिण दिशा मे भारतवर्ष कहा है ॥२१॥ यह कर्मभूमि है, अन्य किसी स्थान मे पाप-पुण्य की उपलब्धि नही है, सबके अवस्थान करने से भारतवर्ष को ही प्रधान माना गया है ॥२२॥ कर्मभूमि होने के कारण ही इससे मनुष्यो को स्वर्ग, मोक्ष, मनुष्य योनि, नरक, खगयोनि अथवा अन्यान्य योनियो की प्राप्ति होती है ॥२३॥

४८—गंगावतार

धराधरजगद्योनेःपादंनारायणस्यच ।
तत.प्रवृत्तायादेवीगगाऽत्रिपथगामिनी ॥१
साप्रविश्यसुधायोनिसोममाधारमम्भसाम् ।
तत सवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपाविनी ॥२
पपातमेरुपृष्ठेचसाचतुर्द्धाततोयथौ ।
मेरुकूटतटान्तेभ्योनिपतन्तीविवर्तिता ॥३
विकीर्यमाणसलिलानिरालम्बापपातसा ।
मन्दराद्येषुपादेषुप्रविभक्तोदकासमम् ॥४
चतुर्ष्वपिपपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ।
पूर्वासीतेऽतिविख्यातायथौचैत्ररथवनम् ॥५
तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदसरोवरम् ।
शीतान्तचगिरितस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ॥६
गत्वाभुवसमासाद्यभद्राश्वेजलधिगता ।
तथैवालकनन्दाख्यादक्षिणेगन्धमादने ॥७

मार्कण्डेयजी ने कहा—जगद्योनि नारायण के भ्रूधार पद से ही त्रिपथगामिनी भगवती गंगा की उत्पत्ति हुई है ॥१॥ वह समस्त जल की आधार रूपिणी सुधायोनि चन्द्रमण्डल मे प्रवेश करके वहाँ सम्बद्ध सूर्य-रश्मियो से सयुक्त हो कर अत्यन्त पवित्र हो कर ॥२॥ सुमेरु पर गिरी है और वहाँ के सब कूट प्रान्त से गिरती हुई चार धाराओ मे वहाँ से निकली है ॥३॥ इस प्रकार जल से विस्तृत और आलम्ब से रहित गंगा मन्दरादि पर्वत मे विभाजित हो कर समान भाव से निपतित हुई है ॥४॥ और पर्वत-शिखाओ को काटती हुई बढी, उसमे जो जल धारा पूर्व मे बहती हुई चैत्ररथ वन की ओर गई है, उसे सीता कहते है ॥५॥ यह सीता नामक गंगा चैत्ररथ वन को जलयुक्त करती हुई वरुणोद सरोवर मे पहुँची है, वहाँ से शीतान्त पर्वत एवं अन्य पर्वतो का अतिक्रमण करती हुई ॥६॥ पृथिवी पर उतर कर भद्राश्व वर्ष मे हो कर समुद्र तक

गई है तथा सुमेरु के दक्षिण ओर से जो गगाजल गधमादन पर्वत में निपतित हुआ है, उस धारा नाम अलकनन्दा है ।।७।।

मेरुपादेवनगत्वानन्दवदेवनन्दनम् ।
मानसचमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।।८
आसाद्यशैलराजानरम्यत्रिशिखरगता ।
तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणेयेक्रमोदिता: ।।९
तान्प्लावयित्वासप्राप्तहिमवन्तमहागिरिम् ।
दधारतत्रताशम्भुर्नमुमोचवृषध्वज: ।।१०
भगीरथेनोपवासैस्तुत्याचाराधितोविभु: ।
तत्रमुक्तश्चशर्व्वणसप्तधादक्षिणोदधिम् ।।११
प्रविवेशत्रिधाप्राच्याप्लावयन्तीमहानदी ।
भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणम् ।।१२
तथैवपश्चिमेपादेविपुलेसामहानदी ।
सुचक्षुरितिविख्यातावैभ्राजसावनंययौ ।।१३
शीतोदचसरस्तस्मात्प्लावयन्तीमहानदी ।
तस्मात्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेषुनिपत्यसा ।
सुचक्षु.पर्वतप्राप्ततत्रत्रिशिखंगता ।।१४

अलकनन्दा ने सुमेरु के समीपवर्ती देवताओं को प्रसन्नताप्रद नन्दनवन मे आकर अत्यन्त वेग से मानस सरोवर को जल से परिपूर्ण किया है ।।८।। इस मानस सरोवर को भर कर पर्वतराज के मरम्य शिखर स्थान से तथा वहाँ से सब पर्वतो का अतिक्रमण करती हुई ।।९।। और उन्हे जल से परिपूर्ण करती हुई हिमालय मे निपतित हुई है, वहा भगवान् आकर ने उस गगा को धारण कर उन्हे किसी प्रकार भी नही छोडा ।।१०।। फिर जब महाराज भगीरथ ने भगवान् शिव की उपवास और स्तुति पूर्वक आराधना की तब उन्होंने गंगा को छोडा और वहा से छूटते ही गगा सात धाराओ मे विभक्त हो कर दक्षिण समुद्र मे प्रविष्ट हुई ।।११।। उनमे तीन भाग पूर्व की ओर प्लावित करती हुई समुद्र मे गई और एक धारा भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे जाकर समुद्र मे

जा मिली ॥१२॥ सुमेरु के पश्चिम मे विपुलपाद के रूप से जो धारा निर्गत हुई उसका नाम सुचक्षु हुआ, उसने वैभ्राज पर्वत एव वन को पवित्र करते हुए ॥१३॥ शीतोद सरोवर को प्लावित किया और वहा से सब पर्वतो के शिखरो पर और सुचक्षु पर्वत पर हो कर त्रिशिखर पर्वत को प्राप्त हुई ॥१४॥

केतुमालसमासाद्यप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ॥१५
(गत्वोत्तरादिशंगङ्गादिव्यासाचमहानदी ।
तस्माच्चऋषभादीश्चक्रमादुत्तरजान्नगान् ॥)
सुपार्श्वं तुतथं वाद्रिमेरुपादहिसागता ।
भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ॥१६
तत्पावयन्तीसप्राप्तामहाभद्र सरोवरम् ।
ततश्चशङ्खकूटसाप्रयातावैमहानदी ॥१७
तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्यशिलोच्चयाम् ।
महार्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥१८
एवमेषामयागगाकथितातेद्विजर्षभ ।
जम्बूद्वीपनिवेशञ्चवर्षाणिचयथातथम् ॥१९
वसन्तितेषुसर्वेषुप्रजा किंपुरुषादिषु ।
सुखप्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिता ॥२०
नवस्वपिचवर्षेषुसप्तसप्तकुलाचला ।
एकैकस्मिन्यथादेशेनद्यश्चाद्रिविनिसृता ॥२१

फिर केतुमाल वर्ष मे प्रवेश करती हुई समुद्र मे सयुक्त हुई है ॥१५॥ (फिर यह दिव्य महानदी उत्तर दिशा मे होती हुई ऋषभादिक उत्तर पर्वतो को प्राप्त हुई) यह चतुर्थ धारा सुपार्श्व और सुमेरु से सविता वन मे गई, वहाँ भद्र सोमा के नाम से प्रसिद्ध हुई, उस सविता वन को ॥१६॥ पवित्र करके उसने महाभद्र सरोवर को प्लावित किया, फिर शङ्खकूट पर्वत मे गई ॥१७॥ वहा से वृषभादि पर्वतो मे हो कर उसने समस्त उत्तर कुरु देश को पवित्र किया और फिर महा सागर मे जा मिली ॥१८॥ हे द्विजवर ! मैंने तुम्हारे प्रति गगाजी का विषय कहा तथा जम्बूद्वीप के निवेश मे ॥१९॥ जिन किम्पुरुषादि